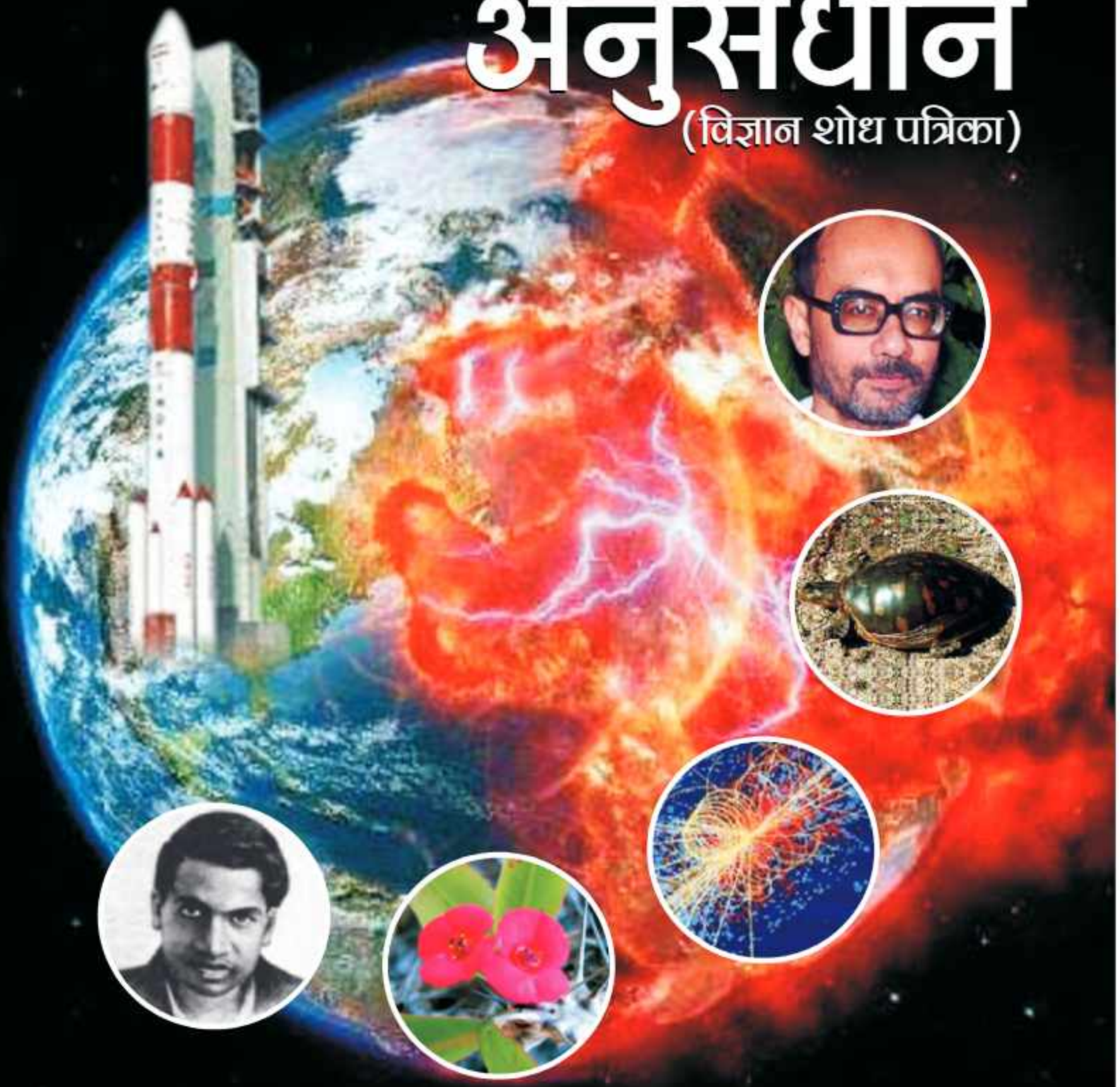
खण्ड 1, अंक 1, वर्ष 2013

आई.एस.एस.एन. : 2322-0708

अनुसंधान

(विज्ञान शोध पत्रिका)



बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय(के0के0वी0)

(लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001(उ0प्र0), भारत

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय(के0के0वी0)

(लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0प्र0)-226001, भारत

नैक प्रत्यायित "बी" संस्था

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद

www.bsnvpgcollege.in/vp

संवैधानिक संरचना

मुख्य संरक्षक	श्री आर0 के0 शुक्ल, मंत्री / प्रबंधक
संरक्षक	डॉ0 जी0 सी0 मिश्र, प्राचार्य(पदेन)
अध्यक्ष	डॉ0 सुधीश चन्द्र, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
उपाध्यक्ष	डॉ0 संजय शुक्ल, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भूगर्भ विज्ञान विभाग
उपाध्यक्ष	डॉ0 के0 के0 बाजपेई, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग
सचिव	डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
संयुक्त सचिव	डॉ0 वीना पी0 स्वामी, असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग

संस्थापक मंडल

श्री बृजेन्द्र सिंह(प्राणि विज्ञान)
डॉ0 सुधीश चन्द्र(प्राणि विज्ञान)
डॉ0 संजीव शुक्ल(प्राणि विज्ञान)
डॉ0 संजय शुक्ल(भूगर्भ विज्ञान)
डॉ0 यू0एस0 अवस्थी(वनस्पति विज्ञान)
डॉ0 के0 के0 बाजपेई(गणित)
श्री राम कुमार तिवारी(भौतिक विज्ञान)
डॉ0 ए0 पी0 वर्मा(वनस्पति विज्ञान)
डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव(गणित)
डॉ0 वीना पी0 स्वामी(प्राणि विज्ञान)
श्री राजेश राम(रसायन विज्ञान)

सम्पादक–मंडल

प्रधान सम्पादक

डॉ0 सुधीश चन्द्र
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

सम्पादक

डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

सह–सम्पादक

डॉ0 संजीव शुक्ल
एसोसिएट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

डॉ0 संजय शुक्ल
एसोसिएट प्रोफेसर, भूगर्भ विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

डॉ0 यू0 एस0 अवस्थी
वनस्पति विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

डॉ0 अर्चना राजन
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
राजकीय स्ना0 महा0, हरख, बाराबंकी(उ0 प्र0)

डॉ0 ऋचा शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 सुधीर मेहरोत्रा
एसोसिएट प्रोफेसर, जैव रसायन विभाग
लखनऊ वि0 वि0, लखनऊ

डॉ0 ज्योति काला
एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

श्री राम कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

डॉ0 वीना पी0 स्वामी
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

श्री राजेश राम
असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

डॉ0 अल्का मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, गणित एवं खगोलशास्त्र विभाग
लखनऊ वि0 वि0, लखनऊ

डॉ0 डी0 डी0 मिश्र
वाणिज्य संकाय
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

इं0 मनोज कुमार वार्ष्णेय
वरिष्ठ प्रवक्ता एवं अध्यक्ष, सिविल इंजीनियरिंग
डी0 एन0 पॉलीटेक्निक, परतापुर, मेरठ(उ0प्र0)

डॉ0 राजीव सक्सेना
प्रोग्रामर, सांख्यिकी विभाग
लखनऊ वि0 वि0, लखनऊ

सलाहकार-मंडल

प्रमुख सलाहकार

श्री टी० एन० मिश्र
अध्यक्ष, बी० एस० एन० वी० इंस्टीट्यूट, लखनऊ

राष्ट्रीय सलाहकार मंडल

प्रो० भूमित्र देव (लखनऊ)
प्रो० एच० आर० सिंह (इलाहाबाद)
प्रो० पी० के० जैन (दिल्ली)
प्रो० आर० सी० श्रीवास्तव (गोरखपुर)
प्रो० ऐ० के० चोपड़ा (हरिद्वार)
प्रो० ए० के० शर्मा (लखनऊ)
प्रो० वाई० के० शर्मा (लखनऊ)
प्रो० सुनील दत्त (लखनऊ)
प्रो० एस० पी० त्रिवेदी (लखनऊ)
प्रो० पीयुष चन्द्रा (कानपुर)
प्रो० आनंद कुमार श्रीवास्तव (लखनऊ)
प्रो० एस० के० कुलश्रेष्ठ (चण्डीगढ, पंजाब)
प्रो० बी० एस० तिवारी (चण्डीगढ, पंजाब)
प्रो० आर० एस० टण्डन (सुल्तानपुर)
प्रो० मधु त्रिपाठी (लखनऊ)
डॉ० एस० सी० मिश्र (लखनऊ)
डॉ० बी० के० द्विवेदी (लखनऊ)
डॉ० एस० सी० शुक्ल (लखनऊ)
प्रो० कृष्ण बिहारी पाण्डेय (सतना, म०प्र०)
प्रो० यतीश अग्रवाल (नई दिल्ली)
डॉ० प्रदीप कुमार श्रीवास्तव (लखनऊ)
डॉ० शंकर लाल (कानपुर)
प्रो० नदीम हसनैन (लखनऊ)
प्रो० प्रदीप कु० प्रजापति (जामनगर, गुजरात)
प्रो० कैलाश डी० सिंह (लखनऊ)
डॉ० संतोष कुमार पाण्डेय (नोयडा)

अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार मंडल

प्रो० एच० एम० श्रीवास्तव (कनाडा)
प्रो० हेराल्ड रामकिशन (वेस्टइंडीज)
डॉ० शह राज अली (ओमान)
डॉ० तनवीर आलम (सउदी अरब)
डॉ० मनमोहन देव शर्मा (यू० के०)
डॉ० वृंदा अग्रवाल (यू० एस० ए०)
डॉ० अनूप अग्रवाल (यू० एस० ए०)
प्रो० संजय कुमार श्रीवास्तव (यू० एस० ए०)
प्रो० प्रीति बाजपेई (यू० ए० ई०)
प्रो० एम० जी० प्रसाद (यू० एस० ए०)

सम्पादकीय

भाषा अभिव्यक्ति एवं संचार का माध्यम होने के साथ–साथ विचारों की जननी भी है। हर देश की भाषा उसकी सांस्कृतिक परिपाटियों, रहन–सहन व उसकी बौद्धिक क्षमताओं की द्योतक है। सामान्यत: मौलिक विचार एवं अनुसंधान वहीं पनप पाते हैं जहाँ चिंतन अपनी मातृभाषा में होता है।

आधुनिक विज्ञान के अंग्रेजी भाषा में होने का कारण उसकी पश्चिमी देशों से उपज है, तथा ग्रीक व लैटिन का मूल स्रोत होना है। दुर्भाग्यवश भारत में भी इसी परम्परा का पालन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले व बाद में अनवरत जारी है। इससे एक ओर महत्वपूर्ण हानि यह हुई कि भारत के प्राचीन ज्ञान–विज्ञान से अंतर्राष्ट्रीय जगत का वास्तविक रूप में परिचय नहीं हो पाया तथा दूसरी ओर यदि कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो मौलिक अनुसंधान नहीं हो पाये। मानव प्रथम अपनी मातृभाषा में चिंतन करता है तत्पश्चात् उसका अंग्रेजी में अनुवाद करता है, यह दोहरी पद्धति ऊर्जा का अनावश्यक अपव्यय करती है। यदि इस ऊर्जा को बचाया जाय तो शोध की गुणवत्ता बढ़ सकती है।

विज्ञान का लाभ सही तरीके से तभी प्राप्त हो सकता है जब वह प्रयोगशाला से निकलकर जनसामान्य तक पहुँचे। इस दिशा में मातृभाषा में विज्ञान की उपलब्धता ही सहायक हो सकती है। आवश्यकता यह है कि हमारे विद्वान नई, उपयोगी तथा जटिल खोजों/अन्वेषणों को पढ़कर, पचाकर, मनन कर उसका सरल निचोड़ प्रस्तुत करते रहें। कठिन भाषा में लिखना–बोलना आसान है किन्तु उसका प्रभाव कम है। आसान भाषा में लिखना बोलना कठिन है किन्तु सम्प्रेषण का प्रभाव व्यापक है। दूसरे हमें अंतर्राष्ट्रीय "ज्ञान–बाजार" का भी ध्यान रखना होगा यदि जर्मनी, फ्रांस, जापान, रूस व चीन की तरह अंतर्राष्ट्रीय शोध शीघ्रातिशीघ्र हमें हिन्दी में उपलब्ध हो तो विदेशी भाषा की आवश्यकता नहीं रहेगी अन्यथा अंग्रेजी का विरोध मात्र गर्जन–तर्जन ही होगा।

सामान्यत: वैज्ञानिक शब्दों का रोना रोया जाता है, किन्तु यह ध्यान रखना होगा जो वैज्ञानिक पहली बार कोई नया तथ्य खोजता है उसे ही नया नाम देने का अधिकार मिलता है उदाहरणार्थ– "रमन प्रभाव"। नये शब्दों की रचना का सीधा सम्बन्ध अनुसंधान की गहराई व विस्तार से है। अत: हमें अपने अनुसंधानों का स्तर और सुधारना होगा तब हम शब्दों का आयात कम और निर्यात अधिक करने में सक्षम होंगे। इसके लिए हमें ज्ञात और अज्ञात के क्षितिज पर दृढ़ता से खड़ा होना होगा।

इन सभी तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए **"अनुसंधान"** नाम से **विज्ञान शोध पत्रिका** का शुभारम्भ किया जा रहा है। यह पत्रिका जहाँ एक ओर मातृभाषा में काम करने वाले शोधार्थियों/शिक्षकों/वैज्ञानिकों की अभिव्यक्ति का उचित माध्यम बन सकेगी वहीं दूसरी ओर नित नये अंतर्राष्ट्रीय शोधकार्यों को शोध पत्रों/लेखों के माध्यम से जनसामान्य तक पहुंचाने का कार्य करेगी।

पत्रिका में यद्यपि मानक शब्दावली का प्रयोग किया गया है तथापि अतिक्लिष्टता के स्थान पर सामान्य बोल–चाल की भाषा का प्रयोग भी किया गया है, ताकि विषय को अधिक ग्राह्य व बोधगम्य बनाया जा सके। बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद एवं **"अनुसंधान"(विज्ञान शोध पत्रिका)** के सम्पादक मंडल के सदस्यों का प्रयास है कि यह पत्रिका शोध–जगत में एक मानदण्ड बन सके तथा छात्रों को ज्ञात व अज्ञात के क्षितिज पर खड़ा होने की प्रेरणा दे सके।

डॉ0 सुधीश चन्द्र
प्रधान सम्पादक
"अनुसंधान"
(विज्ञान शोध पत्रिका)

स्थापनाः वर्ष 2013 आई0एस0एस0एन0(प्रिंट) : 2322–0708

अनुसंधान
(विज्ञान शोध पत्रिका)

खण्ड 01, अंक 01 अक्टूबर, 2013

महत्वपूर्ण चित्र













पृष्ठ	अनुक्रमणिका
	भाग –1 (शोध पत्र)
1	◘ 6 अक्ष–सममित स्टोक्स प्रवाह में अनुकूलित घर्षण मान का ओशिन संशोधन, दीपक कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य ◘ 14 ठोस 8–हाइड्रॉक्सीकुइनोलीन में समूह घर्षण का नाभिक–चुंबकीय अनुनाद अध्ययन, सतीश चन्द्र मिश्र ◘ 17 अकार्बनिक अवेक्षप द्वारा निर्मित कृत्रिम झिल्ली के आर–पार द्वि–आयनिक विभव का अध्ययन, प्रशांत कुमार पाठक एवं अन्य ◘ 26 औषधीय एवं जैव क्रियाओं में कीलेटीकरण की भूमिका, विजय शंकर ◘ 31 स्वच्छ जलीय झींगा, *मै ब्रेकियम लैमेरार्इ* के गिल पर डिटर्जेंट लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट का दुष्प्रभाव, संजीव शुक्ल एवं अन्य ◘ 35 विज्ञान प्रसार के प्रकाशन, मनीष मोहन गोरे ◘ 40 गेहूँ (*टिटिकम एस्टिवम एल०*) की वृद्धि, बीज की गुणवत्ता और उत्पादकता पर नाइट्रोजन उर्वरक का प्रभाव, महीपत सिंह ◘ 46 बाराबंकी(उ0प्र0) जिले की आक्रामक विदेशी प्रजातियाँ, आलोक मिश्र ◘ 51 आभासी प्रयोगशाला : एक प्रभावी शैक्षिक उपकरण, रामकुमार तिवारी।
	भाग–2 (समीक्षा आलेख / तकनीकी आलेख)
55	◘ 55 एच0आई0वी0 एवं एड्स–जानकारी, रोकथाम एवं उपचार, सुधीर मेहरोत्रा एवं खुशवंत सिंह ◘ 66 ओसबोर्न रेनॉल्डस–उनके योगदान पर एक समीक्षा, दीपक कुमार श्रीवास्तव एवं निर्मल श्रीवास्तव ◘ 69 नैनो प्रौद्योगिकी–एक परिचय एवं इलेक्ट्रॉनिकी का प्रयोग, रण विजय कुमार चरण ◘ 72 आर0सी0सी0 संरचनाओं के अभिकल्पन के तरीकों का मूल्यांकन–कार्यकारी, चरम प्रतिबल एवं सीमा स्थिति विधियों का एक अध्ययन, मनोज कुमार वार्ष्णेय। ◘ 77 जीवगणित(बायोमैथमेटिक्स): एक तकनीकी परिचय, विजय शंकर वर्मा एवं अन्य ◘ 80 देवकण बोजॉन : कण–कण में भगवान, ज्योति काला ◘ 85 कृत्रिम झिल्ली और इसके अनुप्रयोग : एक तकनीकी समीक्षा, मुहम्मद अयूब अंसारी एवं अन्य ◘ 89 आधुनिक युग में योग चिकित्साः सुधारात्मक एवं बचावात्मक प्रभाव, रेनू मौर्या ◘ 94 विषाक्त मछलियाँ, सुधीश चन्द्र ◘ 99 प्राकृतिक प्रतिसूक्ष्मजीवी रसायन, महेश पाल एवं अन्य ◘ 108 ई–वाणिज्य तकनीकी की व्यवसाय में उपयोगिता, डी0 डी0 मिश्र ◘ 112 उत्तराखण्ड के टेरिडोफाइटा पादप समुदाय की औषधीय गुणों वाली कुछ प्रजातियाँ, नीलाम्बर पुनेठा एवं ऋचा पुनेठा ◘ 114 उत्तराखण्ड आपदा के कारण, निवारण एवं हमारे दायित्व, ध्रुव सेन सिंह ◘ 117 वैदिक विज्ञान की आधुनिक प्रामाणिकताः एक तकनीकी समीक्षा, डॉ0 के0 के0 बाजपेई ◘ 120 न्यायालयिक विज्ञान में वानस्पतिक साक्ष्यों का महत्व, अर्चना राजन ◘ 124 एम0 कॉमर्स, प्रीति पंत ◘ 127 शरीर रचना विज्ञान में देहदान की प्रासंगिकताः एक समीक्षा, अर्चना रानी ◘ 130 ब्रायोफाइट्स–प्रदूषण के जीव सूचक के रूप में, यू0 एस0 अवस्थी ◘ 132 शून्य गणित–एक तकनीकी विवेचना, रमा जैन ◘ 136 भारतवर्ष में विज्ञान की परंपरा एवं विकास, रमेश चन्द्र श्रीवास्तव ◘ 139 घोड़ा–कटोरा झील राजगीर(नालन्दा) आदर्श पक्षी विहार–एक विवेचना, नन्दजी कुमार तथा विकास कुमार प्रभात।
	भाग–3 (वैज्ञानिक लेख)
142	◘ 142 भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के 50 वर्षः एक विहंगावलोकन, कृष्ण कुमार मिश्र ◘ 145 आओ संवारे जैवविविधता, नवनीत कुमार गुप्ता ◘ 148 पुष्प उत्पादन में महिलाओं की भूमिका व रोजगार के अवसर, मस्त राम घीमान एवं चन्द्र प्रकाश ◘ 153 कस्तूरी मृग, सी0 पी0 सिंह ◘ 155 पेट्रोपादप या पेट्रोप्लांट, यू0 एस0 अवस्थी ◘ 157 पार्थेनियम से कैसे बचें, पी0 के0 मुखर्जी ◘ 159 भारत की भू–संरचनाः एक संक्षिप्त परिचय, बी0 एस0 तिवारी एवं संजय शुक्ल ◘ 162 हस्त विसंक्रमक(हैण्ड सैनिटाइजर): सत्य व मिथ, प्रेक्षा राजन ◘ 164 तंबाकू के सेवन की बढ़ती प्रवृत्ति एवं उसके दुष्परिणाम, राजेश सिंह एवं अन्य ◘ 168 लुप्त प्राय जन्तु : कछुआ, ऋचा शुक्ला ◘ 171 स्मृति अध्यास के कारण एवं उपचार, मेंहदी हसन ◘ 173 भावनाएं एवं हृदघात की संभावनाएं, एस0 सी0 शुक्ल ◘ 176 द्विघातीय समीकरणः प्राचीन व समकालीन प्रणाली का विश्लेषण, प्रीति बाजपेई ◘ 179 बायोमैट्रिक्स–मानव बना पासवर्ड, दीपक कोहली ◘ 181 वन एवं आदिवासी, महेन्द्र प्रताप सिंह ◘ 187 नैनो–मैटीरियल आधारित संवेदक, मुहम्मद अयूब अंसारी एवं रमेश कुमार प्रजापति ◘ 189 टाँगों में वेरीकोस वेन्स होने पर क्या करें ?, के0 के0 पाण्डेय ◘ 192 विज्ञान शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया, सुरेश कुमार सोनी ◘ 197 तनाव से कैसे उबरें, कृष्ण दत्त

महत्वपूर्ण चित्र	पृष्ठ	अनुक्रमणिका
	199	◘ 199 समाज शास्त्र एवं इसकी वैज्ञानिक प्रकृति, विजय कुमार ◘ 204 वैज्ञानिक फसलोत्पाद में मटका खाद की उपयोगिता एवं महत्व, महीपत सिंह एवं प्रवीन कुमार सिंह ◘ 206 इंटरनेट–सूचना प्रौद्योगिकी की अद्वितीय भेंट, अपर्णा टण्डन ◘ 209 सबसे पुरानी घड़ी बनाम शरीर घड़ी, इरफाना बेगम ◘ 212 जल–मण्डारण, संरक्षण एवं प्रबन्धन, ए0 के0 चतुर्वेदी ◘ 214 सब्जियां और मसालेः सेहत का भण्डार, आनन्द अखिला ◘ 217 विज्ञान संचार में स्वास्थ्य सेवा प्रदाता की भूमिका, सचिन नरवडिया ◘ 219 एक्वेरियम ब्रायोफाइट्स, यू0 एस0 अवस्थी ◘ 221 सुनहरी चमत्कारी संख्या, एन0 के0 शर्मा ◘ 223 हल्दी और स्वास्थ्य, ऐ0 के0 चतुर्वेदी ◘ 225 जीरा–भारतीय मसाला एवं औषधि, जे0 के0 मिश्र ◘ 226 नगरीय व राजमार्गों पर वृक्षारोपण, मोहित तिवारी एवं अन्य।
		भाग–4 (विविध)
	233	संगोष्ठी / कार्यशाला आख्या
		◘ 233 भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन व संसाधन विकासः संगोष्ठी आख्या, अनंत पांडुरंग देशपांडे ◘ 236 हिन्दी में विज्ञान लेखन कार्यशाला, कैलाश डी0 सिंह ◘ 239 वातावरणीय क्षरण व जलजीव पालन, अशोक कुमार एवं शशिकांत शुक्ल।
	241	महत्वपूर्ण विषयों पर संक्षिप्त लेख / सूचनाएं
		◘ 241 नोबेल पुरस्कार विजेता विद्वान–वर्ष 2012, दीपक कुमार श्रीवास्तव ◘ 244 गॉड पार्टिकल(हिग्स बोजॉन), रामकुमार तिवारी ◘ 245 जैव रसायन से संबंधित नवीन जानकारी एवं प्रगति, सुधीर मेहरोत्रा ◘ 247 बादल फटना, दिव्यांश श्रीवास्तव ◘ 248 नवीन विज्ञान समाचार, दीपक कोहली ◘ 250 छात्र / छात्राओं को उनकी अभिरूचि के आधार पर उनके व्यवसायिक उद्देश्यों को पूर्ण करने संबंधित निर्णय लेने वाला नया सॉफ्टवेयर, अर्चना सिन्हा ◘ 250 कम्प्यूटर माउस के जनक–डगलस एन्जेलबर्ट, इशिता द्विवेदी ◘ 251 अब पौधे नहीं करेंगे आपसे शिकायत, दिव्या सिंह।
		संपादक द्वारा संकलित वैज्ञानिक सूचनाएं(पी0टी0आई0)
	252	◘ 252 कृत्रिम लिवर करेगा अपना काम ◘ 252 ग्राफीन से सौ गुना बढ़ जायेगी इंटरनेट की गति ◘ 253 कार्बन–डाइऑक्साइड से बनेगी बिजली ◘ 253 टाटा–इसरो ने बनाई भारत की पहली प्रदूषण रहित हाइड्रोजन बस ◘ 254 ऑस्ट्रेलिया ने बनाया सबसे तेज सुपर कम्प्यूटर ◘ 254 अब डेथ टेस्ट बतायेगा कितने दिन जियेंगे आप ◘ 255 भारत की प्रथम स्वनिर्मित परमाणु पनडुब्बी।
		राष्ट्रीय प्रयोगशाला / राष्ट्रीय संस्था
	256	◘ 256 राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान(एन0बी0आर0आई0) लखनऊ, जयेन्द्र कुमार जौहरी।
		भारतीय उत्कृष्ट दिव्य चरित्र
	262	◘ 262 विलक्षण कुशाग्र मेधाः श्रीनिवास आयंगर रामानुजन्, के0 के0 बाजपेई एवं दिव्यांश बाजपेई।
		विशिष्ट प्रोफेसर एवं वैज्ञानिक
	265	◘ 265 अशोक सेन – एक संक्षिप्त परिचय, अरविन्द कुमार तिवारी।
		पुस्तक समीक्षा
	267	◘ 267 ज्यामिति(द्वि विमीय एवं त्रि विमीय), समीक्षकः एन0 के0 शर्मा।
		साईंटून्स
	268	◘ 268 विज्ञान शिक्षण और साईंटून्स, सन्तोष कुमार शर्मा
	269	◘ 269 बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद – विवरण एवं सदस्यता प्रारूप

अक्ष–सममित स्टोक्स प्रवाह में अनुकूलित घर्षण मान का ओशिन संशोधन

दीपक कुमार श्रीवास्तव[1], निर्मल श्रीवास्तव[1] तथा राजा राम यादव[2]

[1]गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज(लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
dksflow@hotmail.com, nirmalsri.25@gmail.com

[2]गणित विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ(उ0 प्र0)–226007, भारत
yadav_rr2@yahoo.co.in

सार

इस शोध पत्र में अक्ष–सममित स्टोक्स प्रवाह में अनुकूलित घर्षण मान का ओशिन संशोधन, अचर आयतन एवं अचर क्षेत्रफल वाली शर्तों के अंतर्गत प्राप्त किया गया है। इसके लिए **दत्ता एवं श्रीवास्तव**(2000) द्वारा पूर्व में प्राप्त अनुकूलित घर्षण के मान तथा तत्पश्चात् अनुकूलित घर्षण मान के ओशिन संशोधन को **ब्रैनर**(1961) के सूत्र द्वारा प्राप्त किया गया है। रेनॉल्डस संख्या 'R' के छोटे मान हेतु घर्षण मान में प्राप्त भिन्नता को विभिन्न लेग्रांज मल्टीप्लायर 'm' के लिए रेखांकन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ओशिन घर्षण के कुछ महत्वपूर्ण प्रयोगों को भी उजागर किया गया है।

बीज शब्द: स्टोक्स घर्षण, ओशिन घर्षण, अक्षीय सममित आकृतियां, अनुकूल घर्षण आकृतियां, अक्षीय प्रवाह।

ए0 एम0 एस0 विषय वर्गीकरण : 76डी 07

Oseen's correction in optimum drag in axi-symmetric Stokes flow

Deepak Kumar Srivastava[1], Nirmal Srivastava[1] and Raja Ram Yadav[2]

[1]Department of Mathematics
B.S.N.V. P.G. College(University of Lucknow, Lucknow)
Station Road, Charbagh, Lucknow(U.P.)-226001, India
dksflow@hotmail.com, nirmalsri.25@gmail.com

[2]Department of Mathematics
University of Lucknow, Lucknow(U.P.)-226007, India
yadav_rr2@yahoo.co.in

Abstract

In this research note, optimum drag values for axisymmetric Stokes flow under the constraints of constant volume and constant cross-section area is corrected due to Oseen. For this, optimum values of drag obtained by **Datta and Srivastava**(2000) are utilized for Oseen's correction followed by **Brenner's**(1961) formula. The corresponding variation of Oseen's drag with respect to low Reynolds numbers for various values of Lagranges multiplires 'm' are displayed through graphs. Some important applications are also highlighted.

Key words Stokes drag, Oseen drag, axi-symmetric shapes, optimum drag shapes, axial flow

AMS Subject Classification 76D07

1, प्रस्तावना

दत्ता एवं श्रीवास्तव(2002) द्वारा अक्ष–सममित स्टोक्स प्रवाह में अनुकूलित घर्षण मान अचर आयतन एवं अचर क्षेत्रफल वाली शर्तों के अंतर्गत प्राप्त किया गया है। इस शोध पत्र में अक्षीय सममित आकृति की ज्यामिति पर आधारित **दत्ता एवं श्रीवास्तव**(1999) द्वारा पूर्व में निकाले गये व्यापक घर्षण व्यंजक का प्रयोग किया गया है। इसी का प्रयोग करते हुए बाद में **श्रीवास्तव**(2007) द्वारा अचर घर्षण की शर्त के अंतर्गत अनुकूलित आयतन आकृतियां प्राप्त की गयीं। इसी कार्य को आगे बढ़ाते हुए **श्रीवास्तव**(2011) द्वारा पुन: अचर घर्षण की शर्त के अंतर्गत अनुकूलित क्षेत्रफल वाली आकृतियां प्राप्त की गयीं। अंतिम दोनों व्युत्क्रम समस्याओं में शोधकर्ता द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि इन प्राप्त आकृतियों के आगे तथा पीछे के छोर शंकु के आकार के या नुकीले होंगे जो कि पूर्व में **दत्ता एवं श्रीवास्तव**(2002) द्वारा निकाले गये निष्कर्ष के समान था। इन सभी समस्याओं में अनुकूलन मान की गणना लेग्रांज मल्टीप्लायर '$0 < m \leq 1$' के लिए प्राप्त की गयी है।

वर्तमान शोध लेख में, इन सभी समस्याओं में समान अनुकूलन आकृतियों हेतु इंगित अनुकूलित घर्षण मान को **ओशिन**(1927) के मान तक संशोधित किया गया है। यह अनुकूलित घर्षण मान चांग(1960) के विश्लेषण पर आधारित **ब्रैनर**(1961) के सूत्र की मदद से नेवियर–स्टोक्स समीकरण में गैर–रेखीय(non-linear) पदो के प्रभाव को **ओशीन**(1927) के सन्निकट मान के आधार पर अक्ष–सममित शरीर के चारो ओर एकरूप वेग प्रवाह को प्रयोग करके रेखीय बनाते हुए प्राप्त किये गये हैं तथा रेनॉल्डस संख्या 'R' के पदों में संशोधित घर्षण अनुकूलन मान के व्यंजक प्राप्त होते हैं। रेनॉल्डस संख्या 'R' के छोटे मान हेतु , रेनॉल्डस संख्या 'R' के प्रथम घात तक प्राप्त यही घर्षण व्यंजक अक्ष–सममित शरीर के सन्निकट ओशीन समीकरण का हल भी है।

2. विधि

माना, 'L' अक्ष–सममित शरीर की x-अक्ष के अनुदिश एकरूप द्रव वेग 'U' में विशिष्ट लंबाई, ρ द्रव का घनत्व तथा ν काईनामेटिक विस्कॉसिटी है। जब रेनॉल्डस संख्या 'R' का मान छोटा होता है, तब इस अक्षीय सुडौल शरीर के चारों ओर असंपीड्य द्रव की स्थिर गति स्टोक्स समीकरणों(**हैपल व ब्रैनर**, 1964)

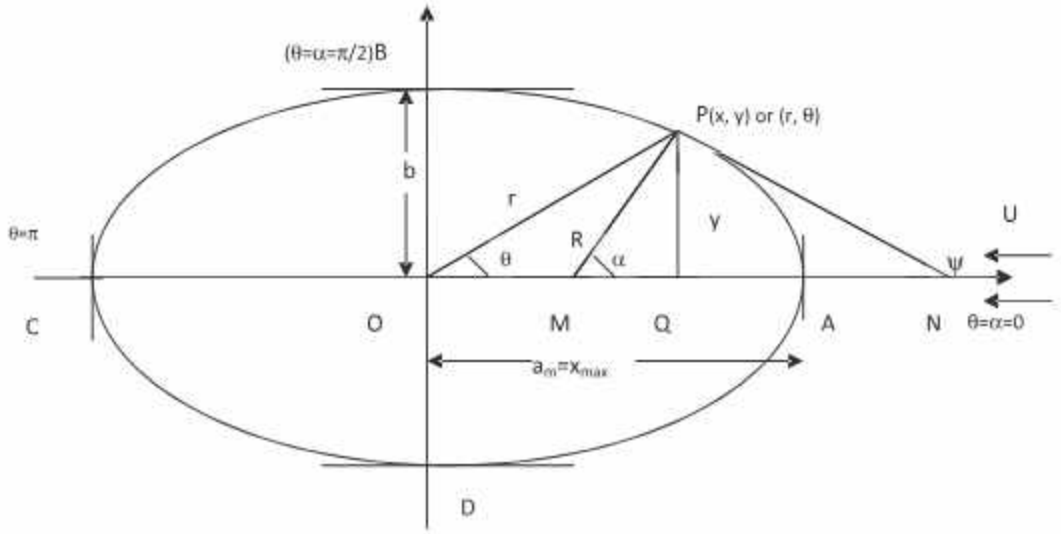
$$\mathbf{0} = -\left(\frac{1}{\rho}\right)\text{grad } p + \nu \nabla^2 \mathbf{u}\,,\ \text{div } \mathbf{u} = 0\,, \tag{2.1}$$

से नो–स्लिप सीमा प्रतिबंध के तहत संचालित होती है।

अब यहाँ पर अक्षीय सममित शरीरों की कक्षा को इस प्रकार लेते हैं कि हर शरीर की सतह के प्रत्येक बिंदु पर स्पर्शी सतत् रूप से घूमता है तथा एकरूप द्रव वेग में स्थित है जो कि x–अक्ष के अनुदिश है, तथा अचर त्रिज्या 'b' वाली महत्तम वृत्तीय काट उस शरीर के मध्य में स्थित है। इस प्रकार का अक्ष–सममित शरीर, समतल वक्र(चित्र सं0 1 में दर्शाया गया है) को x–अक्ष के चारो ओर घुमाने से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यह अक्षीय शरीर निम्न प्रतिबंधों को भी संतुष्ट करता है–

i. x–अक्ष के, बिंदु A पर, स्पर्शी लम्बवत होनी चाहिए,
ii. y–अक्ष के, बिंदु B पर, स्पर्शी x–अक्ष के समानांतर होनी चाहिए,
iii. अर्ध–अनुप्रस्थ अक्ष की लम्बाई 'b' अचर होनी चाहिए।

वक्र के बिंदु P को कार्तीय निर्देशांक (x,y) या ध्रुवीय निर्देशांक (r,θ) से निरुपित करते हैं, PN तथा PM क्रमश: बिंदु P पर स्पर्शी एवं अभिलंब की लम्बाई को दर्शाते हैं। वक्र के किसी बिंदु पर खींचे गये अभिलंब की उस बिंदु से सममित अक्ष के साथ प्रतिच्छेद बिंदु की दूरी चिन्ह 'R' से तथा α इस अभिलंब द्वारा सममित अक्ष से बनाया गया कोण है जिसका मान 0 से लेकर π तक हो सकता है।



चित्र 1. अक्ष सममित शरीर की संरचना

अक्षीय प्रवाह (Axial flow)

अक्षीय प्रवाह में इस प्रकार की अक्षीय सममित आकार वाले शरीर द्वारा महसूस किया जाने वाला स्टोक्स घर्षण बल **दत्ता एवं श्रीवास्तव**(1999) द्वारा जनित सूत्र

$$F_x = \frac{1}{2}\frac{\lambda b^2}{h_x}, \text{ where } \lambda = 6\pi\mu U \qquad (2.2)$$

तथा $$h_x = \left(\frac{3}{8}\right)\int_0^{\pi} R\sin^3\alpha\, d\alpha. \qquad (2.3)$$

द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जहाँ 'x' घर्षण बल की दिशा को x अक्ष की दिशा में दर्शाता है।

ब्रैनर(1961) के सूत्र का प्रयोग करने पर, स्टोक्स घर्षण बल(2.2) का ओशीन संशोधन निम्न प्रकार से व्यापक रूप में लिखा जा सकता है–

$$\frac{F}{F_x} = 1 + \frac{F_x}{16\pi\mu L U}R + O(R^2), \qquad (2.4)$$

जहाँ L कण या शरीर की विशिष्ट लम्बाई तथा $R=\rho UL/\mu$ उस कण से सम्बन्धित रेनॉल्डस संख्या है।

स्थिति 1. अनुकूल घर्षण मान; अचर आयतन प्रतिबंध

$L=a$, लेने पर समीकरण (2.4) को पुन: लिखा जा सकता है:

$$\frac{F}{F_x}-1=\frac{\frac{F_x}{\lambda b}}{\frac{16\pi\mu a U}{\lambda b}}R+O(R^2)=\frac{3}{8}\frac{C_m}{Q_1(m)}R+O(R^2), \tag{2.5}$$

जहाँ

$$C_m=\frac{F_x}{\lambda b}=\frac{8}{3\sqrt{m}}\left[\frac{\pi}{4}+\frac{1}{m}\{E(m)-(1-m)K(m)\}\right]^{-1}, \tag{2.6}$$

तथा

$$Q_1(m)=\frac{V_m}{\frac{4}{3}\pi b^3}=\frac{a}{b}=\frac{3}{\sqrt{m}}\left[\frac{\pi}{4}+\left(\frac{1+m}{3m}\right)E(m)-\left(\frac{1-m}{3m}\right)K(m)\right],\ 0<m\le 1. \tag{2.7}$$

उपरोक्त समीकरण (2.6) एवं (2.7) में दर्शाये गये व्यंजक लेखक(**दत्ता एवं श्रीवास्तव**, 2002) के पूर्व प्रकाशित शोध कार्य से लिखे गये हैं, जहाँ $K(m)$ एवं $E(m)$ क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय प्रकार के इलिप्टिक समाकल(इंट्रीग्रल) हैं एवं V_m अक्षीय सममित आकार का आयतन है।

स्थिति 2. अनुकूल घर्षण मान; अचर क्षेत्रफल प्रतिबंध

$L=a$, लेने पर समीकरण (2.4) को पुनः लिखा जा सकता है:

$$\frac{F}{F_x}-1=\frac{\frac{F_x}{\lambda b}}{\frac{16\pi\mu a U}{\lambda b}}R+O(R^2)=\frac{3}{8}\frac{C_m}{Q_2(m)}R+O(R^2), \tag{2.8}$$

जहाँ

$$C_m=\frac{F_x}{\lambda b}=\frac{16}{3b\sqrt{m}}\left[\frac{4}{3}+\frac{1}{2m}\sqrt{1-m}-\frac{(1-2m)}{\sqrt{m}}\sin^{-1}\sqrt{m}\right]^{-1}, \tag{2.9}$$

तथा

$$Q_2(m)=\frac{A_m}{\pi b^2}=\frac{4}{\pi\sqrt{m}}\left[\frac{4}{3}+\frac{1}{\sqrt{m}}\left(1-\frac{1}{4m}\right)\sin^{-1}\sqrt{m}+\frac{1}{2}\left(1+\frac{1}{2m}\right)\sqrt{1-m}\right],\ 0<m\le 1. \tag{2.10}$$

समीकरण (2.9) एवं (2.10) में दर्शाये गये व्यंजक लेखक(**दत्ता एवं श्रीवास्तव**, 2002) के पूर्व प्रकाशित कार्य से लिखे गये हैं जहाँ A_m अक्षीय सममित आकार का समतलीय क्षेत्रफल है।

3. भौतिक समस्या का सूत्रीकरण(Formulation of the Physical Problem)

माना, 'L' अक्ष–सममित शरीर की x-अक्ष के अनुदिश एकरूप द्रव वेग 'U' में विशिष्ट लंबाई, ρ द्रव का घनत्व तथा ν काईनामेटिक विस्कॉसिटी है। जब रेनॉल्डस संख्या 'R' का मान छोटा होता है, तब इस अक्षीय सुडौल शरीर के चारों ओर असंपीड्य द्रव की स्थिर गति स्टोक्स समीकरणों(**हैपल व ब्रैनर**, 1964)

$$\mathbf{0} = -\left(\frac{1}{\rho}\right)\text{grad } p + \nu \nabla^2 \mathbf{u}, \quad \text{div } \mathbf{u} = 0, \tag{3.1}$$

से नो–स्लिप सीमा प्रतिबंध के तहत संचालित होती है।

उक्त समीकरण (3.1) सम्पूर्ण **नेवियर–स्टोक्स** समीकरण का उस स्थिति में समानीत(reduced) रूप है, जब इस समीकरण के बायीं तरफ स्थित इनर्शिया पद **(u**.grad)**u** को अक्ष–सममित शरीर के सन्निकट महत्वहीन मानते हुए हटा दिया जाता है। इसी परिवर्तन को **स्टोक्स सन्निकट सिद्धांत** भी कहते हैं। धीमी गति से चलने वाले स्टोक्स द्रव के 'a' त्रिज्या वाले स्थिर गोले के सन्निकट इस स्थिति में प्राप्त हल स्टोक्स नियम(Stokes law),$6\pi\mu Ua$, कहलाता है, जो कि द्रव में गोले से अत्यधिक दूरी पर जाने पर लागू नहीं होता है। धीमी गति से प्रवाहित द्रव में अक्ष–सममित शरीर से अत्यधिक दूरी पर स्टोक्स नियम के लागू न होने को द्रव यांत्रिकी में **व्हाइटहेड का विरोधाभास(Whitehead's paradox**) कहा जाता है। सन् 1910 में पहली बार ओशिन ने व्हाइटहेड के इस विरोधाभास का पता लगाया तथा सन् 1927 में इसको दूर करने का तरीका बताया। इस विरोधाभास को दूर करने के लिए ओशिन ने निम्न अतिरिक्त बिंदुओं को उल्लिखित किया।

जब $r/a \to \infty$, तब स्टोक्स नियम($\rho Ua/\mu \to 0$), ओशिन के अनुसार लागू नहीं होगा। ओशिन के अनुसार, अत्यधिक दूरी पर स्थानीय वेग **v** तथा एकसमान द्रव वेग U के बीच अत्यन्त सूक्ष्म अंतर होता है। अत: उनके द्वारा यह सुझाया गया कि शरीर से अत्यधिक दूरी पर, जहाँ पर इनर्शिया का ज्यादा प्रभाव रहता है, इनर्शिया पद **(u**.grad)**u** एक समान रूप से पद **(U**.grad)**u** के सन्निकट लिखा जा सकता है। तब **नेवियर–स्टोक्स** समीकरण का समानीत रूप होगा:

$$(\mathbf{U}.\text{grad})\mathbf{u} = -\left(\frac{1}{\rho}\right)\text{grad } p + \nu \nabla^2 \mathbf{u}, \quad \text{div } \mathbf{u} = 0, \tag{3.2}$$

समीकरण (3.2) को, स्टोक्स समीकरण का ओशीन संशोधित रूप या **ओशिन समीकरण** कहते हैं। स्थिर गोले के बाहर अक्ष–सममित द्रव प्रवाह के लिए ओशिन ने समीकरण (3.2) का सन्निकट हल प्राप्त करते हुए स्टोक्स घर्षण का निम्न संशोधन(**हैपल एवं ब्रैनर**, पृ0 44, समी0 2–6.5, 1964) प्रस्तुत किया।

$$F = 6\pi\mu a U\left[1 + \frac{3}{8}N_{Re} + O\left(N_{Re}^{\ 2}\right)\right], \tag{3.3}$$

जहाँ $N_{Re} = \rho Ua/\mu$ गोलाकार कण की रेनॉल्ड संख्या है।

अब समीकरण (2.5) व (2.8) का प्रयोग करके पूर्व में **दत्ता एवं श्रीवास्तव**(2002) द्वारा प्राप्त किये गये अनुकूल घर्षण मान का ओशिन संशोधन उल्लिखित दोनों स्थितियों में प्राप्त किया जायेगा। यहाँ लेखक दावा करते हैं कि प्राप्त संशोधन ही रेनॉल्ड संख्या 'R' के पदों में ओशिन समीकरण (3.2) का प्रथम घात तक हल भी होगा।

4. संख्यात्मक समाधान(Numerical Solution)

स्थिति 1(अचर आयतन प्रतिबंध)

C_m (समीकरण 2.6) तथा Q_1(समीकरण 2.7) के संख्यात्मक मानों की सहायता से, लग्रांज मल्टीप्लायर 'm'$(0 < m \leq 1)$ के विभिन्न मानों हेतु हम समीकरण (2.5) से रेनॉल्ड संख्या R=0.1 to 1.0 के सापेक्ष ओशिन संशोधन F/F_X -1, प्राप्त किये जा सकते हैं। यह संख्यात्मक मान **सारणी 1** में लिखे हुए हैं जिनका रेखन **चित्र 2** में किया गया है।

स्थिति 2(अचर क्षेत्रफल प्रतिबंध)

C_m (समीकरण 2.9) तथा Q_2(समीकरण 2.10) के संख्यात्मक मानों की सहायता से, लग्रांज मल्टीप्लायर 'm'$(0 < m \leq 1)$ के विभिन्न मानों हेतु हम समीकरण (2.8) से रेनॉल्ड संख्या R=0.1 to 1.0 के सापेक्ष ओशिन संशोधन F/F_X -1, प्राप्त किये जा सकते हैं। यह संख्यात्मक मान **सारणी 2** में लिखे हुए हैं जिनका रेखन **चित्र 3** में किया गया है।

5. संख्यात्मक विवेचना

स्थिति 1(अचर आयतन प्रतिबंध)

सारणी 1 में यह स्पष्ट है कि लग्रांज मल्टीप्लायर 'm'$(0 < m \leq 1)$ के प्रत्येक मानों हेतु, रेनॉल्ड संख्या के R=0.1 से 1.0 तक बढ़ते हुए मानों के लिए, ओशिन संशोधित स्टोक्स घर्षण बल F/F_x-1 का मान बढ़ता है। सारणी 1 में यह देखना दिलचस्प है कि बायें से दाहिनी ओर बढ़ने पर, लग्रांज मल्टीप्लायर 'm'$(0 < m \leq 1)$ के बढ़ते हुए मानों हेतु, ओशिन संशोधित स्टोक्स घर्षण बल F/F_x-1 का मान लगभग समान रहता है। समीकरण (2.5) से यह स्पष्ट है कि ओशिन संशोधित स्टोक्स घर्षण बल F/F_x-1 का रेनॉल्ड संख्या के R के साथ सम्बन्ध रेखिक(linear) है, जिसके कारण **चित्र 2** में दर्शाये गये वक्र सरल रेखा रूप में हैं।

स्थिति 2(अचर क्षेत्रफल प्रतिबंध)

सारणी 2 में यह स्पष्ट है कि लग्रांज मल्टीप्लायर 'm'$(0 < m \leq 1)$ के प्रत्येक मानों हेतु, रेनॉल्ड संख्या के R=0.1 से 1.0 तक बढ़ते हुए मानों के लिए, ओशिन संशोधित स्टोक्स घर्षण बल F/F_x-1 का मान, 0.029 से 0.293 तक(ऊपर से नीचे जाने पर) बढ़ता है। सारणी 2 में यह देखना दिलचस्प है कि बायें से दाहिनी ओर बढ़ने पर, लग्रांज मल्टीप्लायर 'm'$(0 < m \leq 1)$ के बढ़ते हुए मानों हेतु, प्रत्येक, रेनॉल्ड संख्या R के मान के लिए, ओशिन संशोधित स्टोक्स घर्षण बल F/F_x-1 का मान लगभग एक समान रहता है। समीकरण (2.8) से यह स्पष्ट है कि ओशिन संशोधित स्टोक्स घर्षण बल F/F_x-1 का रेनॉल्ड संख्या के R के साथ सम्बन्ध रेखिक(linear) है, जिसके कारण **चित्र 3** में दर्शाये गये वक्र सरल रेखा रूप में हैं।

सारणी 1

	ओशिन संशोधन F/F_X -1(अचर आयतन प्रतिबंध)										
R	**m=0.1**	**m=0.2**	**m=0.3**	**m=0.4**	**m=0.5**	**m=0.6**	**m=0.7**	**m=0.8**	**m=0.9**	**m=0.99**	**m=1.0**
0.1	0.01355	0.01348	0.01352	0.01369	0.01343	0.01344	0.01348	0.01345	0.01328	0.01292	0.01330
0.2	0.02711	0.02697	0.02705	0.02739	0.02686	0.02689	0.02697	0.02692	0.02657	0.02585	0.02660
0.3	0.04066	0.04045	0.04058	0.04109	0.04030	0.04034	0.04045	0.04037	0.03986	0.03878	0.02991
0.4	0.05422	0.05394	0.05410	0.05479	0.05374	0.05379	0.05393	0.05383	0.05315	0.05171	0.05321
0.5	0.06778	0.06742	0.06763	0.06848	0.06717	0.06724	0.06741	0.06728	0.06644	0.06464	0.06651
0.6	0.08133	0.08091	0.08116	0.08218	0.08061	0.08068	0.08089	0.08076	0.0797	0.07756	0.07982
0.7	0.09489	0.09439	0.09468	0.09588	0.09404	0.09414	0.09438	0.09420	0.09302	0.09049	0.09312
0.8	0.10844	0.10788	0.10821	0.10958	0.10747	0.10758	0.10786	0.10766	0.1063	0.10342	0.10642
0.9	0.12200	0.12137	0.12174	0.12328	0.12091	0.12103	0.12134	0.12111	0.11959	0.11635	0.11973
1.0	0.13555	0.13485	0.13527	0.13697	0.13434	0.13448	0.13483	0.13457	0.13288	0.12928	0.13303

सारणी 2

R	ओशिन संशोधन F/F_X -1(अचर क्षेत्रफल प्रतिबंध)									
	m=0.1	m=0.2	m=0.3	m=0.4	m=0.5	m=0.6	m=0.7	m=0.8	m=0.9	m=1.0
0.1	0.02929	0.02946	0.02962	0.02971	0.02971	0.02969	0.029711	0.04743	0.03060	0.02938
0.2	0.05859	0.05892	0.059236	0.059428	0.05942	0.05939	0.05942	0.09486	0.06120	0.05877
0.3	0.08789	0.08838	0.08885	0.08914	0.08913	0.08909	0.08913	0.14229	0.09180	0.08816
0.4	0.11719	0.11784	0.11847	0.11885	0.11884	0.11879	0.11884	0.18972	0.12240	0.11755
0.5	0.14649	0.14730	0.14809	0.14857	0.14855	0.14849	0.14856	0.23715	0.15301	0.14694
0.6	0.17579	0.17676	0.17770	0.17828	0.17826	0.17819	0.17826	0.28458	0.18360	0.17633
0.7	0.20509	0.20622	0.20732	0.20800	0.20796	0.20789	0.20798	0.33201	0.21420	0.20572
0.8	0.23439	0.23568	0.23694	0.23771	0.23768	0.23758	0.23769	0.37944	0.24480	0.23511
0.9	0.2636	0.265146	0.26656	0.26743	0.26739	0.267287	0.26740	0.42687	0.27541	0.26449
1.0	0.29299	0.29461	0.29618	0.29714	0.29711	0.29698	0.29711	0.47430	0.30601	0.29388

6. निष्कर्ष

इस शोध आलेख में द्रव प्रवाह में अक्षीय–सममित कण या शरीर द्वारा महसूस किये जाने वाले घर्षण बल के अनुकूलन मान हेतु ओशिन संशोधन का व्यंजक प्राप्त करते हुए उनके संख्यात्मक मान, अचर आयतन व अचर क्षेत्रफल वाले प्रतिबंध के अंतर्गत, निकालकर सारणी 1 व 2 में प्रकट किये गये हैं। यह सभी ओशिन संशोधित घर्षण मान उन्हीं आकृतियों के लिए मान्य हैं जो लेखक द्वारा पूर्व के शोध कार्य(**दत्ता एवं श्रीवास्तव**, 2002) में प्राप्त की गयी थीं जिनमें कण के आगे तथा पीछे के भाग शंकुनुमा आकार के या नुकीले होते हैं अर्थात् लेंस नुमा आकार की आकृति। लेखक के अनुसार यही लेंस नुमा आकृति ओशिन प्रवाह में भी अनुकूल घर्षण आकृति हैं। प्रस्तुत आलेख में प्रयुक्त विधि अक्ष–सममित अनुप्रस्थ(transverse flow) ओशिन प्रवाह में अनुकूलन आकृतियों हेतु घर्षण मान प्राप्त किये जा सकते हैं जिसे लेखक द्वारा अपने भविष्य में प्रस्तुत कार्य में वर्णित किया जायेगा। प्रयुक्त विश्लेषण नौसेना अभियांत्रिकी में पानी के भीतर छोड़े जाने वाले प्रक्षेपास्त्रों के आकार तथा जीवविज्ञान में द्रव में धीमी गति से चलने वाले सूक्ष्मजीवों के आकार का पता लगाया जा सकता है तथा उनके द्वारा महसूस किये जाने वाले घर्षण का संख्यात्मक मान भी प्राप्त किये जा सकते हैं।

संदर्भ

ब्रैनर, एच0(1961) द ओशिन रेजिस्टेंस ऑफ ए पार्टिकल ऑफ आर्बिटररी शेप, जर्नल ऑफ फ्ल्यूड मिकैनिक्स, खण्ड 11, मु0 पृ0 604–610।

चांग, आई0 डी0(1960) स्टोक्स फलो ऑफ ए कंडक्टिंग फ्ल्यूड पास्ट एन एक्सियली सिम्मेट्रिक बॉडी इन द प्रेजेंस ऑफ ए मैगनेटिक फील्ड, जर्नल ऑफ फ्ल्यूड मिकैनिक्स, खण्ड 09, अंक 3, मु0 पृ0 473–477।

दत्ता, एस0 तथा श्रीवास्तव, डी0 के0(1999) स्टोक्स ड्रैग ऑन एक्सियली सिम्मेट्रिक बॉडीज: ए न्यू एप्रोच, प्रोसी0 इंडियन एकेड0 साइंस(मैथ0 साइंस), खण्ड 109, अंक 4, मु0 पृ0 441–452।

दत्ता, एस0 तथा श्रीवास्तव, डी0 के0(2002) ऑप्टिमम ड्रैग प्रोफाइल इन एक्सी–सिम्मेट्रिक स्टोक्स फलो, इंडियन जर्नल ऑफ प्योर एण्ड एप्लाइड मैथमेटिक्स, खण्ड 33, अंक 3, मु0 पृ0 409–426।

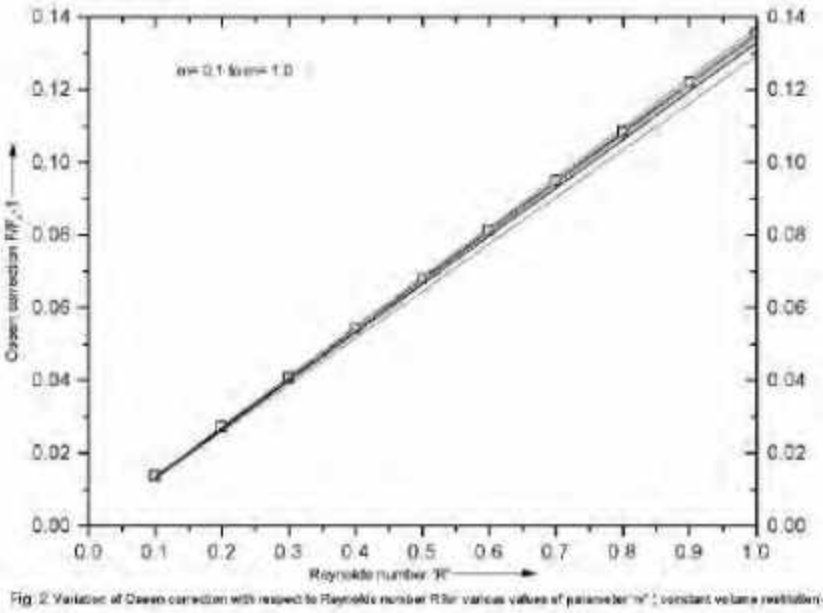
फंग, युआन–चेंग(1997) बायोमिकेनिक्स: सर्कुलेशन,, स्प्रिंगर–वरलैग, द्वितीय संस्करण, न्यूयॉर्क।

हैपल, जे0 एण्ड ब्रैनर, एच0(1964) लो रेनॉल्ड नम्बर हाइड्रोडायनामिक्स, निजहॉफ, डोरड्रेच, द नीदरलैण्डस।

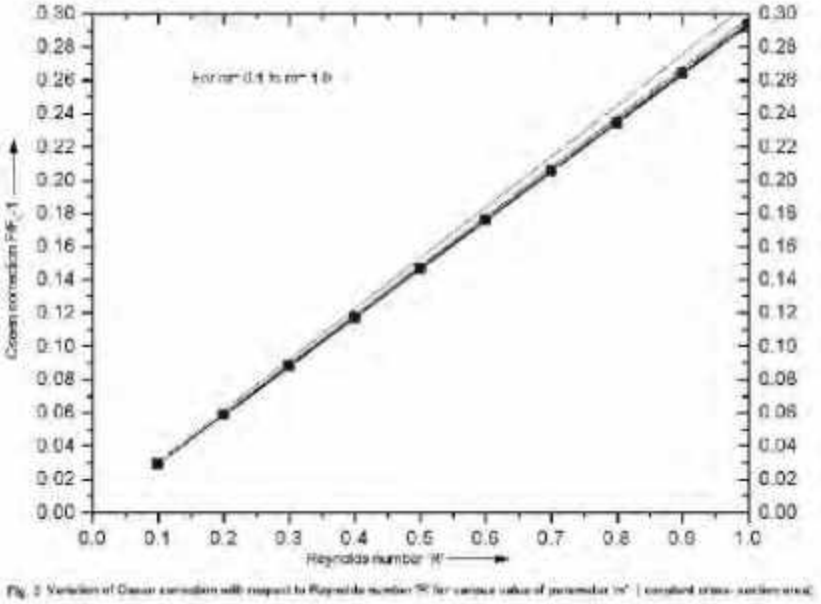
ओशिन, सी0 डब्ल्यू(1927) हाइड्रोडायनामिक्स(जर्मन भाषा), लीप्जिग:एकेडेमिक वर्लाग।

श्रीवास्तव, डी0 के0(2007) ऑप्टिमम वॉल्यूम प्रोफाइल इन एक्सी–सिम्मेट्रिक स्टोक्स फ्लो, मिकेनिका, खण्ड 42, अंक 3, मु0 पृ0 239–245।

श्रीवास्तव, डी0 के0(2011) ऑप्टिमम क्रॉस–सेक्शन प्रोफाइल इन एक्सी–सिम्मेट्रिक स्टोक्स फ्लो, जर्नल ऑफ फ्ल्यूड इंजीनियरिंग–ट्रांजेक्शन ऑफ द ए0एस0एम0ई0, खण्ड 133, अंक 10, पृ0 101202(6 मु0 पृ0)।



चित्र 2. अचर आयतन स्थिति में रेनॉल्ड्स संख्या R तथा लेग्रांज मल्टीप्लायर m के सापेक्ष ओशीन संशोधन में परिवर्तन



चित्र 3. अचर क्षेत्रफल स्थिति में रेनॉल्ड्स संख्या R तथा लेग्रांज मल्टीप्लायर m के सापेक्ष ओशीन संशोधन में परिवर्तन

ठोस 8–हाइड्रॉक्सीकुइनोलिन में समूह घर्षण का नाभिक–चुंबकीय अनुनाद अध्ययन

सतीश चन्द्र मिश्र
पूर्व विभागाध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
पता: चाणक्यपुरी, आलमबाग, लखनऊ(उ0 प्र0))–226005, भारत

सार

प्रस्तुत शोध पत्र में विस्तीर्ण रेखा नाभिक–चुंबकीय अनुनाद द्वारा ताप प्रक्षेप 77–280^0 के0 में ठोस 8–हाइड्रॉक्सीकुइनोलिन का अध्ययन किया गया है। क्रिस्टल जाल 230^0 के0 से नीचे प्राभाविक तौर पर दृढ़ पाया गया तथा 230–300^0 के0 प्रक्षेत्र में एक चौड़ाई संक्रमण की स्थिति प्रेक्षित हुई जिसको आण्विक परिघूर्णन एवं ओएच समूह का सी–ओ बंध के परित: घूर्णन के कारण बताया गया। द्रवीकरण बिंदु(गलनांक) तक क्रिस्टल संरचना में कोई परिवर्तन नहीं प्रेक्षित हुआ। चौड़ाई संक्रमण क्षेत्र में गति हेतु सक्रियता ऊर्जा का मान लगभग 10 कि0 कै0/मोल पाया गया।

NMR study of group rotation in solid 8-Hydroxyquinoline

Satish Chandra Mishra
Former Head, Department of Physics
B.S.N.V. Post Graduate College
Station Road, Charbagh(U.P.)-226001, India
Add: Chanakyapuri, Alambagh, Lucknow(U.P.)-226005, India

Abstract

Wide line NMR investigation on solid 8-Hydroxyquinoline have been made over the temperature region 77-380^0 K. The crystal lattice was found to be effectively rigid at temperatures lower than 230^{0}K and a width transition has been observed between 230-300^{0}K which has been attributed to the molecular reorientation and OH group rotation about C–O bond. No change in crystalline structure up to the melting point was observed. The activation energy for the motion in the transition region was obtained to be 10 K Cal/mol approximately.

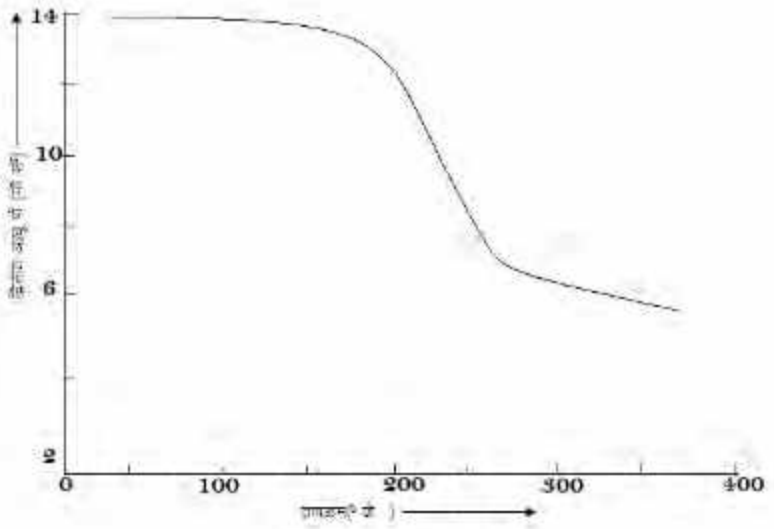
क्रिस्टल जाल में आण्विक गति की उपस्थिति स्थानीय बल क्षेत्र में अनियमित बदलाव करती है, जिससे नाभिक–चुंबकीय अनुनाद वर्णक्रम के द्वितीय आघूर्ण में कमी आ जाती है। प्रस्तुत 8–हाइड्रॉक्सीकुइनोलिन का नाभिक–चुंबकीय अनुनाद अध्ययन इस पदार्थ के क्रिस्टल जाल में आण्विक घूर्णन तथा ओएच समूह परिघूर्णन की उपस्थिति की खोज हेतु तथा इसके आदर्श प्रतिमान(माडल) की पुष्टि हेतु किया गया। 8–हाइड्रॉक्सीकुइनोलिन क्रिस्टल[1] स्पेस समूह f_{dd2} में अवस्थित है तथा इसके इकाई कोषाणु का विवरण इस प्रकार है; a=29.18, b=25.36 तथा c=3.91A^0, इकाई कोषाणु में अणु संख्या = 16। पड़ोसी अणुओं में, एक अणु के ओ–परमाणु तथा दूसरे अणु के एन–परमाणु के मध्य निकटतम अंतराल उपस्थित हैं। डेसीडेराटो[2] के अनुसार एन–ऑक्साइड में कुइनोलिन घेरे में दो असाधारण लम्बी दूरियों का कारण एन–ओ समूह का प्रेरण प्रभाव तथा अणु में संक्षिप्त एच–बंध की उपस्थिति है। घेरे का नाइट्रोजन परमाणु, समन्वय एवं धातुओं से चीलेशन प्रक्रिया में जीवंत भूमिका[3, 4] निभाता है। रीव्स इत्यादि[5] ने दर्शाया कि ओएच प्रोटान तथा कुइनोलिन घेरे के नाइट्रोजन के मध्य अतिसंक्षिप्त परस्पर प्रभावशीलता उपस्थित है। द्विआयाम में माडल द्वारा प्राप्त प्रोटान स्थितियां सारणी–1 में निबद्ध हैं।

सारणी–1

8–हाइड्रॉक्सीकुइनोलिन में हाइड्रोजन के स्थिति निर्देशांक

प्रोटान	X	Y
H_1	3.32712	1.09126
H_2	3.24349	–1.24351
H_3	1.19747	–2.48301
H_4	–1.18175	–2.48502
H_5	–3.31777	–1.23312
H_6	–3.34942	1.24351
H_7	0.28054	2.85756

नाभिक–ध्रुवकीय अनुनाद व्युत्पन्न रेखाचित्रों को टी0 एफ0 आई0 आर0, मुंबई में 7.5 मेगा हर्टज् आवृत्ति पर वेरियन एसोसिएट माडल वी–4200 पर रेखांकित किया गया था। उच्च शुद्धता का नमूना(रसायन) मेसर्स ब्रिटिश ड्रग हाउस, इंडिया लिमिटेड द्वारा आपूर्त किया गया था। नमूना रसायन ने किसी भी ताप पर कोई वर्णक्रमिक सूक्ष्म रचना नहीं प्रदर्शित की। द्वितीय आघूर्ण की गणना व्युत्पन्न रेखाचित्रों से एण्ड्रयू के सूत्र द्वारा की गई प्रेक्षणों की शुद्धता ± गॉस^2 है। द्वितीय आघूर्ण का ताप के साथ परिवर्तन चित्र–1 में दर्शाया गया है।



चित्र 1. 8–हाइड्रॉक्सीकुइनोलिन के द्वितीय आघूर्ण का ताप के साथ परिवर्तन

सैद्धांतिक दृढ़जाल द्वितीय आघूर्ण $S = S_1 + S_2$, जहाँ S_1 , अणु के अपने प्रोटानों का अंशदान है एवं S_2 , अंतरआण्विक अंशदान है जो एक अणु के प्रोटान और परित: स्थित अणुओं के मध्य सहक्रियता के कारण उत्पन्न होता है।

S_1 को वॉनवलैक के सिद्धांत[7] द्वारा निर्धारित किया गया।

$$S_1 = \frac{715.9}{N\sum_{j>k} \gamma_{jk}^{-6}} \quad \text{गॉस}^2.$$

जहाँ संकेतों का अपना सहज अर्थ है। एक परिकल्पित माडल जिसमें सी–एन दूरी = 1.355 ए^0 एवं सी–एन–सी कोण =123.8^0, की सहायता से S_1 का मान 9.36 गॉस^2 पाया गया। डेजीडेराटो[1] द्वारा दिये गये मानों(सी–एन=1.402 ए^0 एवं सी–एन–सी कोण=120.8^0) से S_1 का मान 12.57 गॉस^2 उपलब्ध हुआ। हमारी प्रत्याशा है कि S_1 के मानों में इस अंतर का कारण बंध एवं आण्विक तनाव है जो एन–ओ डेटिव बंध और संक्षिप्त अंतरआण्विक एच–बंध की शक्ति के कारण उत्पन्न होता है। एण्ड्रयूज एवं ईदेज की व्यवस्था(तरीके) से S_2 का मान 3.89 गॉस^2 प्राप्त हुआ जबकि स्मिथ के सिद्धांत से इसका मान 2.94 गॉस^2 प्राप्त हुआ। वर्तमान में हम इसका मान 3.41 गॉस^2 लेते हैं। इस प्रकार सैद्धांतिक दृढ़जाल द्वितीय आघूर्ण 12.77 गॉस^2 जो 77^0 के पर प्रायोगिक द्वितीय आघूर्ण, 13.2 गॉस^2 से अच्छी समीचीनता प्रदर्शित करते हैं। इससे यह सुझाव मिलता है कि क्रिस्टल जाल, प्राभाविक तौर पर दृढ है और सभी प्रकार की आण्विक गतियों को हिमीकृत परिकल्पित किया जा सकता है। अस्तु ये परिणाम संदर्भ रसायन के माडल को सत्यापित करते हैं।

द्वितीय आघूर्ण को ताप सीमा 77–230^0 के(चित्र 1) के मध्य यथार्थत: नियत देखा जा सकता है जिसके आगे 300^0 के पर यह अनायास 6.99 गॉस^2 के मान को गिरता है जो कि घूर्णन गतियों की उपस्थिति को संदर्भित करता है। आण्विक परिघूर्णन पर विचार करते हुए; द्वितीय आघूर्ण में सैद्धांतिक कमी को गुटॉस्की एवं पेक[8] तथा एण्ड्रयूज एवं ईदेज[9] के सिद्धांतों द्वारा गणना से प्राप्त किया गया। कम हुए स्व–आण्विक एवं अंतर–आण्विक अंशदान क्रमश: 6.65 गॉस^2 तथा 0. 81 गॉस^2 प्राप्त हुए जिससे कुल कमी 5.31 गॉस^2 हुई। जैसा कि प्रायोगिक स्तर पर प्राप्त कमी 6.21 गॉस^2 है, ओ–एच समूह घूर्णन के लिए स्लिचर[10] के सिद्धांतों द्वारा गणना की गई जिससे 1.07 गॉस^2 की सैद्धांतिक कमी मिली। ऐसी प्रत्याशा करते हुए कि दोनो एक साथ घटित हो रही हैं, कुल सैद्धांतिक कमी(5.31+1.07=6.38 गॉस^2) प्रयोगात्मक कमी से समर्थनात्मक मेल खाती है। उच्च ताप पर क्रिस्टल संरचना में परिवर्तन का कोई सुझाव नहीं परिलक्षित हुआ।

चौड़ाई संक्रमण क्षेत्र में सक्रियता ऊर्जा का मान संशोधित बीपीपी सिद्धांत से मात्र अनुमानित किया जा सका जो लगभग 10 कि0 कै0/मोल था जबकि वॉघ एवं फेडिन के सिद्धांत से 9 कि0 कै0/मोल प्राप्त हुआ। इन दो भिन्न–2 विधियों द्वारा सैद्धातिक ऊर्जा के भिन्न मानों का आंकलन नहीं हो सका। फिलहाल, हाइड्रॉक्सिल प्रोटान के अंशदान से प्रायोगिक तौर पर छुटकारा सहजत: पाया जा सकता है यदि इसको ड्यूट्रॉन से अदल–बदल दिया जाय और लेखक ऐसा पूर्वानुमान करते हैं कि ऐसी स्थिति में प्राप्त वर्णक्रम विश्लेषण द्वारा सक्रियता ऊर्जा का, उक्त दो प्रस्तावित विधियों के लिए अलग–अलग मूल्यांकन संभव हो सकता है।

आभार

लेखक, टी0 आई0 एफ0 आर0, मुंबई, के पूर्व प्रोफेसर आर0 विजयराघवन एवं लखनऊ विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर वी0 डी0 गुप्ता के प्रति, तकनीकी निर्देशन एवं उत्साहवर्धन हेतु आभार ज्ञापन करते हैं।

संदर्भ

1. रॉयचौधरी, पी0 एवं अन्य(1978) एक्टा क्रिस्ट0 बी, खण्ड 34, पृ0 1047।
2. डेजीडेराटो, आर0 एवं अन्य(1971) एक्टा क्रिस्ट0 बी, खण्ड 27, पृ0 2443।
3. बोंचेव, पी0 आर0 एवं टेलियाज्कोवा, जी0 बी0(1967) इनऑर्गेनिक चिम0 एक्टा, खण्ड 1, अंक 2, पृ0 249।
4. सिवानोवा, ओ0 बी0 एवं मुस्तफिन, आई0 एस0(1965) जेड0 ऑर्गेनिक खिम0, खण्ड 1, अंक 1, पृ0 145।
5. रीव्ज, एल0 डब्ल्यू0 एवं स्ट्रोम, के0 ओ0(1961) कैन0 ज0 कैम0, खण्ड 39, पृ0 2318।
6. एण्ड्रयू, ई0 आर0(1953) फिजिकल रिव्यू, खण्ड 91, पृ0 425।
7. वॉनवलेक, जे0 एच0(1948) फिजिकल रिव्यू, खण्ड 74, पृ0 1168।
8. गुटौव्स्की, एच0 एस0 एवं पेक, जी0 ई0(1950) ज0 केमि0 फिजिक्स, खण्ड 18, पृ0 162।
9. एण्ड्रयू, ई0 आर0 एवं ईदेज, आर0 जी0(1953ए) प्रो0 रॉयल सो0 लंदन ए, खण्ड 218, पृ0 537।
10. स्लिच्टर, सी0 पी0(1953) प्रिंसिपल्स ऑफ मैगनेटिक रेजोनेंस, हार्पर एण्ड रो, न्यूयॉर्क, पृ0 62।

अकार्बनिक अवक्षेप द्वारा निर्मित कृत्रिम झिल्ली के आर-पार द्वि-आयनिक विभव का अध्ययन

प्रशांत कुमार पाठक[1], के0के0 मौर्य[1], रमेश कुमार प्रजापति[2], के0एस0 दादोरिया[3], मुहम्मद अयूब अंसारी[4]

[1]रसायन विज्ञान विभग, एस0एल0पी0 शासकीय कॉलेज, मोरार, ग्वालियर(म0प्र0)–474006, भारत

[2]रसायन विज्ञान विभाग, दिगम्बर जैन कॉलेज, बड़ौत, बागपत(उ0 प्र0)–250611, भारत

[3]रसायन विज्ञान विभाग, शासकीय महाविद्यालय, दतिया(म0प्र0)– 475335, भारत

[4]रसायन विज्ञान विभाग, बिपिन बिहारी महाविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0)–284001, भारत

ayub67@rediffmail.com; prashant_pathak58@yahoo.com; rameshkrpr@yahoo.com; kkm61@rediffmail.com; ks_dadoriya@gmail.com

सार

विभिन्न सान्द्रता के विद्युत अपघट्यों का उपयोग करते हुए पॉलीस्टीरिन आधारित क्रोमियम टंग्स्टेट झिल्ली द्वारा प्राप्त 'झिल्ली विभव' और 'झिल्ली द्वि आयनिक विभव' की आख्या प्रस्तुत की गयी है. गैर संतुलन ऊष्मप्रवैगिकी के आधार पर झिल्ली क्षमता और द्वि–आयनिक क्षमता के लिए तोयोशिमा और नोजाकी द्वारा व्युत्पन्न सैद्धांतिक समीकरणों का, विभिन्न झिल्ली मापदंडों के मूल्यांकन के लिए प्रयोग किया गया है। व्युत्पन्न झिल्ली मापदंडों का उपयोग, सिद्धांतों की वैधता की जांच करने के लिए किया गया है। सैद्धांतिक भविष्यवाणियों का हमारे प्रयोगात्मक परिणामों से काफी संतोषजनक ढंग से वहन किया गया है। झिल्ली की स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप छवि भी प्रस्तुत की गयी है।

बीज शब्द : क्रोमियम टंग्स्टेट से बनी हुई झिल्ली, झिल्ली विभव, झिल्ली द्वि–आयनिक विभव, के सूक्ष्म छवि।

Bi-ionic potential studies across the inorganic precipitate synthetic membrane

Prashant Kumar Pathak[1], K.K. Maurya[1], Ramesh Kumar Prajapati[2], K.S. Dadoriya[3], Muhammad Ayub Ansari[4]

[1]Department of Chemistry, S.L.P. Govt. College, Morar, Gwalior(M.P.)-474006, India

[2]Department of Chemistry, Digamber Jain College, Baraut, Bagpat(U.P.)-250611, India

[3]Department of Chemistry, Govt. Degree College, Datia(M.P.)-475335, India

[4]Department of Chemistry, Bipin Bihari P.G. College, Jhansi(U.P.)-484001, India

ayub67@rediffmail.com; prashant_pathak58@yahoo.com; rameshkrpr@yahoo.com; kkm61@rediffmail.com; ks_dadoriya@gmail.com

Abstract

Bi-ionic potentials observed across polystyrene based chromium tungstate membrane using various electrolytes are reported. Theoretical equations derived recently by Toyoshima and Nozaki for the membrane potential and bi-ionic potential based on non-equilibrium thermodynamics have been used for the evaluation of various membrane parameters. The derived membrane parameters have been used to examine the validity of the theory utilized. Theoretical predictions were borne out quite satisfactorily by our experimental results. Scanning electron microscope (SEM) images of the membrane has also been presented.

Keywords: Bi-ionic potential, chromium tungstate membrane, SEM micrograph.

प्रस्तावना

अकार्बनिक कृत्रिम झिल्ली, उच्च तापमान तथा आक्रामक प्रतिकूल वातावरण में भी उचित ढंग से उपयोग होने के फलस्वरूप औद्योगिक अनुप्रयोगों के लिए बहुत महत्व की है[1,5]। बेग[6,7,8] और रफीउद्दीन[9,10,11,12] के पत्रों की श्रृंखला में विभिन्न प्रकार की, अकार्बनिक अवक्षेप, सपोर्टर/बाइंडर द्वारा, झिल्ली बनाने और इन झिल्लियों का उपयोग आयनों के परिवहन, झिल्ली विभव के लिए हाल ही में विकसित समीकरणों की वैधता, के अध्ययन के लिए, एक मॉडल के रूप में करने की जानकारी दी गयी है।

इस समीक्षा पत्र में, क्रोमियम टंग्स्टेट की झिल्ली के आर–पार विभिन्न 1 : 2 विद्युत अपघट्य के उपयोग द्वारा पर प्राप्त झिल्ली विभव और झिल्ली द्वि–आयनिक विभव का वर्णन किया गया है। तोयासिमा और नोजाकी[13] के द्वारा दिये गये झिल्ली विभव के सिद्धांतों की वैधता जानने के लिए प्रयास किया गया है।

सामग्री और विधि

झिल्ली तैयार करना

पॉलीस्टीरिन आधारित, क्रोमियम टंग्स्टेट की झिल्ली, बेग और सहकर्मियों[6] द्वारा सुझाई गयी विधि द्वारा तैयार की गई। 0.2 मोलर क्रोमियम क्लोराइड के साथ 0.2 मोलर सोडियम टंग्स्टेट घोल की रसायनिक क्रिया द्वारा क्रोमियम टंग्स्टेट अवक्षेप को तैयार किया गया। अवक्षेप के मुक्त इलेक्ट्रोलाइट को दूर करने के लिए अन–आयनीकृत पानी के साथ अच्छी तरह से धोकर, कमरे के तापमान पर सुखाया गया। अवक्षेप का बारीक पाउडर के रूप में पीस दिया गया और 200 मेष(दाना आकार 0.07 मिमी) के द्वारा पिरो दिया गया। शुद्ध अनाकार पॉलीस्टीरिन भी पीसकर पिरो दिया गया। पॉलीस्टीरिन और क्रोमियम टंग्स्टेट अवक्षेप के विभिन्न अनुपात को ग्राइंडर यन्त्र द्वारा अच्छी तरह से मिला लिया गया। तत्पश्चात् इस मिश्रण को 2.45 से0मी0 व्यास वाली कास्ट डाई में रखा गया और इसे संतुलित करने के लिए 20^0 सेलसियस पर आधे घंटे के लिए भट्टी में रखा गया। मिश्रण युक्त डाई को एक दबाव यन्त्र में तेजी से स्थानांतरित किया गया था और झिल्ली के गठन के दौरान दबाव डाला गया। जिससे, क्रोमियम टंग्स्टेट से बनी हुई, लगभग 0.094 सेमी मोटाई वाली झिल्ली प्राप्त हुई। हमारा प्रयास रासायनिक और यांत्रिक स्थिरता की झिल्ली बनाना था। पॉलीस्टीरिन के 30 प्रतिशत के मिश्रण से तैयार झिल्ली यांत्रिक रूप से स्थिर पाई गयी और हमारे अध्ययन के लिए उपयुक्त थी।

झिल्ली का विभव मापन

झिल्ली के आर–पार उत्पन्न द्वि–आयनिक विभव को मापने के लिए निम्न सेल का निर्माण और उपयोग किया गया।

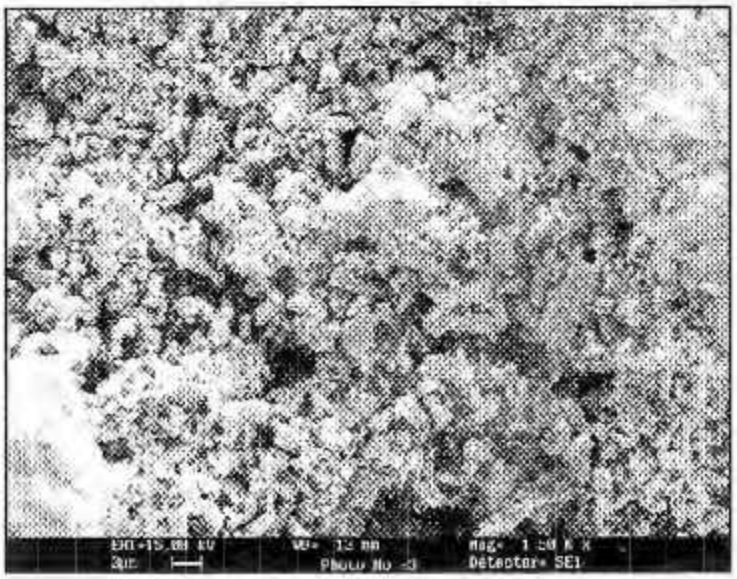
से0के0इ0	विलयन AX	झिल्ली	विलयन BX	से0के0इ0

यहाँ झिल्ली विभवन, झिल्ली के दोनों तरफ समान सान्द्रण वाले दो विद्युत अपघट्य विलयनों को लेने पर प्राप्त किया गया। झिल्ली विभव E_m, झिल्ली के दोनों तरफ, एक ही विद्युत अपघट्य की विभिन्न सांद्रता, इस तरह से ली ताकि $\sigma = C'/C'' = 10$ प्राप्त हो। विभवों की निगरानी मल्टीमीटर के माध्यम से की गयी। सभी मापन, पानी थर्मोस्टेट द्वारा 30 ± 0.1^0 सेल्सियस पर किए गये। दोनों तरफ धीरे–धीरे सतत् चलाने का काम, एक चुंबकीय कील विलेयक यंत्र से किया गया। विभिन्न नमक घोलों को विश्लेषणात्मक ग्रेड अभिकर्मकों, और पुनः–पुनः आसुत जल, से तैयार किया गया।

झिल्ली का इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी अध्ययनः

झिल्ली के लक्षण वर्णन और विशेषीकरण के लिए, झिल्ली और अवक्षेप के विकास में कार्यरत अनेक कार्मिकों द्वारा इलेक्ट्रोनिक माइक्रोस्कोपिक सूक्ष्मछवि का बहुतायत में उपयोग हुआ है(13,14)। झिल्ली समग्र छिद्र संरचना,

सूक्ष्म/वृहद सरंध्रता, एकरूपता, मोटाई, दरारें, सतह बनावट/आकारिकी आदि का विशेष रूप से स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी द्वारा गहन अध्ययन किया गया (15,16)। सूक्ष्म छवियों से प्राप्त जानकारी सुव्यवस्थित अवक्षेप बनाने में मार्गदर्शक सिद्ध हुई है। नतीजतन, क्रोमियम टंग्स्टेट से बनी हुई झिल्ली के अतिसूक्ष्म सतह छवियों को लिया गया है। चित्र 1 में अतिसूक्ष्म छवि में, छोटे कणों के घने और ढीली एकत्रीकरण को दर्शाया गया है, और छिद्र गैर रेखीय चैनल के साथ, लेकिन पूरी तरह से परस्पर दिखाई नहीं देते हैं।



चित्र–1 पोलीस्टीरिन आधारित क्रोमियम टंग्स्टेट झिल्ली की स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ छवि

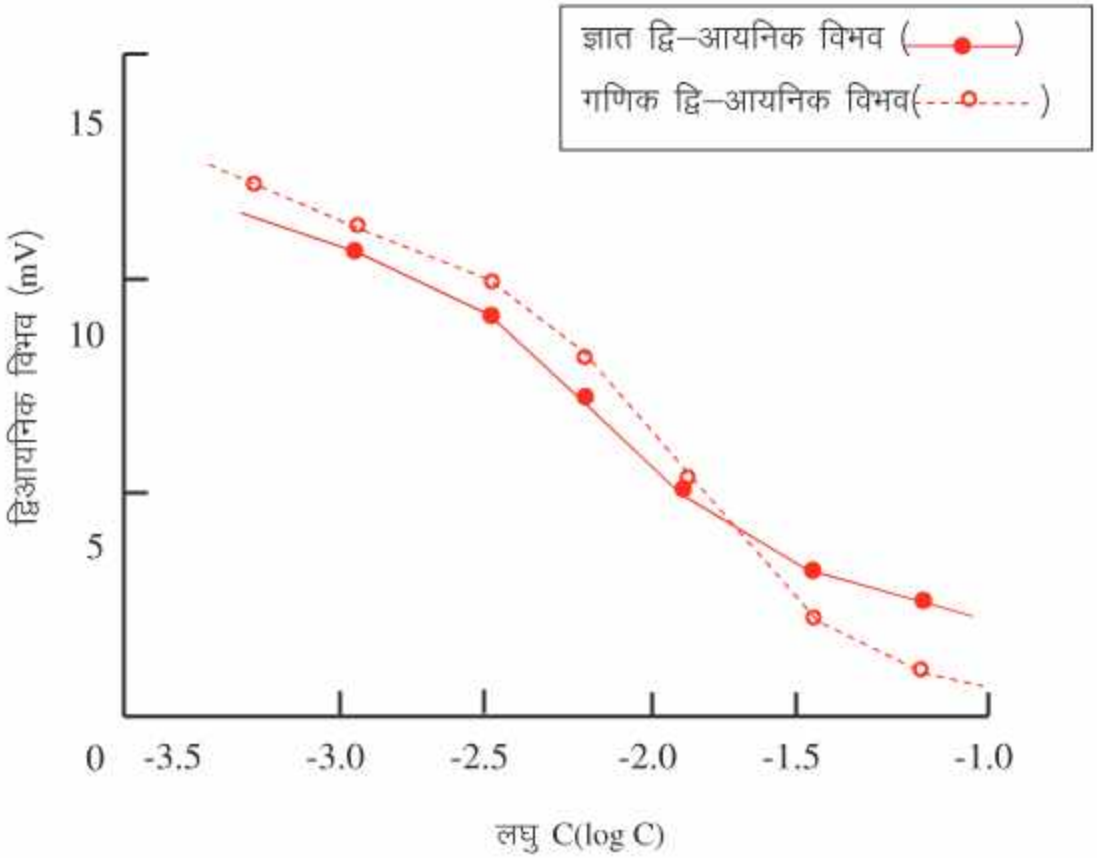
परिणाम और विचार विमर्श

विभिन्न 81 : 01 विद्युत अपघट्य का उपयोग कर, पॉलीस्टीरिन आधारित क्रोमियम टंग्स्टेट से बनी हुई झिल्ली के आर पार उत्पन्न झिल्ली विभव के आंकड़ों को सारणी 1 में दिया गया है। द्वि–आयनिक विभव के आंकड़ों को चित्र 2, 3 में चित्रित किया गया है।

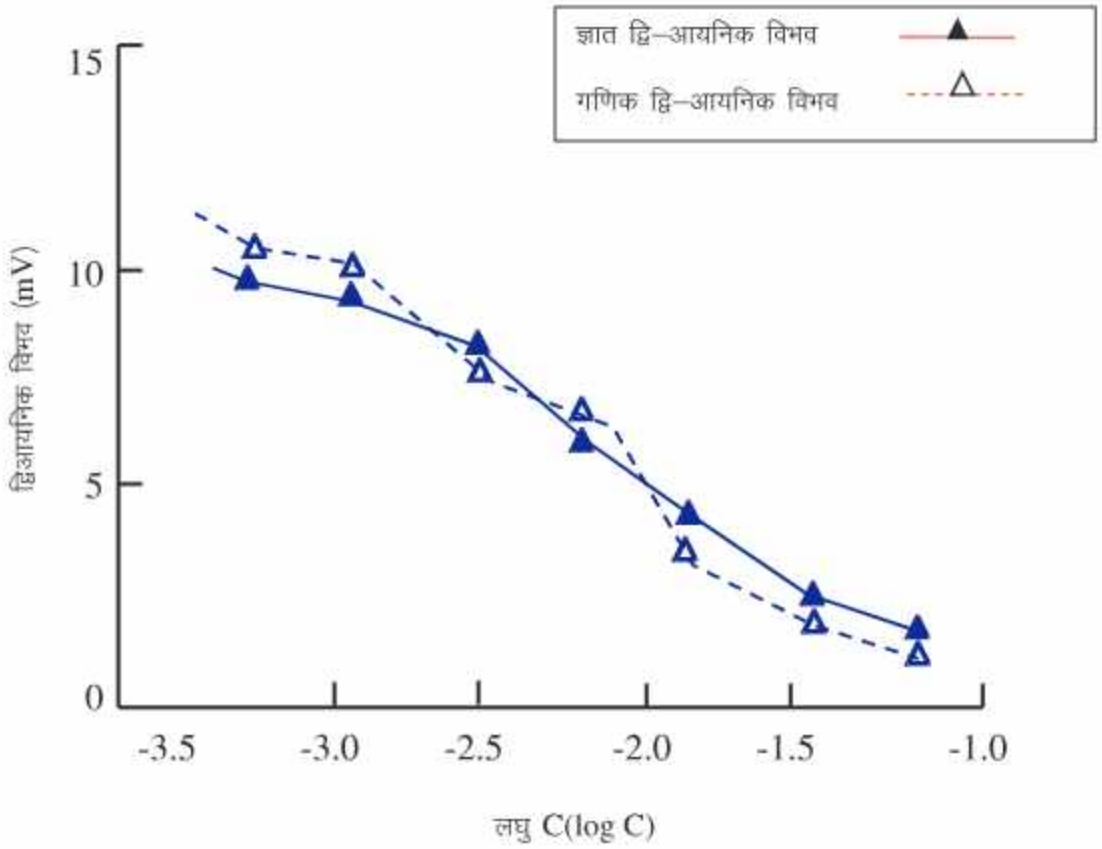
सारणी–1

क्रोमियम टंग्स्टेट झिल्ली के आर–पार विभिन्न विद्युत अपघट्य के भिन्न–भिन्न सान्द्रताओं पर ज्ञात झिल्ली विभव Em (mV) के मान

विद्युत अपघट्य	झिल्ली विभव के विभिन्न सान्द्रताओं पर मान (eq/l)					
	1/0.1	**0.5/0.05**	**0.2/0.02**	**0.1/0.01**	**0.02/0.001**	**0.01/0.001**
$CaCl_2$	6.51	7.11	16.21	27.01	48.31	52.33
$MgCl_2$	−3.98	−1.91	12.20	25.17	52.24	53.69
$BaCl_2$	−11.2	−5.87	0.83	5.98	20.03	24.06



चित्र 2. $CaCl_2$ - $MgCl_2$ सेट के लिये क्रोमियम टग्स्टेट झिल्ली, को उपयोग करते हुये ज्ञात एवं गणिक द्विआयनिक विभव एवं लघु C के मध्य वक्र



चित्र 3. $CaCl_2$ - $BaCl_2$ सेट के लिये क्रोमियम टग्स्टेट झिल्ली, को उपयोग करते हुये ज्ञात एवं गणिक द्विआयनिक विभव एवं लघु C के मध्य वक्र

जब आयन एक्सचेंज झिल्ली को एक ही विद्युत अपघट्य के दो अलग–अलग सांद्रता वाले घोलों के मध्य रखा जाता है, तो विकसित विभवान्तर, सान्द्रण विभव या झिल्ली विभव कहलाता है। इस विद्युत वाहक बल का चिन्ह (+ या –) एवं मूल्य विद्युत अपघट्य में उपस्थित आयन की ओर झिल्ली की चयनात्मकता को दर्शित करती है। यदि झिल्ली एक ही सांद्रता वाली दो विभिन्न विद्युत अपघट्य को विभाजित करती है तो विकसित विभव, द्वि–आयनिक विभव कहलाता है। जो समान चिन्ह (+ या –) वाले आयन की चयनात्मकता का एक लक्षण है। बहुत से जांचकर्ताओं द्वारा झिल्ली पर आधारित, विकसित विभव के सिद्धांतों को रखा गया और समीक्षा की गयी[19,20,21,22]। तोयोसिशा और नोजाकी ने, एक सी सांद्रता वाले दो साधारण 1 : 2 (समान सम–आयन वाली) विद्युत अपघट्य के मध्य ऋणात्मक आवेश वाली झिल्ली को रखकर, द्वि–आयनिक विभव के लिए, सैद्धांतिक समीकरण का विकास किया। इस समतापीय सिस्टम में बाहर से कोई विद्युत आवेश प्रवाहित नहीं किया गया। आयन की गति एवं गतिविधियों की, सांद्रता–निर्भरता के लिए निम्नलिखित मान्यताओं का समीकरण में प्रयोग किया गया।

$$u_+c_+ = u_+^0(c_- + \theta) \quad (1)$$

$$u_-c_- = u^0{}_-c_- \quad (2)$$

$$a_+ = \gamma_+^0(c_- + \theta) \quad (3)$$

$$a_- = \gamma_-^0 \quad (4)$$

जहाँ, आयन "i" (I = + या –)

u_i = आयन गतिशीलता

c_i = आयन मोलर कॉन्सेंट्रेशन

a_i = आयन की क्रियाशीलता

यहाँ आयन I की, मुक्त विलयन में,

u_i^0 = गतिशीलता गुणांक

γ_i^0 = क्रियाशीलता गुणांक

θ = झिल्ली का ऊष्मप्रवैगिक प्रभावी फिक्स्ड आवेश घनत्व

अतः द्वि–अयनिक विभव के लिए निम्न समीकरण है[13]

$$E_{BIP} = (RT/F)\left[2\ln\left(K_A/K_B\right) + \ln\left(JV_A+1\right)/\left(JV_B+1\right)\right] \quad (5)$$

जहाँ J और g निम्न द्वारा परिभाषित है

$$(2J+1)\ln\left(g_A+2J\right)/\left(g_B+2J\right) - \ln\left(JV_A+1\right)/\left(JV_B+1\right) - \ln\left(g_n/g_B\right) = 0 \quad (6)$$

और

$$g_N = \left[1+\left\{1+\left(2CK_N/\theta\right)^2\right\}^{1/2}\right] \quad (7)$$

V_N = घनात्मक क्रियाशीलता $(N \equiv A \text{ or } B)$

J= विद्युत अपघट्य फ्लक्स।

शेष चिन्हों का स्वाभाविक महत्व है।

झिल्ली में उपस्थित आयन की गतिशीलता, क्रियाशीलता की मान्यताओं और उपर्युक्त मूल प्रवाह समीकरण का प्रयोग करके तोयोशिमा एवं नोजाकी[13] ने झिल्ली विभव E_m की निम्नलिखित समीकरण दिया।

$$E_m = \left(\frac{RT}{F}\right)\left[-\ln\sigma - \left(1-2/V_N\right)\ln\frac{\sqrt{1+\left(2K_NC_N^{''}/\theta\right)^2}+\left(1-2/V_N\right)}{\sqrt{1+\left(2K_NC_N^{'}/\theta\right)^2}+\left(1-2/V_N\right)} + \ln\frac{\sqrt{1+\left(2K_NC_N^{''}/\theta\right)^2}+1}{\sqrt{1+\left(2K_NC_N^{'}/\theta\right)^2}+1}\right] \quad (8)$$

सांद्रता अनुपात स्थिर रखकर, $1/C_N$ की घात बढ़ाने पर, समीकरण (8) निम्न समीकरण प्रदान करती है।

$$-E_m = \left(\frac{RT}{F}\right)\left[\left(1-2/V_N\right)\ln\sigma - 2\left(1-1/V_N\right)\left(1/V_N\right)\left(1-1/\sigma\right)\left(\theta/K_N\right)\left(1/C_N^{'}\right)+\ldots\right] \quad (9)$$

को आयन का अपरेंट ट्रान्सफरन्स नंबर (t_app), नेर्नस्ट समीकरण द्वारा परिभाषित किया जाता है।

को आयन का अपरेंट ट्रान्सफरन्स नंबर (t_app), नेर्नस्ट समीकरण द्वारा परिभाषित किया जाता है।

$$E_m = -\left(\frac{RTF}{}\right)\left(1-2t_{_app}\right)\ln C'/C'' \qquad (10)$$

समीकरण (9) को समीकरण (10) में रखने पर प्राप्त समीकरण को $1/C_N^{'}$ में घात श्रेणी के रूप में बढ़ाने पर निम्न समीकरण प्राप्त होती है।

$$1/t_{_app} = V_N + \left(V_N - 1\right)\left\{(\sigma-1)/\sigma\ln\sigma\right\}\left(\theta/K_N\right)\left(1/C_N^{'}\right)+... \qquad (11)$$

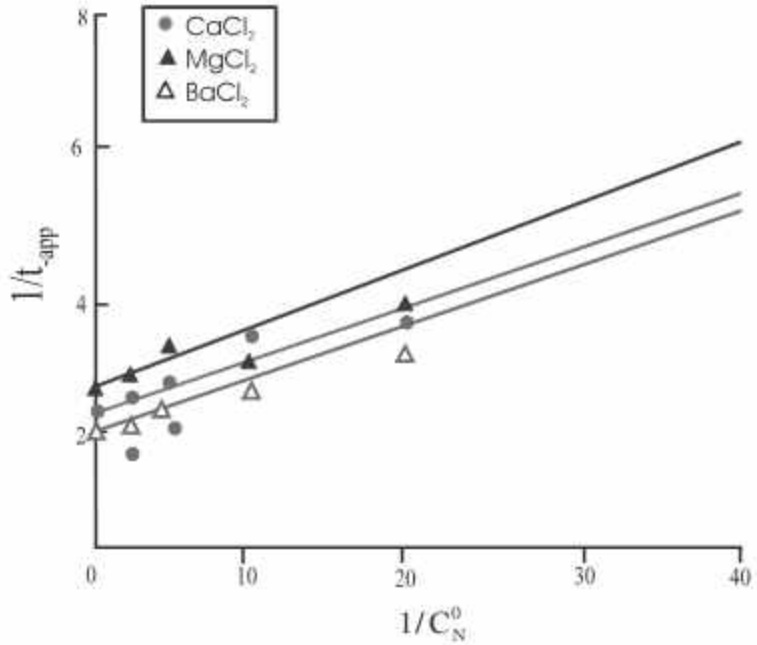
समीकरण (11) $1/t_{-app}$ और and $1/C_N^{'}$ के बीच एक रैखिक संबंध बताती है।

झिल्ली–अपघट्य व्यवस्था तंत्र में V_N और θ/K_N की मात्रा को हम, $1/t_{_app}$ प्रति $1/C_N^{'}$ ग्राफ के ऑरडिनेट इन्टरसेप्ट और प्रारम्भिक ढाल द्वारा ज्ञात कर सकते है। इस तरह चित्र 4 द्वारा V_N and θ/K_N की प्राप्त की गयी मात्रा को सारणी 2 में दर्शाया गया है। प्राप्त की गयी V_N and θ/K_N की मात्रा का उपयोग, समीकरण (7) द्वारा g_N की मात्रा की ज्ञात करने में किया जाता है(सारणी 3)।

सारणी 2

क्रोमियम टंग्स्टेट झिल्ली के लिये V_N और θ/K_N के विभिन्न सान्द्रताओं के 1:1 विद्युत अपघट्य विलयनों के मान

विद्युत अपघट्य	क्रोमियम टंग्स्टेट	
	VN (सेमी. सेकेण्ड$^{-1}$)	θ/KN
$CaCl_2$	2.13	0.180
$MgCl_2$	1.96	0.160
$BaCl_2$	1.69	0.140



चित्र–4 $1/t_{_}$ और $1/C_N^{'}$ के मध्य विभिन्न सान्द्रताओं का क्रोमोयम टंग्स्टेट के आर–पार वक्र

सारणी–3
क्रोमियमय टंस्टेट झिल्ली के लिये 30° सेल्सियस पर g_N के मान

झिल्ली	विद्युत अपघट्य	g_N सान्द्रण मान (eq/l)			
		0.1	0.05	0.02	0.01
क्रोमियम टंग्स्टेट	$CaCl_2$	2.83	2.60	2.41	2.32
	$MgCl_2$	3.10	2.70	2.81	2.41
	$BaCl_2$	3.90	2.87	2.96	2.56

झिल्ली–विद्युत अपघट्य व्यवस्था तंत्र के V_N, g_N and θ/K_N आदि झिल्ली पैरामीटर्स पता चलने पर समीकरण 5 और 6 का उपयोग कर विद्युत अपघटीय विलयन के सिद्धांतिक द्वि–आयनिग विभव का पता किया गया। अतः द्वि–आयनिक विभव की प्राप्त मात्रा चित्र 2–3 में विद्युत अपघट्य सांद्रण C के फलन के रूप में (टूटी हुई लाइन द्वारा) दर्शाई गयी है। द्वि–आयनिक विभव की गणना की गयी मात्रा और देखी गयी मात्रा (जुड़ी हुई लाइन द्वारा दर्शित) की तुलना की जा सकती है। इससे यह पता चलता है कि, सैद्धांतिक अवकाल्पनाएं, प्रायोगिक परिणाम को बहुत हद तक, संतुष्ट कर रही हैं। इस प्रकार यह प्रयोगात्मक परिणाम तोयोशिमा और नोजाकी के सिद्धांतों की वैधता की पुष्टि करता है। पाया गया मामूली विचलन, कम अचर आवेश घनत्व की झिल्ली और आयनों के अंतर्प्रभाव के कारण हो सकता है[23]।

निष्कर्ष

इन अध्ययनों में द्वि–आयनिक विभव की, गणना की गयी मात्रा और देखी गयी मात्रा की तुलना गयी है। सैद्धांतिक अवधारणाएं हमारे द्वारा किए गए प्रायोगिक काम में काफी हद तक सही साबित हुई हैं, जो कि तोयोशिमा और नोजाकी द्वारा दिए गये सिद्धातों की वैधता की पुष्टि करती है। यद्यपि मामूली विचलन, झिल्ली और आयनों के अंतर्प्रभाव आदि के कारण हो सकता है।

आभार

लेखक आवश्यक अनुसंधान सुविधाएं प्रदान करने के लिए बिपिन बिहारी पी0 जी0 कॉलेज, झांसी, के प्राचार्य डॉ0 एम0 एम0 पाण्डेय के लिए आभारी है।

संदर्भ

1. भावे, रमेश आर0(1991) इनऑर्गेनिक मैम्ब्रेन सिंथेसिस, कॅरेक्टरिस्टिक्स एण्ड अप्लिकेशन्स(बॅन नोस्तरंड रेनहोल्ड, न्यू यार्क), पृ0 35।
2. क्लेआरफीएल्ड, ए0(1982) इनऑर्गेनिक आयन एक्सचेंजर्स, जी0 आर0 सी0 प्रेस, बोका रेटोन, फिनलैण्ड।
3. अंसारी, एम0 ए0; कुमार, मनोज; कुशवाहा, आर0 एस0(2007) प्रोग्रेसिव रिसर्च, खण्ड 2, अंक 1–2, मु0 पृ0 11–15।
4. अंसारी, एम0 ए0; कुमार, मनोज; कुशवाहा, आर0 एस0(2005) ज0 इंडि0 काउन्सिल केम0, बॉल0 नो0, खण्ड 2, मु0 पृ0 23–31।
5. कुशवाहा, आर0 एस0; अंसारी, एम0 ए0; कुमार, मनोज तथा बेग, एम0 एन0(2010), ज0 इंडियन केम0, सोसाइटी0, बॉल, खण्ड 87, मु0 पृ0 471–479।
6. बेग, एम0 एन0; मतीन, एम0 ए0(2002), ज. मैम्ब्रेन साइंस, खण्ड 196, मु0 पृ0 95–102।
7. बेग एम एन, सिद्दीकी एफ ए; श्याम आर0; अरशद एम0(1977) ज. मैम्ब्रेन साइंस, खण्ड 2, मु0 पृ0 365–374।
8. बेग, एम एन; सिद्दीकी, एफ ए0; खान, इबदूर रहमान; हसन, एम0; अकुईल म0, इस्लाम, बी0(1978) ज. मैम्ब्रेन साइंस 4, मु0 पृ0 275–281।
9. तनवीर, आरिफ एवं रफीउद्दीन, ए0(2011) डीसेलीनेशन, खण्ड 274, मु0 पृ0 206–2011।
10 खान, एम0 एम0 एवं रफीउद्दीन, ए0(2011) डीसेलीनेशन, खण्ड 272, मु0 पृ0 306–312।
11. खान, एम0 एम0 एवं रफीउद्दीन, ए0(2008) ज0 एप्लाईड पॉलीमर साइंस, खण्ड 124, 338–346।
12. खान, एम0 एम0; रफीउद्दीन, ए0 एवं इनामुद्दीन(2013) ज. इन्ड0 इन्जि0 केमि0, खण्ड 19, मु0 पृ0 120–128।
13. टोयोशिमा, वाई0; नोज़की, एच0(1970) ज0 फिज0 केम0, खण्ड 74, पृ0 2704।

14. मलिक, डब्ल्यू0 यू0; श्रीवास्तव, एस0 के0; भंडारी, वी0 एम0 एवं कुमार, एस0(1974) ज0 कोलॉइड इंटरफेस, खण्ड. 47, पृ0 1।
15. संतोष, एल0 आर0 बी0; पुलसिनेल्ली, एस0 एच0 एवं सांथिल्ली सी0 वी0(1997) ज0 सोल0 जेल0 स0 टेक्नोलॉजी, खण्ड 8, मु0 पृ0 477–481।
16. वेक्मन, आर0 जे0; हेनशॉल जे0 अल0 एवं अन्य(1996) ट्रांस0 केम0, खण्ड 74(ए), मु0 पृ0 329–339।
17. हुआंग, एल0 बांग0 जेड0; सुन, जे0 इली0; वाई, एल0 एम0 क्यू0; यान, युआन एवं झाओ, डी0(2000) जर्नल ऑफ अमेरिकन केमिकल सोसाइटी, खण्ड 122, मु0 पृ0 3530–3531।
18. इजूत्सु, एच0; मीजोकामी, एफ0; नायर, पी0 के0 एवं कियोजुमी, वाई(1997) जर्नल ऑफ मेटीरियल केमिस्ट्री, खण्ड 7, अंक 5, मु0 पृ0 767–771।
19. केडम, ओ0 तथा कटचलस्काइ, ए0(1963) ट्रांस0 फॅरडे सोसाइटी, खण्ड 59, पृ0 1918।
20. स्पीएगलेर, के0 एस0(1958) ट्रांस0 फॅरडे सोसाइटी0, खण्ड 54, पृ0 1408।
21. स्कोत्तेरगूड, ई0 एम0 तथा लाइटफुट, ई0 एन0(1968) ट्रास0 फॅरडे सोसाइटी, खण्ड 64, पृ0 1135।
22. कॉबाल्टेक, वाई0, टेकगुचि, एन0, टोयोशिमा, वाई0 एवं फूजीता, एच0(1965) ज0 फिज0 केम0, खण्ड 69, पृ0 3981।
23. संडबलूम, जे0 पी0 तथा आइजिनम, एन0(1967) जर्नल ऑफ बायोफिजिक्स0, खण्ड 7, पृ0 217।

औषधीय एवं जैव क्रियाओं में कीलेटीकरण की भूमिका

विजय शंकर
असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
rao.vijay55@gmail.com

सार

धातुओं के कीलेट यौगिकों में फंगस निरोधी, जीवाणु एवं विषाणु निरोधी क्रियाएं होती हैं। ट्रिस कीलेट आवेष के घटने से लिपिड की विलेयता बढ जाती है, सक्रिय कीलेट कोशिकाओं की उपचयन–अपचयन अभिक्रियाओं को प्रभावित करती है जैसे– 2–मरकैप्टोपिरीडीन–N–ऑक्साइड, डाइमेथिल डाइथायो कार्बैमिक अम्ल, फंगस एवं बैक्टिीरिया निरोधी होती है, कापर आयनों के कीलेट द्वारा विशेष रूप से प्रभावकारी हो जाती है।

जैविक निकायों में अधिकतर धनायनिक/ऋणायनिक कीलेटों के संकर मुख्य रूप से आयरन, निकेल, कोबाल्ट, जिंक, रूथेनियम तथा ऑस्मियम की कीलेट जैविक कलाओं का अतर्वेधन अधिक कर देते हैं और कीलेटीकरण के द्वारा आवेश की आयतन में वृद्धि हो जाती है जिससे स्थिर वैद्युत आकर्षण बल के साथ–साथ शक्तिशाली वाण्डरवाल बल अथवा अधिशोषण के द्वारा दृढ रूप से बधित हो जाते हैं जिससे पादपों में भी धातु आयनों की न्यूनता या रोगों के उपचार में ईडीटीए तथा पालीएमीनो–कार्बोक्सिलिक अम्लों के साथ धातुओं के कीलेटों का उपयोग औषधीय एवं जैविक क्रियाओं की सक्रिय भूमिका के रूप में किया जाता है।

Role of chelation in medicinal and biological functions

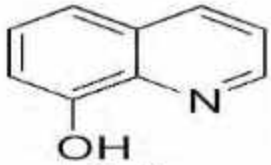
Vijay Shankar
Assistant Professor, Department of Chemistry
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow(U.P.)-226001, India
rao.vijay55@gmail.com

Abstract

Chelate compounds of different metals (such as Iron, Nickel, Cobalt, Zinc, Ruthenium and Osmium) have antifungal, antibacterial and antiviral properties. Lipid solubility increases with decreasing charge of tris-chelate, the active chelates also affects the redox reaction in different cells, such as 2-mercaptopyridine N-oxide, dimethyl dithiocorbamic acid are the active chelates which functions as antibacterial and antifungal agents, copper chelates of such legands are more effective. The metal chelates have a curative role for plants as well as for animals as they can be used for the treatment of metal deficiencies as well as toxicity in plants and animals.

धातुओं के कीलेट यौगिकों की औषधीय एवं जैव निकायों में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। औषधियों में प्रयुक्त अनेक रसायनों की संरचना इस प्रकार की होती है कि वे धातु आयनों से कीलेट यौगिक बना सकते हैं। इसका अनुमान किया जा सकता है कि इन रसायनों की औषधीय क्रिया कीलेट निर्माण पर निर्भर है। यद्यपि अनेक उदाहरणों में वास्तविक कार्य तथा कार्यवाही के स्थान का ठीक–ठीक ज्ञान नहीं है। परन्तु ऐसा अनुमान है कि वह जैव निकायों में उपस्थित धातु आयनों को बन्धित कर लेता है।

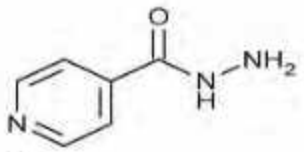
एल्बर्ट[1–3] ने अपने विशद अध्ययनों द्वारा यह प्रदर्शित किया है कि 8–हाइड्रॉक्सीक्विनोलीन (I) की फंगस निरोधी तथा बैक्टिरियानिरोधी क्रिया एक धातु कीलेट यौगिक के निर्माण द्वारा होती है। बहुधा यह देखा गया है कि 8–हाइड्रॉक्सीक्विनोलीन तथा आयरन (III) दोनों की बैक्टिरियानिरोधी सान्द्रता का कोई प्रभाव नही होता, परन्तु 1:1 के मोलर अनुपात में एक साथ वे प्रबल बैक्टिरियानाशक हैं। इसके अतिरिक्त केवल 1,8 समावयवी ही प्रभावकारी है। तथा इसके O तथा N के मेथिलीकरण द्वारा बैक्टिरियानिरोधी क्रिया नष्ट हो जाती है। इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं कि वस्तुतः कीलेट ही बैक्टिरिया निरोधी है।



(I) 8– हाइड्रॉक्सीक्विनोलीन

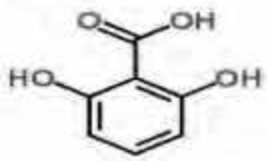
आयरन (III), 8–हाइड्रॉक्सीक्विनोलीन से मोनो, बिस तथा ट्रिस कीलेट यौगिक बना सकता है। इनमें से मोनो तथा बिस कीलेट धनायनिक होंगे और उन पर क्रमशः 2, तथा 1 धन आवेश होगा जब कि ट्रिस कीलेट आवेश रहित विद्युत अनपघट्य होगा। चूँकि आवेश के घटने से लिपिड–विलेयता बढ़ जाती है। अतः कोशिका में प्रवेश पाना भी अधिक सरल हो जाता है। एल्बर्ट इस आधार पर एक निष्कर्ष पर पहुंचे कि इन कीलेटों में से 1:1 तथा 1:2 कीलेट विषालु हैं, परन्तु वे कोशिका में प्रवेश नही कर पाते, जबकि 1:3 कीलेट कोशिका में प्रवेश तो सरलता से कर लेता है, परन्तु वह विषालु नहीं है। एल्बर्ट का विचार है कि आयरन (III) 8–हाइड्रॉक्सीक्विनोलीन निकाय का कार्य मुख्य रूप से कोशिका कला से होकर कोशिका के भीतर इन रासायनिक घटकों का प्रवेश करा देना है, जहाँ ये वियोजित हो जाते हैं, तथा मुक्त 8–हाइड्रॉक्सीक्विनोलीन, अथवा आयरन (III) आयन या इनसे तथा कोशिका के जैव पदार्थों से निर्मित कोई अन्य यौगिक विष का कार्य करते हैं। सक्रिय कीलेट, कोशिका के भीतर उसकी उपचयन–अपचयन की अभिक्रियाओं को भी प्रभावित कर सकता है अथवा मोनो तथा बिस कीलेट केन्द्रीय धातु आयन के रिक्त उपसहसंयोजन के स्थानों पर एन्जाइमिक कीलेटकारियों से बन्ध बना सकते हैं। इसी प्रकार 2–मरकैप्टोपिरीडीन–N–ऑक्साइड, डाइमेथिल डाइथायो कार्बैमिक अम्ल जैसे अनेक फंगस तथा बैक्टिरिया निरोधी औषधियों की क्रिया धातु आयनों द्वारा अधिक सक्रिय एवं प्रभावकारी हो जाती है। डाइमेथिल डाइथायोकार्बैमिक अम्ल की क्रिया कॉपर आयनों के द्वारा विशेष रूप से प्रभावकारी हो जाती है। अनुमान है कि इसका मोनो कीलेट विषालु है तथा फंगस की कोशिका में बिस कीलेट के रूप में प्रवेश होता है।

आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्रेजाइड (II) का उपयोग यक्ष्मा रोग के उपचार में किया जाता है। यह एक एमिनोअम्ल के ही समान कीलेटकारी यौगिक है तथा इसकी यक्ष्मानिरोधी क्रिया कापर (II) आयन के द्वारा अधिक प्रभावकारी हो जाती है। टेट्रासाइक्लीन[4] में भी अनेक उपयुक्त दाता आक्सीजन परमाणु होते है और यह भी काफी स्थायी कीलेट बनाता है।



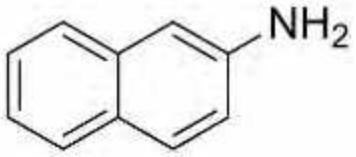
(II) आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्रेजाइड

सैलिसिलिक अम्ल तथा इसके व्युत्पन्न यौगिक प्रख्यात ज्वरनाशक औषधि है। ऐसा सुझाव दिया गया है कि इनकी क्रिया कीलेट निर्माण के द्वारा होती है। सूवर्ट[5] का विचार है कि सैलिसिलेट, आरिन ट्राइकार्बोक्सिलिक अम्ल तथा ऐमिनो पाइरीन की ज्वरनाशक क्रिया का कारण यह है कि इन यौगिकों द्वारा कोशिका द्रव्य का कापर आयन जो ज्वर की दशा में कोशिका के अर्न्तस्थानों से मुक्त हो जाता है, कीलेट के रूप में कोशिका में पुनः प्रवेश कर लेता है। इसका प्रमाण[6] है कि वात के ज्वर में मेटा तथा पैरा हाइड्रॉक्सी बेन्जोइक अम्ल प्रभावकारी नहीं होते, क्योंकि उनमें कीलेट निर्माण की क्षमता नहीं होती, जब कि 2,6 डाइहाइड्रॉक्सी बेन्जोइक अम्ल (γ– रिसार्सिलिक अम्ल) (III) जो स्थायी कीलेट बना सकता है। सैलिसिलिक अम्ल से भी अधिक प्रभावकारी है।



(III) 2,6 डाइ हाइड्राक्सी बेन्जोइक अम्ल

β नैफ्थिलएमीन (IV) स्वयं कैंसर उत्पन्न नहीं करता है परन्तु स्तन धारियों में यह जैव आक्सीकरण के द्वारा α–हाइड्राक्सी β– नैफ्थिलएमीन में परिणत हो जाता है जो कि मूत्राशय में अर्बुद निर्माण के हेतु अति सक्रिय है। इसका कारण सम्भवतः इसके कीलेटकारी गुण में है।

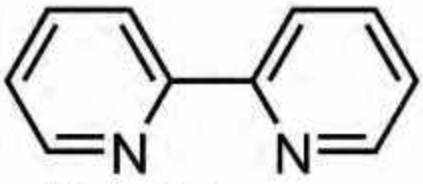


(IV) β नैफ्थिलएमीन

जैव निकायों पर कई वर्षों से सीधे संश्लिष्ट धातु कीलेट संकर यौगिकों के प्रभाव सम्बन्धी अध्ययन भी हो रहे हैं। यह स्पष्ट है कि उप सह संयोजन की दृष्टि से पूर्णतः संतृप्त धात्विक कीलेट यौगिकों में और कोई बन्ध बनाने की क्षमता नहीं होती है। अतः इस बात की आशा की जाती है कि जैव निकायों पर उनका बहुत कम प्रभाव होगा। ऋणायनिक तथा धनायनिक कीलेट संकर यौगिक अधिक मात्रा में किसी जैव निकाय में विद्युत अपघट्य के संतुलन को विक्षुब्ध कर सकते हैं। इस प्रकार धनायनिक कीलेट यौगिक चतुष्क अमोनियम धनायनों की ही भाँति तंत्रिका की पेशियों को प्रभावित कर सकते हैं।

पादपों में आयरन, मैंगनीज, जिंक आदि की न्यूनता के उपचार में ईडीटीए तथा अन्य पालीएमीनो–कार्बोक्सिलिक अम्लों के ऋणायनिक कीलेटों के प्रयोग का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। आयरन (III) के कीलेट का अवशोषण पादपों की जड़े करती है और इसी के साथ कुछ मुक्त धातु आयन भी प्रवेश पा जाते हैं। आयरन (III) के कीलेट की प्राप्यता सूर्य के प्रकाश द्वारा बढ़ जाती है, क्योंकि सूर्य के प्रकाश द्वारा इसका आयरन (II) के कीलेट में अपचयन हो जाता है। इस प्रकार मुक्त कीलेटकारी अभिकर्मक पादप की कोशिकाओं में उपस्थित अन्य सूक्ष्ममात्रिक धातु आयनों को बन्धित करके विषालु प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि इन कीलेटों का जैव प्रभाव स्वयं इनके द्वारा न होकर इनके वियोजन से उत्पन्न स्पीशीज के द्वारा हो। वृक्क पर ईडीटीए के ऋणायनिक कैल्सियम कीलेट का विषालु प्रभाव स्पष्ट नहीं है।[7] स्थायी विद्युत अनपघट्य कीलेटों के जैव प्रभाव के सम्बन्ध में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। कोच[8] ने अवश्य चूहों में ट्रिस (ग्लाइसिनेटो) कोबाल्ट (III) के इन्जेक्शनों से हाइपर ग्लाइसीमिया उत्पन्न होते पाया है।

जैव निकायों पर अधिकतर धनायनिक संकरों के प्रभावों का अध्ययन किया गया है। इनमें भी मुख्य रूप से आयरन, निकेल, कोबाल्ट, जिंक, रूथेनियम, तथा ऑस्मियम के 2,2′ बाइपिरीडीन (V) तथा 1,10 फेनैन्थ्रोलिन (VI) अथवा उनके व्युत्पन्नों से निर्मित कीलेटों का ही विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। इनमें के Ru (II) तथा Os (II) के कीलेट अत्यन्त जड़ होते हैं, अतः ये इस प्रकार के अध्ययनों के लिए बड़े उपयोगी हैं।



(V) 2,2′ बाइपिरीडीन



(VI) 1,10 फेनैन्थ्रोलिन

संकर निर्माण में लिगैंड के इलेक्ट्रॉनों के दान के द्वारा केन्द्रीय धातु आयन का धन आवेश घट जाता है। इसके अतिरिक्त पाउलिंग के विद्युत उदासीनता[9] के नियम के अनुसार आवेश केवल धातु आयन पर ही केन्द्रित न रहकर, धातु परमाणु तथा अन्य घटक परमाणुओं की विद्युत ऋणात्मकता के अनुसार पूरे संकर पर वितरित हो जाता है। इस प्रकार कीलेटीकरण के द्वारा आवेश के आयतन में वृद्धि हो जाती है। बाइपिरीडील तथा 1,10 फेनैन्थ्रोलीन लिगैंडों में π बन्धन की भी क्षमता होती है जो कि परिधीय घन आवेश को घटाने में सहायक है। बाइपिरीडिल तथा 1,10 फेनैन्थ्रोलीन में 6,6′ तथा 2,9 स्थानों के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर एल्किल समूहों के प्रतिस्थापन से उनके द्वारा निर्मित कीलेटों का स्थायित्व बढ़ जाता है। इसका एक और लाभ यह भी है कि ऐल्किल प्रतिस्थापन से इनका पृष्ठ क्षेत्र बढ़ जाता है तथा ये कार्बनिक विलायकों में अधिक विलेय हो जाते हैं। अतः इस प्रकार के कीलेट जैविक कलाओं का अन्तर्वेधन सम्भवतः अधिक कर लेते हैं। और स्थिर वैद्युत आकर्षण बल के साथ–साथ अधिक शक्तिशाली वान्डरवॉल बल अथवा अधिशोषण के द्वारा जैविक पृष्ठों पर अधिक दृढ़ रूप से बन्धित हो जाते हैं।

चूहों तथा गिनीपिग के बच्चों पर प्रयोगों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि अमोनिया, एथिलीन डाईएमीन, 2,2′ बाइपिरीडीन, 1,10 फेनैन्थ्रोलीन, 2,2′,2″–ट्राइपिरीडीन आदि लिगैन्डों से निर्मित द्विसंयोजक धातुओं (आयरन, निकेल, कोबाल्ट, जिंक, रूथेनियम, आस्मियम) के संकर इंजेक्शन देने पर शीघ्रता से अवशोषित हो जाते हैं परन्तु इन्हें खिलाने से पाचक तंत्र द्वारा इनका अवशोषण बहुत कम[10] होता है। कीलेट का अधिकांश भाग मल में यथावत निकल जाता है जबकि मूत्र इससे लगभग मुक्त रहता है। परन्तु अस्थायी कीलेटों का अवशोषण, उन दशाओं में सम्भव है यदि उनका वियोजन हो सके। उदाहरणार्थ चूहों को फेरस सल्फेट के साथ ट्रिस (5–नाइट्रो–1,10फेनैन्थ्रोलीन) आयरन (II) सल्फेट कीलेट खिलाने पर इसका काफी अंश उनके मूत्र में पाया गया। इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: आयरन (II) का ट्रिस कीलेट सोडियम क्लोराइड की उपस्थिति में एक अनायनित संकर अणु डाइक्लोरो (5–नाइट्रो–1,10 फेनैन्थ्रोलीन) आयरन (II) तथा मुक्त क्षारक 5– नाइट्रो – 1,10 फेनैन्थ्रोलीन में वियोजित हो जाता है।

$$[Fe\ (5\text{-}NO_2\ phen)_3]\ SO_4 \xleftrightarrow{NaCl} [Fe\ (5\text{-}NO_2\ phen)Cl_2]^o + 2(5\text{-}NO_2\ phen) + Na_2\ SO_4$$

यह अनायनित संकर अस्थायी है अतः यह शीघ्रता से वियोजित होकर पुनः ट्रिस कीलेट बना लेता है।

$$3[Fe\ (5\text{-}\ NO_2\ phen)\ Cl_2)]^o \longleftrightarrow [Fe\ (5\text{-}NO_3phen)_3]Cl_2 + 2Fe\ Cl_2$$

उपर्युक्त साम्यावस्था की प्रवृत्ति ट्रिस कीलेट के निर्माण की दिशा में होती है परन्तु फेरस आयनों के आधिक्य की उपस्थिति में इसे अनायनित मोनोकीलेट के निर्माण की दिशा में विवश किया जा सकता है चूंकि अनायनित मोनो कीलेट पर कोई आवेश नहीं होता, अतः आंत्र प्रणाली की श्लेष्माओं द्वारा इसका अवशोषण सरलता से हो जाता है फिर, वहाँ से यह रूधिर में प्रवेश कर जाता है और अंत में इसका मूत्र द्वारा उत्सर्जन हो जाता है।

पेरीटोनियम के नीचे इन्जेक्शन के द्वारा अवशोषित होने के पश्चात $(Ru^{106}(phen)_3]^{++}$ आयन यकृत वृक्क और कभी–कभी मध्यपट, अग्न्याशय, तथा तिल्ली में उच्च सान्द्रता में पाया गया है तथा फुप्फुस, आंत्र, हृदय, शुक्रग्रन्थि, कंकाल पेशी, आँख तथा त्वचा में इसकी सूक्ष्म मात्राएं पाई गई हैं, परन्तु रेडियोधर्मिता के अध्ययनों द्वारा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में इसकी उपस्थिति के कोई प्रमाण नहीं मिलते[11]। ट्रिस(2,2'–बाइपिरीडीन) आयरन (II) सल्फेट का भी शरीर में इसी के समान वितरण[12] होता है। कोच[11] ने देखा कि 24 घन्टों में चूहों को $[Ru^{106}(phen)_3]^{++}$ की दी गयी मात्रा का 97–99 प्रतिशत मूत्र में उसी प्रकार अपरिवर्तित होकर निकल आता है। वृक्क तंत्र द्वारा धातु संकरों का उत्सर्जन अतिशीघ्र होता है। यह देखा गया है कि चूहों में 1,10 फेनैन्थ्रोलीन तथा 2,2´ बाइपिरीडीन के आयरन (II) कीलेटों के इन्जेक्शन लगाने के 5–10 मिनटों के भीतर ही ये कीलेट उनके मूत्र में आ जाते हैं।

मस्तिष्क की कोशिकाओं में ग्लूटामिन का संश्लेषण ग्लूटामिन सिन्थेटेस एन्जाइम के द्वारा होता है, जो ग्लूकोस तथा अमोनिया की उपस्थिति में ग्लूटैमेट को ग्लूटामिन में परिणत कर देता है[13]।

इस अभिक्रिया में एडिनोसीन ट्राईफॉस्फेट (एटीपी) की एक उपयुक्त मात्रा की उपस्थिति भी आवश्यक है[14] और इसके अभाव में यह क्रिया नहीं हो पाती और यदि एटीपी का संश्लेषण न हो पाये तो ग्लूटामिन के संश्लेषण का भी निरोधन हो जायेगा। इस प्रकार मस्तिष्क की कोशिका द्वारा ग्लूटामिन के संश्लेषण के प्रयोगों द्वारा ऐसे प्रक्रमों पर, जिनमें ऊर्जा की आवश्यकता हो औषधियों के प्रभाव की परीक्षा की जा सकती है। 2,4 डाईनाइट्रोफीनॉल तथा सैलिसिलेट ग्लूटामिन के संश्लेषण को अवनमित कर देते हैं, परन्तु ऑक्सीजन के उपभोग पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। डायर[15] ने गिनीपिग के बच्चों के मस्तिष्क की कोशिकाओं द्वारा ग्लूटामिन के संश्लेषण एंव आक्सीजन के उपभोग पर अनेक धातुओ के कीलेटों के प्रभाव का अध्ययन किया है। उन्होंने देखा कि 1,10 फेनैन्थ्रोलीन तथा 2,2' बाइपिरीडीन के रूथेनियम(II), ऑस्मियम(II) तथा निकेल(II) के कीलेटों का 0.1 मिली मोल सान्द्रता तक, इन अभिक्रियाओं पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। कोबाल्ट(II) तथा जिंक(II) के कीलेट इन दोनों अभिक्रियाओं को अवनमित कर देते हैं जबकि आयरन(II) के कीलेट ग्लूटामिन के संश्लेषण को तो निरोधित कर देते हैं परन्तु ऑक्सीजन के उपभोग पर उनका कोई प्रभाव नहीं होता है।

चूहों पर प्रयोगों के द्वारा रूधिर में ग्लूकोस की सान्द्रता पर भी धातुओं के कीलेटों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। कोच11 ने देखा कि एथिलीन डाइएमीन के स्थायी धनायनिक कीलेटों $[M(en)_3]^{3+}$ [M=Co(III), Rh(III),Os(III)] के द्वारा रूधिर में ग्लूकोस की मात्रा अधिक काल के लिए बहुत अधिक बढ़ जाती है (हाइपरग्लाइसीमिया), यद्यपि अग्न्याशय की α कोशिकाओं पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। नेल्सन[16] ने इसी प्रकार के अध्ययन कुछ सामान्य तथा ऐसे चूहों पर किये जिनकी एड्रिनल, मध्य एड्रिनल अथवा पिट्यूटरी ग्रन्थियाँ शल्य क्रिया द्वारा निकाल दी गयी थी। इनसे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रूधिर में ग्लूकोज सान्द्रता की वृद्धि मध्य एड्रिनल ग्रन्थि के द्वारा होती प्रतीत होती है और सम्भवतः इसका कारण यह है कि रूधिर में संचरित एड्रिनलीन की मात्रा बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप यकृत का ग्लाइकोजन ग्लूकोस में अपघटित हो जाता है और इस प्रकार रूधिर में ग्लूकोस की मात्रा बढ़ जाती है।

संदर्भ

1. एल्बर्ट(1960) सेलेक्टिव टॉक्सिसिटी, मेथ्युएन, लन्दन, यू0 के0।
2. एल्बर्ट,रूब्बों, गोल्डेकर तथा बैल्फोर(1947) ब्रिट0 जर्न0 एक्सपेरी0 पैथोलॉजी, खण्ड 28, पृ0 69।
3. एल्बर्ट(1958) द स्ट्रैटेजी ऑफ केमोथेरैपी, सिम्पोजियम सोसा0 जर्न0 माइक्रोबायोलॉजी, खण्ड 8, पृ0 112।
4. एल्बर्ट तथा रीस(1956) नेचर, खण्ड 177, पृ0 433।
5. शुबर्ट (1960) मेटल बाइंडिंग इन मेडिसिन(सम्पादकः सेवेन) पृष्ठ 325, लिप्पिनकॉट, फिलाडेल्फिया, पेन्सिलवेनिया, यू0 एस0 ए0।
6. रीड, वाट्सन; क्रोकन तथा स्प्राउल(1951) ब्रिट0 मेडि0 जर्न0, खण्ड 2, पृ0 321।
7. सेवेन(1960) मेटल बाइडिंग इन मेडिसिन, पृष्ठ 95, लिप्पिनकॉट, फिलाडेल्फिया, पेन्सिलवेनिया, यू0 एस0 ए0।
8. कोच(1955) नेचर, खण्ड 175, पृ0 856
9. पाउलिंग(1948) जर्न0 केमि0 सोसा0, पृ0 1461।

10. शुल्मेन तथा डायर(1964) मेटल कीलेट्स इन बायोलॉजीकल सिस्टम्स(कीलेटिंग एजेन्ट्स एण्ड मेटल कीलेट्स, सम्पादक: डायर तथा मेलार) पृष्ठ 398–399, एकेडेमिक प्रेस, न्यूर्याक तथा लन्दन।
11. कोच; रोगर्स; डायर तथा ग्यारफास(1957) ऑस्ट्रेलियन जर्न0 बायोला0 साइ0, खण्ड 10, पृ0 342।
12. बेकारी(1941) बोल0 सोसा0 इटैल0 बायोला0 स्पर0, खण्ड 16, पृ0 216।
13. क्रेब्स(1935) बायोकेमि0 जर्न0, खण्ड 29, पृ0 1951।
14. स्पेक(1941) जर्न0 बायोला0 केमि0, खण्ड 168, पृ0 403।
15. डायर; मेसर; शुल्मैन तथा राइट(1964) संदर्भ 10, पृष्ठ 405।
16. नेल्सन, शुल्मैन, तथा राइट(1964) संदर्भ 10, पृ0 414।

स्वच्छ जलीय झींगा, *मैक्रोब्रेकियम लैमेराई* के गिल पर डिटर्जेंट लीनियर एल्काइन बेन्जीन सल्फोनेट का दुष्प्रभाव

संजीव शुक्ल[1], ऋचा शुक्ला[2] एवं यू0 डी0 शर्मा[3]
[1]स्नातकोत्तर प्राणि विज्ञान विभाग, बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
[2]प्राणि विज्ञान विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ(उ0प्र0)–226004
[3]अ0 प्रा0 प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ(उ0प्र0)–226007
sanjiveshukla@gmail.com

सार

प्रस्तुत शोध में डिटर्जेंट (अपमार्जक), लीनियर एल्काइल बेंजीन सल्फोनेट (एल.ए.एस.) द्वारा स्वच्छ जलीय झींगा, *मै ब्रेकियम लैमेराई* के गिल पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का अध्ययन किया गया है। 0.755मिग्रा./ली.(96घंटे एल.सी.50 का 25%) डिटर्जेंट के गिल पर पड़ने वाले 10 दिन, 20दिन व 30 दिन के उपरान्त दृष्टिगत प्रभाव–क्रमशः गिल पट्टिकाओं में शोथ, अत्यधिक श्लेष्माश्रावण, गिल क्यूटिकिल का टूटना, हाइपरप्लेसिया, अन्तर पट्टिकास्थान में कमी, ऊतकक्षय व हीमोसाइट की अधिकता प्रमुख है। हीमोसाइट संरचना विभेद, केन्द्रक का फूलना व टूटना तथा अन्तरपट्टिकास्थान में एकत्रीकरण मुख्य रूप से 30 दिन के उपरान्त दिखाई देते हैं। समस्त दुष्प्रभाव डिटर्जेंट सम्पर्क की समयावधि के सापेक्ष पाये गये। उक्त शोध पत्र में डिटर्जेंट विषालुता की संभावित क्रिया विधि की विवेचना भी की गयी है।

बीज शब्द– *मै ब्रेकियम लैमेराई*, गिल, विषालुता, डिटर्जेंट

Effect of detergent, Linear Alkyl benzene sulphonate on gills of freshwater prawn, *Macrobrachium lamarrei*

Sanjive Shukla[1], Richa Shukla[2] and U.D. Sharma[3]
[1]P. G. Department of Zoology B.S.N.V. P. G. College, Lucknow-226001(U.P.) India
[2]Department of Zoology, Navyug Kanya Mahavidyalaya, Lucknow-226004
[3]Retd. Professor, Department of Zoology, University of Lucknow-226007
sanjiveshukla@gmail.com

Abstract

Present paper deals with effect of detergent, Linear Alkyl benzene sulphonate on gills of freshwater prawn, *Macrobrachium lamarrei*. Prawns were exposed to 0.755mg/L(25%of 96hLC_{50}) of detergent for 10, 20 & 30 days showed effects on gills mainly, inflammation, distension, excessive mucous secretion, erosion of cuticle, necrosis, hyperplasia, reduction of interlameller space, heavy influx of haemocytes etc. Degenerative changes, loss of histoarchitecture, deformed haemocytes alongwith nuclear pyknosis and Karyorrhexis were observed after 30days of exposure. Severity of effects was found duration dependent. Possible mechanism of detergent toxicity has also been discussed.

Key words : *Macrobrachium lamarrei*, Gill, Toxicity, Detergent

प्रस्तावना

आधुनिक समय में स्वच्छता के संदर्भ में अतिवादी दृष्टिकोण के चलते विभिन्न प्रकार के डिटर्जेंट के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई है। प्राकृतिक स्वच्छता संसाधनों के अलावा, संश्लेषित उत्पादों में लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट (लैब्स) का प्रयोग अत्यधिक बढ़ा है। पहले यह माना जाता था कि ये डिटर्जेंट जैव–अपघटकीय है तथा इनकी विषालुता अत्यन्त कम है। लैब्स, एनआयोनिक डिटर्जेंट है जो कि जलीय तन्त्र यथा तालाब, पोखर, झील, नदी इत्यादि में मिलने पर जलीय जन्तुओं व पौधों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। डिटर्जेंट के दुष्प्रभावों का अध्ययन अधिकतर मछलियों के संदर्भ में किया गया है (एबील 1974, बैरडक 1965, राय 1989, मिश्र इत्यादि 1985, ब्राइनी इत्यादि 1989, हुऑग एवं तपाले 2011, जैन इत्यादि 2011, ओगीलीका इत्यादि 2011, जैन इत्यादि 2013क, 2013ख) परन्तु स्वच्छ जलीय क्रस्टेशिया वर्ग के जन्तु व अन्यअकशेरूकी, जो कि विषालुता के संदर्भ में अतिसंवेदनशील है, के ऊपर इस प्रकार के अध्ययनों की कमी है (शर्मा एवं शुक्ल 1990, मुरूथन्यागम इत्यादि 1997, स्टैकैनोनी एवं अबीसा 2011, शुक्ल इत्यादि 2012)। स्वच्छ जलीय झींगा, *मै ब्रेकियम लैमेराई* (क्रस्टेशिया–डीकापोडा) लखनऊ व उसके आसपास वर्षानुवर्ष पाया जाता है तथा यह एक आदर्श जैव सूचक की भूमिका निभाने में सक्षम हो सकता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए डिटर्जेंट, लीनियर

एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट के दुष्प्रभावों का अध्ययन *मै ब्रेकियम लैमेराई* के गिल पर किया गया है।

संसाधन एवं प्रयोग विधि

स्वच्छ जलीय झींगा, *मै ब्रेकियम लैमेराई* (क्रस्टेशिया–डीकापोडा) का संचयन गोमती नदी, लखनऊ(उ0प्र0) के आसपास से मछुआरों की मदद से किया गया तत्पश्चात् उन्हें प्रयोगशाला में 20ली0 क्षमता वाले शीशे के जलपात्रों में रखा गया (वर्मा इत्यादि 2012)। प्रयोग से पूर्व झींगा समूह का 5–7 दिन प्रयोगशाला में अनुकूलन किया गया। डिटर्जेंट, लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट को सोडियम कार्बोनेट की सहायता से पी0एच0–7.0 पर मानकीकृत कर उसका मानक विलयन तैयार किया गया (लाल इत्यादि, 1983)। प्रयोग हेतु प्रयुक्त जल के भौतिक–रासायनिक गुण निम्न थे–

पी0 एच0 – 7.3±0.2, तापक्रम – 26±20°से0, घुलित ऑक्सीजन – 7.0±0.1 मिग्रा0/ली0, कुल कठोरता – 268 ±2.5 मिग्रा0/ली0

प्रयोग हेतु दो जलपात्रों में 20ली0 जल रखा गया। एक में डिटर्जेंट की 0.755 मिग्रा0/ली0 मात्रा (96 घंटे एल0 सी050 का 25%) घोली गयी तथा दूसरे जल पात्र को जिसमे केवल जल था, नियन्त्रित समूह माना गया। दोनों जलपात्रों में 20–20 झींगे रखे गये तथा उन्हें वायु पम्प की सहायता से घुलित आक्सीजन निरन्तर उपलब्ध करायी गयी। प्रति तीसरे दिन झींगों को भोजन दिया गया व डिटर्जेंट का परीक्षण विलयन बदला गया। नियन्त्रित व परीक्षण समूह से झींगों के गिल को क्रमशः 10, 20 व 30 दिन उपरान्त विच्छेदन द्वारा निकाल कर बोइन्स फिक्सेटिव में 24घंटे फिक्स किया गया, तत्पश्चात् सामान्य माइक्रोटोमी विधि द्वारा ऊतकों के पैराफिन ब्लाक बनाकर 5–6 µ मोटाई के सेक्शन काटे गये व इनका हैरिस हीमोटाक्सिलिन व इओसिन विधि से रंजन किया गया। परिपूर्ण स्लाइड्स को ओलिम्पस सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन किया गया तथा छाया चित्र लिए गये। परीक्षण समूह की स्लाइडों की नियंत्रित समूह से तुलनाकर प्रभावों की गणना की गयी। प्रयोग को तीन बार दोहराया गया।

परिणाम एवं विवेचना

स्वच्छ जलीय झींगा, *मै ब्रेकियम लैमेराई* में आठ जोड़े गिल पाये जाते हैं, जो कि कैरापेस के नीचे दोनों पार्श्व सतहों पर 8–8 की संख्या में व्यवस्थित होते हैं। गिल का निर्माण तिकोने गिल आधार व उस पर दोनों ओर किताब के पन्नों की तरह गिल पट्टिकाओं से होता है। यह संरचना, *पैलीमान* (पटवर्धन 1937) व *मै ब्रेकियम दयानम* (सेन इत्यादि 2008) के समान है (चित्र 1 व 2)। डिटर्जेंट, लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट गिल पर उल्लेखनीय प्रभाव डालता है। परीक्षण समूह में 10दिन के उपरान्त (चित्र–3व4) गिल पट्टिकाओं में शोथ, श्लेष्मा का अधिक श्रावण व अन्तरगिल पट्टिका स्थान में कमी महत्वपूर्ण प्रभाव है। इस अवस्था में गिल में हीमोलिम्फ कणिकाओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि देखी गयी है।

20 दिन के उपरान्त (चित्र–5 व 6) गिल पट्टिकाओं की उपचर्म (क्यूटिकिल) का टूटना, अत्यधिक श्लेष्मा का श्रावण, हाइपरप्लेसिया व गिल के शीर्षस्थ भाग का फूलना प्रमुख है। इस अवस्था में कहीं–कहीं ऊतक परिगलन (नेक्रोसिस) भी दृष्टिगोचर होता है तथा हीमोसाइट के केन्द्रक का फूलना (पिकनोसिस) व उसकी झिल्ली का टूटना (कैरियोरेक्सिस) भी अधिकांशतः देखा गया है। गिल पट्टिकाओं के ऊतकों के गलने से हीमोसाइट अन्तरपट्टिकास्थान में निकलकर जमा होने लगते हैं तथा अन्तर पट्टिकास्थान अत्यन्त कम रह जाता है। 30 दिन के उपरान्त (चित्र 7 व 8) सभी प्रभावों की तीव्रता बढ़ जाती है। गिल में व्यापक ऊतक अधः पतन (डीजेनरेशन) व परिगलन (नेक्रोसिस) के कारण ऊतकीय संरचना लगभग समाप्त हो जाती है। मृत ऊतक गिल पट्टिकाओं के बीच–बीच पाये जाते हैं तथा अधिकांश हीमोसाइट की संरचना प्रभावित पायी जाती है। उक्त सभी प्रभाव डिटर्जेंट सम्पर्क की समयावधि के सापेक्ष पाये गये हैं। नियन्त्रित समूह में गिल में कहीं–कहीं शोथ के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभाव नहीं पाये गये।

पानी में घुलित डिटर्जेंट सर्वप्रथम त्वचा व गिल के सम्पर्क में आकर उसे प्रभावित करता है। अत्याधिक श्लेष्मा का श्रावण आविषों के प्रति एक प्रतिक्रिया है, जो विषालुता के प्रभाव को कम करने का प्रयास है। इस प्रकार के प्रभाव अन्य जन्तुओं, पीड़कनाशी व भारी धातुओं के संदर्भ में भी देखे गये हैं (मिश्र इत्यादि 1985, सेन इत्यादि 2008, शुक्ल इत्यादि 2012) जो कि इस अध्ययन से समानता दर्शाते है। डिटर्जेंट जल में घुलने पर उसका पृष्ठतनाव कम कर देते हैं फलस्वरूप घुलित आक्सीजन का गिल द्वारा पूर्णरूप से उपयोग नहीं हो पाता तथा जन्तुओं का श्वसन बाधित होकर उनको बेचैनी होती है व उनके व्यवहार में परिवर्तन आ जाते हैं (बैरडच इत्यादि 1965, राय 1989, वर्मा इत्यादि 2012, कैम्बेल व तपाले 2011)। डिटर्जेंट वसा घोलक होने के कारण कोशिका झिल्लियों को नष्ट कर गिल ऊतकों में शोथ व परिगलन उत्पन्न कर गिल की दीवारों को तोड़ देते हैं फलस्वरूप हीमोलिम्फ कणिकायें अन्तरपट्टिका स्थान में एकत्रित होने लगती हैं व जन्तुओं का श्वसन व अन्य जैवरासायनिक क्रियायें प्रभावित होती हैं। इस प्रकार के प्रभाव मछलियों व अन्य जन्तुओं पर भी देखे जा चुके हैं (एबील 1974, मिश्र इत्यादि 1985, स्टेफेनोनी इत्यादि 2011, जैन इत्यादि 2013क, 2013ख) जो कि प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों से अपनी समानता दर्शाते हैं। डिटर्जेंट के प्रभाव से एसिड फास्फेटेज एन्जाइम की वृद्धि होती है (त्रिवेदी इत्यादि 2001, मरूथन्यागम इत्यादि 1997, शर्मा व शुक्ल 2008) जो कि कोशिका–गलन, ऊतक–मृत्यु व कोशिकीय संरचना क्षय का कारण होता है। एसिड फास्फेटेज लाइसोसोम में पाया जाने वाला एन्जाइम है जो कि फास्फेट इस्टर बन्ध को तोड़कर कोशिका–क्षय में सहायक होता है। झींगा के गिल ऊतकों के व्यापक क्षय के संदर्भ में उक्त एन्जाइम की भूमिका भी संभावित हो सकती है।

इस शोध के परिणाम यह प्रदर्शित करते हैं कि डिटर्जेंट लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट स्वच्छ जलीय झींगा के गिल की ऊतकीय संरचना व उनकी कार्यक्षमता को प्रभावित कर इनके जीवन को संकट में डालते हैं। स्वच्छ जलीय झींगा जलजीव–पालन उद्योग का महत्वपूर्ण घटक है एवं अर्थोपार्जन व विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन है। अतः डिटर्जेंट के अंधाधुंध उपयोग पर विचार करने की आवश्यकता है। स्वच्छ जलीय झींगा विषालुता के प्रति अति संवदेनशील होने के कारण डिटर्जेंट इत्यादि के संदर्भ में जैव–सूचक की भूमिका निभाने में सक्षम हो सकता है।

आभार

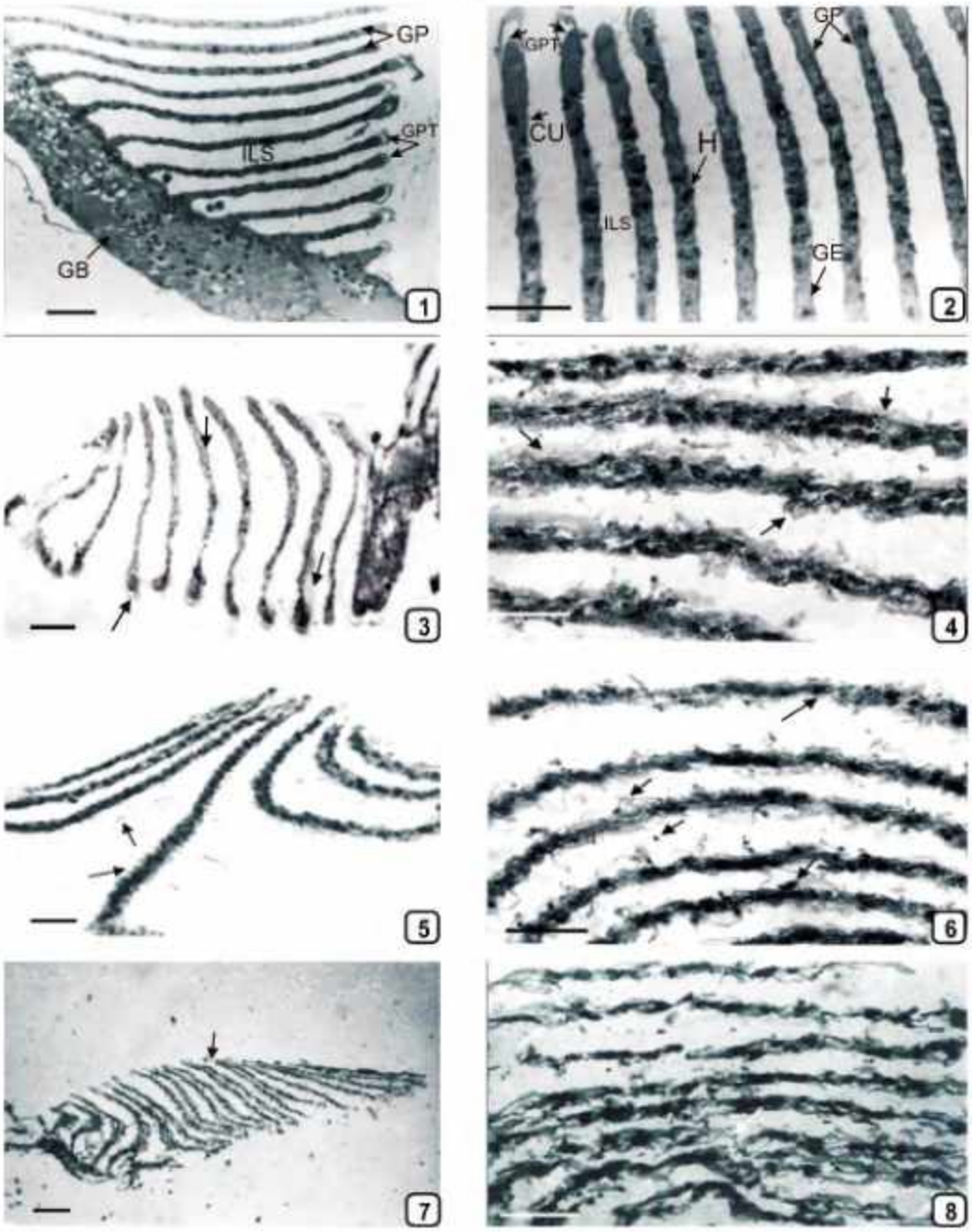
शोधकर्ता, डॉ0 सुधीश चन्द्र, विभागाध्यक्ष एवं डॉ0 जी0 सी0 मिश्र, प्राचार्य, बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज लखनऊ व विभागाध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ की सहायता व प्रोत्साहन के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

संदर्भ

1. एबील पी0 डी0(1974) टॉक्सीसिटी ऑफ सिन्थेटिक डिटर्जेंट टु फिश एण्ड एक्वेटिक इनवर्टिब्रेट्स, ज0 फिश0 बायो0, खण्ड 6, मु0 पृ0 279–298।
2. बैरडक, जे0 ई0; क्यूजिया एन0, एवं होली, ए0(1965) डिटर्जेंट इफेक्ट आन केमिकल सेन्स ऑफ द फिश *इक्टैलूरस नेटेलिस*, साइंस, खण्ड 148, मु0 पृ0 1605–1607।
3. मिश्र, वी0; चावला, जी0; कुमार वी0; लाल, एच0 एवं विश्वनाथन पी0 एन0(1985) पैथोमार्फोलॉजिकल चेन्जेज इन गिल्स ऑफ फिश फिन्गरलिंग (*सिरहिना म्रिगाला*) बाई लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट, इकोटॉक्सिकाल, इन्विरान्मेन्टल0 सेफ्टी, खण्ड 10, मु0 पृ0 302–308।
4. त्रिवेदी, एस0 पी0; कुमार, एम0; मिश्रा, ए0; बनर्जी, आई0 एवं सोनी, ए0(2001) इम्पैक्ट आफ लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट (एल0ए0एस0) आन फास्फेटेज एक्टिविटी इन टेस्टिस आफ टीलिओस्टियन फिश, *हेटरोपन्युस्टिस फासिलिस*(ब्लाक) ज0 इन्विरान0 बायो0, खण्ड 22, अंक 4, मु0 पृ0 263–266।
5. कैम्बेल, एस0 एम0; एवं तपाले, वी0 के0(2011) इफेक्ट आफ सबलीथल कान्सेन्ट्रेशन ऑफ हाउस होल्ड डिटर्जेंट आन सर्टेन बायोकेमिकल कान्स्टीटुएन्टस ऑफ कैटफिश *मिस्टस सिंघाला*, बायोसाइन्स0 बायोटेक0 रिसर्च0 कम्यू0, खण्ड 4, अंक 2, मु0 पृ0 198–204।
6. जैन, वी0; मिश्र, के0 डी0 एवं पान्डेय जी0(2011) लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट, ए डिटर्जेंट इन्ड्यूस्ड टाक्सीसिटी आन गिल्स ऑफ *पुन्टियस टिक्टो*, इन्टर0 रिर्स0 ज0 फार्मे0, खण्ड 2, अंक 10, मु0 पृ0 76–78।
7. जैन, वी0; मिश्र, के0 डी0 एवं पान्डेय, जी(2013क) लीनियर एल्काइन बेन्जीन सल्फोनेट टाक्सीसिटी इन किडनी आफ *पुन्टियस टिक्टो*, फिश, इन्टर ने0 ज0 यूनि0 फार्मे0एण्ड बायोसाइन्स, खण्ड 2, अंक 2, मु0 पृ0 383–388।
8. जैन, वी0; मिश्र के0 डी0 एवं पान्डेय जी0(2013ख) इफेक्ट ऑफ लीनियर एल्काइन बेन्जीन सल्फोनेट आन दि लीवर ऑफ *पुन्टियस टिक्टो* फिश, इन्टरने0 ज0 केमि0 एण्ड लाइफ साइन्स, खण्ड 2, अंक 1, मु0 पृ0 1068–1070।
9. हुआँग बाओ–क्वे एवं वैंग डारचाई(1975) कार्नियल डैमेज इन यंग टाइगर पर्च (*टेरापान जरबुआ*) इक्सपोज्ड टु सर्फेक्टेन्ट लीनियर एल्काइल बेन्जीन सलफोनेट (एल0ए0एस0), जूलोजिकल स्टडीज, खण्ड 34, अंक 11, मु0 पृ0 41–46।
10. राय0, डी0(1989) टॉक्सिक इफेक्ट ऑफ एन एनायनिक डिटर्जेंट आन लिपिड कान्टीटुएन्ट ऑफ वैरियस सेल टाइपस ऑफ गिल इपीथिलियम ऑफ *रीटा रीटा*, ऐ हिस्टोकेमिकल इन्वेस्टीगेशन, बायोमेडिकल0 इन्विरान0 साइन्स, खण्ड 2, मु0 पृ0 312–317।
11. स्टेफेनोनी, एम0 एफ0 एवं एबीसा डी0 एम0 डी0 एस0(2011) फिजियोलोजिकल रेस्पान्सेज आफ द ब्राउन मसेल *पर्ना पर्ना* (मोलस्का – बाइवैल्विया) एक्सपोज्ड टू दि एन आयोनिक सर्फेक्टेन्ट, लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट (एल0 ए0 एस0) होलोस0 इन्विरामेन्ट, खण्ड 11, अंक 1, मु0 पृ0 44–53।
12. ओगीलीका, डी0 एफ0; एजीमोनी, एल0 आई0 एवं ओकीनेन एफ0 ई0(2011) द टॉक्सीसिटी आफ ए सिन्थेटिक डिटर्जेंट एण्ड ए कोरोजन इन्हिबिटर टु ब्रैकिश वाटर फिश (*टिलैपिया क्वीनेन्सिस*), टर्कि0 ज0 बायो0, खण्ड 35, मु0 पृ0 161–166।
13. बायरनी, पी0; स्पियर, डी0 एवं फार्गुसन एच0 डब्लू0(1989) इफेक्ट ऑफ कैटायनिक डिटर्जेंट आन गिल्स एण्ड ब्लड केमेस्ट्री ऑफ रेन बो ट्राउट, *साल्मो गेरडनेरी*, ड्रिजी0 एक्वेटिक0 आर0, खण्ड 6, मु0 पृ0 185–196।
14. शर्मा, यू0 डी0 एवं शुक्ल, एस0 (1990) बिहैवियरल डिसफंक्शनस ऑफ फ्रेश वाटर प्रान, *मै ब्रेकियम लैमेराई* फालोइंग एक्सपोजर टू ए सिन्थेटिक डिटर्जेन्ट, लीनियर एल्काइल बेन्जीन सल्फोनेट, बायो0 मेमॉयरस, खण्ड 16, अंक 1 व 2, मु0 पृ0 58–61।
15. मरूथन्थागम, सी0; रवी, एन0; अरूण, एस0 एवं सुब्रामणियम पी0(1997) इम्पैक्ट ऑफ डिटर्जेंट आन द बायोकेमेस्ट्री ऑफ द फ्रेश वाटर प्रान, *मै ब्रेकियम लैमेराई* (एच0 एम0 एडवर्ड) इन्विरामेन्ट एण्ड इकोलोजी, खण्ड 15, अंक 1, मु0 पृ0 79–82।
16. शर्मा, यू0 डी0 एवं शुक्ल एस0(2008) एक्युट टाक्सीसिटी ऑफ हैवी मेटल्स एन्ड डिटर्जेंट टु फ्रेश वाटर प्रान, *मै ब्रैकियम लैमेराई* (क्रस्टेशिया–डीकापोडा); इनः इन्विरामेन्टल पोल्यूशन एन्ड टाक्सिकोलोजी, सम्पा0 जोशी बी0 डी0, जोशी पी0 सी0 एवं जोशी नमिता–ए0 पी0 एच0 पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली, मु0 पृ0 21–30।
17. शुक्ल, एस0; वर्मा, डी0 आर0; लोधी, एच0 एस0; शुक्ला, आर0; तिवारी, के0 जे0 एवं शर्मा यू0 डी0(2012) हिस्टोपैथोलोजिकल चेन्जेज इन गिल्स ऑफ फ्रेश वाटर प्रान, *मै ब्रैकियम लैमेराई* (क्रस्टेशिया–डीकापोडा) आफ्टर कापरसल्फेट एक्सपोजर, इनः फिश बायोलोजी एण्ड इकोटाक्सिकोलोजी सम्पा0: कुमार, डी0, त्रिवेदी एस0 पी0, जहाँगीरदार, एस0; राजेन्द्रन के0 वी0 एवं पान्डेय बी0 एन0, एल्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, मु0 पृ0 60–174।
18. वर्मा, डी0 आर0; लोधी, एच0 एस0; तिवारी, के0 जे0; शुक्ल, एस0 एवं शर्मा, यू0 डी0(2010) कापर सल्फेट इन्ड्यूस्ड चेन्जेज इन स्कैफोग्नेथाइट ओसीलेशन्स एण्ड आक्सीजन कन्जम्पशन आफ फ्रेश वाटर प्रान, *मै ब्रैकियम लैमेराई* (क्रस्टेशिया–डीकापोडा) ज0 एप्ला0 एण्ड नेचु0 साइन्स, खण्ड 2, अंक 1, मु0 पृ0 34–37।
19. लाल, एच0; मिश्र, वी0; विश्वनाथन, पी0 एन0 एवं कृष्णामूर्ति सी0 आर0(1983) काम्पेरिटव स्टडीज आन इकोटाक्सिकोलोजी ऑफ सिन्थेटिक डिटर्जेंट, इकोटाक्सिकोल0 इन्विरान्मे0 सेफ्टी0, खण्ड 7, मु0 पृ0 338–345।
20. पटवर्धन, एस0 एस0(1937) द इन्डियन जूलोजिकल मेमॉयरस आन इन्डियन एनीमल टाइप्स (VI) *पैलीमान* (द इन्डियन रिवर प्रान) लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, मु0 पृ0 100।

21. सेन, पी0; तिवारी, के0 जे0; शुक्ल, एस0; शुक्ला, आर0 एवं शर्मा यू0 डी0(2008) कैडमियम इन्ड्यूस्ड पैथोमारफोलोजिकल चेन्जेज इन गिल्स आफ फ्रेश वाटर प्रान, *मै ब्रेवियम दयानम* (क्रस्टेशिया–डीकापोडा), एक्वाकल्ट, खण्ड 9, अंक 2, मु0 पृ0 249–255।

PLATE-1



प्लेट–1 के सूक्ष्मद र्शिय छायाचित्रों का विवरण

मै ब्रेकियम लैमेराई के गिल की अनुप्रस्थ काट के सूक्ष्मदर्शीय छायाचित्र

चित्र 1 व 2 : नियन्त्रित समूह (मापन पट्टी 50µ व 50µ क्रमशः)
चित्र 3 व 4 : परीक्षण समूह 10 दिन उपरान्त (मापन पट्टी 50µ व 50µ क्रमशः)
चित्र 5 व 6 : परीक्षण समूह 20 दिन उपरान्त (मापन पट्टी 50µ व 50µ क्रमशः)
चित्र 7 व 8 : परीक्षण समूह 30 दिन उपरान्त (मापन पट्टी 100µ व 50µ क्रमशः)

CU= क्यूटिकिल GB= गिल आधार, GE= गिल इपी थीलियम, GP= गिल पट्टिका, GPT= गिल पट्टिका शीर्ष, H= हीमोसाइट, ILS= अन्तर पट्टिका स्थान

विज्ञान प्रसार के प्रकाशनः एक विस्तृत अध्ययन

मनीष मोहन गोरे
"विज्ञान प्रसार", विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार
ए–50, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर–62
नोएडा (उ0 प्र0)–201309, भारत
mmgore@vigyanprasar.gov.in

सार

विज्ञान प्रसार (विप्र) की स्थापना भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा सन् 1989 में एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में वृहत् स्तर पर विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से की गई थी। विज्ञान प्रसार ने अपने प्रकाशनों के संबंध में दिल्ली पुस्तक मेला 2011 के दौरान एक सर्वेक्षण किया। फीडबैक हासिल करने हेतु बहुविकल्पीय प्रश्नावली के उत्तर स्वरूप विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुईं। प्रश्नावली प्रारूप विभिन्न समुदायों एवं आयु वर्ग के बीच वितरित की गईं। अधिकांश उत्तरदाता (88 प्रतिशत) युवा पीढ़ी से रहे। इससे ज्ञात हुआ कि आज के युवा, लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों में रुचि रखते हैं। आंकड़ों के विश्लेषण, फीडबैक अध्ययन के निष्कर्ष एवं उत्तरदाताओं के सुझावों के आधार पर स्पष्ट है कि विज्ञान प्रसार समाज में विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यद्यपि विज्ञान प्रसार द्वारा प्रकाशित पुस्तकों एवं अन्य विज्ञान लोकप्रियकरण गतिविधियों को अधिकतर लोगों ने पसन्द किया है, तथापि प्राप्त सुझाव एवं निष्कर्ष इंगित करते हैं कि विज्ञान प्रसार द्वारा किये जा रहे वर्तमान प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। विज्ञान प्रसार के आधारभूत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इन प्रयासों को और विस्तृत एवं सशक्त बनाना होगा।

विषय–बोधक शब्द: विज्ञान प्रसार, फीडबैक, वैज्ञानिक मनोवृत्ति।

Vigyan Prasar's Publications: A comprehensive case study

Manish Mohan Gore
Vigyan Prasar, Deptt. of Science and Technology, Govt. of India
A-50, Institutional Area, Sector-62
Noida (U.P.)-201309, India
mmgore@vigyanprasar.gov.in

Abstract

Vigyan Prasar (VP) was set up by the Department of Science and Technology, Govt. of India, as an autonomous organization in 1989 for taking up large-scale science popularization tasks. VP conducted a survey on its publications during Delhi book fair 2011 and got the feedback from the respondents. The feedback questionnaire having multiple choice questions and we got a spectrum of responses from the respondents. The questionnaire forms were distributed among the visitors of different community and age groups. It was found that majority of the respondents (88%) belong to young generation. It shows that today's youth is interested in popular science books. On the basis of the analysis of the data findings of the feedback study and the suggestions of the respondents, it indicated that Vigyan Prasar is playing a vital role in science communication in the society. Though the publications and other science popularization activities undertaken by VP are liked by majority of people, but the suggestions and findings reveal that the existing efforts being done by VP are not sufficient. They need to be expanded and strengthened so that the basic objectives of VP could be achieved.

Keywords: Vigyan Prasar, feedback, scientific temper.

प्रस्तावना

विज्ञान प्रसार भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के तत्वाधान में गठित एक स्वायत्त संस्था है जो कि वृहत् स्तर पर विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दिशा में प्रयत्नशील है। विगत कई वर्षों में अनेकों विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रम एवं 250 शीर्षकों से भी ज्यादा

विज्ञान एवं तकनीक सम्बन्धित प्रकाशन अनेक भाषाओं में किये जा चुके हैं, जिनमें से अधिकांश हिन्दी एवं अंग्रेजी में हैं। ड्रीम 2047, विज्ञान प्रसार का राष्ट्रीय स्तर का मासिक न्यूजलेटर है और इसका प्रसार 50,000 प्रतियां हर माह है। विज्ञान प्रसार ने विज्ञान के प्रसार हेतु अनेकों गतिविधि किट्, सी0डी0 एवं पोस्टरों का निर्माण किया है। संस्था के अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में विपनेट क्लब, विज्ञान प्रसार इंफारमेशन सिस्टम (विपरिस), हैम रेडियो, ऑडियो–विजुअल (श्रवण–दृश्य) कार्यक्रम सम्मिलित हैं। 24 वर्ष की अपनी यात्रा में विज्ञान प्रसार ने अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त कीं जैसे विज्ञान रेल, पहियों पर विज्ञान प्रदर्शनी (वर्ष 2003–2004) ने कितने ही भारतीयों को प्रभावित किया।

विज्ञान संचार हेतु दो प्रतिरूप (मॉडल) होते हैं–डेफिसिट एवं कांटेक्चुअल।

डेफिसिट मॉडल में वैज्ञानिक सूचनाओं को एक ही दिशा में स्त्रोत से लक्षित श्रोतागण तक पहुँचाया जाता है। इस प्रकार के मॉडल में एकतरफा संचार होता है और हम सूचना प्राप्तकर्ता की ओर से कोई विकल्प या सूचना प्राप्त नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हम श्रोतागण की पसंद अथवा नापसंद के विषय में सजग नहीं होते। अत: यह मॉडल उतना प्रभावी नहीं है जितना होना चाहिए।

इसके विपरीत, प्रासंगिक प्रतिरूप (कांटेक्स्चुअल मॉडल) के अंतर्गत संचार आदर्श रूप में होता है अर्थात् द्विपक्षीय संचार। इस मॉडल के अनुसार फीडबैक, सर्वेक्षण एवं प्रश्नावली आदि के रूप में प्राप्त सूचनाओं को संज्ञान में लिया जाता है जिससे विज्ञान संचार के प्रभाव को और भी पुष्ट व प्रखर करने की संभावना बनी रहती है।

यद्यपि विज्ञान प्रसार समय–समय पर अनौपचारिक अन्त:क्रियाओं द्वारा अपने भागीदारों के विचारों से अवगत होता रहता है, परन्तु अभी तक कोई विशिष्ट फीडबैक अध्ययन नहीं किया गया है। पुस्तकों का प्रकाशन एवं श्रवण–दृश्य कार्यक्रमों का निर्माण विज्ञान प्रसार की मुख्य गतिविधियाँ हैं। प्रकाशित पुस्तकें ख्यातिप्राप्त अनुभवी विषय संबंधित विशेषज्ञों द्वारा लिखी गई हैं। संस्थान द्वारा उन सभी संभावित पक्षों का ध्यान रखा जाता है जिनसे पुस्तक को प्रभावी एवं उपयोगी बनाया जा सके। परन्तु इन पुस्तकों के पाठकों की वास्तविक फीडबैक प्राप्त करने हेतु कोई भी अध्ययन अथवा सर्वेक्षण नहीं किया जा सका है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत शोध द्वारा पाठकों की प्रतिक्रियाओं को प्राप्त किया गया। इससे पूर्व वर्ष 2010 में भी मासिक पत्रिका "ड्रीम 2047" के सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाओं का संकलन किया गया था ताकि विज्ञान प्रसार के उद्देश्यों की उपयुक्तता एवं उपयोगिता को बढ़ाया जा सके।

सर्वेक्षण के मुख्य उद्देश्य

इस सर्वेक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नवत् हैं:

1. विज्ञान प्रसार, इसकी गतिविधियों एवं विज्ञान संचार के विषय में जन सामान्य के विचारों का विश्लेषण करना।
2. विज्ञान की लोकप्रियता संबंधित सामान्य शब्दावली के प्रति जन सामान्य की जागरुकता की जानकारी प्राप्त करना।
3. जनप्रिय व लोकप्रिय प्रकाशनों के प्रति जनसाधारण के रुझान का विश्लेषण करना।
4. विज्ञान प्रसार से अपेक्षित आकांक्षाओं की जानकारी प्राप्त करना।
5. अपने कार्यक्रमों की गुणवत्ता वृद्धि हेतु जन साधारण के विचारों को संकलित करना।

यह अध्ययन समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों हेतु अन्य उपयोगी पुस्तकों के प्रकाशन की दिशा में अत्यन्त सहायक हो सकता है।

सामग्री एवं विधि

विज्ञान प्रसार, द्वारा प्रकाशन एवं उसके कार्यक्रमों से संबंधित एक फीडबैक प्रश्नावली का प्रारूप तैयार किया गया। 27 अगस्त से 4 सितम्बर 2011 तक आयोजित 17 वें दिल्ली पुस्तक मेले में विज्ञान प्रसार स्टाल पर आये विभिन्न वर्गों के आगन्तुकों के मध्य रैन्डम तरीके से उपर्युक्त प्रश्नावली को वितरित किया गया। वास्तव में, स्टाल पर पधारे प्रत्येक आगन्तुक को उक्त फीडबैक प्रश्नावली देकर उसे भरने का अनुरोध किया गया। पुस्तक मेले की समाप्ति पर ऐसे कुल 100 भरे हुए फीडबैक प्रारूप प्राप्त हुये। यह अध्ययन लिंग, आयु एवं व्यवसाय के आधार पर किया गया।

चर्चा

1. लिंग के आधार पर

तालिका–1 और चित्र–1 में प्रदर्शित निष्कर्ष से स्पष्ट है कि जिन 100 लोगों ने उत्तर दिया उनमें 58 प्रतिशत पुरुष एवं 42 प्रतिशत स्त्रियाँ सम्मिलित थीं। पुरुष उत्तरदाताओं की संख्या स्त्रियों की अपेक्षा अधिक रही। परन्तु 42 प्रतिशत स्त्रियों द्वारा दिये गये उत्तर इंगित

करते हैं कि आज की नारी सजग, शिक्षित एवं स्वस्थ (अच्छे) व उपयोगी साहित्य में अत्यधिक रुचि रखती हैं। मुख्यरूप से विज्ञान प्रसार जैसी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में जिनसे वह स्वयं, अपने बच्चों और परिवार को वैज्ञानिक रूप से जागृत एवं सजग कर सकें।

तालिका–1
लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का लिंग पर प्रभाव

क्रम सं0	लिंग	उत्तरदाता का प्रतिशत
1.	पुरुष	58
2.	महिला	42
	कुल	100

2. आयु की कसौटी के आधार पर

तालिका–2 में प्रदर्शित आंकड़ों के आधार पर ज्ञातव्य है कि सर्वाधिक उत्तर देने वाले लोग 15–20 आयु वर्ग के रहे। द्वितीय स्थान पर 21–30 आयु वर्ग और उसके पश्चात् 14 वर्ष तक के उत्तरदाता थे। 31–40 वर्ष आयु के लोग चौथे एवं 41 वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तरदाता न्यूनतम रहे। इन उत्तरदाताओं का प्रतिशत क्रमशः 37, 26, 25, 7, एवं 5 प्रतिशत था। चित्र–2 दर्शाता है कि अधिकांश उत्तरदाता(88 प्रतिशत) 31 वर्ष से कम युवा पीढ़ी के थे। इससे पता चलता है कि आज का युवा लोकप्रिय विज्ञान में अत्यधिक रुचि रखता है।

तालिका–2
लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का विभिन्न आयु वर्ग के लोगों पर प्रभाव

क्रम सं0	आयु वर्ग	उत्तरदाता की संख्या
1.	14 वर्ष तक	25
2.	15–20 वर्ष तक	37
3.	21–30 वर्ष तक	26
4.	31–40 वर्ष तक	7
5.	41 वर्ष से अधिक	5
	कुल	100

3. व्यवसायिक आधार पर

तालिका–3 में प्रदर्शित आंकड़े बताते हैं कि अधिकतर उत्तरदाता (57 प्रतिशत) छात्र वर्ग के थे, जबकि 18 प्रतिशत अध्यापक, 13 प्रतिशत व्यवसायिक, 2 प्रतिशत नवशिक्षित एवं 10 प्रतिशत अन्य वर्गों के थे। सर्वाधिक छात्रों का विज्ञान प्रसार के प्रकाशन के प्रति रुझान दर्शाता है कि विज्ञान प्रसार के प्रकाशनों में सभी को आकर्षित करने की महती क्षमता है। चित्र–3 द्वारा स्पष्ट है कि कुल उत्तरदाताओं में से 50 प्रतिशत से अधिक (57 प्रतिशत) छात्र श्रेणी के उत्तरदाता इंगित करते हैं कि भविष्य की पीढ़ी की वैज्ञानिक प्रवृत्ति में वृद्धि हो रही है।

तालिका–3
लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का विभिन्न व्यवसायिक वर्गों पर प्रभाव

क्रम सं0	व्यवसाय	उत्तरदाता का प्रतिशत
1.	छात्र	57
2.	अध्यापक	18
3.	व्यवसायी	13
4.	नवशिक्षित	02
5.	अन्य	10
	कुल	100

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि उपर्युक्त अध्ययन का उद्देश्य जनसाधारण, छात्र एवं अध्यापक, व्यवसायी, नवशिक्षित आदि के विचारों को लिंग तथा व्यवसाय के आधार पर संकलित करना एवं समाज पर विज्ञान संचार द्वारा पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी प्राप्त

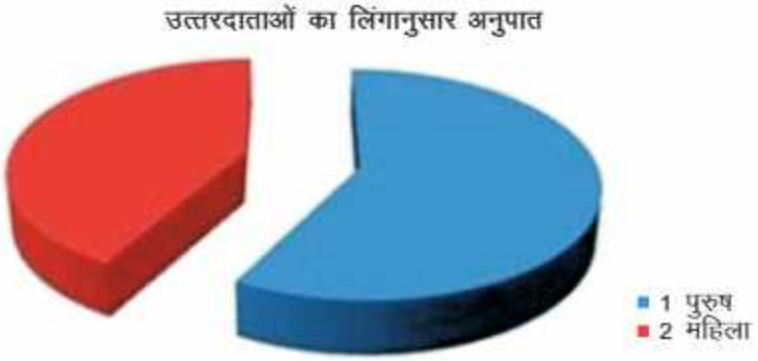
करना था। उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि विज्ञान प्रसार समाज में विज्ञान संचार एवं वैज्ञानिक प्रवृत्ति को उजागर करने की दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है। आंकड़े दर्शाते हैं कि बच्चों की विज्ञान संबंधी समझ व ज्ञान को बढ़ाने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में बच्चों में वैज्ञानिक सजगता जागृत करने हेतु विद्यालय स्तर पर विज्ञान शिक्षा एवं विज्ञान संचारक दृष्टिकोण को मजबूत करने की आवश्यकता है। विज्ञान प्रसार गहन एवं व्यापक रूप से विज्ञान एवं वैज्ञानिक प्रवृत्ति को जागृत करनें एवं लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक संस्थाओं के साथ मिलकर कार्य करने को तत्पर है। इसी के साथ, नई तकनीक यथा इंटरनेट, फेसबुक, ब्लॉग, ट्विटर आदि भी विज्ञान संचार में बहुमूल्य भूमिका निभा सकते हैं। वर्तमान में विज्ञान ब्लॉग भारत में बहुत प्रभावी है।

निष्कर्ष

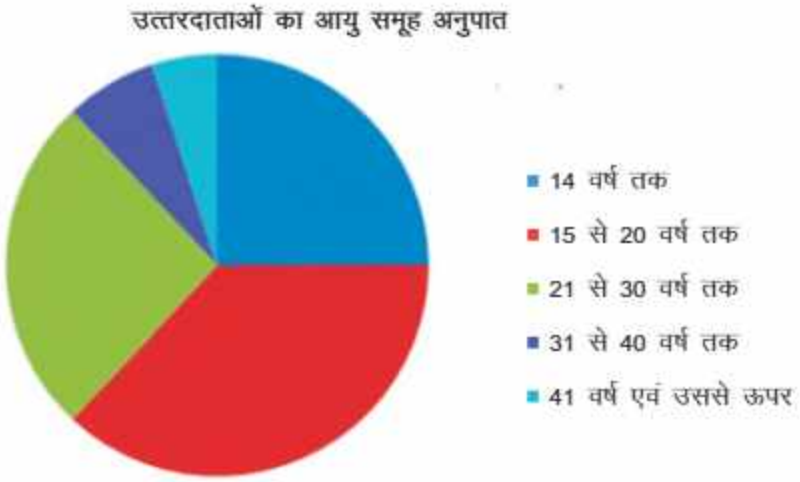
आंकड़ों, फीडबैक के निष्कर्षों और उत्तरदाताओं के सुझावों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विज्ञान प्रसार समाज में विज्ञान संचार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। विज्ञान प्रसार द्वारा प्रकाशित पुस्तकें एवं विज्ञान को लोकप्रिय बनाने हेतु किए जा रहे कार्यक्रम लोगों द्वारा अत्यधिक पसंद किये जा रहे हैं। अतः विज्ञान प्रसार समाज में वैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रसार एवं भविष्य में वैज्ञानिक उन्नति को सुनिश्चित करने की दिशा में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहभागिता में कार्य करने को तत्पर है।

संदर्भ

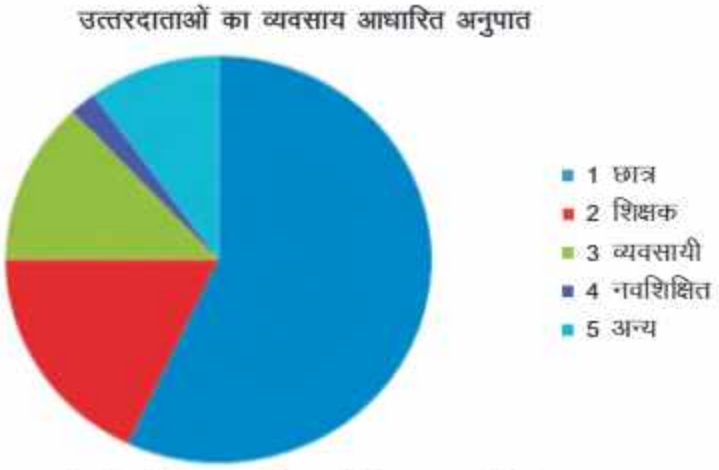
1. कलाम, ए0 पी0 जे0 अब्दुल एवं राजन, वाई0 एस0 (1998) इंडिया 2020 ए विजन फॉर दि न्यू मिलेनियम, पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, मु0 पृ0 268–304।
2. कलाम, ए0 पी0 जे0 अब्दुल एवं राजन, वाई0 एस0 (2010) दि साइंटिफिक इंडियन– ए ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी गाइड टू दि वर्ल्ड अराउंड अस, पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, उपसंहार, मु0 पृ0 211–222।
3. नारलीकर, जयंत विष्णु (2010) भारत की विज्ञान यात्रा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
4. पटैरिया, मनोज (2001) विज्ञान संचार, तक्षशिला प्रकशन, नई दिल्ली, मु0 पृ0 207–252।
5. मानव, विजय किशोर (2011) विज्ञान प्रसार के बीस साल: सब तक पहुंचना है, विज्ञान प्रसार, नोएडा।
6. साल्वी, दिलीप एम0 (2002) साइंस इन इंडियन मीडिया, विज्ञान प्रसार, नोएडा, मु0 पृ0 26–90, 124–164।
7. मिश्र, शिवगोपाल एवं मणि, दिनेश (1997) विज्ञान लोकप्रियकरण: प्रारम्भिक प्रयास, विज्ञान प्रयास, नोएडा।



चित्र–1 लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का लिंगानुसार प्रभाव



चित्र–2 लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का विभिन्न आयु वर्ग पर प्रभाव



चित्र–3 लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का विभिन्न व्यवसायियों पर प्रभाव

गेहूं (ट्रिटिकम एस्टविम एल0) की वृद्धि, बीज की गुणवत्ता और उत्पादकता पर नाईट्रोजन उर्वरक का प्रभाव

महीपत सिंह
बीज प्रौद्योगिकी विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0)–284128, भारत
maahiseeds@gmail.com

सार

प्रस्तुत क्षेत्र परीक्षण, रबी फसल चक्र वर्ष 2012–13 में, कृषि फार्म, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी(उ0प्र0) में आयोजित किया गया। प्रयोगात्मक गेहूं की प्रजाति के रूप में 'राज–3077' को प्रयोग में लाया गया। और विभिन्न स्तरों 100, 120 और 140 किलोग्राम/हेक्टेयर नाइट्रोजन उर्वरक तथा 100,125 और 150 किलोग्राम/हेक्टेयर बीज दर का प्रयोग करते हुये जैविक उपज में, 100 किलोग्राम/हेक्टेयर नाइट्रोजन और 100 किलोग्राम बीज दर प्रयोग करने पर सर्वाधिक अनाज उपज प्राप्त हुई। कार्यात्मक पत्तियों की संख्या, कील लम्बाई(सेमी) कील कान प्रति पौधा, अंकुरण प्रतिशत और शुद्धता प्रतिशत में प्राप्त हुये। 140 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर और 150 किलो बीज दर/हेक्टेयर का प्रयोग करने पर बेहतर गुणवत्ता के साथ उच्च कोटि के अनाज की उपज प्राप्त करने के लिये सबसे उपयुक्त संयोजन प्राप्त हुआ।

बीज शब्द नाइट्रोजन(एन0), बीज दर, अनाज की उपज, जैविक उपज।

Performance of Nitrogen on growth seed quality and productivity of wheat(*Triticum aestivum* L.)

Mahipat Singh
Department of Seed Technology, Institute of Agriculture Sciences,
Bundelkhand University, Jhansi(U.P.)-284128, India
maahiseeds@gmail.com

Abstract

A field experiment was conducted during Rabi season of the year 2012-13, at Agricultural farm, Bundelkhand University, Jhansi (U.P.), to find out the effect of different levels of Nitrogen, and seed rate on seed yield and other characters on 'Raj-3077' variety of wheat (*Triticum aestivum* L.) at different levels 100, 120 and 140 kg/ha Nitrogen and 100, 125 and 150 kg/ha. Seed rate significantly out yielded the 100 kg/ha Nitrogen and seed rate in grain yield, biological yield. Almost similar results were obtained in case of plant height, number of functional leaves^{-1}, spike length (cm.), spike ear^{-1}, germination % and purity %. The application of 140 kg N/ha and 150 kg seed rate/ha was the best combination for getting higher grain yield with its better quality.

Keywords Nitrogen (N.) Seed rate, grain yield, biological yield.

प्रस्तावना

भारत में गेहूं 2012–13 के दौरान 28.25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की उत्पादकता के साथ के दुनिया के खाद्यान्न के लिए 69.43 मिलियन का योगदान 26.63 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को शामिल करते हुए चावल के बाद दूसरा सबसे महत्वपूर्ण अनाज फसल है। इसकी आम तौर पर मैदान पर खेती की जाती है औसत समुद्र तल से 3000 मीटर तक ऊचाई पर पठार के साथ ही समुद्र स्तर से ऊपर लगभग फसल उत्पादन बढाने के लिए जाना जाता है। विभिन्न कृषि कारकों नाइट्रोजन गेहूं काइव एवं अन्य(2003) के अधिक अनाज की उपज में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान अध्ययन नाइट्रोजन और अनाज की उपज, जैविक उपज और पौधे की ऊंचाई, अंकुरण प्रतिशत और शुद्धता प्रतिशत सहित अन्य

पात्रों पर बीज दर के आवेदन के प्रभाव पता लगाने के लिए किया गया। तथ्यों और इसकी गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र की कृषि जलवायु स्थिति में गेहूं की राष्ट्रीय प्रजाति 'राज–3077' को परीक्षण हेतु आयोजित किया गया।

सामग्री एवं परीक्षण विधि

प्रस्तुत क्षेत्र परीक्षण 2012–13 के रबी(सर्दी) के मौसम के दौरान कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी में कृषि अनुसंधान फार्म पर आयोजित किया गया। नाइट्रोजन उर्वरक के तीन स्तर हैं, 100, 120 और 140 किलोग्राम/हैक्टेयर और बीज दर अर्थात– 100, 125 और 150 किलोग्राम/हेक्टेयर की तीन वर्गीकृत स्तरों में रखी गई है। जिसमें उर्वरक स्तरों के 09 संयोजन उपचारों को यादृच्छिकीकृत भूखण्ड अभिकल्पना के अन्तर्गत तीन पुनरावृत्तियों के साथ लिया गया। शुद्ध भूखंड का आकार =7.2 वर्ग मीटर, पंक्ति रिक्ति के लिए पंक्ति में 20 सेमी, 4मीटर × 1.80 था, जबकि प्रयोग में घास भूखंड का आकार, 5मीटर × 3.6 मीटर= 18 वर्ग मीटर लिया गया, पौधे से पौध की दूरी 5 सेमी, प्रत्येक प्लॉट में पंक्तियों की संख्या 08 तथा फसल कटाई पर चयनित पंक्तियों की संख्या 04 थी। यूरिया, नाइट्रोजन के स्रोत के रूप में प्रयोग किया। अवलोकन पौधों की ऊँचाई, कार्यात्मक पत्तियों की संख्या, कील लंबाई(सेमी), स्पाइक/कान प्रति पौधा, अनाज की उपज, जैविक उपज, अंकुरण प्रतिशत और शुद्धता प्रतिशत की संख्या पर दर्ज किए गए डेटा, कोचरन और कॉक्स(1959) की प्रस्तावित प्रति पद्धति के रूप में सांख्यिकीय विश्लेषण के अधीन था।

परिणाम और विवेचना

नाइट्रोजन उर्वरक का गेहूं की राष्ट्रीय प्रजाति 'राज–3077' पर उसकी भूमिका एवं उपयोगिता का उपज एवं अन्य लक्षणों पर वर्तमान अध्ययन के परिणामों के चरित्र के अनुसार प्रस्तुत कर रहे हैं।

पौधे की ऊंचाई

सभी तीन बीज दर गेहूं अर्थात– (100, 125 और 150 किलोग्राम/हेक्टेयर) तालिका–1 गेहूं के सभी तीन बीज दर में वृद्धि के साथ अत्यधिक प्रभाव का पता चलता है। बुवाई के 90 दिन बाद पौधे की ऊंचाई 150 किलो बीज की दर/हेक्टेयर पर अधिकतम पौधे की ऊंचाई (94.2 सेमी0) को प्राप्त किया। कटाई के स्तर पर, अधिकतम पौधे की ऊंचाई इस प्रकार पर बढ़ती जा रही 150 किलो बीज की दर के प्रभाव का स्पष्ट दिखा, 150 किलो बीज की दर/हेक्टेयर और न्यूनतम 100 और 125 किलो ग्राम बीज की दर/हेक्टेयर के मामले में (93.0 सेमी) दर्ज की गई थी पौधों की वृद्धि, इन निष्कर्षों कुमार एवं अन्य(2000) और पांडे एवं अन्य(1999) की रिपोर्ट के साथ अनुरूपन है। जबकि नाइट्रोजन आवेदन, 100 और 120 किलोग्राम/हेक्टेयर (93.0 और 96.2 सेमी) में दर्ज पौधे की ऊचाई से काफी भिन्न है, जो एन/हेक्टेयर 140 किलो के आवेदन (96.6 सेमी0) के साथ दर्ज की, अधिकतम पौधे की ऊंचाई के मामले में क्रमशः उच्च प्राप्त हुई परिणामस्वरूप, निरीक्षण के दौरान नाइट्रोजन पौधे की ऊंचाई का मुख्य प्रभाव बुवाई के 90 दिन बाद दर्ज किया गया और फसल कटाई के चरण में महत्वपूर्ण पाया गया था बीज दर 150 किग्रा/हेक्टेयर और नाइट्रोजन का स्तर 140 किग्रा/हेक्टेयर का संयुक्त प्रभाव पौधो की ऊंचाई पर काफी स्पष्ट प्रभाव दिखाया है, बीज दर 150 किलोग्राम/हेक्टेयर, 140 किलो एन/हेक्टेयर में काफी अधिक पौधे की ऊंचाई को दिखाया है जबकि पौधे की ऊंचाई 100 और 125 किलो बीज की दर/हेक्टेयर, 120 किलो एन/हेक्टेयर से पौधे की निम्नतम वृद्धि अंकित की गई थी। इन निष्कर्षों को कार्यात्मक पत्तियों की संख्या, नाइट्रोजन उर्वरक के बढ़ते स्तर के साथ काफी वृद्धि हुई। पांडे एवं अन्य(1999) कि रिपोर्ट के साथ अनुरूपन कर रहे हैं।

कार्यात्मक पत्तियों की संख्या

बीज दर के तीन स्तर के अध्ययन के अन्तर्गत पौधे प्रति कार्यात्मक पत्तियों की संख्या के संबंध में 100, 125 और 150 किलोग्राम/हेक्टेयर और नाइट्रोजन उर्वरक के स्तर, अर्थात 100, 120 और 140 किलोग्राम/हेक्टेयर, के डेटा (तालिका–1) यह कार्यात्मक पत्तियों की अधिकतम संख्या 100 किलो बीज की दर/हेक्टेयर में (28.4) दर्ज की गई थी। तालिका से स्पष्ट है 100 किलोग्राम बीज दर पर कार्यात्मक पत्तियों की संख्या 125 और 150 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर की अपेक्षा सर्वोच्च प्राप्त हुई है। 100 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर पर कार्यात्मक पत्तियों की संख्या 26.0 प्राप्त हुई जो 125 किलोग्राम बीज दर और 150 बीज दर की तुलना में बेहतर थी। 120 किलो एन/हेक्टेयर के आवेदन के साथ पौधे प्रति कार्यात्मक पत्तियों की संख्या के बराबर बना रहा, हालांकि 140 किलो नाइट्रोजन के आवेदन के मामले में, 100 किलो एन/हेक्टेयर की तुलना में प्रति पौधे कार्यात्मक पत्तों की काफी अधिक संख्या अंकित की गई। 140 किलो एन/हेक्टेयर के स्तर पर आवेदित पौधे में प्रति कार्यात्मक पत्तियों (28.4) की उच्च संख्या को अंकित किया गया है। नाइट्रोजन आवेदन की वजह से गेहूं की वृद्धि और उपज विशेषताएं(*ट्रिटिकम एस्टीवम एल0*) में सुधार तार्किक छोड़ दिया गया था। परिणाम भी नाइट्रोजन उर्वरक की वृद्धि के साथ पौधे प्रति कार्यात्मक पत्तियों की संख्या में वृद्धि की सूचना दी जो स्वार्स एवं अन्य(2000) के निष्कर्षों के अनुरूप हैं।

स्पाइक लम्बाई (मीटर)

यह बीज दर के विभिन्न स्तरों, कील की लंबाई पर काफी प्रभाव पड़ा है। तालिका–1 में दिए गए आंकडों से पता चला है स्पाइक (8.7 सेमी0) की लंबाई 150 किलो बीज की दर/हेक्टेयर सहित बीज दर के दूसरे स्तर में कील की लंबाई की तुलना में काफी अधिक थी जो 100 किलो बीज की दर/हेक्टेयर में दर्ज की गई थी। इस बीज दर किग्रा/हेक्टेयर की अधिक मात्रा के तहत कील सहित पौधे के वनस्पति भागों के समुचित विकास के लिए और अधिक पोषक तत्वों की उपलब्धता के कारण से हो सकता है। इन परिणामों को कुमार एवं अन्य(2000) के द्वारा प्रयोगात्मक रूप से पूरी तरह सहमति प्राप्त है। हालांकि, नाइट्रोजन की 140 किलो के स्तर, 8.1 सेमी के मामले में कील की लंबाई प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की 100 और 120 किलो खुराक में कील लंबाई की तुलना में काफी अधिक थी जो दर्ज किया गया था। इन निष्कर्षों को नाइट्रोजन के बढ़ते स्तर केवल कील लंबाई नहीं बढ़ी साथ ही अधिक मात्रा में स्ट्रो इल्ड, अधिक कार्यात्मक पत्तियों की संख्या, उच्च विकास दर और उच्च निवल आत्मसात की अधिक उपज देने वाले स्वार्स एवं अन्य(2000), द्वारा रिपोर्ट फसलों के विकास के सभी चरणों में होने वाले विकास से पूरी तरह सहमत हैं।

स्पाइक/कान की संख्या

तालिका–1 में प्रस्तुत परिणाम बीज दर किग्रा/हेक्टेयर यानी 100 और 125 किलोग्राम/हेक्टेयर में अधिक उच्च स्पाइक/कान की संख्या प्राप्त हुई अपक्षाकृत 150 किलो बीज की दर/हेक्टेयर की तुलना में 100 और 125 किलोग्राम बीज दर/हेक्टेयर में कान की संख्या में अंतर भी महत्वपूर्ण थे। स्पाइक/कान की संख्या सबसे ज्यादा (19.0) किलो ग्राम बीज दर/हेक्टेयर 100 किलो एन/हेक्टेयर द्वारा दर्ज की गई थी। यह निष्कर्ष सिंह एवं अन्य (2003) और समीरा एवं अन्य(1993) द्वारा रिपोर्ट परिणाम के लिए अनुरूप हैं, और नाइट्रोजन आवेदन के मामले में, 140 किलो नाइट्रोजन/हेक्टेयर को देने पर सबसे ज्यादा उत्पादन प्राप्त हुआ। तुलनात्मक रूप से 120 किलो नाइट्रोजन/हेक्टेयर का प्रयोग करने पर अपेक्षाकृत कम उत्पादन प्राप्त हुआ। नाइट्रोजन की सभी खुराक में कील की संख्या/कान में मतभेद 100 किलो एन/हेक्टेयर महत्वपूर्ण थे। लगातार गेहूं की फसल के विभिन्न चरणो में होने के कारण पौधे के समुचित विकास के लिए और अधिक पोषक तत्वों की उपलब्धता, नाइट्रोजन और बीज दर के विभिन्न खुराकों के साथ बढ़ सकती है। यह निष्कर्ष स्वार्स एवं अन्य(2000) और कुमार एवं अन्य(2000) से पहले बताये परिणामों से पूरी तरह सहमत है।

अनाज उपज (क्विंटल/हेक्टेयर)

तालिका 2 से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि अनाज उत्पादन में वृद्धि बढ़ते हुए बीज दर के साथ बढ़ती है। उच्चतम अनाज पैदावार (40.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) 150 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर दर्ज की गई जो 125 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर (42.5 क्विटल प्रति हेक्टयर) और सबसे कम अनाज पैदावार 100 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर (36.0 क्विटंल प्रति हेक्टेयर) दर्ज की गई। 125 और 150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज दर में उत्पादन उच्च प्राप्त होता है। अपेक्षाकृत 100 किलाग्राम बीज दर की अपेक्षा, यह निष्कर्ष पांडे एवं अन्य(1999) की रिपोर्ट के साथ अनुरूप हैं। नाइट्रोजन अधिकतम अनाज की उपज के मामले में 140 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर पर अनाज उत्पादन 41.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ जो अन्य दोनों प्रयोगात्मक उर्वरकों(100 और 120 किलोग्राम/हेक्टेयर) तुलना में अधिक थी। नाइट्रोजन का स्तर परिणाम, सिंह एवं अन्य(2003) के निष्कर्षों के अनुरूप है, 140 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करने पर यह प्राप्त हुआ कि अन्य उपचारों की अपेक्षा अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग करने पर गुणात्मक रूप से अधिक अनाज उपज प्राप्त हुई। जो सिंह एवं अन्य(2003) के निष्कर्षों के अनुरूप है।

जैविक उपज

टेबल–2 में प्रस्तुत परिणाम बीज दर 150 और 125 किलोग्राम/हेक्टेयर पर सार्थक परिणाम प्राप्त हुये जबकि 100 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर पर कम जैविक उपज प्राप्त हुई। इसी प्रकार तुलनात्मक रूप से 100 और 150 किलोग्राम बीज दर पर प्राप्त हुई, 150 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर के साथ प्रयोगात्मक रूप से सर्वाधिक जैविक उपज (25.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) प्राप्त हुई जो अन्य दोनों बीज दरों 100 और 125 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज दर की अपेक्षा उच्च थी। इसी प्रकार तुलनात्मक रूप से जहां 125 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करने पर जैविक उपज 118.2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई वहीं 100 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करने पर 106. 0 क्विंटल/हेक्टेयर जैविक उपज प्राप्त हुई। स्पष्ट है कि बीज दर की मात्रा बढ़ने पर जैविक उपज भी बढ़ती है। इन परिणामों को समीरा एवं अन्य(1993) द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के अनुरूप पाया गया। हालांकि नाइट्रोजन आवेदन के मामले में जैविक उपज 140 किलो नाइट्रोजन की बढ़ती खुराक के साथ वृद्धि हुई थी, एन/हेक्टेयर (130.1 क्विंटल/हेक्टेयर) जो उत्पादन में बीज दर और नाइट्रोजन खुराक से प्रभावित थी। जबकि 120 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करने पर जैविक उपज 120.2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई और सबसे कम 100 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करने पर जैविक उपज 105.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई जो कि निम्नतम् थी। स्पष्ट है कि नाइट्रोजन के बढ़ते हुये क्रम में जैविक उपज में भी वृद्धि हुई। अर्थात् बढ़ता हुआ नाइट्रोजन स्तर जैविक उपज को बढ़ाने में सार्थक सिद्ध हुआ। परिणाम सिंह एवं अन्य(2003) और पेल्पडे एवं अन्य (1999) के प्राप्त निष्कर्षों के अनुरूप ही प्राप्त हुये हैं।

अंकुरण प्रतिशत

बीज दर यानी 100, 125, 150 किलोग्राम/हेक्टेयर और के रूप में(तालिका 2) में दिखाया गया तीन अध्ययन नाइट्रोजन उर्वरक दरों के तीन स्तरों के तहत गेहूं का बीज अंकुरण प्रतिशत 100, 125 और 150 का बीज दर में वृद्धि के साथ उल्लेखनीय वृद्धि में पता चला जहाँ उच्चतम अंकुरण प्रतिशत (94%) क्रमशः 150 किलो बीज की दर/हेक्टेयर के मामले में 92% प्राप्त हुआ जो 125 किलोग्राम बीज दर प्रति हेक्टेयर की अपेक्षा संतोषजनक था। 150 किलोग्राम बीज की दर/हेक्टेयर सबसे कम अंकुरण प्रतिशत दर्ज की गई थी। नाइट्रोजन उर्वरक 140 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करने पर सर्वाधिक सार्थक परिणाम अर्थात अंकुरण प्रतिशत (94%) प्राप्त हुआ। हालांकि, 100 और 120 किलो एन/हेक्टेयर के आवेदन के साथ दर्ज अंकुरण प्रतिशत ज्ञात करने पर क्रमशः 92% एवं 93% प्राप्त हुआ। उच्चतम अंकुरण प्रतिशत उत्पादन के उच्चतम स्तर पर अर्थात नाइट्रोजन के उच्चतम स्तर पर प्राप्त हुआ। इन परिणाम, समीरा एवं अन्य(1993) के साथ संयुग्म होती है। नाइट्रोजन के बढ़ते स्तर के केवल अंकुरण प्रतिशत की वृद्धि हुई है, लेकिन यह भी पुआल की अधिक उपज, अधिक कार्यात्मक पत्ते, उच्च विकास दर और उच्च निवल आत्मसात विकास के सभी स्तर पर उन लोगों के साथ पूरी तरह सहमत है ।

शुद्धता प्रतिशत

तालिका–2 में दिए गए विवरण से पता चलता है कि सभी तीन गेहूं की बीज दर किलोग्राम/हेक्टेयर के प्राप्त निष्कर्षों से पता चलता है कि 100 किग्रा/हेक्टेयर बीज दर के रूप में महत्वपूर्ण उच्च शुद्धता प्रतिशत (96 प्रतिशत) प्राप्त हुआ जो कि अधिकतम है। जबकि अन्य दोनों बीज दरों, क्रमशः 125 एवं 150 किलोग्राम पर 95% एवं 94% प्राप्त हुई अर्थात जब 125 किलोग्राम का प्रयोग किया गया तो शुद्धता प्रतिशत 95% प्राप्त हुई जो कि 150 किलोग्राम/हेक्टेयर बीज दर प्रयोग करने पर शुद्धता प्रतिशत से अधिक थी। अर्थात् बीज दर के बढ़ते हुए क्रम में शुद्धता प्रतिशत घटा है। अतः वैज्ञानिक बीज उत्पादन में बीज दर निर्धारित मानकों के अनुरूप ही प्रयोग होने चाहिये। नाइट्रोजन की 140 किलो के स्तर की तुलना में नाइट्रोजन के सभी तीन स्तरों में काफी अधिक शुद्धता प्रतिशत पता चला 140 किलो का उपयोग एन/हेक्टेयर से अधिक महत्वपूर्ण उच्च शुद्धता प्रतिशत (96 प्रतिशत) प्राप्त हुई जो कि अधिकतम एवं संतोषजनक थी। 120 किलो एन/हेक्टेयर के बीच फसल सूचकांक में अंतर गैर महत्वपूर्ण था। नाइट्रोजन की 140 किलो ग्राम/हेक्टेयर में शुद्धता प्रतिशत के मूल्य नाइट्रोजन इसी तरह के परिणाम के सभी अन्य दो स्तरों की शुद्धता प्रतिशत मूल्य के साथ प्रति पर रिपोर्ट में कहा जो स्वार्स एवं अन्य 2000, द्वारा सूचित किया गया शुद्धता प्रतिशत, अंकुरण प्रतिशत और काल लंबाई (सेमी), स्पाइक/कान की संख्या की अभिव्यक्ति के उच्चतम लक्षण को नाइट्रोजन के उच्चतम दर पर प्राप्त किया गया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि गेहूं की प्रजाति 'राज–3077' 140 किलोग्राम नाइट्रोजन के साथ 150 किलोग्राम बीज दर पर अधिक संतोषजनक परिणाम, पौधे की लम्बाई, अनाज उपज एवं जैविक उपज में अन्य बीज दरों एवं नाइट्रोजन स्तर का प्रयोग करने पर अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त हुई है। इसी प्रकार जब 140 किलोग्राम नाइट्रोजन के साथ 100 किलोग्राम बीज दर का प्रयोग किया गया तो अधिकतम कार्यात्मक पत्तियों की संख्या, स्पाइक लम्बाई सेमी, स्पाइक/कान की संख्या, अंकुरण प्रतिशत एवं शुद्धता प्रतिशत प्राप्त हुये, जो कि संतोषजनक है। इस प्रकार गेहूं की 'राज–3077' प्रजाति को गेहूं की उत्पादकता बढ़ाने के लिये उत्तर प्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र कृषि परिस्थिति में आदर्श है।

संदर्भ

1. कुमार बी0 तथा शर्मा आर0 पी0 आर0(2000) इफेक्ट ऑफ प्रोसीडिंग क्रॉप्स एण्ड नाइट्रोजन रेट्स ऑन ग्रोथ यील्ड एट्रीब्यूट्स ऑफ व्हीट, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, खण्ड 34, अंक 1, मु0 पृ0 34–38।
2. लेथवाल, ओ0 पी0; सिर्गव टी0 और सिंह, तेज(1992) इफेक्ट ऑफ इरीगेशन एण्ड नाइट्रोजन लेवेल्स ऑफ यील्ड एट्रीब्यूट्स एण्ड यील्ड ऑफ व्हीट, हरयाणा जर्नल ऑफ एग्रोनॉमी, खण्ड 8, अंक 1, मु0 पृ0 69–70।
3. पैल्फडे, एल0 एफ0; ठाकुर, एस0 तथा सिंह, एस0(1999) रैस्पॉन्स ऑफ टाइमली सोन व्हीट(*ट्रिटिकम एस्टविम एल0*) वेरायटी टू सीड रेट फर्टिलिटी लेवेल, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रोनॉमी, खण्ड 44, अंक 4, मु0 पृ0 745–749।
4. पांडे, आई0 बी0; ठाकुर, एस0 एस0 तथा सिंह, एस0 के0(1999) रेस्पॉन्स ऑफ टाइमली सोन व्हीट वेरायटीज टू सीड रेट एण्ड फर्टिलिटी लेवेल, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रोनॉमी, खण्ड 44, अंक 4, मु0 पृ0 745–749।
5. समीरा, जे0 एस0 और ढिल्लो, एस0 एस0(1993) इफेक्ट ऑफ सीड रेट्स एण्ड नाइट्रोजन लेवेल ऑन न्यू जीनोटाइप्स(पीबीडब्ल्यू 154 तथा पीबीडब्ल्यू 222) ऑफ व्हीट, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रोनॉमी, खण्ड 38, अंक 1, मु0 पृ0 100–112।

6. स्वार्स, ई0 एस0(2000) यील्ड एण्ड यील्ड एट्रीब्यूट्स ऑफ व्हीट इन रिलेशन टू एन0 फर्टीलाइजेशन एण्ड विदहोल्डिंग इर्रीगेशन एट डिफरेंट स्टेजेस ऑफ ग्रोथ, एनाल्स ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च, खण्ड 45, अंक 2, मु0 पृ0 439–452।
7. सिंह, वेद; भुनिया, एस0 आर0 तथा चौहान, आर0 पी0 एस0(2003) रेस्पॉन्स ऑफ लेट सोन वेट टू रो स्पेसिंग–कम–पॉपुलेशन डेन्सिटीज एण्ड लेवेल्स ऑफ नाइट्रोजन एण्ड इर्रीगेशन इन नॉर्थ वेस्टर्न राजस्थान, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रोनॉमी, खण्ड 8, अंक 3, मु0 पृ0 178–181।
8. कोचरन, विंग तथा कोस, जी0 एम0(1959) एक्सपेरिमेंटल डिजाइन, वाइली इंटरनेशनल पब्लिकेशन, न्यूयॉर्क।
9. किबे, एस0 तथा सूबेदार, आर0 पी0(2003) इंफ्लूएंस ऑफ इर्रीगेशन नाइट्रोजन एण्ड जिंक ऑन प्रोडक्टिविटी एण्ड वाटर यूज बाय लेट सोन व्हीट, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रोनॉमी, खण्ड 48, अंक 3, मु0 पृ0 186–191।

तालिका–1

नाइट्रोजन का स्तर और गेहूं का विकास, बीज उपज और बीज की गुणवत्ता पर बीज दर का प्रभाव

नाइट्रोजन किलो / हेक्टेयर	पौध लम्बाई		कार्यात्मक पत्तियों की संख्या	स्पाईक लम्बाई सेमी.	स्पाईक / कान की संख्या
	90 दिन	फसल पर			
100	88.0	93.0	24.5	6.4	17.0
120	92.0	96.2	26.1	7.6	18.5
140	94.2	96.6	28.4	8.1	19.5
SE m±	1.9	1.1	2.2	0.6	0.5
CD at 5%	NS	NS	NS	NS	1.4
बीज दर (किलोग्राम / हेक्टेयर)					
100	91.2	92.1	28.4	8.7	19.0
125	91.5	92.1	26.0	7.9	18.5
150	92.8	93.0	24.0	7.3	17.5
SE m±	1.9	1.1	2.2	0.6	0.5
CD at 5%	NS	NS	NS	NS	1.4

तालिका–2

नाइट्रोजन का स्तर और गेहूं के कुछ अन्य गुणवत्ता के लक्षण पर बीज दर का प्रभाव

नाइट्रोजन किलो / हेक्टेयर	अनाज उपज कुन्टल / हेक्टेयर	जैविक उपज	अंकुरण प्रषित	शुद्धता प्रतिषत
100	36.4	105.0	92	94
120	41.1	120.2	93	95
140	41.5	130.1	94	96
SE m±	1.74	2.9	0.3	0.12
CD at 5%	NS	8.6	0.9	0.37
बीज दर (किलोग्राम / हेक्टेयर)				
100	36.0	106.0	94	96
125	42.5	118.2	93	95
150	43.0	128.5	92	94
SE m±	1.74	2.9	0.3	0.12
CD at 5%	5.17	8.5	0.9	0.37

बाराबंकी (उ0 प्र0) जिले की आक्रामक विदेशी प्रजातियाँ

आलोक मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
जयनारायण पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
alok.1953.m@gmail.com

सार

प्रस्तुत शोध लेख बाराबंकी(उ0प्र0) जिले में व्याप्त 136 विदेशी वानस्पतिक प्रजातियों से संबंधित है। इनमें 59 आक्रामक श्रेणी की प्रजातियाँ हैं। यह सभी प्रजातियाँ पूरे जिले में फैली हुई है और यह क्षेत्र की जैव विविधता के लिए बड़ा संकट है।

बीज शब्द: बाराबंकी जिला(उ0 प्र0), आक्रामक विदेशी प्रजातियाँ।

Invasive alien species of District Barabanki(U.P)

Alok Misra
Associate Professor, Department of Botany
Jai Narayan Post Graduate College, Lucknow(U.P.)-226001, India
alok.1953.m@gmail.com

Abstract

The present communication deals with 59 invasive alien species growing in Barabanki district (U.P.), out of 136 exotic species. They are well established in the area and a threat to biodiversity of the region.

Key words: District Barabanki(U.P.), invasive alien species.

प्रस्तावना

आक्रामक विदेशी प्रजातियाँ पौधों की वह प्रजातियाँ हैं, जो विदेश से किसी भाँति हमारे देश में प्रवेश करती हैं। यह प्रजातियाँ किसी नए स्थान पर अपने को स्थापित करने तथा विस्तारण की क्षमता रखती हैं। ऐसी प्रजातियाँ हमारे वनों, खेतों तथा अन्य स्थानों पर सरलता से उगती है और तीव्र गति से वृद्धि करती हैं। इन प्रजातियों की वृद्धि इतनी तेज होती है कि यह अल्प समय में ही पूरे क्षेत्र में फैल जाती हैं। सामान्यतया इनका विस्तारण बीजों द्वारा होता है और यह सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाती है। आई0 यू0 सी0 एन0 के अनुसार आक्रामक विदेशी प्रजातियाँ वह हैं जो अपने को सुगमता से किसी भी परिस्थितिकी तंत्र में स्थापित कर लेती हैं। भारत में लगभग 40% प्रजातियाँ विदेशी हैं और इनमें 25% आक्रामक श्रेणी की है।

जलवायु की दृष्टि से, भारत में ऊँचे–ऊँचे पहाड़ हैं, उपजाऊ मैदान हैं, मरूस्थल हैं, घास के मैदान हैं और मीठे तथा खारे पानी के विभिन्न स्रोत हैं। भारत में लगभग 7,516 किलोमीटर समुद्री किनारे हैं। यह सभी जलवायु की परिस्थितियाँ विदेशी प्रजातियों को अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं, जिससे वह अपने को स्थापित करने में सक्षम होती हैं। प्रारम्भ से ही भारत में खाद्य पदार्थों तथा अन्य सामग्रियों का व्यापार विश्व के सभी देशों से होता चला आ रहा है। इस व्यापार के साथ ही अनेक विदेशी प्रजातियों का भी प्रवेश भारत में हुआ, मुख्यतः अनाज के व्यापार द्वारा। कुछ विदेशी प्रजातियाँ बागीचों में लगाने वाले पौधों के रूप में हमारे देश में प्रवेश कीं और कुछ प्रजातियाँ बागीचों से निकल कर अन्य क्षेत्रों में भी उगने लगी और वहाँ के वातावरण में उन्होंने अपने को स्थापित कर लिया।

जिला बाराबंकी उत्तर प्रदेश का एक उत्तर–पूर्वी जिला है। जो 7 अन्य जिलों से घिरा हुआ है। उत्तर में जिला सीतापुर, उत्तर–पूर्व दिशा में घाघरा नदी है जिसके उस पार जिला गोण्डा और बहराइच है। पूर्व में जिला फैजाबाद व दक्षिण में जिला सुल्तानपुर तथा रायबरेली है एवं पश्चिम में लखनऊ जिला है। जिले का क्षेत्रफल 4422 वर्ग किलोमीटर है। जिला बाराबंकी 26^0 33′ व 27^0 22′ उत्तर अक्षांश तथा 80^0 56′ व 81^0 52′ पूर्व देशान्तर पर स्थित है। जिला बाराबंकी अवध क्षेत्र का एक मैदानी भाग है, जो समुद्र से 395 मीटर ऊपर है। स्थलाकृति–दृष्टि से जिले को चार मुख्य भागों में

विभाजित किया जा सकता है, घाघरा–चौक दोयब, घाघरा बाढ़ मैदान, मध्य उच्चभूमि तथा गोमती बाढ़ क्षेत्र। घाघरा व गोमती जिले की प्रमुख नदियाँ हैं।

सामग्री एवं विधि

जिला बाराबंकी की वनस्पतियों का अध्ययन करने के लिए जिले के अनेक सर्वेक्षण किए गये। प्रत्येक मौसम में जिले की सभी तहसीलों तथा ब्लॉक का सर्वेक्षण किया गया। पौधों को एकत्रित करके तथा उनका विवरण नोटबुक में लिखा गया। प्रयोगशाला में विधिवत् सुखाकर उन्हें वनस्पति संग्रहालय में रखा गया। इन वनस्पतियों की संदर्भग्रंथों द्वारा सही पहचान की गई तथा भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून के संग्रहालय में रखी वनस्पतियों से तुलना कर उनकी पहचान की पुष्टि की गई। यह सभी वनस्पतियाँ, मेरठ विश्वविद्यालय के वनस्पति संग्रहालय में रखी गई हैं।

अवलोकन

सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकला कि जिले में आवृतबीजी पौधों की 877 विभिन्न प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इनमें से 136 विदेशी प्रजातियाँ हैं। इन विदेशी प्रजातियों में 59 आक्रामक प्रजातियाँ हैं। यह सभी प्रजातियाँ लगभग पूरे जिले में फैली हुई हैं। कुछ आक्रामक प्रजातियाँ मनुष्य एवं पालतू पशु के लिए भी हानिकारक सिद्ध हुई हैं।

आक्रामक विदेशी प्रजातियों की सूची

क्रम संख्या	वानस्पतिक नाम	कुल	देश
1.	*एस्काइनोमिनी इन्डिका* एल.	फैबेसी	अमेरिका
2.	*आईपोमिया कॉरनिया* जैक.	कॉनवालवुलेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
3.	*एलटाना कमारा* एल. वेरा. एक्यूलेटा मोल्ड.	वरबिनेसी	दक्षिण अमेरिका
4.	*गौम्फरीना सिलोसिऔयडिस* मार्ट	एमरेन्थेसी	दक्षिण अमेरिका
5.	*आरजीमौन मैक्सिकाना* एल.	पैपावरेसी	उष्णकटिबंधीय मध्य एवं दक्षिण अमेरिका
6.	*आरजीमौन आक्रोल्यूका* स्वीट.	पैपावरेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
7.	*पारथीनियम हैस्टैरोफोरस* एल.	ऐस्टरेसी	अमेरिका
8.	*स्कोपेरिया डिलसिस* एल.	स्क्रॉफूलिरीएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
9.	*मार्टीनिया अनुवा* एल.	मार्टीनिएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
10.	*रूएलिया ट्यूबरोसा* एल.	ऐकेन्थेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
11.	*बरलेरिया क्रिसटाटा* एल.	ऐकेन्थेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
12.	*आल्टरनेन्थरा पन्जैन्स* एचबी एवं के.	ऐमरेन्थेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
13.	*आल्टरनेन्थरा पैरोनीक्वायडिस* ए. एसटी.	ऐमरेन्थेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
14.	*क्रोटैन बानप्लैन्डियानम* बेल.	यूफौरबिएसी	दक्षिण अमेरिका
15.	*पौरचुलाका क्वाड्रिफिडा* हुक.	पौरचुलैकेसी	ब्राज़ील
16.	*सौन्कस ओलिरैसियस* एल.	ऐस्टरेसी	यूरोप
17.	*मालवैस्ट्रम कोरामैन्डीलियानम* (एल.) गार्क.	मलवेसी	दक्षिण अमेरिका
18.	*ऐजिरेटम कॉनीज़ोऔयडिस* एल.	ऐस्टरेसी	दक्षिण अमेरिका
19.	*केसिया औक्सीडेन्टेलिस* एल.	सिजलपिनेसी	दक्षिण अमेरिका
20.	*केसिया टोरा* एल.	सिजलपिनेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
21.	*केसिया औबट्यूसीफोलिया* एल.	सिजलपिनेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
22.	*डतूरा इनौक्सिया* मिल.	सोलानेसी	मैक्सिको
23.	*डतूरा मेटिल* एल.	सोलानेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
24.	*इकिलिप्टा प्रौसट्रेटा* एल.	ऐसटरेसी	दक्षिण अमेरिका
25.	*यूफौरबिया प्रौसट्रेटा* एट.	यूफौरबिएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
26.	*जट्रोफा गॉसिपीफोलिया* एल.	यूफौरबिएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
27.	*रेसिनस कम्यूनिस* मिल.	यूफौरबिएसी	अफ्रीका
28.	*ट्राइडैक्स प्रोकम्बैंस* एल.	ऐसटरेसी	मध्य अमेरिका
29.	*यूरेना लोबेटा* एल.	मालवेसी	अफ्रीका
30.	*आल्टरनेन्थरा फिक्वायडिस* (एल.) आर. बीआर.	ऐमरेन्थेसी	ब्राज़ील
31.	*बीनोपोडियम एमब्रोस्वाइडिस* एल.	चीनोपेडिएसी	मैक्सिको

32.	*रिवीनियाँ ह्यूमिलिस* एल.	फाइटोलेकेसी	अमेरिका
33.	*आईकार्निया क्रैसिपिस* (मार्ट.) सोलमस.	मॉनटीडिरेसी	ब्राज़ील
34.	*ट्राईबुलस टेरेस्ट्रिस* एल.	जाइगोफिल्लेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
35.	*आग्जेलिस डिबिलिस* बे. कॉरिमबोसा	आग्जेलिडेसी	यूरोप
36.	*आग्जेलिस रिकार्डियाना* बाबू	आग्जेलिडेसी	मैक्सिको
37.	*आग्जेलिस कॉटनीकुलेटा* एल.	आग्जेलिडेसी	यूरोप
38.	*कामेयसी हिरटा* (एल.) मिल.	यूफोरबिएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
39.	*कसकुटा चाइनेन्सिस* एल.	कसकुटेसी	मेडिटेरेनियन
40.	*इकीनोक्लोवा कोलोनी* (एल.) लिंक.	पोएसी	ब्राज़ील
41.	*ईवाल्वुलस न्यूमुलैरिस* (एल.) एल.	कॅन्वालवुलेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
42.	*गेलेनसोगा पारवीफ्लोरा* कैव.	एसटेरेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
43.	*इमपरेटा सिलिनड्रिका* (एल.) रेमन्च.	पोएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
44.	*कैलोट्रिपिस जाईजेन्टिका* (एल.) आर.वीआर.	एसक्लीपिडेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
45.	*कैलोट्रापिस प्रॉसेरा* (एट.) आर. बीआर.	एसक्लीपिडेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
46.	*साईडा एक्यूटा* बर्न. एफ.	मालवेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
47.	*क्रोटान बानप्लैन्डियानम* बेल.	यूफोरबिएसी	उत्तरी अमेरिका
48.	*मैलिलोटस एलबा* डेविस.	फैबेसी	यूरोप
49.	*क्रोज़ोफोरा रॉटलराई* (गिईस.) स्प्रिग.	यूफोरबिएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
50.	*डाईजेरा म्यूरीकेटा* (एल.) मार्ट.	एमरेन्थेसी	दक्षिण–पश्चिम एशिया
51.	*रोरिप्पा डयूबिया* (पर्स.) हारा	ब्रेसीकेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
52.	*निफेलियम पॉलिएनलान* पर्स.	ऐसटेरेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
53.	*सॉन्कस एसपर* हिल.	ऐसटेरेसी	मेडीटेरेनियन
54.	*सॉन्कस ओलेरेसियस* एल.	ऐसटेरेसी	मेडीटेरेनियन
55.	*मालवेस्ट्रम कोरामेन्डेलीयानम* (एल.) गैरिक.	मालवेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
56.	*निकोशियाना प्लमबैजिनीफोलिया* विव.	सोलेनेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
57.	*ट्राइमफेट्टा रामब्याइडिया* जैक.	टीलिएसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
58.	*सइप्रस ईरिया* एल.	साईप्रेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका
59.	*क्लीओम विसकोसा* एल.	क्लीओमेसी	उष्णकटिबंधीय अमेरिका

आभार

मैं प्रोफेसर(स्व0) वाई0 एस0 मूर्ती का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके कुशल नेतृत्व में यह कार्य सम्पन्न हुआ। मैं भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून का भी आभारी हूँ जिन्होंने इन प्रजातियों को पहचानने में अपनी सहायता प्रदान की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, श्री जयनारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्रबन्धतंत्र तथा प्राचार्य का भी आभारी हूँ, जिन्होंने अवकाश एवं वित्तीय सहायता प्रदान की।

संदर्भ

1. बाबू, सी0 आर0(1977) हरबेशियस फ्लोरा ऑफ देहरादून, सी0 एस0 आई0 आर0, नई दिल्ली।
2. जैन, एस0 के0 तथा राव, आर0 आर0(1977) ए हैन्ड बुक ऑफ फील्ड एण्ड हरबेरियम मेथड्स, टुडे एण्ड टुमारोज प्रिन्टर एण्ड पब्लिशर, नई दिल्ली।
3. डॉथी, जे0 एफ0(1903–1929) फ्लोरा ऑफ द अपर गैन्जिटिक प्लेन एण्ड ऑफ द एडजेसेन्ट शिवालिक एण्ड सब–हिमालयन ट्रैक्स, खण्ड 3, भारत सरकार, सेन्ट्रल पब्लिकेशन ब्रान्च, कलकत्ता।
4. नायर, एम0 पी0 तथा शास्त्री, ए0 आर0 के0(1987) रेड डाटा बुक ऑफ इण्डियन प्लान्ट्स, नई दिल्ली।
5. महेश्वरी, जे0 के0(1963) दि फ्लोरा ऑफ दिल्ली, सी0 एस0 आई0 आर0, नई दिल्ली।
6. रघुवंशी, ए0 एस0; राय, एल0 सी0; गौड़, जे0 पी0 तथा सिंह, जे0 एस0(2005) इनवेज़िव ऐलिएन स्पीसीज एण्ड बायोडाइवर्सिटी इन इण्डिया, करेन्ट साइंस, खण्ड 88, अंक 4, मु0 पृ0 539–540।
7. रेड्डी, सुधाकर; बग्यानारायना, जी0; रेड्डी, के0 एन0 तथा वतसव्या, एस0 राजू(2008) इनवेजिव ऐलियन फ्लोरा ऑफ इण्डिया, नेशनल बायोलॉजिकल इनफारमेशन इन्फ्रास्ट्रक्चर, यू0 एस0 ए0 एस0, यू0 एस0 ए0।

आक्रामक विदेशी प्रजातियाँ



आल्टारनेन्थराप ैरोनीक्वायडिसए .एसटी.



प्रौसोपिसज ूलीफ्लोराड ैसी



लैन्टानाक माराि लन.व ैरा.ए क्यूलेटाम ैल्ड.



गौम्फरीनाि सलोसिऔयडिसम ार्ट



यूरेनाल ैबेटाि लन.



आरजीमॉनअ ा ैल्यूकास्ट वीट

आक्रामक विदेशी प्रजातियाँ



गेलेनसोगा पारवीफ्लोरा कैव.



इम्परेटा सिलिन्डिका लिन. रैयनि I.



कैमाइसीस हिरटा लिन. मिल.



कसकुटा चाइनैन्सिस लैम.



एजीरेटम कोनीज्वाडिस लिन.



आईकार्निया ैसिप्स सी. मारटिस. सोलमस–लाउब

आभासी प्रयोगशाला: एक प्रभावी शैक्षिक उपकरण

राम कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कालेज, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
rktshri@yahoo.co.in

सार

विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शिक्षा में विद्यार्थियों की विषय में अभिरूचि को बढाने मे प्रयोगशालाओ का महत्वपूर्ण स्थान है। संसाधनों की कमी, अच्छे शिक्षकों की अनुपलब्धता एवम् दूरियों के कारण प्रयोग में बाधा उत्पन्न होती है। गत वर्षों में सूचना एवं प्रौद्योगिकी में हुए विकास के फलस्वरूप ऐसे प्रयोगों का करना अब संभव हो गया है। उपरोक्त समस्याएं शिक्षार्थियों और शोधकर्ताओ के ज्ञान संवर्धन को रोक नहीं सकती है। वेब आधारित ऐसे प्रयोग विकसित किये जा सकते हैं जो दूर से किये जा सकें और छात्रों में जिज्ञासा एवम् नवाचार को उत्पन्न कर सकें। दूरस्थ प्रयोग के इस माध्यम से सरल एवम् उन्नत अवधारणाओं को सीखने में सहायता मिलेगी। इस अध्ययन का उददेश्य आभासी प्रयोगशालाओं की विभिन्न विशेषताओं का पता लगाना और स्नातक कक्षाओं में उपयोगिता को रेखांकित करना है।

बीज शब्दः आभासी प्रयोगशाला, तकनीकी, विज्ञान, कम्प्यूटर, एनिमेशन, सिमुलेशन

Virtual Laboratory: An effective learning tool

Ram Kumar Tiwari
Assistant Professor, Department of Physics
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow(U.P.)-226001, India
rktshri@yahoo.co.in

Abstract

In science and engineering education laboratory activities increase students' interest in the subject matters and help their learning. Lack of resources, unavailability of good educators and physical distances make us unable to perform experiments. However, such experiments can be virtually done as a result of recent developments in Information and Communication technology. The above limitations can no more hamper students and researchers in enhancing their skills and knowledge. Web enabled experiments can be designed for remote operation and viewing so as to enthuse the curiosity and innovation into students. This would help in learning basic and advanced concepts through remote experimentation. The purpose of this study is to find various characteristics of the Virtual Laboratory and its usefulness for the undergraduate classes in real environment.

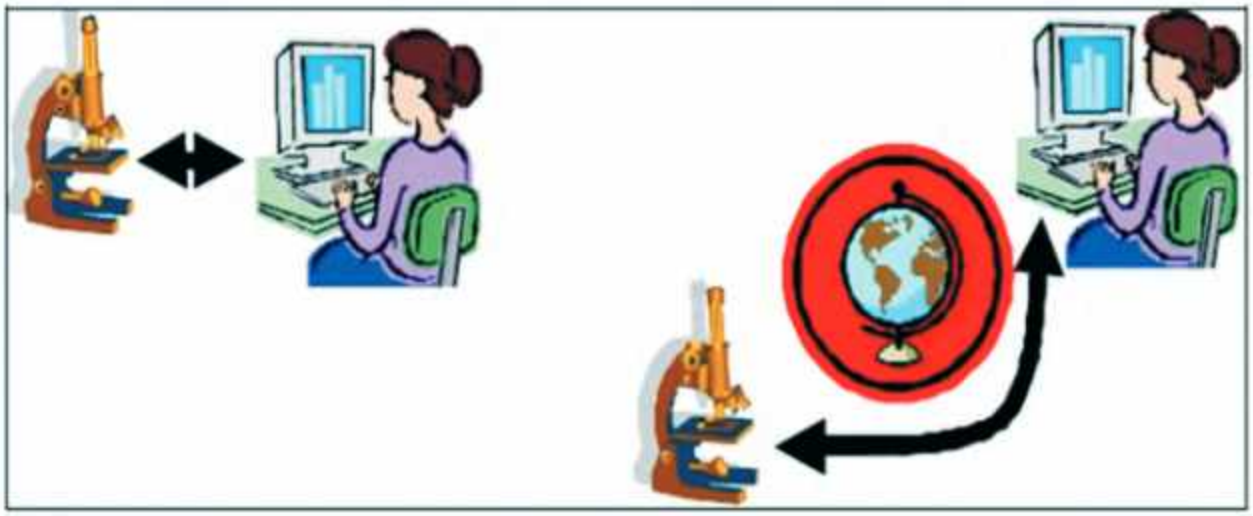
Key Words: Virtual laboratory, Computer Animations, Simulation, Experiments, College education, Science, Technology

परिचय

प्रयोगशालाएं विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शिक्षा के महत्वपूर्ण घटक हैं। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप आभासी प्रयोगशालाओं को विकसित किया जा रहा है जो वास्तविक प्रयोगशालाओ के अनुपूरक के रूप मे काम कर रही हैं। सिमुलेशन तकनीक से बनी आभासी प्रयोगशालाओं के द्वारा दूरस्थ विधि से भी प्रयोगों को करने की सुविधा इंटरनेट के कारण प्राप्त हो रही है जिससे अपनी पसंद के स्थान एवं समय से शिक्षक के बिना भी प्रयोगों को किया जा सकता है।

आभासी प्रयोगशाला की अवधारणा वास्तविक प्रयोगशाला अथवा पारंपरिक प्रयोगशाला से भिन्न है। यह वास्तविक प्रयोगशाला के प्रतिस्पर्धी या विकल्प नहीं हैं। इसके बजाय इन्हें वास्तविक प्रयोगशाला के विस्तार के रूप मे माना जाना चाहिए जहाँ प्रयोग करने के ऐसे अवसर प्राप्त हो रहे हैं जो सामान्यतया वास्तविक प्रयोगशाला की पहुँच से बाहर हैं।

आभासी प्रयोगशाला



कम्प्यूटर आधारित लैब एवं रिमोट लैब

आभासी प्रयोगशाला को बिना दीवार और दरवाजों के वास्तविक प्रयोगशाला के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह शिक्षार्थी को बगैर कागज–कलम, सैद्धांतिक और व्यवहारिक पहलू को सीखने मे सक्षम बनाता है। यह वास्तविक प्रयोगशाला के वास्तविक प्रयोग का कम्प्यूटर सिमुलेशन प्रोग्राम होता है। इसके अतिरिक्त इसे छात्रों के कौशल विकास हेतु आभासी वातावरण में विकसित अध्ययन प्रक्रिया के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। यह वातावरण इंटरनेट पृष्ठों के रूप में होता है जिसमें एक मुख्य पृष्ठ एवं अनेक अन्य पृष्ठ होते हैं जो वास्तविक प्रयोगशाला के कार्यक्रमों से जुड़े होते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि टेक्सट, हाइपर टेक्सट, चित्र, ग्राफिक्स, ऑडियो, वीडियो, एनिमेशन और सिमुलेशन प्रारूपों में मल्टीमीडिया वस्तुएं जो इंट्रानेट अथवा इटरनेट पर चलाई जाती हैं, आभासी प्रयोगशाला कहलाती हैं।
आभासी प्रयोगशाला के दो मुख्य प्रकार हैं–

1. सिमुलेशन प्रेरित आभासी प्रयोगशाला
2. दूरस्थ टिगर आभासी प्रयोगशाला

आभासी प्रयोगशाला के घटक

आभासी प्रयोगशालाओं के मुख्य घटक निम्नलिखित हैं–
1. कम्प्यूटर
2. संचार नेटवर्क और संबंधित उपकरण
3. आभासी प्रयोगशाला सॉफ्टवेयर
4. लर्निंग मेनेजमेट सॉफ्टवेयर
5. तकनीकी स्टाफ
6. प्रयोगशाला सेट और उपकरण

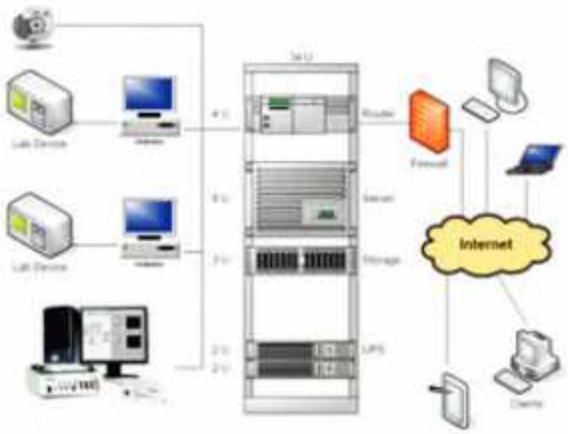
आभासी प्रयोगशाला की विशेषताएं

1. कम लागत– आभासी प्रयोगशालाओं की स्थापना लागत वास्तविक प्रयोगशालाओं की अपेक्षा बेहद कम है। इन्हें नियमित रखरखाव की आवश्यकता नहीं होती। अतः इनके रखरखाव की लागत भी नगण्य है।
2. कम स्थान की आवश्यकता– वास्तविक प्रयोगशाला हेतु अधिक स्थान की आवश्यकता होती है जो छात्रों की संख्या, उपकरणों की संख्या एवम् आकार पर निर्भर करता है। आभासी प्रयोगशालाओं में स्थान की आवश्यकता कम होती है क्योंकि प्रयोग आभासी होते हैं जो कम्प्यूटर पर किये जाते हैं।
3. दूरस्थ उपकरण– आभासी प्रयोगशालाएं छात्रों को कहीं भी एवम् कभी भी प्रयोग करने में सक्षम बनाता है। अतः यह दूरस्थ शिक्षा का एक प्रभावी उपकरण है, जिससे विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शिक्षा सुदूर स्थानों पर भी दिया जाना संभव हो सकता है।

4. सुरक्षित कार्य वातावरण– ऐसे प्रयोग जिनमें खतरे की संभावना रहती है यथा– रेडियोधर्मिता, ज्वलनशीलता, आग, रसायन आदि में आभासी प्रयोगशालाएं सुरक्षित होती है क्योंकि कम्प्यूटर पर आभासी वातावरण में किये जाने के कारण इस प्रकार के खतरे नहीं होते है।
5. प्रयोक्ता के अनुकूल– आभासी प्रयोगशाला में प्रयोग करने की विधि स्टेप बाई स्टेप टेक्स्ट, चित्र, एनिमेशन आदि माध्यमों द्वारा समझायी जाती है जिससे प्रयोगकर्ता आसानी से प्रयोग कर सकता है।
6. शिक्षार्थी केन्द्रित– आभासी प्रयोगशाला में उपयोगकर्ता अपनी समझ एवम् ज्ञान के आधार पर अपने पाठ्यक्रम का चयन कर सकता है और अध्ययन कर सकता है। इस प्रकार यह व्यवस्था शिक्षक केन्द्रित न होकर शिक्षार्थी पर केन्द्रित हो जाती है।
7. कठिन विषयों का विजुएलाइजेशन– आसानी से समझ में न आने वाले विषय भी आभासी प्रयोगों में समझे जा सकते हैं क्योंकि वहाँ प्रयोग कम्प्यूटर पर होते हुए देखे भी जा सकते हैं।
8. आसान प्रगति निगरानी– आभासी प्रयोगशाला में शिक्षक प्रयोगकर्ता छात्र की निगरानी आसानी से कर सकता है और आवश्यकता होनें पर उचित मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।
9. सहयोगात्मक कार्य संस्कृति का विकास– आभासी प्रयोगशाला में छात्रों के समूह द्वारा अलग–अलग मॉड्यूल पर कार्य किया जा सकता है जिससे सहयोगात्मक कार्य संस्कृति के विकास को बल मिलेगा।
10. महँगे प्रयोगों के लिए आसान पहुँच– आभासी प्रयोगशाला में ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं जो आसानी से उपलब्ध नहीं है और जिनकी स्थापना लागत बहुत अधिक है।
11. लैब 24X7– आभासी प्रयोगशाला प्रयोगकर्ता को किसी भी समय प्रयोग करने की स्वतंत्रता देती है जिससे प्रयोगकर्ता अपनी सुविधानुसार प्रयोग कर सकता है।

आभासी प्रयोगशाला की समस्याएं

1. ढाँचागत आवश्यकता– आभासी प्रयोगशालाओं हेतु मल्टीमीडिया युक्त पीसी, वेब कैमरा, तीव्र गति इंटरनेट एवं उच्च कोटि के सर्वर की आवश्यकता होती है। दूरस्थ स्थानों पर धीमें एवं खराब इंटरनेट के कारण आभासी प्रयोगशालाओं के इस्तेमाल में बाधा उत्पन्न होती है।
2. अद्यतन सॉफ्टवेयर– प्रौद्योगिकी में हो रहे लगातार परिर्वतनों के कारण आभासी प्रयोगशालाओं के सॉफ्टवेयर को भी अद्यतन बनाये रखना आवश्यक है अन्यथा वे अप्रचलित हो सकते हैं।
3. जटिल विकास प्रक्रिया– आभासी प्रयोगशालाओं के विकास का कार्य आसान नहीं है। इन्हें विकसित करने हेतु कुशल व्यक्तियों और उच्च तकनीक की आवश्यकता है। प्रयोग की जटिलता के साथ ही आभासी प्रयोगशालाओं के विकास की प्रक्रिया भी जटिल एवं लम्बी हो जाती है।
4. लाइसेंसिग और कापीराइट अधिनियम– आभासी प्रयोगशालाओं के साथ सॉफ्टवेयर पाईरेसी, कॉपीराइट, लाइसेंसिग, चोरी आदि कई कानूनी मुद्दे जुड़ जाते हैं।
5. वास्तविक लैब अनुभव की कमी– आभासी प्रयोगशालाओं में वास्तविक प्रयोगशाला के समस्त अनुभवों को प्राप्त करना संभव नहीं है। 2डी सिमुलेशन से 3डी सिमुलेशन बेहतर होते हैं और प्रयोगकर्ता को ज्यादा वास्तविक लगते हैं। सभी लैब 3डी में उपलब्ध नहीं होने के कारण आभासी प्रयोगशालाओं का अनुभव बहुत अच्छा नहीं माना जाता है।



आभासी प्रयोगशाला

निष्कर्ष

शिक्षा में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के बढ़ते उपयोग के कारण आभासी प्रयोगशालाओं की मांग और उपयोग दिन प्रति दिन बढ़ती जा रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनेक विषयो में आभासी प्रयोगशालाओं को विकसित किया जा रहा है। आभासी प्रयोगशालाएं विद्यार्थी केन्द्रित हैं और छात्रों को वास्तविक प्रयोगशाला में प्रवेश के पूर्व ही प्रयोगों को समझने में काफी सहायक सिद्ध हो रही है। रिमोट टिगर आभासी प्रयोगशालाओं मे उन प्रयोगो को भी आसानी एवं कम लागत मे किया जा सकता है जो सामान्यतया विद्यार्थियों की पहुँच से बाहर होते हैं। तकनीक के विकास के साथ ही आभासी प्रयोगशालाओं की कमियाँ यथा मानवीय कौशल की अनुपलब्धता, अल्पविकसित बुनियादी

ढाँचा, धीमा इंटरनेट, अप्रभावी प्रयोगशालाओं आदि दूर हो रही हैं और आभासी प्रयोगशालाओं के प्रति रूझान बढता जा रहा है। इसमे कोई संदेह नहीं कि आने वाले समय में आभासी प्रयोगशालाएं एक प्रभावी शैक्षिक उपकरण के रूप में अधिकाधिक प्रयोग में लायी जायेंगी। अतः आभासी प्रयोगशालाओं को वास्तविक प्रयोगशालाओं के विकल्प के बजाय पूरक के रूप में देखना चाहिए जो वास्तविक लैब से पहले छात्रों को प्रयोग की तैयारी कराने में सहायक सिद्व होंगी।

संदर्भ

1. डेविस, बी0 जी0(1993) टूल्स फॉर टीचिंग, जोस्से–बास पब्लिशर्स, सेन–फ्रांसिस्को।
2. कुमार, के0 एल0(2002) साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी कोर्स वाया ई–लर्निंग : एन अफ्रीकन सिनारियों विद लेस्संस फ्रॉम साउथ–ईस्ट एशिया, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ई–लर्निंग, मु0 पृ0 65–70।
3. सेलिंगर, एम0(2001) आई0 सी0 टी0, पेडागौजी एण्ड द करीकुलम, लोवलेस, ए0 एवं ऐलिस, वी0 (सम्पादक), राउटलेज फाल्मर।
4. फ, बासेम अल्हाल्बी(1998) वर्चुअल लैब्स वर्सेज रिमोट लैब्स : बिटविन माइथ रियल्टी।
5. सडोस्की, डरलिन एवं सनटियागो, कौमैला–डोर्डा(2000) थ्री टायर सॉफ्टवेयर आर्किटेक्चर्स।
6. श्वार्ज, जनेक; पोल्ज, एण्ड्रियाज; वेहनर, क्रिस्टोफर एवं शा, लूई(2000) रिमोट लैब : ए रिलायबल टैली–लैबोरेटरी इनवायरनमेंट, इण्टरनेशनल कांफ्रेंस ऑन इंटरनेट कम्प्यूटिंग।
7. स्टसिल, डेनियल डी0(2000) द वर्चुअल लैब : इंजीनियरिंग द फ्यूचर।
8. हैरी, ई0 तथा एडवर्ड, बी0(2005) मेकिंग रियल वर्चुअल लैब, द साइंस एजुकेशन रिव्यू।
9. जायटून, एच0(2005) न्यू विजन इन इलेक्ट्रॉनिक लर्निंग, आल्डर अल–सोल्तियाह, रियाद।
10. अल–बैती, एम0 एम0(2006) द अप्लाइड एण्ड साइटिफिक डाइमेन्शंस इन इलेक्ट्रॉनिक लर्निंग, द अरेबियन नेट फॉर ओपेन इलेट्रॉनिक लर्निंग, अम्मान जोर्डन।
11. कार्निवल, डी0(2003) द वर्चुअल लैब एक्सपेरिमेन्ट, सम कॉलेजेस यूज कम्प्यूटर टू एक्सपेन्ड साइंस ऑफरिंगस ऑन लाइन, द क्रॉनिकल ऑफ हाइयर एजुकेशन, खण्ड 49, अंक 21, मु0 पृ0 30–32।

एच0आई0वी0 एवं एड्स–जानकारी, रोकथाम एवं उपचार

सुधीर मैहरोत्रा * एवं खुशवंत सिंह
*एसोशिएट प्रोफेसर, जीव–रसायन विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ–226007, भारत
sudhirankush@yahoo.com

सार

वर्तमान में एच0आई0वी0 विषाणु दुनिया के सबसे घातक कातिलों में गिना जाता है। डब्ल्यू0एच0ओ0 द्वारा 2010 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार 340 लाख व्यक्ति विषाणु से संक्रमित हैं। प्रति वर्ष 18 लाख व्यक्ति इस संक्रमण से मरते हैं तथा 27 लाख नये व्यक्ति संक्रमित होते हैं। एच0आई0वी0 विषाणु के संक्रमण के कारण प्रतिरोधक क्षमता को कम करने वाली अमुख्य बीमारी एड्स हो जाती है। एड्स होने पर टी-कोशिका की संख्या 200 माइक्रोन प्रति लीटर के भी नीचे चली जाती है जो कि जानलेवा सिद्ध होती है। एच0आई0वी0 विषाणु का संक्रमण असुरक्षित शारीरिक सम्बंध, संक्रमित खून के चढ़ाने, या संक्रमित सुई के इस्तेमाल या माँ से बच्चे को जन्म या स्तनपान के समय होता है। यौन रोग इस संक्रमण की संभावना को बढ़ाते हैं। त्वचा पर चित्तियां, टी कोशिकाओं की संख्या में न्यूनतः, शारीरिक क्षमता में ह्रास इत्यादि व्यक्ति के सम्भावित एच.आई.वी. सक्रंमित होने के लक्षण परिलक्षित करता है। एड्स की जाँच वैस्टर्न ब्लॉटिंग, ईएलआईएसए(ऐलिसा) या एफएसीएस(फैक्स) के द्वारा की जा सकती है। वर्तमान में हार्ट उपचार के द्वारा एच0आई0वी0 संक्रमण का इलाज किया जाता है जिसमें मरीज को दवाओं का मिश्रण दिया जाता है जिनमें प्रायः दो न्यूक्लियोसाइड रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज इन्हिबिटर या इंटीग्रेज इन्हिबिटर या प्रोटीज इन्हिबिटर होते हैं। इस उपचार के द्वारा मृत्यु दर में काफी कमी आई है परन्तु ड्रग रेजिस्टेंस म्यूटेंट्स के उत्पन्न होने के कारण यह उपचार पूरी तरह कारगर नहीं है।

बर्लिन(जर्मनी) के एक मरीज जिसको ऐसे व्यक्ति का अस्थि मज्जा प्रत्यारोपित किया गया जो कि सीसीआर5 डेल्टा32 बीपी डिलीशन के लिये होमोजाइगस था जिसके बाद वह मरीज एच0आई0वी0 विषाणु के संक्रमण से मुक्त हो गया तथा उसने हार्ट उपचार भी छोड़ दिया। इस अवलोकन के बाद स्टेम कोशिका जीन उपचार की नींव रखी गई जिसमें स्टेम सेल के जीनोम में ऐसे बदलाव किये गये जिसके कारण वह कोशिका ऐसी कोशिका बनाने लगा जिसमें सीसीआर5 को–रिसेप्टर खण्डित था तथा वह विषाणु के लिये प्रतिरोधक था। जैसे हार्ट उपचार में कई दवाओं का इस्तेमाल होता है उसी प्रकार जीन उपचार में कई एच0आई0वी0 विषाणु विरोधी जीन जैसे सेंस आरएनए, एण्टीसेंस आरएनए, तथा राइबोजाइम्स के इस्तेमाल से काफी अच्छे परिणाम मिले जो विषाणु जीवन चक्र के पूरा होने में बाधा उत्पन्न करते है पर यह विधि अपने आखिरी चरण में नहीं है इसलिए इसे इंसान पर प्रयोग नहीं किया गया है।

HIV and AIDS: Information, Prevention and Cure

Sudhir Mehrotra* and Khushwant Singh
*- Associate Professor, Department of Bio-chemistry
University of Lucknow, Lucknow(U.P.)-226007, India
sudhirankush@yahoo.com

Abstract

In today's world HIV is one of the most potent mass killer. According to WHO survey in 2010 there are 34 million people who are infected with HIV and attained AIDS. Every year about 1.8 million people die with AIDS and 2.7 million new person become infected with HIV. AIDS is a secondary immunodeficiency caused by HIV virus that belongs to retroviral family. During AIDS Tcell count in blood falls tremendously below 200 cells μl^{-} that proves to be fatal in about 2-3 years. HIV can be transmitted from one person to another by unprotected homosexual or heterosexual sex, by transfusion of blood infected with HIV, by needle sharing between drug or steroid abusers, from mother to child during childbirth or

during breast feeding. Sexually Transmitted Diseases (STD's) increase the threat of HIV infection. During AIDS many opportunistic infections and other immunodeficiencies occur frequently that usually have negligible chances to affect a normal healthy person. Rashes on skin, decrease in $CD4^+$ Tcell count, loss of stamina all these effects symptomises that person might be infected by HIV. Presence of HIV infection can be diagnosed by techniques like ELISA and HIV infection can be confirmed by Western Blotting or by counting the $CD4^+$Tcell count in infected person's blood by using Fluorescence Activated Cell Sorter (FACS) . These techniques can confirm if person is HIV positive or HIV negative. Highly Active Anti Retroviral Therapy (HAART) is the best practice present at current against AIDS. HAART uses cocktail of two or more drugs which generally include two nucleoside reverse transcriptase inhibitors (NRTI's) with either non-nucleoside reverse transcriptase inhibitor (NNRTI's) or integrase inhibitor or protease inhibitor. Due to HAART morbidity and mortality rates have decreased tremendously. Although therapeutic success rates have also been increased but the emergence of drug resistant mutants and persistence of viral reservoirs limits the success of HAART. It was found in Berlin patient of HIV who was living on HAART was transplanted with bone marrow from a person who was homozygous for CCR5Δ32bp deletion i.e. deletion of one base pair on 32 position in CCR5 gene after which patient became resistant to HIV infection when he discontinued the HAART therapy and live like a normal person viral particles and viral reservoir were vanished from his blood. This observation laid the basis for use of gene therapy against AIDS. By modifying stem cells taken from bone marrow in which using gene therapy genes for disrupted CCR5 were inserted in place of normal CCR5 gene and then the cells were reimplanted in bone marrow after which they started producing HIV resistant blood cells. Another observation was that modifying stem cells to produce interfering RNAs like sense RNA, antisense RNA, ribozymes that interfere in viral replication cycle or host cell function that is required for viral replication also provided good results to produce anti-HIV immune system. Like HAART in which combination of many drugs are used in similar way if many anti-HIV genes are used simultaneously to modify stem cells targeting different points in viral life cycle provide better results than results acquired by use of single anti-HIV gene to eradicate HIV infection. Although gene therapy has provided good results against HIV infection but is still in it's trial state and have not been used on humans yet.

1. प्रस्तावना

1.1 एच0आई0वी0

एड्स जो कि मानव शरीर की प्रतिरोधक क्षमता एक सार्वजनिक की कमजोरी है एच0आई0वी0 के संक्रमण से होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा वर्ष 2010 मे किये गये पर्यावलोकन में यह ज्ञात हुआ है कि दुनिया मे लगभग 34 लाख मनुष्य एड्स के साथ जी रहे हैं तथा प्रति वर्ष 2.7 लाख नये व्यक्ति संक्रमित होते हैं और लगभग 1.8 लाख व्यक्ति प्रति वर्ष इस संक्रमण से मरते हैं (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2010)। एच0आई0वी0 संक्रमित इंसान की पहचान उसके कमजोर शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता के द्वारा लगाई जा सकती है। वर्ष 1983 में पहली बार एड्स फैलाने वाले विषाणु को संक्रमित इंसान के लिम्फ नोड से पृथक किया गया और उसका नाम एच0आई0वी0(ह्यूमन इम्यूनो वायरस) रखा गया। वर्ष 1986 में एच0आई0वी0(ह्यूमन इम्यूनोडिफिशिएंसी वाइरस) की दूसरी प्रजाति पायी गयी जिसका नाम एच0आई0वी0–2 रखा गया।

एच0आई0वी0–1

एच0आई0वी0 की यह प्रजाति ही एड्स संक्रमण की प्रमुख उत्तरदायी है। यह जाति कुछ ही जानवरों को संक्रमित कर सकती है। चिपांजी एच0आई0वी0–1 विषाणु के द्वारा सीधे संक्रमित हो सकता है पर तब भी चिपांजी में एड्स होने की संभावना न्यूनतम है। इंसानों में विषाणु का संक्रमण चिपांजी से ही पहुँचा। इंसानों ने एच0आई0वी0–1 विषाणु से संक्रमित चिपांजी का माँस खाया होगा जिसके कारण वे भी संक्रमित हो गये और इंसानों में एच0आई0वी0–1 विषाणु एड्स को उत्पन्न कर सकता है तथा इंसान की प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर कर देता है(**वार्नर**, 1990)।

एच0आई0वी0–2

यह प्रजाति सिर्फ पश्चिमी अफ्रीका में ही पायी जाती है। इस प्रजाति का इंसानों में संक्रमण करने की क्षमता एच0आई0वी0–1 की क्षमता से बहुत कम होती है। ये प्रजाति सामान्य तौर पर व्यक्तियों को छोड़ के अन्य वानर प्रजातियों, जो कि एच0आई0वी0 से संक्रमित नही है, उनमें संक्रमण फैलाती है। यह प्रजाति सूटी मंगाबे की संक्रमित करने वाले सिमियन इम्यूनो डिफिशिएंसीज विषाणु से काफी मेल खाती है जबकि एच0आई0वी0–1 से उतना मेल नही खाती (**डमोंड एवं अन्य**, 2005; **एण्ड्रीज एवं अन्य**, 2004)।

एच0आई0वी0 की कुछ विशेषतायें है–

1. अविकसित लम्बा काल।
2. खून बनाने वाली कोशिकाओं तथा मानसिक तंत्रिका के तरफ आकर्षण।
3. बहुत सारी बीमारियां जो की प्रतिरोधक क्षमता को कम करती है उनको बढ़ावा देना।
4. म्यूटेशन की तेज दर(**वार्नर**, 1990)।

1.2 एच0आई0वी0 का रूप वा आनुवांशिक संघटन

1.2.1 विषाणु एनवेलप

एच0आई0वी0 लगभग 120एनएम के व्यास के गोले जितना बड़ा होता है। सबसे बाहरी खोल को विषाणु एनवेलप कहा जाता है जो समान्यतया परपोषी कोशिका से पृथक की गई फास्फोलिपिड बाइलेयर होती है। विषाणु एनवेलप में हर जगह परपोषी के प्रोटीन और ईएनवी प्रोटीन के लगभग 72 प्रारूप पाये जाते है। ईएनवी प्रोटीन घुंडी के रूप में होती है तथा दो प्रकार के ग्लाइकोप्रोटीन से मिल कर बनती है वो हैं :–

1. **जीपी120** : यह ईएनवी प्रोटीन का बाहरी सिरा अपने 3 प्रारूपों से मिल के बनती है(**नेनीज एवं अन्य**, 2012)।
2. **जीपी41** : यह ईएनवी प्रोटीन का लम्बा वा विषाणु एनवेलप मे धँसा हुआ वाला भाग अपने 3 प्रारूपों से मिल के बनती है(**मेडिनास एवं अन्य**, 2002)।

जीपी120 तथा **जीपी41** असहसंयोजकता से जुड़े होते हैं तथा एच0आई0वी0 को सीडी4 + टी कोशिका के अन्दर जाने में मदद करते हैं।

1.2.2 भीतरी भाग

भीतरी भाग में एच0आई0वी0 विषाणु का जीनोम पाया जाता है जो कि $पी_{24}$ प्रोटीन के बने खोल न्यूक्लियोंकेपसिड मे बंद होता है जो कि खुद $पी_{17}$ प्रोटीन के द्वारा नही, बाहरी परत जिसे मैट्रिक्स कहा जाता है उसमें बंद होती है। भीतरी भाग बंदूक की गोली के रूप में होती है। जिसके अन्दर दो अलग–अलग तथा समरूपी आर0एन0ए0 अपने सहयोगी किण्वक (इन्जाइम): रिवर्स ट्रांसक्रिपटेज, प्रोटियेज तथा इंटीग्रेज के साथ पाया जाता है(**स्टीवेन एवं अन्य**, 2012)।

1.2.3 आनुवांशिक संघटन

भीतरी भाग में दो आर0 एन0 ए0 पाये जाते हैं जिनके दोनो सिरों पर विशेष क्रम पाये जाते है जिन्हें लॉंग टर्मिनल रिपीट कहा जाता है जो कि नये विषाणु बनाने कि क्रिया को नियंत्रित करते हैं। ये क्रम एच0आई0वी0 द्वारा बनाये गये एक प्रोटीन की उपस्थिति में नये विषाणु बनाने की प्रक्रिया को आरम्भ करते हैं। एच0आई0वी0 विषाणु के जीनोम में 9 जीन पाये जाते हैं जिनमें से 3 जीएजी, पीओएल तथा ईएनवी पूरी रेट्रोवाइटल कुल में सार्वजनिक है। बचे 6 एच0आई0वी0

विषाणु जीन प्रबन्धनकारी हैं जो की सिर्फ एच0आई0वी0 विषाणु में ही पाये जाते हैं जिनके नाम हैं:–टीएटी, आरईवी, एनईएफ, वीपीआर, वीपीयू, वीआईएफ(**ट्रोनो**, 1995; **एमरमैन व मालिम**, 1998)

1.3 वर्ग स्तर

अनुक्रम	–	वाईरेल्स
कुल	–	रेट्रोविरीडी
उप कुल	–	आर्थोरेट्रोविरीडी
वंश	–	लेंटीवायरस
जाति	–	ह्यूमन इम्यूनो डिफिसिएंसी वायरस

1.4 संक्रमण फैलने के माध्यम

1. असुरक्षित समलिंग कामी वा विपरीत लिंग कामी शारीरिक सम्बन्ध।
2. नशीली दवाँओं को लेने के लिए दूसरे के द्वारा इस्तेमाल की गई सुई का इस्तेमाल करना ।
3. संक्रमित खून का चढ़ाना।
4. माँ से बच्चे को जन्म देने के समय या स्तनपान के द्वारा।
5. यौन या लिंग रोग के होने से एच0आई0वी0 संक्रमण होने की सम्भावना बढ जाती है (**कोरे एवं अन्य** 2004; **फिडेली एवं अन्य**, 2001; **तांग एवं अन्य**, 2008, **वाहल एवं अन्य**, 2012)।

1.5 संक्रमण के लक्षण

1. सीडी4^{+} टी कोशिका की संख्या में भारी गिरावट।
2. त्वचा पर लाल चकत्ते पड़ना।
3. शारीरिक कमजोरी।
4. बार–बार सामान्य बीमारियां जैसे सर्दी, जुकाम व बुखार का होना।
5. मौकापरस्त संक्रमणों का बार–बार होना।

1.6 एच0आई0वी0 विषाणु का जीवन चक्र

सबसे पहले एच0आई0वी0 विषाणु टी–कोशिका के पास आता है तत्पश्चात् एच0आई0वी0 की ईएनवी प्रोटीन टी–कोशिका के ऊपरी तल के अणु सीडी4 से जुड़ जाता है जिसके बाद जीपी120 में निर्माणी बदलाव आते है जो सीडी4+टी कोशिका के केमोकिन रिसेप्टर्स का एच0आई0वी0 विषाणु से जुडने मे मदद करते है जिसके बाद एच0आई0वी0 विषाणु उस टी–कोशिका में प्रवेश पा लेता है। जीपी41 में निर्माणी बदलाव आते हैं जिनके कारण एच0आई0वी0 विषाणु टी–कोशिका से मिल जाता है।

एच0आई0वी0–आर0एन0ए0 रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज की मदद से सीडीएनए बनाता है जो कि टी–कोशिका के गुदा में प्रवेश पाकर इंटीग्रेज की मदद के द्वारा टी–कोशिका के जीनोम मे मिल जाता है जहाँ उसकी संख्या टी–कोशिका के डीएनए की प्रतिलिपि बनने के सयम विषाणु के सीडीएनए की प्रतिलिपि भी बनती रहती है जो कि असंक्रमिक होती है। इन्हे प्रोवायरस कहा जाता है।

प्रोवायरस का ट्रांसक्रिप्शन परपोषी डीएनए के साथ ही होता है जिसके बाद विषाणु आरएनए साइटोप्लास्म में चला जाता है जहाँ ये ट्रांसलेट हो कर विषाणु प्रोटीन बनाता है। विषाणु प्रोटीन में निर्माणी बदलाव होते है जिसके बाद विषाणु प्रोटीन जुड कर नये संक्रमिक वायरस बनाते है जो दूसरे टी–कोशिका को संक्रमित करते हैं, फिर ये चक्र चलता रहता है (लेमोथी एण्ड जोशी, 2005)।

2 एड्स

एच0आई0वी0 संक्रमण के अन्तिम पड़ाव को एड्स कहा जाता है। इस पड़ाव के समय मौकापरस्त संक्रमणों का हमला बहुत बढ़ जाता है। जिनके कारण सीडी4+टी कोशिकाओं की संख्या 200 माइक्रोन प्रति लीटर के भी नीचे हो जाती है और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता काफी गिर जाती है। एड्स के वक्त एच0आई0वी0 की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। जबकि सीटीएल्स तथा एण्टीबॉडीज की संख्या गिर जाती है। एड्स मरीज चाहे जितना भी अच्छा उपचार करा ले वह दो साल से ज्यादा नहीं जी सकता(**किएम एवं अन्य**, 2012)। समान्यतया एड्स, संक्रमण के तुरन्त बाद नहीं होता क्योंकि एच0आई0वी0 विषाणु प्रोवायरस के रूप से रहता है पर किसी अज्ञात कारणवश वह संक्रमित रूप ले के संक्रमण उत्पन्न

कर देता है। जिसके बाद वह संक्रमण एड्स का रूप ले लेता है। संक्रमित इंसान में एच0आई0वी0 विषाणु 2–12 साल तक प्रोवायरस के रूप मे रह सकता है(**स्टीफन एवं अन्य**, 2005)।

एड्स का पता वेस्टर्न ब्लॉटिंग, एफ.ए.सी.एस., ई.एल.आई.एस.ए. के द्वारा लगाया जा सकता है।

3 एच0आई0वी0 संक्रमण व लक्षण जॉचने के तरीके

ईएलआईएसए(एंजाइम लिंक्ड इम्यूनो सॉरबेंट ऐस्से) है जिसके द्वारा एच0आई0वी0 विषाणु के विरूद्ध बने रोग प्रतिकारक अणुओं, जो कि पी24, जीपी41 या जीपी120 के कारण बनती है उनको जॉचा जाता है। एच0आई0वी0 संक्रमण के ग्रस्तुत होने की सबसे सटीक जांच वेस्टर्न ब्लॉटिंग है जिससे ये निश्चित हो जाता है कि व्यक्ति एच0आई0वी0 विषाणु से संक्रमित है या नही। संक्रमण के पहले 6–7 माह तक उपर बतायी गयी जॉचे मरीज को असंक्रमित ही बताऐंगी पर वह व्यक्ति संक्रमित हो सकता है। इस काल में अतिसंवेदनशील पीसीआर ऐस्से के द्वारा एच0आई0वी0 विषाणु के जीनोम प्रतिरूपों का भार माप के संक्रमण होने या ना होने का पता लगाया जा सकता है। सीडी4+टी कोशिका गिनती करने से भी एच0आई0वी0 विषाणु के संक्रमण का पता लगाया जा सकता है इन टी–कोशिकाओं कि गिनती एफएसीएस(फ्ल्यूरेसेंस एक्टिवेटेड सेल सॉर्टर) के द्वारा की जा सकती है इसमें टी–कोशिका पर पाये जाने वाले अणु सीडी3 के खिलाफ प्रतिकारक जिनसे ऐसे अणु जुडे होते है जो विद्युत वातावरण में आने पर धनात्मक या ऋणात्मक इलेक्ट्रोड की तरफ आकर्षित होते हैं। इस सिद्धांत पर टी–कोशिका की गिनती एफएसीएस के द्वारा की जा सकती है। एक स्वस्थ मानव मे सीडी4 : सीडी8 लगभग 2 होती है पर एकएच0आई0वी0 विषाणु संक्रमिक इंसान में सीडी4 : सीडी8 0.5 या उससे कम हो सकती है जो कि एफएसीएस के द्वारा जॉचा जाता है(**राज खन्ना**, 2010)।

4 एड्स की रोकथाम में उपयोग किये जाने वाली दवाईयों पर आधारित उपचार

कुछ वर्ष पहले तक एड्स संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए जिस विधि का प्रयोग किया जाता था उसे कार्ट(सीएएआरटी) कहा जाता था जिसमें 6 प्रकार की दवाओं का प्रयोग किया जाता था यथा: न्यूक्लियोसाइड/न्यूक्लियोटाइड रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज इन्हिबिटर, प्रोटियेज इन्हिबिटर, नॉन–न्यूक्लियोसाइड रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज इन्हिबिटर, फ्यूजन इन्हिबिटर, इंटीग्रेज इन्हिबिटर । मरीज को प्रतिदिन बहुत सारी दवाओं का सेवन करना पड़ता था पर तब भी सफल इलाज नही हो पाता था अपितु एच0आई0वी0 विषाणु उन दवाओं के पति सहनशीलता उत्पन्न कर लेता था और उसके बाद उस दवा का उन परिवर्तित विषाणुओं पर कोई असर नहीं होता था।

वर्तमान काल का सबसे उपयुक्त उपचार का नाम है हार्ट(हाईली एक्टिव एण्टी रेट्रावाइरल थेरेपी), जिसमें दो न्यूक्लियोसाइड रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज इंहिबिटर(एनआरटीआई) या इंटीग्रेज इंहिबिटर या प्रोटीज इंहिबिटर के मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। इस उपचार के आने के बाद एच0आई0वी0 संक्रमण से मरने वाले मरीजो की संख्या मे काफी कमी आयी है। हार्ट विधि ने बहुत अच्छे परिणाम दिये है परन्तु इसमे कुछ कमियां भी है जैसे मरीज को प्रतिदिन बहुत सारी दवाओं का सेवन नियमित रूप से करना पड़ता है अगर इसमें कोई अनुशासनहीनता होती है तो विषाणु का स्तर बहुत ज्यादा हो जाता है जिसके कारण मरीज अचानक काफी गम्भीर स्थिति में पहुँच जाता है तथा मृत्यु भी हो सकती है। इस उपचार में विषाणुओं में दवाओं के प्रति सहनशीलता उत्पन्न होने की आशा बहुत कम होती है तथा संक्रमित कोशिका का विषाणुओं का भण्डार बनने की आशा भी बहुत कम होती है तब भी मरीज अधिकाधिक 2–3 वर्ष ही जी पाता है(**पीटरसन एवं अन्य**, 2013)।

5 जीन उपचार

जीन उपचार वह प्रणाली है जिसका लक्ष्य अनुवांशिक बीमारियों का उपचार करना है। इस प्रणाली में गलत जीन को सही जीन से बदल दिया जाता है जिसके कारण वह प्रोटीन जो कि पहले मरीज में नही बन रही थी जिसके कारण वह बीमार था, बनने लगती है तथा मरीज स्वस्थ हो जाता है यह दो प्रकार की होती है(**फ्रीडमेन**, 1999)।

5.2 जर्मलाइन उपचार

इस तरह की जीन उपचार में जर्म कोशिका में आनुवांशिक बदलाव किये जाते है जैसे शुक्राणु या अण्ड में। संसेचित अण्डे में सही जीन डाली जाती है जो कि वापस माँ के गर्भ मे बैठा दिया जाता है अगर ये क्रिया सफल होती है तो बच्चे के शरीर की प्रत्येक कोशिका में ये जीन अपना प्रोटीन बनायेगी जिसके कारण बच्चे में वह बीमारी नही आयेगी।

इस प्रणाली में अण्डे में जीन माइक्रो इंजेक्शन के द्वारा डाला जाता है। यह बदलाव आगे आने वाली पीढी में भी पाया जायेगा (**करीम**, 2012)।

5.3 कायिक कोशिका उपचार

इस प्रणाली में कायिक कोशिका मे बदलाव किये जाते हैं। ये दो तरह से की जा सकती है।

1. सबसे पहले कोशिका को निकालें, उसे रेट्रोवायटल माध्यम से ट्रांसफेक्ट करें तब उसे वापस शरीर में बिठा दें।
2. कोशिका को शरीर मे ही ट्रांसफेक्ट करें।

यह प्रणाली खून में सम्बंधित अनुवांशिक बीमारियों के लिये बहुत उपयोगी है जहाँ जीन स्टेम कोशिका में डाल दिये जाते है जो कि अस्थि मज्जा से लिए जाते हैं जिन्हें ट्रांसफेक्ट करने के बाद वापस डाल दिया जाता है। यह बदलाव आगे आने वाली पीढियों में नही पाया जाता है(**करीम**, 2012)।

6 हीमैटोपोएटिक स्टेम कोशिका जीन उपचार एड्स के रोकथाम के लिए

यह प्रणाली उन संक्रमित व्यक्तियों के लिए एक अतयन्त लाभकारी विकल्प प्रस्तुत करता है जो कि हार्ट उपचार पर आश्रित हैं जिसमें प्रतिदिन कई दवायें नियमित रूप से खानी पड़ती है और किसी भी प्रकार की लापरवाही के कारण वायरल मात्रा अचानक से बढ़ जाती है जो कि प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। इसके विपरीत इन जीन उपचार में किसी प्रकार की दवायें लेने की जरूरत नही होती इसमें हीमैटोपोएटिक स्टेम कोशिका को अस्थि मज्जा से पृथक किया जाता है इन पृथक कोशिकाओं को इस प्रकार सुधारा जाता है कि इन्हें वापस अस्थि मे डालने पर वे ऐसे रक्त की कोशिकाएं बनाते हैं जो कि विषाणु से संक्रमित नहीं हो पाते। ये कोशिका एच0आई0वी0 विषाणु प्रतिरोधक होते है, इनमें हैं टी–कोशिका, बी–कोशिका, मैक्रोफेज व अन्य(**किएम एवं अन्य**, 2012)।

6.1 सीसीआर 5 का विघटन विषाणु का टी–कोशिका में प्रवेश रोकने के लिए

जीन उपचार की प्रणाली प्रयुक्त करके हीमैटोपोएटिक स्टेम कोशिका को इस प्रकार सुधारा जा सकता है कि वे ऐसी कोशिका बनाए जिनका सीसीआर5(कीमोकाइन ग्राही) त्रुटिपूर्ण हो जिसके कारण एच0आई0वी0 विषाणु टी–कोशिका के ऊपरी तल पर जुड़ नही पाता, अतः वह टी–कोशिका संक्रमित नहीं हो पाती(**किएम एवं अन्य**, 2012), पेरेज और उनके सहयोगियों ने यह तथ्य प्रमाणित भी किया है। उन्होंने सुधारे हुये स्टेम कोशिका एनओजी माउस मॉडल में प्रत्यारोपित किये और उसके बाद चूहे को एच0आई0वी0–1 से संक्रमित कराया गया जिसमें यह पता चला कि चूहों में एच0आई0वी0 प्रतिरोध टी–कोशिका जिसका सीसीआर5 त्रुटिपूर्ण था जिसके कारण चूहों को एड्स नहीं हुआ। यह खोज अभी अपने आखिरी चरण में नहीं है अभी भी इस खोज की जाँच की जा रही है इसलिए इसे इंसानों पर नहीं अपनाया गया है।(**जून**, 2011; **वांग**, 2008)। सीएक्ससीआर4 एक अन्य को–रिसेप्टर जिसके द्वारा भी एच0आई0वी0 टी–कोशिका में प्रवेश पा सकता है पर इसकी आशा बहुत कम होती है(**ऐन, एवं अन्य**, 2007; **शिमिजू, एवं अन्य**, 2010)। एक बात में कहा जाय तो सीसीआर5 और सीएक्ससीआर4 दोनों का विघटन इंसानों को संक्रमण से बचा सकता है(**विलेन, एवं अन्य**, 2011; **युआन, वांग एवं अन्य**, 2012) ये प्रक्रिया बर्लिन के एक एड्स मरीज को देखने के बाद सोची गयी जिसमें ऐसे इंसान जिसमें सीसीआर5 के जीन में 32 स्थान पे दोनों क्रोमोजोन पर एक बेस पेयर गायब था उसका अस्थि मज्जा प्रत्यारोपित किया जो कि बाद में संक्रमण से मुक्त हो गया(**हुआंग एवं अन्य**, 1996; **हंटर एवं अन्य** 2009, **लियु एवं अन्य**, 1996)।

6.2 एचएससीज ट्रांसड्यूज्ड विद ट्रिपल कांबिनेशन ऑफ एण्टी–एच0आई0वी0 जीन यूजिंग लेंटीवाइरल वेक्टर

आज तक बहुत सारे एच0आई0वी0 विषाणु विरोधी जीन बनाये जा चुके हैं जो एच0आई0वी0 की प्रतिकृति होने से रोक सकती है। पर यह भी ज्ञात है कि बहुत तेज दर से अपने में बदलाव कर पाता है तो कोई भी एक एच0आई0वी0 विषाणु विरोधी जीन अकेले संतोषजनक परिणाम नहीं दे सकता अतः जैसे हार्ट उपचार में कई दवाओं का मिश्रण इस्तेमाल किया जाता है उसी प्रकार कई जीनों का मिश्रण प्रयोग करके संतोषजनक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं और बदलाव के द्वारा बचने वाले एच0आई0वी0 विषाणु को उत्पन्न होने से भी बचाया सकता है(**जोन**, एवं अन्य, 2012)। प्रायः एच0आई0वी0 विषाणु विरोधी जीनों का लक्ष्य वायरस की कोशिका पर जुड़ने का स्थान, वायरस का कोशिका में प्रवेष का स्थान, रिवर्स ट्रांसकिप्टेज के द्वारा सीडीएनए को बनाना, इंटीग्रेज के द्वारा विषाणु के सीडीएनए को परपोषी कोशिका के डीएनए से जुड़ना व अन्य होते हैं(एन एवं अन्य, 2007; एण्डरसन व एक्कीना, 2007, 2008) । यह हार्ट से ज्यादा प्रभावी होती है क्योंकि इसमें प्रोवायरस नहीं बन पाते तथा वे कोशिका जिनमें विषाणु भरे होते हैं वे मर जाते हैं(**सॉयर एवं अन्य**, 2005; **स्ट्रेमलान एवं अन्य**, 2004)। वालर व उसके सहयोगियों ने एच0आई0वी0 विरोधी लेन्टिवायरल माध्यम बनाया जिसमें 3 एचआईवी विषाणु विरोधी जीन डाले गए वे हैं–

1. सीसीआर5 शॉर्ट हेयरपिन आरएनए
2. टार डिकॉय
3. ट्रिम5α आइसोफॉर्म
(**एण्डरसन**, एवं अन्य, 2009)

6.3 व्यतिकारी डी0एन0ए0 पर आधारित जीन थेरेपी

यह एड्स के विरूद्ध एक नवीनतम खोज है जिसमें इंटरफेरिंग आर0एन0ए0 के द्वारा एच0आई0वी0 संक्रमण के फैलने को रोका जा सकता है। यह प्रणाली हमें अनुवांशिक स्तर पर ऐसे यंत्र प्रदान करती है जिसके द्वारा हम परपोषी कोशिका या वायरस के किसी कार्य को रोक सकते हैं जो प्रतिकृति के लिए अनिवार्य हो(**वान तथा एंडिनो**, 2006)।

6.3.1 व्यतिकारी आर0एन0ए0

यह ये आर0एन0ए0 होते हैं जिन्हें इस उद्देश्य से बनाया जाता है कि वे एच0आई0वी0 के जीवन चक्र को किसी एक या अन्य स्थान पर रोक सके। व्यतिकारी आर0एन0ए0 की क्षमता जीवन चक्र रोकने के स्थान पर तथा बदलाव के द्वारा इस उपचार से बचने वाले वायरस के पैदा होने से रोकने की क्षमता पर ही निर्भर करती है(जेनेट एवं अन्य, 2013)। प्रायः ये 3 तरह के होते हैं।

1. एण्टीसेंस आर0एन0ए0

यह ऐसे आर0एन0ए0 होते हैं जो कि परपोषी कोशिका के किसी आर0एन0ए0 जैसे सी.सी.आर.5 या सी.एक्स.सी.आर.4 के आर0एन0ए0 या एच0आई0वी0–1 विषाणु के आर0एन0ए0 के समपूरक होते हैं जो कि आर0एन0ए0 संकर बना लेते हैं तथा बाद में आरनेज1 के द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं (**सोरेंटिनो व लिबोनाती**, 1997)।

वे एण्टीसेंस आर0एन0ए0 जो 800 या उससे ज्यादा न्यूक्लियोटाइड्स से बने होते हैं, सरलता से एच0आई0वी0 का प्रतिकृति बनाना रोक सकते हैं(**कोहली एवं अन्य**, 1994; **वेरेस एवं अन्य**, 1996, 1998; **डिंग एवं अन्य**, 1998)।

एच0आई0वी0 विषाणु आर0एन0ए0 के साथ संकर बनाने के बाद विषाणु के आर0एन0ए0 की स्प्लाइसिंग, ट्रांसलेशन, ट्रांसएक्टिवेशन, न्यूक्लियर एक्सपोर्ट ऑफ ऑल एच0आई0वी0 आर0एन0ए0, आर0एन0ए0 पैकेजिंग तथा रिवर्स ट्रांसक्रिप्शन ऑफ वायरल प्रोजेनी को रोक सकते हैं।

2. सेंस आर0एन0ए0

इस तरह के आर0एन0ए0 ऐसे बनाये जाते हैं कि ये एच0आई0वी0 विषाणु आर0एन0ए0 के समांतर हो जो कि किसी विशिष्ट विषाणु आर0एन0ए0/ आर0एन0ए0 या आर0एन0ए0/प्रोटीन के मेलजोल में संलिप्त हों ताकि ये एच0आई0वी0 विषाणु आर0एन0ए0 से समानता करे विषाणु के आर0एन0ए0 या प्रोटीन से मेलजोल के लिए। ये ट्रांस–ऐक्टिवेशन को रोकने के लिए, न्यूक्लियर एक्सपोर्ट को रोकने के लिए पैकेजिंग या रिवर्स ट्रांसक्रिप्शन को रोकने के लिए प्रयुक्त किये जा सकते है(**ट्रैनर**, 1999)।

3. राइबोजाइम

हैमरहेड या हेयरपिन राइबोजाइम तुच्छ उत्प्रेरक आर0एन0ए0 होते हैं जो कि विशेष रूप से किसी विषाणु के आर0एन0ए0 से जुड़ तथा उस आर0एन0ए0 को नष्ट कर सकती है(**हेजलॉफ एण्ड गारलेइन**, 1998; **केख**, 1992; **हेम्पल**, 1998)। राइबोजाइम के लक्ष्य स्थान में एनयूएच होना चाहिये(एन–कोई भी न्यूक्लियोटाइड; एच–सी/यू/ए) । राइबोजोम के उत्प्रेरक क्षेत्र में 11–13 कंजर्वड न्यूक्लियोटाइड होने चाहिये तथा तोड़ने वाले स्थान के बगल में एच होना चाहिए(**हेजलॉफ व गर्लीन**, 1998; **केख**, 1992; **हेम्पल**, 1998) टूटने के बाद 5′ प्रोडक्ट विद 2′, 3′ साइक्लिक फॉस्फेट तथा 3′ प्रोडक्ट विद ए 5′ हाइड्रॉक्सिल ग्रुप बनता है।

7. भविष्य में जीन उपचार के परिप्रेक्ष्य एवं निष्कर्ष

आज एच0आई0वी0 के विरूद्ध टीके हैं पर वह बस संक्रमण फैलने की तीव्रता को कम कर सकते हैं पर संक्रमण को रोक नहीं सकते हैं। पर शीघ्र ही जन्मी जीन उपचार की प्रणाली ने हमें ऐसा सुरक्षित व सटीक रास्ता दिखाया है जिसके द्वारा एड्स संक्रमण का समाप्त किया जा सकता है। अस्थि मज्जा से निकाली गई स्टेम कोशिका अनेक प्रकार के परिवर्तन

जैसे खंडित सीसीआर5 व सीएक्ससीआर4 के जीन डालना या ऐसे जीन जो कि इंटीग्रेज, रिवर्स ट्रांसक्रिपटेज या प्रोटीऐज जो कि विषाणु के इन्जाइम है उनके कार्यों को रोके या ऐसे जीन डाले जिनके आरएनए, विषाणु के आरएनए को नष्ट करने में सक्षम हो। इनमें से अधिकतर ने काफी अच्छे परिणाम दिये है पर ये पाया गया कि इनमें कोई भी विधि अकेले उतना कारगर साबित नहीं हुआ जितना ये दो या तीन के जोड़ी में उपयुक्त था। अपितु जीन उपचार ने काफी अच्छे परिणाम दिये हैं पर अभी भी इन्हें सीधे मनुष्यों पर प्रयोग नहीं किया गया है। अभी भी इस प्रकार प्रणाली की जाँच की जा रही है। भविष्य में ये आशा है कि जीन उपचार प्रयोग के द्वारा ही समाज में एड्स संक्रमण को समाप्त किया जायेगा।

संदर्भ

1. ऐन, डी0 एस0; डोनाहयू, आर0 ई0; पून, बी0; मेत्जगर, एम0 व अन्य(2007) स्टेबल रिडक्शन ऑफ सीसीआर5 बाई आर0एन0ए0 थ्रू हेमाटोपोइटिक स्टेम सेल ट्रांसप्लांट इन नॉनहयूमन प्राइमेट्स, प्रोसी0 नेश0 ऐकड0 साइंस, यू0 एस0 ए0, खण्ड 104, मु0 पृ0 13110–13115।
2. एंडरसन, जे0 तथा अक्कीना, आर0(2007) कम्प्लीट नॉकडाउन ऑफ सी0सी0आर0 5 बाई लेनट्रिवियल वेक्टर–एक्सप्रेस्ड एस0आई0आर0एन0ए0 एण्ड प्रोटेक्शन ऑफ ट्रांसजेनिक मेक्रोफेजेस अगेंस्ट एच0आई0वी0–1 इंफेक्शन, जीन थिरे0, खण्ड 14, मु0 पृ0 1287–1297।
3. एंडरसन, जे0 तथा अक्कीना, आर0(2008) हयूमन इम्यूनोडिफिसियेंसी वायरस टाइप 1 रेस्ट्रिक्शन बाई हयूमन–रहेसस काइमेरिक ट्राइपर्टाइट मोटिफ5अल्फा(टी0आर0आई0एम05अल्फा) इन सी0डी034( ) सेल–डिराइव्ड मैक्रोफेजेस इन विट्रो एण्ड इन टी0 सेल्स इन वाइवो इन सिवियर कंबाइंड इम्यूनोडिफिशिएंट (एस0सी0आई0डी0–एच0यू0) माइस ट्रांसप्लांटेड विद हयूमन फीटल टिश्यू, जीन थिरे0, खण्ड 19, मु0 पृ0 217–228।
4. एंडरसन, जे0 एस0; जेवियन, जे0; नोल्टा, जे0 ए0 तथा बॉवर, जी0(2009) प्रीइंटीग्रेशन एच0आई0वी0–1 इंहीबिशन बाई ए कांबिनेशन लेंटीवाइरल वेक्टर कंटेनिंग ए काईमेरिक टी0आर0आईएम05अल्फा प्रोटीन, ए सी0सी0आर05 एस0एच0आर0एन0ए0, एण्ड ए टी0ए0आर0 डिकॉए, मॉलि0 थिरे0, खण्ड 17, मु0 पृ0 2103–2114।
5. ऐंड्रीज, के0; ऐजिज्न, एच0; थियेलेमन्स, टी0; लुडोविसी, डी0; कुकला, एम0; हीरेज, जे0; जेनसेन, पी0; डी0 कोर्टे बी0; विंगरहॉएट्स, जे0, पॉवेल्स, आर0 तथा डि बेथ्यून, एम0पी0(2004) टी0एम0सी0125, ए नॉवेल नेक्स्ट–जेनेरेशन नॉनन्यूक्लियोसाइड रिवर्स ट्रांसकिप्टेज इनहिबिटर–रेजिस्टेंस हयूमन इम्यूनोडिफीशिएंसी वायरस टाइप 1, एण्टीमाइक्रोब एजेंट्स कीमोथेर0, खण्ड 48, मु0 पृ0 4680–4686। (डीओआई:10.1128/एएसी.48.12.4680–4686.2004)
6. वाहल, ऐंजिला; स्वांसन, माइकल डी0; नोकी, टोमोनोरी; ओलिसेन, रिक्की; डेंटन, पॉल डब्ल्यू; चेटियू, मॉर्गन तथा गार्सिया, जे0 विक्टर(2012) हयूमन ब्रेस्ट मिल्क एण्ड एण्टीरेट्रोवाइरल्स ड्रामाटिकली रिड्यूस ओरल एच0आई0वी0–1 ट्रांसमिशन इन बीएलटी हयूमनाअज्ड माइस, पीएलओएस पैथोजे0, खण्ड 8, अंक 6: ई1002732।(डीओआई: 10.1371/जर्नल.पीपीएटी.1002732)
7. बेली, एच0; टाउनसेंड, सी0एल0; कोर्टिना–बोर्जा एम0; थोर्न, सी0(2013) फॉर द यूरोपियन कोलेबोरेटिव स्टडी इन यूरो कूर्ड: इंप्रूवमेंटस इन वाइरोलॉजिकल कंट्रोल अमंग यूमेन कंसीविंग ऑन सीएआरटी इन वेस्टर्न यूरोप, ऐड्स, जून 03, 2013।
8. बर्जर, ई0ए0 एवं अन्य(1999) केमोकिन रिसेप्टर्स एज एच0आई0वी0–1 कोरिसेप्टर्स: रोल इन वाइरल एण्ट्री, ट्रोपिज्म, एण्ड डिसीज, एन0 रिव0 इम्यूनोलॉजी, खण्ड 17, पृ0 657।
9. लेमोथ, बेट्टी तथा जोशी, साधना(2000) करेंट डेवलेपमेंटस एण्ड फ्यूचर प्रोस्पेक्ट्स फॉर एच0आई0वी0 जीन थेरेपी यूजिंग इंटरफेरिंग आरएनए बेस्ड स्ट्रेटिजीज, फ्रंटियर्स इन बायोसाइंस, खण्ड 5, मु0 पृ0 527–555।
10. बिरिख, के0 आर0; हीटन, पी0ए0 तथा एक्स्टीन, एफ0(1997) द स्ट्रक्चर, फंक्शन एण्ड एप्लीकेशन ऑफ द हैमरहेड राइबोजाइम, यूरो0 ज0 बायोकेम0, खण्ड 245, मु0 पृ0 1–16।
11. कैनन, पी0 तथा जून, सी0(2011) केमोकिन रिसेप्टर 5 नॉकआउट स्ट्रेटिजीज(रिव्यू), करें0 ओपिन0 एच0आई0वी0 एड्स, खण्ड 6, मु0 पृ0 74–79।
12. केक, टी0 आर0(1992) केटलिटिक आरएनए: स्ट्रक्चर एण्ड मिकेनिक्स, होप0 मेम0 लेक0, खण्ड 21, मु0 पृ0 229–234।
13. कोहली, एच0; फैन, बी0; जोशी, आर0 एल0; रेमजनी, एक्स0 ली तथा जोशी, एस0(1994) इंहिबिशन ऑफ एच0आई0वी0–1 मल्टीप्लिकेशन इन ए हयूमन सीडी4+लिम्फौइड सेल लाइन एक्सप्रेसिंग एण्टीसेंस एण्ड सेंस आरएनए मॉलिकयूल्स कंटेनिंग एच0आई0वी0–1 पैकेजिंग सिग्नल एण्ड आरआरईज, एण्टीसेंस रिस0 डेव0, खण्ड 4, मु0 पृ0 19–26।

14. कोरे, एल0; वाल्ड, ए0; सेलम, सी0 एल0; क्यूनि, टी0 सी0(2004) द इफेक्टस ऑफ हर्पस सिम्पलेक्स वायरस–2 ऑन एच0आई0वी0–1 एक्विजिशन एण्ड ट्रांसमिशनः ए रिव्यू ऑफ टू ओवरलैपिंग एपिडेमिक्स, ज0 एक्वायर इम्यून डिफिशि0 सिंड्रोम, खण्ड 35, मु0 पृ0 435–445।
15. पीटरसन, सी0 डब्ल्यू; यूनान, पी0; जेरोम, के0 आर0; तथा किएम(2013) कांबिनेटोरियल एण्टी एच0आई0वी0 जीन थेरेपी: यूजिंग ए मल्टीप्रोंज्ड एप्रोच टू रीच बियोंड हार्ट, एण्टी एच0आई0वी0 जीन थेरेपी ऐप्रोचेज, मैकमिलन पब्लिशर्स लिमिटेड।
16. डमॉड, एफ0; ब्रन–वेजिनेट, एफ0; मेथरॉन, एस0; पेटाविन, जी0; कैम्पा, पी0; प्यूयो, एस0; मम्मानो, एफ0; लेस्टर, एस0; फरफरा, आई; साईमन, एफ0, चेन, जी0 तथा डेसकेम्पस, डी0(2005) पॉलीमारफिज्म ऑफ द ह्यूमन इम्यूनो डिफिशिएंसी वाइरस टाइप 2 प्रोटीज जीन एण्ड सेलेक्शन ऑफ ड्रग रेजिस्टेंस म्यूटेशंस इन एच0आई0वी0–2 इंफेक्टेड पेशेंट्स ट्रीटेड विद प्रोटीज इंहिबिटर्स, ज0 क्लिनि0 माइक्रोबाय0, खण्ड 43, मु0 पृ0 484–487।(डीओआई: 10.1128/जेसीएम.43.1.484–487.2005)
17. डिंग, एस0 एफ0; नौरोन्हा, जे0 एण्ड जोशी, एस0(1998) को–पैकेजिंग ऑफ सेंस एण्ड एण्टीसेंस आरएनएज: ए नौवेल स्ट्रेटिजी फॉर ब्लॉकिंग एच0आई0वी0–1 रेप्लिकेशन, न्यूक्लि0 एसिड्स रिस0, खण्ड 26, मु0 पृ0 3270–3278।
18. डिंग, एस0 एफ0; लोम्बार्डी, आर0, नजेरी, आर0 तथा जोशी, एस0(2002) ए कांबिनेशन एण्टी–एच0आई0वी0–1 जीन थेरेपी एप्रोच यूजिंग ए सिंगल ट्रांसक्रिप्शन यूनिट दैट एक्सप्रेसेज एण्टीसेंस, डिकॉय, एण्ड सेंस आरएनएज, एण्ड ट्रांस–डॉमिनेंट निगेटिव म्यूटेंट गेज एण्ड ईएनवी प्रोटीन्स, फ्रंट बायोसाइंस, खण्ड 7:ए, मु0 पृ0 15–18।
19. एमरमैन, एम0 तथा मलिम, एम0 एच0(1998) एच0आई0वी0–1 रेगुलेटरी/एस्सेसरी जीन: कीज टू अनरेवेलिंग वाइरल एण्ड होस्ट सेल बायलॉजी, साइंस, खण्ड 280, मु0 पृ0 1880–1884।
20. फिडेली, यू0 एस0; एलेन, एस0 ए0; मुसोन्डा, आर0, ट्रास्क, एस0; हाहन, बी0 एच0 एवं अन्य(2001) वायरोलॉजी एण्ड इम्यूनोलॉजिक डिटर्मिनेंट्स ऑफ हीट्रोसेक्सुअल ट्रांसमिशन ऑफ ह्यूमन इम्यूनो डिफिशिएंसी वायरस टाइप–1 इन अफ्रीका, एड्स रिस0 हयूम0 रेट्रोवायरसेज, खण्ड 17, मु0 पृ0 901–910।
21. हेम्पेल, ए0(1998) द हेयरपिन राइबोजाइमः डिस्कवरी, टू डायमेंशनल मॉडल, एण्ड डेवेलपमेंट फॉर जीन थेरेपी, प्रोग0 न्यूक्लि0 एसिड्स रिस0 मॉल0 बायलॉ0, खण्ड 58, मु0 पृ0 1–39।
22. किएम, हांस–पीटर; जेरोम, कौथ आर0; डीक्स, स्टीवेन जी0 तथा मक्क्यून, जोसेफ एम0(2012) हेमटोपोएटिक स्टेम सेल–बेज्ड जीन थेरेपी फॉर एच0आई0वी0 डिजीज, स्टेम सेल, खण्ड 10, अंक 2, मु0 पृ0 137–147।(डीओआई: 10.1016/जे.स्टेम.2011.12.015)
23. हेजलॉफ, जे0 तथा गर्लाक, डब्ल्यू0 एल0(1988) सिंपल आरएनए इंजाइम्स विद न्यू एण्ड हाइली स्पेसिफिक एण्डोराइबोन्यूक्लीज एक्टिविटीज, नेचर, खण्ड 334, मु0 पृ0 585–591।
24. हेन्स, बी0 एफ0, गिल्बर्ट, पी0 बी0, मक्एलार्थ, एम0 जे0, जोला–पाजनर, एस0; टोमारस, जी0 डी0(2012) इम्यून–कोरिलेट्स एनालिसिस ऑफ एन एच0आई0वी0–1 वैक्सीन ऐफिकेसी ट्रायल, एन0 एंगल0 ज0 मेडि0, खण्ड 366, मु0 पृ0 1275–1286।
25. हुआंग, वाई एवं अन्य(1996) द रोल ऑफ ए म्यूटेंट सीसीआर5 एलेल इन एच0आई0वी0–1 ट्रांसमिशन एण्ड डिजीज प्रोग्रेशन, नेश0 मेडि0, खण्ड 2, मु0 पृ0 1240–1243।
26. हटर, जी0 एवं अन्य(2009) लॉन्ग–टर्म कंट्रोल ऑफ एच0आई0वी0 बाय सीसीआर5 डेल्टा32/डेल्टा32 स्टेम–सेल ट्रांसप्लांटेशन, एन0 एंगल0 ज0 मेडि0, खण्ड 360, मु0 पृ0 692–698।
27. चुंग, जेनेट; डिगियुस्तो, डेविड एल0 तथा रोस्सी, जॉन जे0(2013) बेकमान रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ सिटी ऑफ होप, डिपार्टमेंट ऑफ मॉलिक्युलर एण्ड सेल बायलोजी, ड्यूआर्ट, कैलिफोर्निया, यूएसए, कांबिनेटोरियल आरएनए–बेज्ड जीन थेरेपी फॉर द ट्रीटमेंट ऑफ एच0आइवी0/एड्स, एक्सपर्ट ओपिनि0 बायलो0 थेरे0, खण्ड 13, अंक 3, मु0 पृ0 437–445।
28. जोन, ई0; चेन, राशेल एक्स; मक्जी, जीनाइन; नैशे, कैथरीन; पोलार्ड, रिचर्ड बी0; अबेदी, मेहरदाद; बावर, जेरहार्ड; नोल्टा, जेन ए0 तथा एण्डरसन, जोसेफ(2012) जनरेशन ऑफ एन एच0आइवी0–1–रेजिस्टेंस इम्यून सिस्टेम विद सीडी34 हेमाटोपोएटिक स्टेम सेल्स ट्रांसड्यूज्ड विद ए ट्रिपल–कांबिनेशन एण्टी–एच0आइवी0 लेंटीवाइरल वेक्टरः कॉपीराइट © 2012, अमेरिकन सोसायटी फॉर माइक्रोबायलोजी।(डीओआई: 10.1128/जेवीआई.06300–11)
29. लापाडुला, जी0; कोज्जी–लेप्री, ए0; मर्शेटटी, जी0; एण्टीनोरी, ए0; किओडेरा, ए0; निकास्ट्री, ई0; पर्रूटी, जी0; गेल्ली, एम0; गोरी, ए0 तथा मॉनफोर्ड, एड(2013) रिस्क ऑफ क्लिनिकल प्रोग्रेशन अमंग पेशेंट्स विद इम्यूनोलॉजिकल नॉन रेस्पॉन्स डिस्पाइट वायरोलॉजिकल सप्रेशन आफ्टर कांबिनेशन एण्टीरेट्रोवायरल ट्रीटमेंट, आईसीओएनए फाउंडेशन स्टडी, एड्स, खण्ड 27, अंक 5, मु0 पृ0 769–790।(डीओआई: 10.1097/क्यूऐडी.0बी013ई32835सीबी747)

30. लियू, आर0 एवं अन्य(1996) होमोजाइगस डिफेक्ट इन एच0आई0वी0–1 को–रिसेप्टर एकाउंटस फॉर रेजिस्टेंस ऑफ सम मल्टिपली एक्सपोज्ड इंडिविजुअल्स टू एच0आई0वी0–1 इंफेक्शन, सेल, खण्ड 86, मु0 पृ0 267–377।
31. लोल, के0 एस0; बोलिंगर, आर0 सी0; परांजपे, आर0 एस0; गडकरी, डी0; कुलकर्णी, एस0 एस0 एवं अन्य(1999) फुल लेंगथ ह्यूमन इम्यूनो डिफिशिएंसी वायरस टाइप 1 जीनोम्स फ्राम सबटाइप सी–इंफेक्टेड सेरोकंवर्टर्स इन इण्डिया, विद एविडेंस ऑफ इंटरसबटाइप रिकांबिनेशन, ज0 वायरोल0, खण्ड 73, मु0 पृ0 152–160।
32. "ग्लोबल एपिडेमिक डाटा एण्ड स्टेटिस्टिक्स", विश्व स्वास्थ्य संगठन, डाटा 2010, वेब पता: http://www.who.int/hiv/data/global_data/en/index.html
33. पेरेज, ई0 ई0; वांग, जे0; मिलर, जे0 सी0; जूवेनॉट, वाई; किम, के0 ए0; लियू, ओ0 एवं अन्य(2008) इस्टेबलिशमेंट ऑफ एच0आई0वी0–1 रेजिस्टेंस इन सीडी4 टी सेल्स बाय जीनोम एडिटिंग यूजिंग जिंक–फिंगर न्यूक्लीजेज, नेश0 बायोटेक्नोलॉ0, खण्ड 26, मु0 पृ0 808–816।
34. वुड, पीटर(2006) अंडरस्टैंडिंग इम्यूनोलॉजी, द्वितीय संस्करण, पियरसन एजुकेशन लिमिटेड, नई दिल्ली, पीएमआईडी: 23719349।
35. मेडिनास, आर0 जे0; लैम्बर्ट, डी0 एम0 तथा टोम्पकिन्स(2002) सी–टर्मिनल जीपी40 पेप्टाइड एनालॉग्स इंहिबिट फेलिन इम्यूनो डिफिशिएंसी वायरस:सेल फ्यूजन एण्ड वायरस स्प्रेड, ज0 वायरोल0, खण्ड 76, अंक 18, मु0 पृ0 9079–9086।(डीओआई: 10.1128/जेवीआई.76.18.9079–9086.2002)
36. खान, राज(2010) इम्यूनोलॉजी, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
37. सॉयर, एस0 एल0; एमरमैन, एम0 तथा मलिक, एच0 एस0(2005) पॉजिटिव सेलेक्शन ऑफ प्राइमेट ट्रिम5एल्फा आइडेंटिफाइज ए क्रिटिकल स्पेसीज–स्पेसिफिक रेट्रोवायरल रेस्ट्रिक्शन डोमेन, प्रोसी0 नेश0 एकेडे0 साइ0, यूएसए, खण्ड 102, मु0 पृ0 2832–2837।
38. शिमिजू, एस0; हांग, पी0; अरुमुगम, बी0; पोकोमो, एल0; बोयर, जे0 एवं अन्य(2010) ए हाइली एफिशिएंट शॉर्ट हेयरपिन आरएनए पोटेन्टली डाउन–रेगुलेट्स सीसीआर5 एक्सप्रेशन इन सिस्टेमिक लिम्फोइड ओर्गनस इन द एचयू–बीएलटी माउस मॉडल, ब्लड, खण्ड 115, मु0 पृ0 1534–1544।
39. सोरेंटिनो, एस0 तथा लिबोनाटी, एम0(1997) स्ट्रक्चर–फंक्शन रिलेशनशिपस इन ह्यूमन आर0 नेसेज: मेन डिस्टिंक्टिव फीचर्स ऑफ द मेजर आर0 नेस टाइपस, एफईबीएस लेट0, खण्ड 404, मु0 पृ0 1–5।
40. सेंटोज, स्टीवन; ओबूखोव, यूरी; नेखाई, सर्जेई; बकरिंसकी, माइकल तथा इओर्डान्सकी, सर्जेई(2012) वायरस–प्रोड्यूजिंग सेल्स डिटरमिन द होस्ट प्रोटीन प्रोफाइल्स ऑफ एच0आई0वी0–1 विरियन कोर्ज।(डीओआई: 10.1186/1742–4690–9–65)
41. स्टीफन, एच0 ई0 कॉफमैन तथा मक्माइकल, एण्ड्रयूज जे0(2005) एनवलिंग ए डेंजरस लायजन: वैक्सिनेशन स्ट्रेटिजीज अगेंस्ट एड्स एण्ड टयूबरक्यूलोसिस नेचर मेडिसिन, खण्ड 11, मु0 पृ0 एस33–एस44। (डीओआई: 10.1038/एनएम1221)
42. स्ट्रेमलॉ, एम0 एवं अन्य(2004) द साइटोप्लाज्मिक बॉडी कंपोनेंट ट्रिम5एल्फा रेस्ट्रिक्ट्स एच0आई0वी0–1 इंफेक्शन इन ओल्ड वर्ल्ड मंकीज, नेचर, खण्ड 427, मु0 पृ0 848–853।
43. तंग, जे0; शाओ, डब्ल्यू0; यू, वाई0 जे0; ब्रिल, आई0; मुलेंगा, जे0 एवं अन्य(2008) ह्यूमन ल्यूकोसाइट एण्टीजेन क्लास वन जीनोटाइप्स इन रिलेशन टू हीटरोसेक्सुअल एच0आई0वी0 टाइप वन ट्रांसमिशन विदिन डिस्कोर्डेन्ट कपल्स, ज0 इम्यूनोलॉजी, खण्ड 181, मु0 पृ0 2626–2635।
44. टैनर, एन0 के0(1999) राइबोजाइम्स: द कैरेक्टरिस्टिक्स एण्ड प्रोपर्टीज ऑफ केटेलिटिक आरएनएज, एफईएमएस, माइक्रोबायोलॉ0 रिव्यू, खण्ड 23, मु0 पृ0 257–275।
45. ट्रोनो, डी0(1995) एच0आई0वी0 एक्सेसरी प्रोटीनस: लीडिंग रोल्स फॉर द सपोर्टिंग कास्ट, सेल, खण्ड 82, मु0 पृ0 189–192।
46. डहलेनबेक, ओ0 सी0(1987) ए स्माल केटेलिटिक ओलिगोन्यूक्लियोटाइड, नेचर, खण्ड 328, मु0 पृ0 596–600।
47. वान रिज, आर0 पी0 तथा एण्डिनो, आर0(2006) द साइलेंट ट्रीटमेंट: आरएनएआइ एज ए डिफेंस अगेन्स्ट वायरस 676 इंफेक्शन इन मेम्मल्स, ट्रेंड्स बायोटेक्नोला0, खण्ड 24, मु0 प्र0 186–193।
48. वेरीज, जी0; ऐस्काइच, एस0; बाकर, जे0; बार्स्क, सी0; काल्फोग्लू, एच0 आइल्व्स; कानेशिमा, एच0 तथा वोहनलीन(1996) इंट्रासेल्युलर एक्सप्रेशन ऑफ आरएनए ट्रांसक्रिप्टस कांपलिमेंटरी टू द एच0आई0वी0–1 जीएजी जीन इंहिबिट्स वाइरल रेप्लिकेशन इन ह्यूमन सीडी4+लिम्फोसाइट्स, ज0 वायरोला0, खण्ड 70, मु0 पृ0 8792–8800।

49. वेरीज, जी0; जुंकर, यू0; बेकर, जे0; बार्स्क, सी0; काल्फोग्लू, एच0 आइल्व्स; एस्काइच, एस0; कानेशिमा, एच0 तथा बोहनलीन(1998) कंपेरेटिव एनालिसिस ऑफ इंट्रासेल्युलरली एक्सप्रेस्ड एण्टीसेंस आरएनएज एज इंहिबिटरस ऑफ एच0आईवी0–1 रेप्लीकेशन, ज0 वायरोला0, खण्ड 72, मु0 पृ0 1894–1901।

50. ग्रीन, वार्नर सी0(1990) रेग्यूलेशन इफ एच0आई0वी0–1 जीन एक्सप्रेशन, खण्ड 8, मु0 पृ0 453–475।

51. विलेन, सी0 बी0; वांग, जे0; टिल्टन, जे0 सी0; किम, के0 ए0; रेबर, ई0 जे0 एवं अन्य(2011) इंजीनियरिंग एच0आई0वी0 रेजिस्टेंस ह्यूमन सीडी4 टी सेल्स विद सीएक्ससीआर4–स्पेसिफिक जिंक–फिंगर न्यूक्लिएसेस, पीएलओएस पेथोजेन, खण्ड 7, ई1002020।

52. यूआन, जे0; वांग, जे0; क्रेन, के0; फर्नस, सी0; किम, के0 ए0; हुआ, के0 एल0 एवं अन्य(2012) जिंक–फिंगर न्यूक्लिएस एडिटिंग ऑफ ह्यूमन सीएक्ससीआर4 प्रमोट्स एच0आई0वी0–1 सीडी4(पी) टी सेल रेजिस्टेंस एण्ड एनरिचमेंट, मॉलि0 थेरे0, खण्ड 20, मु0 पृ0 849–859।

ओसबोर्न रेनॉल्डस - उनके योगदान पर संक्षिप्त समीक्षा

दीपक कुमार श्रीवास्तव[1] एवं निर्मल श्रीवास्तव[2]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर, [2]प्रोजेक्ट फैलो-गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ-226001(उ0 प्र0) भारत
dksflow@hotmail.com, nirmalsri.25@gmail.com



ओसबोर्न रेनॉल्डस (1842–1912)

सार

प्रस्तुत लेख में ओसबोर्न रेनॉल्डस, जो कि एक प्रतिष्ठित व्यक्तित्व एवं इंजीनियरिंग के क्षेत्र में अपने विशेष योगदान के लिए प्रसिद्ध है, की संक्षिप्त जीवनी सहित उनके शोध कार्य की समीक्षा की गयी है।

बीज शब्द : ओसबोर्न रेनॉल्डस, रेनॉल्डस संख्या

ए0 एम0 एस0 विषय वर्गीकरण संख्या : 76 डी 07

Osborne Reynolds: a brief review over his contribution

Deepak Kumar Srivastava[1] and Nirmal Srivastava[2]
[1]Associate Professor, [2]Project Fellow
Department of Mathematics
B. S. N. V. P. G. College
Station Road, Charbagh, Lucknow(U.P.)-226001, India
dksflow@hotmail.com

Abstract

In the present article, a brief biography of Osborne Reynolds, a highly reputed personality as far as fluid mechanics is concern, together with his overall contribution in the field of engineering and fluid mechanics has been reviewed.

Key words: Osborne Reynolds, Reynolds number.

AMS Subject Classification: 76 D 07

ओसबोर्न रेनॉल्डस ने विक्टोरियन इंग्लैण्ड में उस समय जन्म लिया जब इंजीनियरिंग तुलनात्मक रूप से विज्ञान न होकर एक कला थी किन्तु उस समय इंजीनियरिंग परियोजनाओं को सतत् रूप से जारी रखने और परिमाण की जटिलता विकसित करने के लिए अनुभव एवं अन्तःज्ञान ही पर्याप्त नहीं था। रेनॉल्डस ने अपना सम्पूर्ण जीवन विज्ञान को समर्पित किया और अपने प्रकाशनों विशेषतया द्रव गतिकी एवं ऊष्मा गतिकी के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। रेनॉल्डस का जन्म 23 अगस्त 1842 को बेल फास्ट, आयरलैण्ड में हुआ था वह एक अंग्रेज पादरी के घर से सम्बन्ध रखते थे। उनके पिता, रेव् ओसबोर्न रेनॉल्डस ने उनको बहुत कम उम्र में ही शिक्षा का महात्व समझाया था। उनके पिता क्वींस कालेज के फेलो, बेलफास्ट कॉलेज के प्राचार्य, धीम ग्रामर स्कूल के प्रधान शिक्षक एवं बाद में रेक्टर स्कूल के हेड मास्टर हुए। रेनॉल्डस की प्रारम्भिक शिक्षा स्वयं इनके पिता की देख रेख में हुई जो कि स्वयं कृषि मशीनरी में विशेष रूचि रखते थे, और उन्होंने कई कृषि सुधारों सम्बन्धित लेख प्रकाशित किये। रेनॉल्डस

ने (मैनचेस्टर, 1886) अपने लेख में (लैम्ब, 1868) में लिखा है कि ओसबोर्न रेनॉल्डस अपने पिता के संरक्षण में बड़े हुये, और इन्होंने अपने पिता के मार्ग दर्शन का लाभ उठाया, जो कि एक यांत्रिकी के प्रेमी, गणित एवं भौतिकी के अनुप्रयोगों में सिद्धहस्त थे।

इसके बाद उन्होंने अपनी माध्यमिक शिक्षा निजी अध्ययन द्वारा प्राप्त की। अपनी माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् उन्होंने किसी विश्वविद्यालय में सीधे प्रवेश ना लेकर एक प्रसिद्ध अविष्कारक और यांत्रिक अभियन्ता एडवर्ड पर्थीले के संरक्षण में यांत्रिकी की शिक्षा ग्रहण की। उन्होने अपने शब्दों में लिखा है, कि "अब पर्याप्त कार्यशालाओं के विवरण से महारत हासिल करने के बाद और एक ही समय में मेरे ध्यान से मुझे पता चल गया है कि विभिन्न यांत्रिकी घटना एवं व्याख्या के लिए गणित का ज्ञान अति आवश्यक है। उसके बाद उन्होंने क्वींस कॉलेज, कैम्ब्रिज में प्रवेश लिया। जहाँ पर गणित एक महत्वपूर्ण विषय था। वह 1867 में सातवें रेगुलर स्नातक और क्वींस कालेज में एक फेलोशिप के लिए चुने गये। एक स्थानीय इंजीनियर के रूप में सेवा प्रदान करने के बाद ओसबोर्न रेनॉल्डस ने आगे की शिक्षा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से प्राप्त की। जहाँ वे एक निपुण गणितज्ञ के रूप में जाने जाने लगे। 1968 में अपनी बी0ए0 तथा एम0ए0 की शिक्षा पूर्ण करने के बाद कैम्ब्रिज से रेनॉल्डस ने लंदन में एक सिविल इंजीनियरिंग सलाहकार के कार्यालय में कार्य करना शुरू कर दिया। किन्तु एक साल के अंदर लगभग 26 वर्ष की अवस्था में उन्होने मैनचेस्टर में ओवेन्स कॉलेज से मिकैनिकल इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफेसर का पद प्राप्त कर लिया।

कार्गन ने (1970–1990) लिखा है – मेनचेस्टर के ओवेन्स कॉलेज में नवगठित प्रोफेसर पद की विज्ञिप्ति दी गयी थी जिसका वेतन 500 पाउण्ड प्रतिवर्ष था। और रेनॉल्डस ने उस पद के लिए आवेदन किया और अपने कार्य क्षेत्र की अनुभवहीनता के बावजूद भी उस पद को सुशोभित किया।

अपने इस पद के लिए आवेदन में रेनॉल्डस ने लिखा है (लैम्ब, 1912–1913) " अपने अनुस्मरण से मैं यात्रिकी को विज्ञान पर आधारित यांत्रिकी बनाने का प्रयत्न करूंगा। रेनॉल्डस ने ओवेन्स कॉलेज में व्हाइट वर्थ प्रयोगशालाओं की स्थापना ही नही की बल्कि उनको सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्धि भी दिलायी और अन्य यूरोपीय विद्यालयों के लिए अनुसंधान पर बल दिया।

इंजीनियरिंग विभाग केवल इंग्लैण्ड में अपनी तरह का दूसरा था। उन्होंने 26 वर्ष की अवस्था में इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम को तैयार किया। अपने इस उल्लेखनीय कार्य के लिए वह इंग्लैण्ड के पहले पूर्णकालिक प्रोफेसर बन गये। तथा वर्ष 1905 में सेवा निवृत्त हुए। रेनॉल्डस को विश्वास था कि प्रयोगशाला का कार्य यांत्रिकी की भांति होता है जो कि विज्ञान का एक भाग है। उन्होंने अपने विद्यार्थियों को शुद्ध तथा अनुप्रयुक्त गणित के पाठ्यक्रम के साथ–साथ भौतिकी तथा रसायन विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रेरित किया। उन्होंने अपनी यांत्रिकी प्रयोगशाला में पदार्थ की शक्ति तथा मशीनों की दक्षता मापने का अविष्कार किया। उनके अधिकांश विद्यार्थियों ने अपना भविष्य इंजीनियरिंग और विज्ञान के क्षेत्र में बनाया। जिनमें जोसफ जे. थॉमसन, जो कि नोबल पुस्कार प्राप्त, रॉयल सोसाइटी के अध्यक्ष तथा ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज के शिक्षक रहे।

रेनॉल्डस का आरम्भिक कार्य बिजली तथा चुम्बकत्व पर था किन्तु जल्द ही उन्होने अपना ध्यान जल गतिकी तथा हाइड्रोडायनामिक्स पर केन्द्रित किया। उन्होंने सूरज और धूमकेतु के विद्युत चुम्बकीय गुणों पर भी कार्य किया है तथा नदियों और ज्वार प्रस्तावों पर विचार प्रस्तुत किया है। वर्ष 1873 के बाद से रेनॉल्डस ने केवल द्रव गतिशीलता पर मुख्य रूप से ध्यान केन्द्रित किया जो कि विश्व में प्रमुख महत्व रखता है। उन्होने वायु तथा जल के सम्पर्क में आने एवं उससे उत्पन्न होने वाले प्रभावों पर भी अध्ययन किया है। जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने जहाजों के मॉडल प्रस्तुत किये तथा बताया कि उन्हें किस प्रकार अधिक दक्ष बनाया जाय। और आगे चलकर उनका यह कार्य पम्प प्रणाली को अच्छी तरह समझाने में सहायक हुआ। और वर्ष 1875 में रेनॉल्डस ने एक मल्टी स्टेज स्ट्रीम टरबाइन का निर्माण किया। उनका यह कार्य रायॅल सोसाइटी (वर्ष 1877) में चुनाव के लिए भेजा गया। किन्तु यह 1883 में प्रकाशित हुआ। वर्ष 1885 में (समांतर चैनलों में प्रतिरोध का नियम) तथा 1889 में हाइड्रोडायनामिक स्थिरता के विषयों में अपने प्रकाशनों के बाद रेनॉल्डस विश्वविख्यात हो गये। रेनॉल्डस ने मौलिक आयामविहीन पैरामीटर की खोज की जिसे 'रेनॉल्डस संख्या' के नाम से जाना जाता है। जिसका प्रवाहित द्रव के व्यवहार विशेषता के परीक्षण में प्रयोग किया जाता है। यह एक अनुपात है जो कि किसी माध्यम में श्यानता को प्रभावित करता है तथा लैमिनर तथा अशांत प्रवाह के बीच सामंजस्य स्थापित करता है।

लेखक ने लिखा – "उनके अध्ययन से ठोस तथा तरल पदार्थ के बीच घनत्वीकरण तथा उष्मा हस्तांतरण, बॉयलर तथा कन्डेनसर डिजाइनों में व्यापक संशोधन कर टरबाइन यंत्र के निर्माण कार्य को तेजी से विकसित किया।"

रेनॉल्डस ने स्नेहन का सिद्धांत (1886) विकसित किया तथा द्रव यांत्रिकी में प्रयोग होने वाले मानक की गणितीय संरचना विकसित की। रेनॉल्डस ने केवल मौलिक सिद्धांतों का ही विकास नही किया बल्कि उन्होने कई इंजीनियरिंग समस्याओं, भाप एवं गैस प्रवाह के संघनन से नदियो एवं ज्वार गति तक की समस्याओं के निराकरण हेतु कई अनुप्रयोग किये। उन्होंने अपने कार्यालय की अवधि के दौरान शारीरिक एवं इंजीनियरिंग घटनाओं के सभी प्रकार के कार्य में उत्तम गुणवत्ता का कार्य प्रस्तुत किया। इंजीनियरिंग विज्ञान में उनका योगदान अद्वितीय है। रेनॉल्डस को कई औपचारिक सम्मानों से सुशोभित किया गया जिनमें वह 1882 में क्वींस के मानद फैलो, 1877 में रॉयल सोसाइटी (जिसमें वर्ष 1888 में रॉयल पदक प्राप्त किया) के फेलो, तथा विश्वविद्यालय मानद विधि का सम्मान, वर्ष 1884 में ग्लासगो विश्वविद्यालय से प्राप्त किया। वर्ष 1888 में मैनचेस्टर साहित्यिक एवं दार्शनिक सोसाइटी का अध्यक्ष पद भी संभाला। उन्हें वर्ष 1903 में डॉल्टन पदक से सम्मानित किया गया। तथा अपनी सेवनिवृत्ति से पूर्व उनके संग्रहित कार्य, जो कि यांत्रिकी एवं भौतिकी विषयों पर आधारित थे, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस द्वारा तीन खण्डों में प्रकाशित किये गये।

विज्ञान के सभी छात्रों को एपीनिमोज संख्या तथा रेनॉल्डस के सम्बन्धित / संयुक्त समीकरणों के बारे में अच्छा ज्ञान प्राप्त था। लैमिनर तथा अशांत प्रवाह के मध्य संक्रमण से सम्बन्धित एक आयामरहित समूह को विकसित किया तथा बाद में तरल पदार्थ के गणितीय वर्णन का भी आंकलन प्रस्तुत किया है। लैमिनर प्रवाह तथा अशांत बवंडर की गति के बीच सामंजस्य स्थापित करना एक सामान्य आदमी भी आसानी से समझ सकता है। किसी

शुष्क मुक्त कमरे में सिगरेट से उठते हुए धुँऐ का मॉडल उसी प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है जिस प्रकार किसी पानी से भरे टैंक में काँच की एक छड़ द्वारा स्याही गिरायी जाती है और स्याही की बूँद पानी के टैंक में उसी प्रकार ट्रेस होती है जिस प्रकार सिगरेट से उठता हुआ धुआँ एक सीधी रेखा में उठता है तथा फिर गोल छल्लो में विमक्त हो जाता है। रेनॉल्डस ने इन पदार्थों तथा तरल माध्यम की श्यानता के मध्य सम्बन्धों को वर्णित किया जो कि लैमिनर या अशांत प्रवाह द्वारा निर्धारण किया जाता है। उसके बाद उन्होंने अनेक मौलिक कार्यों एवं समीकरणों की स्थापना की जो कि अशांत प्रवाह द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। तथा आधुनिक कम्प्यूटरीकृत विश्लेषण उपचार के आधार पर कम्प्यूटेशनल द्रव यांत्रिकी के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। अपने प्रारम्भिक जीवन काल में ओसबोर्न रेनॉल्डस ने मैनचेस्टर में अपना एक व्याख्यान 'देश की सामाजिक स्थितियों की तुलना में इंजीनियरिंग की प्रगति' प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने कहा कि परिणाम चाहे जो भी हो, चाहे वह किसी श्रमिक का, या किसी रेल नेटवर्क, भारी बन्दूकों में या तात्कालिक संचार में या पुलों के निर्माण में प्रयोग होता है, हमें अपने स्तर की तुलना करनी होगी। परिवर्तन स्पष्ट है। जनसंख्या दोगुनी हो गयी है, जो कि एक सदी की वापसी है लोगों के पास अच्छे घर, विलासिता पूर्ण जीवन, धन, अब समान रूप से सभी वर्गों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इन फायदों के साथ कुछ कमियाँ भी हैं। इन्हीं जैसे कई मामलों ने राष्ट्रीय महत्व को ग्रहण किया है। और ऐसे ही उपाय प्रदान करने के लिए इंजीनियरिंग प्रौद्यौगिकी नियमों का निर्माण किया गया है।
उपरोक्त शीर्षक को ध्यान में रखते हुए रेनॉल्डस ने कई लेख लिखे हैं और दैनिक कार्यों के अनुप्रयोगों का भी वर्णन किया है। 'सीवर गैस को किस प्रकार अपने घरों से दूर रखें' शीर्षक मेनेचेस्टर की मलिन बस्तियों में रखने वाले क्षणों को ध्यान में रखते हुए लिखा है। तथा एक स्पष्ट संकेत का बेहतर साधन और संचार की उचित प्रबन्ध रेल यात्रियों, चालक एवं सुरक्षा गार्ड तक पहुंचाने पर बल दिया क्योकि वर्ष 1860 में उचित संचार व्यवस्था ना होने से अक्सर दुर्घटना हो जाती थी।

यहाँ रेनॉल्डस के विशाल योगदान की समीक्षा केवल कुछ पन्नों में करना असम्भव है। उन्होंने केवल मौलिक सिद्धांतों का ही विकास नही किया अपितु उन्होने इंजीनियरिंग की कई समस्याओं जैसे जहाज प्रणोदन टर्बाइन पम्प, नदियों के ज्वरनदमुख, भाप गैस, गैस प्रवाह की उष्मा, रोलिंग घर्षण तथा स्नेहन (वर्ष 1886 में स्नेहन का सिद्धांत विकसित किया) इत्यादि पर कई अनुप्रयोग किये। रेनॉल्डस ने अपने जीवन के 37 वर्ष इंजीनियरिंग विज्ञान को समर्पित किये। तथा अपने और अपने पूर्व में आये हुए अनेक वैज्ञानिकों, इंजीनियरों के बीच सेतु के रूप में कार्य किया। तथा विश्वविद्यालयों से शिक्षित विशेषज्ञों का स्थान रेनॉल्डस ने ले लिया।

रेनॉल्डस का महत्व केवल शोध पत्रों तक ही समिति नही हैं अपितु उनका महत्व मेनचेस्टर में अनुप्रयुक्त गणित को स्थापित किया है। एण्डसरन (1997) ने लिखा है –

"रेनॉल्डस उच्च मानकों के साथ एक विद्वान व्यक्ति थे। उस समय अंग्रेजी विश्वविद्यालयों में इंजीनियरिंग की शिक्षा नयी थी और रेनॉल्डस ने उसे उचित एवं समुचित ढंग से प्रस्तुत किया। उनका विश्वास था कि सभी इंजीनियरिंग के छात्र चाहे वे किसी भी विषय विशेष के हों उनकी पृष्ठभूमि केवल गणित, भौतिकी, शस्यीय यांत्रिकी के मूल सिद्धांतों में स्थिर होनी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी गहन रूचि होने के बावजूद वह एक महान अध्यापक थे। उनके व्याख्यान का पालन करना कठिन था परन्तु वह किसी भी वैज्ञानिक दृष्टि से स्तरीय हुआ करते थे। लैम्ब (1912–13) जो कि रेनॉल्डस को भली–भाँति जानते थे। और उन्होंने एक आम आदमी के रूप में तरल गतिकी पर एक साथ कार्य किया तथा उन्होंने लिखा है–

रेनॉल्डस का चरित्र उनके जोरदार लेखन की भाँति था। वह अपने कार्य के प्रति सचेत रहते थे किन्तु अपने निर्णय वैज्ञानिक सोच के ऊपर छोड़ देते थे। विज्ञापन के लिए वह रूचि नही रखते थे उन्हें अपनी सहिष्णु मुस्कान का गर्व नही था। अपने शिष्यों के लिए वह महान थे जो उन्हें महत्वपूर्ण कार्यों के साथ सहयोग भी प्रदान करते थे। वे अपने साथियों और सहयोगियों से अनुरोध करते थे कि वह बहस में दृढ़ तथा जीवन के साधारण सम्बन्धों में या कुछ गम्भीर एवं व्यक्तिगत मामलों में जुझारू बनें। वर्ष 1900 के दशक में रेनॉल्डस का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और 1905 में उन्होने कार्य से सेवानिवृत्ति ले ली। वह इग्लैण्ड के मेनचेस्टर में यांत्रिकी इंजीनियरिंग के आचार्य के पद से सेवानिवृत्त हुए। उस समय वे लगभग 60 वर्ष के थे। और 21 फरवरी 1912 में सोमरसेट, इंग्लैण्ड में उनका निधन हो गया।

संदर्भ

1. एण्डरसन, जे0डी0 (1997) ए हिस्ट्री ऑफ एरोडायनामिक, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस।
2. एस्टेसटवोजनान, वी0 आई0 (1992) कैलेण्डर ऑफ एनिवरसरीज (रशियन भाषा में), खण्ड 1, अंक 2, मु0 पृ0 128–130।
3. डाउसन, डी0 (1987) ओसबॉर्न रेनॉल्डस सेण्टीनरी, 1886–1986, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंस्टीट्यूशन ऑफ मिकेनिकल इंजीनियर्स, खण्ड 201, मु0 पृ0 75–96।
4. लैम्ब, एच0 (1912–13) ओसबॉर्न रेनॉल्डस, प्रोसी0 रॉय0 सोस0, खण्ड 88 ए, मु0 पृ0 15–21।
5. मैक्डॉवेल, डी0 एम0 तथा जैकसन, जे0 डी0 (1970) ओसबोर्न रेनॉल्डस तथा इंजीनियरिंग साइंस टुडे, मेनचेस्टर, यू0 के0।
6. ऑबिच्यूरी (1912) द टाइम्स।
7. ओ–कॉनर जॉन जे0 तथा एडमुण्ड, एफ0 रॉबर्टसन ओसबोर्न रेनॉल्डस मैकट्यूटर हिस्ट्री ऑफ मैथमेटिक्स आर्चिव यूनिवर्सिटी ऑफ सेंट एण्ड्रयूज, स्कॉटलैण्ड।
8. रॉट, एन. (1990) नोट ऑन द हिस्ट्री ऑफ द रेनॉल्डस नम्बर, एनवल रिव्यू ऑफ फ्ल्यूड मिकेनिक्स, खण्ड 22, मु0 पृ0 1–11।

नैनो प्रौद्योगिकी–एक परिचय एवं इलेक्ट्रोनिकी का प्रयोग

रण विजय कुमार चरण
रीडर, भौतिकी विभाग
गया कॉलेज, गया(बिहार)–823001, भारत
rvkcharan@rediffmail.com

सार

प्रस्तुत लेख में नैनो प्रौद्योगिकी एवं इसमें इलेक्ट्रोनिकी, विशेषकर त्रुटि–सहिष्णु आंकिक–इलेक्ट्रोनिकी के प्रयोग का रूचिकर एवं संक्षिप्त विवरण चित्रित किया गया है।

Nano technology-An introduction and application of electronics

Ran Vijoy Kumar Charan
Reader, Department of Physics
Gaya College, Gaya(Bihar)-823001, India
rvkcharan@rediffmail.com

Abstract

In this paper a brief but interesting description of Nano-Technology and its Application to Electronics,specially to fault-tolerant Digital-Electronics has been presented.

प्रस्तावना

"नैनो प्रौद्योगिकी" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वर्ष 1974 में एक नोबेल जापानी भौतिकविद "नेरियो तानिगुछी" ने टोकियो में परमाणु के संरचना को नैनो के पैमाने के आधार पर समझाते हुए व्याख्यान देते समय किया था। अभी तक नैनो–प्रौद्योगिकी की कोई सर्वसम्मत परिभाषा तय नहीं हुई है, किन्तु मोटे तौर पर इसे परमाणुओं या अणुओं के स्तर पर पदार्थ की संरचना को नैनो के पैमाने के आधार पर चित्रित एवं परिभाषित करने को ही कहते हैं। इस नैनो प्रौद्योगिकी के आयाम को यदि लचीलापन एवं विद्युत उच्च तापीय सुचालकता के साथ–साथ दृढ़ता का संयोग दिया जाय तो इसे एक बड़े पैमाने पर व्यापारिक रूप से सूक्ष्म एवं आंकिक इलेक्ट्रोनिकी के रूप में कारखानों में प्रयुक्त किया जा सकता है। वास्तव में, इस नैनो प्रौद्योगिकी ने आधुनिक इलेक्ट्रोनिक–प्रौद्योगिकी को नया आयाम दिया है।

एक नैनो के आकार के कण की मात्रा या परिमाण(क्वांटम) की व्याख्या इसके "त्रिज्या" के आंकलन से आसानी से की जा सकती है। गणितीय रूप से एक प्रभावी रिडबर्ग–शक्ति–उत्तेजक से तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस "त्रिज्या" का मान एक प्लांक स्थिरांक(एच) बटा 1.92 गुणा "म्यूँ" (एक स्थिरांक) गुणा उस उत्तेजक की शक्ति के बराबर है। मीटर–पैमाने पर एक नैनो–मीटर एक मीटर का एक अरबवाँ भाग है। इस नैनो तकनीक पर निर्मित अभिकलित्र (कम्प्यूटर) आज के अभिकलित्र से 10,000 गुणा तेज हो सकता है। प्रायोगिक रूप से नैनो–पैमाने की सूक्ष्मता का अनुमान इस उदाहरण से लगाया जा सकता है कि एक नैनोमीटर में तीन से पाँच परमाणु तक समा सकते हैं तथा इसका आकार हमारे सिर के बाल की मोटाई के पचास हजारवें भाग से भी कम है। उदाहरणस्वरूपः माप में एक डी०एन०ए० 2 से 2.5 नैनोमीटर, प्रोटीन का एक अणु 5 से 50 नैनोमीटर, एक वायरस 75 से 100 नैनोमीटर एवं एक बैक्टीरिया 1000 से 10,000 नैनोमीटर तक का होता है। पुनः, 2 मीटर लंबा आदमी 2 अरब नैनोमीटर के बराबर होता है एवं एक हाईड्रोजन का परमाणु एक नैनोमीटर के दसवें भाग के बराबर होता है।

नैनो–प्रौद्योगिकी पर आधारित यंत्रों से किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं होता है तथा यह कई लाख गुणा तेज एवं सस्ता होता है। इस प्रकार इस नैनों–तकनीक की सूक्ष्मता एवं लाभ को आसानी से समझा जा सकता है।

नैनो–प्रौद्योगिकी में इलेक्ट्रोनिकी का प्रयोग

कुछ नैनो के आकार की धातु की नालिकाऐं विद्युत की अच्छी सुचालक होती है। अतः, इनसे एक ही विमा के अनुरूप "मोसफेट" अर्थात धातु के ऑक्सीकरण से निर्मित अर्धचालक क्षेत्र–प्रभावी ट्रांजिस्टर बनाये जा सकते हैं। इस तरह से निर्मित "मोसफेट" के इलेक्ट्रॉनिक–द्वार को एक विद्युत परिपथ में ऋणात्मक विद्युत भेज कर बंद किया जा सकता है तथा धनात्मक विद्युत भेज कर पुनः खोला जा सकता है। वास्तव में, ऋणात्मक विद्युत धनात्मक आवेषित छिद्रों की संख्या को काफी बढ़ाकर परिपथ में एक बड़ा प्रतिरोध पैदा कर द्वार को बन्द कर देता है जबकि धनात्मक विद्युत उन छिद्र–आवेषों को घटाकर प्रतिरोध घटा देता है जिससे उस "मोसफेट" का इलेक्ट्रॉनिक–द्वार खुल जाता है। यह प्रवृति एक पी–प्रकार के "मोसफेट" के अनुरूप है जबकि इस तरह की नैनो–नालिकाओं को अधिक इलेक्ट्रॉन प्रदान करने वाले "पोटेशियम" धातु से मादित कर एन–प्रकार के "मोसफेट" का भी निर्माण किया जा सकता है। यहाँ पर यह बताना सर्वथा उचित होगा कि "पी एवं एन प्रकार" का नामकरण अंग्रेजी के "एक्सेप्टर"; एवं "डोनर"; के बीच के शब्दों से किया गया है जिसका अर्थ क्रमशः इलेक्ट्रॉन की ग्रहणशीलता एवं प्रदानशीलता है। इसी पी एवं एन प्रकार के पदार्थों को नैनो–नालिकाओं में हीं मादित कर नैनो–डायोड भी बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार से निर्मित नैनो–ट्रांजिस्टर एवं नैनो–डायोड को एक ही चिप या परिपथ खंड में बहुत अधिक संख्या में सुगमता से सुसंगठित किया जा सकता है जो कि आजकल के सिलकोन–चिप से काफी आसान एवं सस्ता पड़ता है। अतः यह व्यापारिक रूप से भी अत्यन्त लाभदायक है।

त्रुटि–सहिष्णु परिपथ का प्रयोग

नैनो–इलेक्ट्रॉनिक में दो प्रकार के त्रुटि–सहिष्णु युक्तियों का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है: (1) एम गुणक – अपेक्षाधिकता एवं (2) मिश्रित–तार्किक–पहुँच।(यहाँ "एम" एक काल्पनिक उच्च संख्या है।) मिश्रित–तार्किक–पहुँच के आधार पर ही एक महान वैज्ञानिक "जौन वौन न्यूमेन" ने अविश्वसनीय घटकों के द्वारा एक आंकिक अभिकलित्र (कम्प्यूटर) बनाने की कोशिश की ताकि भविष्य में इस तर्क के आधार पर अन्य विश्वसनीय घटकों से और अधिक विश्वसनीय नैनो–इलेक्ट्रॉनिक पद्धतियों का उपाय रचा जा सके। परन्तु इसमें पाया गया कि परिमाणिक–प्रभाव इसके ध्वनि–सुग्राहकता को बढ़ा कर इलेक्ट्रॉनिक जाल–निर्माण सहिष्णुता को घटा देता है, यद्यपि नैनो–इलेक्ट्रॉनिकी में यह एक विश्वसनीय हानि के रूप में स्वतः निहित रहता है। उक्त दोनो तार्किक युक्तियों में अधिक–संख्यक–मतदान एवं आंकिक–इलेक्ट्रॉनिकी का "नान्द"; तार्किक द्वार में प्रयोग किया जाता है। इनमें प्रत्येक तार्किक द्वार को एम–गुणा प्रतिलिपित किया जाता है ताकि प्रत्येक निविष्ट(इनपुट) संकेतों को एम रेखाओं के गुच्छे से प्रतिस्थापित किया जा सके। स्पष्टतः इस प्रकार से निर्मित प्रत्येक निविष्ट संकेत एम–रेखाओं से गुच्छित हो जाता है। इनमें प्रथम गुच्छे के निविष्ट को यदा–कदा दूसरे गुच्छे के निविष्ट से मिला दिया जाता है ताकि प्रतिलिपित अगले आंकिक "नान्द" द्वार का निविष्ट तैयार किया जा सके।

एक दूसरे महान वैज्ञानिक "पीयर्स" ने उपरोक्त "न्यूमेन" के त्रुटि–सहिष्णु–तर्क को एक अन्तर–रचित अपेक्षाधिक तर्क के आधार पर व्यापकीकरण कर दिया। इसमें त्रुटि–शुद्धीकरण का तर्क इन दो युग्मक अशुद्धियों : जैसे 0–1 एवं 1–0 के प्रभाव के सामंजस्य पर निर्भर करता है।

कुछ अन्य शोधकों ने एक चौगुनेकृत तर्क को आंकिक इलेक्ट्रॉनिकी के "ओर, नौट, एन्ड नौर एवं नान्द" द्वारों में सामंजन के आधार पर रचित विशेष तर्क का अध्ययन किया। इस चौगुनेकृत तर्क को आंकिक–इलेक्ट्रॉनिकी के "नान्द" द्वार पर आधारित अर्ध–योगक के रचित विभिन्न परिपथों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। इनमें प्रत्येक निविष्ट द्वार को चार द्वारों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है तथा निर्गत चारों संकेतों को दो–दो के समूहों में विभाजित कर दिया जाता है जो कि अगले स्तर के दोनो समूह के द्वारों के लिए निविष्ट का कार्य करते हैं। ऐसा पाया गया कि उक्त चौगुनाकृत–अंतर–संयोजित–परिपथ का निर्गम अपने गैर–अपेक्षाधिक परिपथ से आठ गुणा अधिक बढ़ जाता है।

नैनो इलेक्ट्रॉनिक उत्पादन

कूलम्ब–अवरोध पर आधारित बहुत से नैनो इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों की रचना की गई है जिसमें उपरोक्त इलेक्ट्रॉनिक द्वारों द्वारा नियंत्रित उत्सर्जित इलेक्ट्रॉन एक पूर्णकालिक संख्या के रूप में निहित रहता है। उदाहरणस्वरूपः अन्य वैज्ञानिकों "हिटैची" एवं "लिखारेव" द्वारा निर्मित तीन सिरों वाला नैनो–उत्सर्जित "प्लेड" एवं "नोवोराम",की रचनाऐं है। किन्तु "यानो" के प्रकार की स्मृति वाले उत्पाद दो ही सिरो वाले होते हैं जिसमें सूचनाऐं एक सिलिकोन के इलेक्ट्रॉनिक जाल में गहरे रूप से संयोजित लेकर संचित रहती हैं। अब चूँकि उपरोक्त कूलम्ब उत्पादों में त्रुटि–सहिष्णुता के तर्कों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है अतः इन्हें सुधारने में भविष्य में काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

आभार

लेखक गया कॉलेज, गया एवं मगध विश्वविद्यालय, बोधगया के विज्ञान के सभी पुस्तकालयों, विशेषकर भौतिक विभाग के पुस्तकालयों एवं अन्तर्राष्ट्रीय खोजी वेबसाइटों के प्रति अन्तःमन से आभार प्रकट करता है जिसके कारण आवश्यक सहयोग एवं सही दिशा–निर्देश की प्राप्ति हुई।

संदर्भ

1. बाउंट, एफ०(1993) मिजोस्कोपिक भौतिकी एवं नैनो–इलेक्ट्रॉनिकी, नैनो–विज्ञान एवं नैनो प्रौद्योगिकी भौतिकी वृतांत, मु0 पृ0 173–174, इंगलैण्ड।
2. टरटोन, आर०(1995) "परिमाणिक बिन्दू में सूक्ष्म–इलेक्ट्रॉनिकी के भविष्य की एक यात्रा", ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय छापाखाना, इंगलैण्ड।
3. चेन, आर० एच०; कोराटोव, ए० एन० एवं लिखारेव, के० के०(1954; 1996) "एकल इलेक्ट्रोन ट्रान्जिसटर तर्क, "प्रयुक्त भौतिकी पत्र, खण्ड 68, रूस।
4. ट्रान्स, एस० एवं अन्य सहयोगी(1997) प्रत्येक एकल कार्बन–नलिका की दीवार परिमाणिक तार की तरह, नेचर, 386 (6624), मु0 पृ0 474–477, इंगलैंड।
5. कीज, आर० डब्लू०(1998) इलेक्ट्रॉनिक्स एवं इसकी सीमाओं का लघुकरण, आई० बी० एम० शोध एवं विकास पत्रिका, खण्ड 32, अंक 1, मु0 पृ0 24–48, इंगलैड।
6. क्लीभोव, बी० आई०; मिखालोवोस्की, ए०; माल्कू, ए० जू० एस०; होलिगंसवर्थ, ए0; लेदरडेल, जे० ए०; ईस्टर, सी० ए० एच० एवं बावेन्डी, एम० जी०(2000) नैनो–रवा के परिमाणिक बिन्दू में प्रकाशीय प्राप्ति एवं संकुचित उत्सर्जन, विज्ञान, इंगलैंड।
7. दहम, एम० लौरेन्स टी०, पीनौड, एफ०, चेनिला, डी० एस० अलिभीसाटोस, ए० पी० सावर, एम० एवं वीस, एस०(2001) कोलोलियल परिमाणिक बिन्दुओं के द्वारा जैव–वैज्ञानिकी द्वार से समय–संचालित द्वारों की कल्पना, वैकल्पिक पत्र 2001, इंगलैड।

आर0सी0सी0 संरचनाओं के अभिकल्पन के तरीकों का मूल्यांकन–कार्यकारी, चरम प्रतिबल एवं सीमा स्थिति विधियों का एक अध्ययन

मनोज कुमार वार्ष्णेय[1], निवेश कुमार वार्ष्णेय[2] एवं रोहित कुमार वार्ष्णेय[3]
[1]वरिष्ठ प्रवक्ता एवं विभागाध्यक्ष, सिविल इंजीनियरिंग
डी0 एन0 पॉलीटैक्निक, मेरठ (उ0 प्र0)–250103, भारत
manojvarshaney17rediffmail.com
[2] आसिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्रताप इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी एण्ड सांइस, सीकर (राजस्थान)–332402
[3] प्रोजेक्ट ऑफीसर, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हाइड्रोलोजी, रूड़की(उत्तराखण्ड)–247667

सार

आर.सी.सी. संरचनाओं के अभिकल्पन के तरीकों का मूल्यांकन करने पर स्पष्ट रूप से देखा गया है कि सीमा स्थिति विधि से संरचना के अवयवों का अभिकल्पन तुलनात्मक रूप से मितव्ययी एवं व्यवहारिक है। जबकि कार्यकारी प्रतिबल विधि से किये गये अभिकल्पन में इस्पात की मात्रा में बचत होती है। जो अभिकल्पन की दृष्टि से ज्यादा उचित समझा जा रहा है। जैसा कि वर्तमान में अनेक विधियां इन संरचनाओं के अभिकल्पन के लिए विकसित हो रही हैं परन्तु मौजूदा समय में उपलब्ध विधियों में स्नातक स्तर पर सीमा स्थिति एवं डिप्लोमा स्तर पर कार्यकारी प्रतिबल विधि ही पाठ्यक्रम में लागू है। सैद्धान्तिक तौर पर आर0 सी0 सी0 संरचनाओं का अभिकल्पन वर्किंग स्ट्रेस के आधार पर करना एवं साइटों पर वास्तविक अभिकल्पन के लिहाज से एवं आर्थिक दृष्टि से लिमिट स्टेट मैथड ही ज्यादा सही एवं उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इस केस स्टडी से वास्तव में साइट/डिजाइन अभियन्ताओं के लिए एक जानकारी मुहैया कराये जाने का उद्देश्य है कि आर0 सी0 सी0 संरचनाओं का अभिकल्पन, लिमिट स्टेट मैथड से ही किया जाना महत्वपूर्ण, व्यवहारिक, मितव्ययी एवं टिकाऊ है।

Valuation of Methods for Designing of R.C.C. Structures-A Case Study with Working Stress v/s Limit State Vis-a-Vis Ultimate load

Manoj Kumar Varshaney[1], Nivesh Kumar Varshaney[2] and Rohit Kumar Varshney[3]
Senior Lecturer and Head, Civil Engineering
D.N. Polytechnic, Merrut(U.P.)-250103, India
manojvarshaney17@rediffmai.com
[2] Asstt. Prof. Pratap Institute of Technology & Science, Siker (Rajasthan)-332402
[3] Project Officer, National Institute of Hydrology, Roorkee(Uttarakhand)-247667

Abstract

Here the study reveals that cost wise limit state method is more economical and viable to use-in the design of RCC structures, while for steel saving working stress method of designing of RCC structures is more appropriate. As so many methods are coming in knowledge for the design of these structures, however only working and limit state methods are in vogue. At technical level institutions around the province, working stress method has been kept in syllabus to make easy approach of designing concept, while at degree level, limit state procedure has been included in the syllabus for the applicable designing of structures over working sites. In view of valuation and designing purposes, this paper shows and encourages, the designers to follow only limit state rather than other methods. It is concluded that designing of RCC structures by using limit state method is safe, useful, economical and viable in most of applying condition.

परिचय

तकनीकी शिक्षा के विकास, उन्नयन एवं सामाजिक गठबंधन में इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाओं यथा सिविल, विद्युत यांत्रिकी व इलैक्ट्रॉनिक्स के अलावा इसकी अन्य शाखाओं जैसे उत्पादन, निर्माण, पर्यावरण व वास्तुकारक आदि का उदगम् हुआ। इसी तारतम्य में तकनीकी शिक्षा के माध्यम से देश की आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था में सुधार हेतु निर्माण एवं उत्पादन सम्बन्धी गतिविधियां नित नये रूप में विकसित हो रही है। सिविल इंजीनियरिंग के क्षेत्र में हो रहे निर्माण कार्य

यथा सड़क, पुल, भवन, जल प्रदाप व स्वच्छता आदि कार्यों से देश में हो रहा विकास स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। सिविल इंजीनियरिंग में भवन निर्माण सामग्रियों यथा सीमेंट, ईंट, रेत, लकड़ी, रोड़ी, स्टील, चूना व पेन्ट आदि का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। इन सामग्रियों के समन्वय एवं सम्मिश्रण से ईंट चिनाई व कंक्रीट, आदि कार्य पूर्ण होता है। प्रबलित कंक्रीट (रीइंफोर्सड सीमेंट–कंक्रीट) की धरनें(बीम्स), स्लैब, लिंटेल, व स्तम्भ आदि भवन निर्माण कार्यों में प्रयोग होते हैं।

दरअसल प्रबलित कंक्रीट बनाने के लिए सीमेंट, मोटा रेत, रोड़ी(स्टोन एग्रीगेट) व पानी से बने कंक्रीट के मिश्रण को स्टील की छड़ों से बने जाल(ढांचे) में यह कंक्रीट डालकर कुटाई व समापन(कांपेक्टेशन एण्ड फिनिशिंग) कर अवयव बनाया जाता है। यह अवयव प्रबलित सीमेंट कंक्रीट(रीइंफोर्सड सीमेंट–कंक्रीट) के नाम से जाना जाता है। प्रबलित सीमेंट कंक्रीट के अवयव तनन(टेंशन) एवं सम्पीड़न(कंप्रेशन), दोनों में ही पर्याप्त मजबूत होते हैं। अतः भवन संरचनाओं के अलावा अन्य संरचनाओं में आर0 सी0 सी0 का ज्यादातर प्रयोग किया जाता है।

आर0 सी0 सी0 संरचना पर आने वाले भार के अनुरूप इसके अवयवों का आकार, व स्टील की आवश्यक मात्रा, कंक्रीट के ग्रेड व स्टील के ग्रेड के अनुसार निर्धारित की जाती है। कंक्रीट के ग्रेड का तात्पर्य कंक्रीट के संघटकों के अनुपात से है। जैसे एम$_{15}$, एम$_{20}$, व एम$_{25}$ आदि कंक्रीट के ग्रेड हैं, जहाँ एम–मिक्स को तथा इसके अंक, कंक्रीट की अभिलक्षण सम्पीड़न सामर्थ्य(कैरेक्टरिस्टिक कंप्रेसिव स्ट्रेंथ) क्रमशः 15 एन/एमएम^2, 20 एन/एमएम^2, व 25 एन/एमएम^2 को दर्शाता है जबकि कंक्रीट में सीमेंट : बदरपुर : रोड़ी का अनुपात क्रमशः 1:2:4:, 1:1.5 : 3 व 1:1:2 है। कंक्रीट का ग्रेड निर्धारित करने के उपरान्त स्टील का ग्रेड यथा एफई250, एफई350, एफई415, एफई500 व एफई550 निर्धारित करना पड़ता है। स्टील के ग्रेडों का तात्पर्य ऐसी स्टील से है जिसकी पराभव सामर्थ्य क्रमशः 250, 350, 450, 500 व 550 एन/एमएम^2 है। तत्पश्चात आर0 सी0 सी0 संरचनाओं का अभिकल्पन, संरचना पर आने वाले भारों(चल व अचल) की गणना कर किया जाता है ताकि संरचना में उस अधिकतम भार पर कार्यकारी बनी रहे एवं संरचना स्थायित्व रह सके।

इन आर0 सी0 सी0 अवयवों के अभिकल्पन की अनेक विधियां प्रचलित है। इन सभी विधियों की अपनी–अपनी मान्यताऐं हैं जिनके अनुसार ही अभिकल्पन, गणनाएं कर किया जाता है।

मूल्यांकन की दृष्टि से अभिकल्पित खण्ड का मितव्ययी एवं टिकाऊ होना आवश्यक है। चूँकि आर0 सी0 सी0 अवयवों में स्टील की कीमत, कंक्रीट की कीमत का 60 से 75 गुना होती है अतः अवयव में स्टील की बचत कर अवयव को मितव्ययी बनाया जा सकता है। परन्तु फिर भी विभिन्न अवयवों की अपने हिसाब से स्टील की न्यूनतम मात्रा निर्धारित रहती है।

अवयवों में स्टील तनाव बल व कंक्रीट सम्पीडन बल लेती है और यह तभी सम्भव है जब स्टील व कंक्रीट आपस में पूर्णतः पकड़ में मजबूत हों। अतः विभिन्न अवयवों में तनाव बल आने वाले स्थान पर स्टील की छड़ों का जाल व सम्पीड़न बल आने वाले स्थान पर कंक्रीट की मात्रा अधिक रखी जाती है। अवयवों में तनाव व सम्पीडन क्षेत्र ज्ञात करने के लिए भारों की स्थिति के अनुसार नमन आपूर्ण आरेख(बेंडिंग मूमेंट डायग्राम) व कर्तन बल आरेख(शीन फोर्स डायग्राम) गणितीय गणनाओं के आधार पर खींचे जाते हैं।

अभिकल्पन की विधियां

आर0 सी0 सी0 संरचनाओं के अवयवों के अभिकल्पन की मौजूदा समय(वर्तमान समय) तक तीन विधियां ही प्रचलन में हैं।

1. कार्यकारी प्रतिबल विधि(वर्किंग स्ट्रेस मेथड)
2. चरम भार विधि(अल्टीमेट लोड मैथड)
3. सीमा स्थिति विधि(लिमिट स्टेट)

कार्यकारी प्रतिबल विधि में कंक्रीट व इस्पात को प्रत्यास्थ मानकर अभिकल्पन किया जाता है। प्रत्यास्थ सीमा के अन्तर्गत कंक्रीट व स्टील संयुक्त रूप से कार्य करते हुए विफलता तक प्रतिबल व विकृति में रेखीय सम्बंध रखते हैं एवं हुक के नियम का पालन करते हैं। कंक्रीट का नमन प्रतिबल(बेंडिंग स्ट्रेस) सम्पीड़न क्षेत्र में, कंक्रीट के ग्रेड के अनुसार 28 दिन की अभिलाक्षणिक सामर्थ्य को सुरक्षा गुणक जो प्रायः 3 होता है से भाग देकर मालूम किया जाता है। जैसे एम$_{10}$, एम$_{15}$, व एम$_{20}$ एम$_{25}$, एम$_{30}$, एम$_{35}$ व एम$_{40}$ ग्रेड की कंक्रीट के लिए संपीडन क्षेत्र में कंक्रीट का अधिकतम अनुमेय नमन प्रतिबल क्रमशः 3, 5, 7, 8.5, 10, 11.5 व 13 लिया जाता है। इसी प्रकार स्टील की अनुमन्य तनन सामर्थ्य, इस्पात की पराभव सामर्थ्य को 1.78 से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। स्टील की अनुमन्य तनन सामर्थ्य 140, 190, 230 व 275 एन/एमएम^2 तक होती हैं। जबकि स्टील का ग्रेड क्रमशः एफई250, एफई350, एफई415 व एफई500 हैं। कंक्रीट व इस्पात में प्रतिबल, मान्यताओं के आधार पर है एवं अभिकल्पन इन्हीं के आधार पर किया जाता है, परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से सभी मान्यताएं पूर्णतः अनुमन्य नहीं हो पाती हैं।

चरम भार विधि में संरचना के अवयव पर आने वाले भार को सम्भावित भार गुणांक से गुणा कर चरम भार निर्धारित कर अभिकल्पन किया जाता है। नमन में(बेंडिंग) कंक्रीट में अनुमत प्रतिबल कंक्रीट के चरम प्रतिबल को उपयुक्त सुरक्षा गुणांक से भाग निर्धारित किये जाते हैं। अवयव के सबसे ऊपरी रेशों के नीचे स्थित रेशों में प्रतिबल अनुमन्य से बहुत कम होते हैं और कुल मिलाकर अवयव न्यून प्रबलित होता है। व्यवहार में कंक्रीट पूर्णतः प्रत्यास्थ नहीं है। इसी वजह से अवयव को भारित करते हुए विफलता बिन्दु तक ले जाने पर अवयव के ऊपरी रेशों में तो चरम प्रतिबल विकसित हो जाता है, परन्तु इसके निचले हिस्से पर यह प्रतिबल इतना नहीं हो पाता, जिस कारण कंक्रीट एकदम विफल नहीं होती है। चरम प्रतिबल सीमा पार करने पर कंक्रीट प्रत्यास्थ से सुघट्य अवस्था की ओर अग्रसर होती है। इस समय चरम प्रतिबल निचले रेशों की ओर स्थानान्तिरित होने लगते हैं; जिससे प्रतिबल आरेख परवलयाकार हो जाता है। इस विधि में कंक्रीट व इस्पात में मौजूद सामर्थ्य का अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है। जिससे अवयव खण्ड की भार वहन क्षमता अधिक प्राप्त होती है। इस विधि से प्राप्त आर0 सी0 सी0 खण्ड काफी छोटा होता है जिससे ये अधिक विक्षेपित होते हैं जो सेवा–योग्यता की दृष्टि से अनुकूल नहीं है।

उक्त दोनों विधियों का सुधरा हुआ रूप सीमा स्थिति विधि से अभिकल्पन करना है, जो सुघट्य अभिकल्पन मान्यताओं पर आधारित है। इस विधि में मुख्यतः दो सीमाओं पर विचार किया जाता है। अवयव अपनी आयु अवधि में आने वाले भारों के प्रति सुरक्षित तो रहे ही साथ ही विक्षेप, दरार आदि भी सीमा में रहकर सेवा योग्यता बरकरार रखे। इस विधि में कंक्रीट प्रत्यास्थ से सुघट्य अवस्था में आकर परवलयाकार प्रतिबल आरेख पर विफल होती है। जिससे स्टील के प्रतिबल का अधिकतम उपयोग होता है। कंक्रीट में प्रतिबल 0.66 एफसीके तथा स्टील में प्रतिबल 0.87 एफवाई लिया जाता है जहां एफसीके, कंक्रीट की अभिलाक्षणिक सामर्थ्य है तथा एफवाई, स्टील का पराभव प्रतिबल है। इस विधि में, अभिकल्पित भार, अवयव पर आने वाले भार का 1.5 गुना लिया जाना अनुमन्य किया गया है।

इस विधि में प्राप्त अवयव खण्ड, कार्यकारी विधि से ज्ञात खण्ड से छोटा होता है जिसमें सेवायोग्यता, अवयव में दरार पड़ने तक अनुमन्य मानी गई है। आर0 सी0 सी0 संरचनाओं के आगणन के आधार पर मूल्यांकन करना तभी सम्भव है जब किसी अवयव का उदाहरण लेकर, अभिकल्पन के अनेक तरीकों का प्रयोग कर कंक्रीट व स्टील की मात्राओं का आंकलन किया जाये। अतः पेपर के शीर्षक को, स्पष्ट करने हेतु व्यवस्था उदाहरण स्वरूप है।

उदाहरण

एक एकल प्रबलित आर0 सी0 सी0 धरन(बीम) का तीनों विधियों से अभिकल्पन करें यदि इसका पाट(स्पैन) 4.0 मीटर है। इस पर 15 किलो न्यूटन/मीटर का समवितरित भार आ रहा है। एम$_{20}$ ग्रेड की कंक्रीट, एफई415 ग्रेड की स्टील व भंजक मापांक(मॉड्यूलर रेशियो) एम=13 है।

तुलनात्मक तालिका रूप

कार्यकारी प्रतिबल विधि	चरम भार विधि	सीमा स्थिति विधि
एफई–415,के लिए स्ट्रेस=230 एन/एमएम^2	स्थिर भार डब्ल्यूडी=3578 एन/एम चल भार डब्ल्यूआई=1500 एन/एम	एफई–415 के लिए स्टील में प्रतिबल =0.87×415=361 एन/एमएम^2
एम20 के लिए स्ट्रेस =7 एन/एमएम^2 एम=13, एक्स=0.28डी, जेड=0.91डी	कुल यूडीएल=1.5×3578+2.2×15000=5367+33000 =38367 एन/एम	एम–20 कंक्रीट के लिए कंक्रीट में प्रतिबल =0.446×20=8.92 एन/एमएम^2
धरन खण्ड का अनुमानित साईज सेलेक्टेड बीम साइज =270×530एमएम धरन का भार =1×270×530 ×25000/1000×1000	नमन आघूर्ण एमयू=डब्ल्यू×एल×एल/8=38367×4.3×4.3/8 =88675.73=88675730 एन–एमएम एमयू=0.185एफसीके×बी×डी^{2} 88675730=0.185×20×270×डी^{2} डी=298=300एमएम डी=300 एमएम एएसटी=0.236×एफसीके×बी×डी/एफवाई	ईएस=200000 एन/एमएम^2 नमन आघूर्ण =42943000 एन–एमएम फैक्टर आघूर्ण =1.5×42943000=64414500 एन–एमएम एमयू=64414500 एन–एमएम एमयू लिमिट=0.138 बी डी^{2} एफसीके =0.13×270×डी^{2}×20 एमयू=एमयू लिमिट

	=3578 एन / एम अधिभार=15000 एन / एम कुल भार=18577 =18580एन / एम प्रभावी लम्बाई =4.00+0.3=4.3एम नमन आघूर्ण =18580×4.3×4.3 / 8 =42943 एन–एम धरन का प्रतिरोध आघूर्ण, एम=0.64 डी^{2} डी=498 एमएम=500 एमएम=530 एमएम स्टील का आवश्यक क्षेत्रफल =42943000 / 230 ×0.91×500 =410एमएम^2 =415एमएम^2 %स्टील =415×100 / 270 ×500=0.31% धरनखण्ड कर्तन व अभिलाग में सुरक्षित हैं। मूल्यांकन 1. कंक्रीट क्षेत्रफल =270×530 =143100एमएम^2 2. स्टील का क्षेत्रफल =एएसटी=415एमएम$^{2एवं}$ स स्टील का मूल्य =415×60=24900 कंक्रीट का मूल्य =143100 कुल मूल्य =143100+24900 =168000 / –	एएसटी=922 एमएम^2 %स्टील=1.14% **मूल्यांकन** 1. कंक्रीट का क्षेत्रफल =270×330=89100एमएम^2 कंक्रीट का मूल्य=89100 / – 2. स्टील का क्षेत्रफल=922 एमएम^2 स्टील का मूल्य=922×60=55320 / – कुल मूल्य=89100+55320=144420 / –	डी=295 एमएम=300 एमएम डी=295 एमएम=300 एमएम डी=330 एमएम एक्सयू मैक्स=0.48 डी जब एफई415 है तब स्टील की सीमा पीलिमिट%=0.414×एफसीके×एक्सयू मैक्स / एफवाई × डी =0.414×20×0.48×डी / 415×डी =9.6 / 1000 एएसटी=9.6×270×295 / 1000=763एमएम^2 =765एमएम^2 स्टील प्रतिशत=0.94% **सेफ इन शियर एण्ड बाण्ड स्ट्रेस** **मूल्यांकन** 1. कंक्रीट का क्षेत्रफल =270×330=89100एमएम^2 कंक्रीट का मूल्य=89100 / – 2. स्टील का क्षेत्रफल=765एमएम^2 स्टील का मूल्य=765×60=45900 / – कुल मूल्य=89100+45900=135000 / –

मूल्यांकन अनुपात

डब्ल्यूएस : एलएस : यूआई=168000:135000:144420=1.24:1.00:1.07

स्टील की मात्रा का अनुपात

डब्ल्यूएस : एलएस : यूआई=0.31:0.94:1.14=1:3:3.67

कंक्रीट की मात्रा का अनुपात

डब्ल्यूएस : एलएस : यूआई=143100:89100:89100=1.67:1.00:1.00

संदर्भ

1. वार्ष्णेय, एम0 के0(2009) सिविल एस्टीमेटिंग एण्ड कास्टिंग, नवभारत पब्लिकेशंस, चतुर्थ सं0।
2. वार्ष्णेय, एम0 के0(2013) इंडियन वैल्यूअर जर्नल, खण्ड एक्सएलवी, मु0 पृ0 674–682।

जीवगणित : एक तकनीकी परिचय

विजय शंकर वर्मा, सुधीर कुमार श्रीवास्तव, विजय कुमार, एस0 एम0 त्रिपाठी, विकास राना एवं राजेश कुमार
गणित एवं सांख्यिकी विभाग
डी0 डी0 यू0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर(उ0 प्र0)–273009, भारत
drvsverma01@gmail.com; sudhirpr66@rediffmail.com; vkgkp@rediffmail.com

सार

जीवगणित गणित की वह शाखा है, जिसमें हम गणितीय एवं संख्यात्मक विधियों का उपयोग जीवविज्ञान सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के समस्याओं के निराकरण के लिए करते हैं। सन् 1922 से इस शाखा का संदर्भ साहित्य में देखने को मिलता है। सन् 1930 के दशक में इसका अत्यधिक उपयोग हुआ और आज यह एक अन्तर्विषयीय अध्ययन की अत्याधुनिक विधा के रूप में हमारे सामने है, जिसमें हम संगणकों का उपयोग करते हुए मानव शरीर के रहस्य का पता लगाने में भी सहायक हो रहे है। मानव शरीर ईश्वर की ऐसी कृति है, जिसमें विभिन्न क्रियाएं रहस्य के रूप में जानी जाती रही है। ये क्रियाएं इतनी जटिल है कि आसानी से इसका सम्पूर्ण अध्ययन नहीं किया जा सकता है। अध्ययन हेतु मानव शरीर को विभिन्न तन्त्रों में बाँटा जाता है। जैसे – श्वसन तंत्र, परिसंचरण तन्त्र, तंत्रिका तंत्र, पोषण तंत्र, पाचन तंत्र, आदि।

Biomathematics: A Technical Introduction

V. S. Verma, S. K. Srivastava, V. Kumar, S. M. Tripathi and R. Kumar
Department of Mathematics & Statistics
D. D. U. Gorakhpur University, Gorakhpur(U.P.)-273009, India

Abstract

Biomathematics is a branch of Mathematics which deals with solving different types of problems related to Biological Science, using mathematical and numerical methods. References are available since 1922. Its maximal use was made in the decade of the year 1930 and now is implemented as modern tool of intersubject studies, helping in discovering mysteries of human body, using computer technology. Human body is a wonderful creation of God whose different activities were supposed to be a secret. They are so complicated that cannot be completely understood easily. Therefore for proper study body has been divided in to different systems like circulatory systems, nervous systems, digestive systems, respiratory systems etc.

जीवगणित की शाखाएं व उपशाखाएं निम्नवत हैं–

जीव द्रव यांत्रिकी(बायो फ्ल्यूड मिकेनिक्स) एवं जीव द्रव गतिकी(बायो फ्ल्यूड डायनामिक्स)

गणितीय प्राणि विज्ञान(मैथेमेटिकल जूलॉजी) एवं गणितीय वनस्पति विज्ञान(मैथेमेटिकल बॉटनी)

गणितीय पारिस्थितिकी(मैथेमेटिकल इकोलॉजी)

गणितीय महामारी विज्ञान(मैथेमेटिकल एपिडेमिकोलॉजी) / रोग मैपिंग

गणितीय जीव रसायन विज्ञान(मैथेमेटिकल बायोकैमिस्ट्री)

गणितीय जीव भौतिकी(मैथेमेटिकल बायोफिजिक्स)

गणितीय जीव अभियांत्रिकी(मैथेमेटिकल बायोइंजीनियरिंग)

रोगों के गणितीय सिद्धांत(मैथेमेटिकल थियोरी ऑफ डिजीजेज)

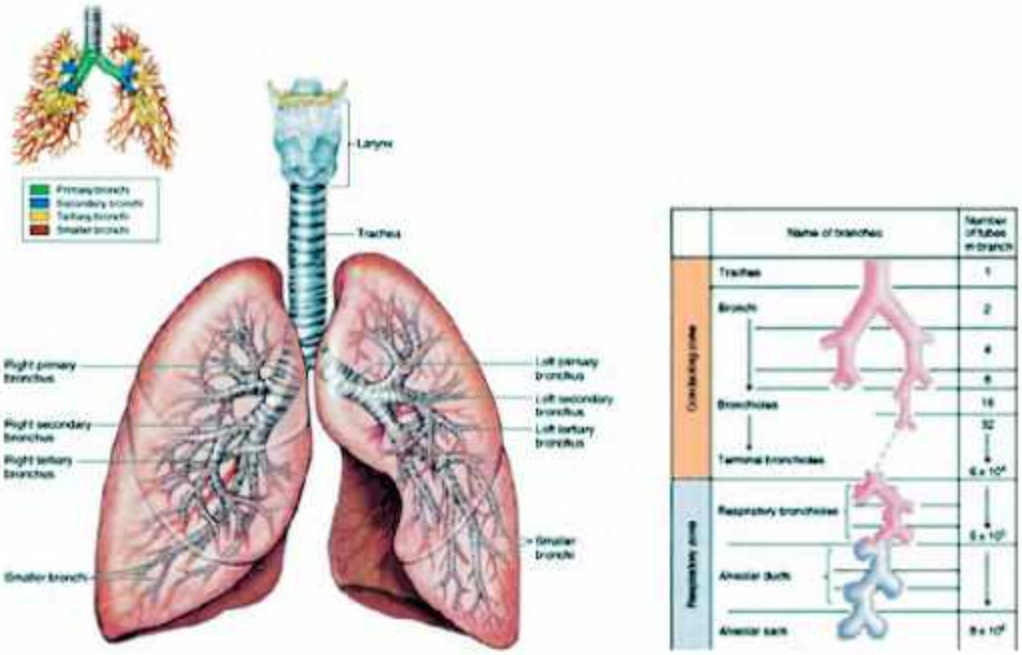
गणितीय जीव अर्थशास्त्र(मैथेमेटिकल बायोइकोनॉमिक्स)

एवं अन्य।

ज्ञातव्य है कि मानव शरीर भी एक अति महत्वपूर्ण यान्त्रिक तंत्र है जिसमें विभिन्न उपतंत्र होते है, जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं। इसी से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट जानकारी आपके समक्ष प्रस्तुत हैं–

मानव फेफड़े में संचरण

ज्ञातव्य है कि मानव फेफड़े, नलिकाओं से बनी शाखाओं का जटिल संजाल होता है। मानव फेफड़े में श्वसन प्रणाली मुँह और नॉक से प्रारम्भ होकर कंठ, श्वसन नाल और श्वसन नलिकाओं से होकर वायुकोष्ठकों पर समाप्त होती है। श्वसन प्रणाली के ज्यामिति का विस्तृत अध्ययन ई0 विबेल व उनके सहायक और अन्य खोजकर्ताओं द्वारा समय–समय पर किया गया। सन् 1963 में ई0 वीबल ने एक स्वस्थ मानव फेफड़े में उपस्थित विभिन्न खण्डों की लम्बाई, त्रिज्या क्षेत्रफल, आदि को सारणीबद्ध रूप से प्रस्तुत किया।



उन्होंने यह बताया कि मानव फेफड़े में प्रत्येक नलिकाएं पुनः दो उपखण्डो में विभाजित होती है जो कि लम्बाई में छोटी–बड़ी हो सकती है, परन्तु उनकी त्रिज्या लगभग समान होती है। उन्होंने मानव फेफड़े के ज्यामितीय व्यवस्था को दो रूपों क्रमशः प्रारूप–ए: अनियमित द्विविभाजन एवं प्रारूप–बी: नियमित द्विविभाजन में बाँटते हुए प्रारूप–बी पर अध्ययन करते हुए मानव फेफड़े के नलिकाओं को 24 वंशो में विभक्त कर उनमें वायु संचरण के बारे में बताया।

मानव फेफड़े के 0–16 तक के वंश संचार क्षेत्र और वंश 16 छोर कोशिकाएँ कहलाती है। 17–23 के वंशो को श्वसन क्षेत्र कहा जाता है। इन वंशो के दीवारों पर वायु कोष्ठक होते हैं। वंश –23 वायुकोष्ठक पर समाप्त होती है।



अन्तः श्वास में ग्रहण की गयी बाहरी वायु फेफड़ो के वायु कोष्ठकों में भर जाती है। हमारे दोनों फेफड़ों में लगभग 30 करोड(300×10^6) वायुकोष्ठक होते हैं। प्रत्येक वायुकोष्ठक पुनः दो वायुकोशों में बँटा होता है। वायुकोश लगभग गोलाकार होता है। प्रत्येक वायुकोश का व्यास 75 माइक्रोमीटर से 300 माइक्रोमीटर होता है।

यदि एक वायुकोश का औसत त्रिज्या r = 125 माइक्रोमीटर मान लिया जाए तो इसका पृष्ठीय क्षेत्रफल निम्नानुसार ज्ञात किया जा सकता है:

एक वायुकोश का पृष्ठीय क्षेत्रफल $= 4\pi r^2 = 4x\frac{22}{7}x(125x10^{-6})^2$ वर्गमीटर

$\approx 2\times10^{-7}$ वर्गमीटर

अतः सभी वायुकोशों(300×10^6) का पृष्ठीय क्षेत्रफल $=(300\times10^6)\times2\times10^{-7}$ वर्गमीटर = 60 वर्गमीटर

फेफड़ों का पृष्ठीय क्षेत्रफल लगभग 70 वर्गमीटर होता है।

सामान्यतया एक औसत मानव शरीर का पृष्ठीय क्षेत्रफल 1.7 वर्गमीटर होता है। अतः कुछ अविश्वसनीय तथ्य इस प्रकार सामने आते है–

1. यदि कुल वायुकोशों को खोलकर आपस में जोड़ा जाए और उसे मानव शरीर पर फैलाया जाय तो, ये मानव शरीर पर लगभग 40 बार लपेटा जा सकता है।

2. यदि कुल वायुकोशों को खोलकर परस्पर जोड़ने के पश्चात जमीन पर फैला दिया जाये तो, ये एक बैडमिन्टन के मैदान को ढक सकता है

मानव फेफड़े की रूधिर आपूर्ति की संरचना भी उतना ही जटिल और रूचिकर है, जितना कि वायु आपूर्ति की। हृदय का दाँया निलय, शिरीय रूधिर को फुप्फुसीय धमनी में भेजता है, जो पुनः अरबों छोटे–छोटे नलिकाओं में विभाजित होता है और आकृति में बेलनाकार होती है, जिसका व्यास लगभग 7–10 माइक्रोमीटर होता है। ये नलिकाएँ कूपिका दीवार पर केशिकाओं का परस्पर जटिल संजाल होती है, जो केशिकाओं का एक सुन्दर जाल बनाती है। मनुष्य के हृदय में इस तरह की लगभग 28×10^{10} फुप्फुसीय केशिकाएं होती है।

इन प्रत्येक केशिकाओं की लम्बाई 10 माइक्रोमीटर और औसत व्यास 8 माइक्रोमीटर होता है।

अतः सभी फुप्फुसीय केशिकाओं की कुल लम्बाई=$(28\times10^{10})\times10$ माइक्रोमीटर=2800 किलोमीटर

फुप्फुसीय केशिकाओं का कुल पृष्ठीय क्षेत्रफल=$(28\times10^{10})\times2\pi rl$ वर्गमाइक्रोमीटर ≈ 70 वर्गमीटर

फुप्फुसीय केशिकाओं का कुल आयतन=$(28\times10^{10})\times\pi r^2 l$ घनमाइक्रोमीटर ≈ 140 मिलीलीटर

इस प्रकार पुनः कुछ अविश्वसनीय तथ्य सामने आते हैं, जो इस प्रकार हैं:

1. यदि कुल फुप्फुसीय केशिकाओं को परस्पर एक दूसरे से जोड़ दिया जाये, तो इन्हें *श्रीनगर से कन्याकुमारी* तक फैलाया जा सकता है।

2. फुप्फुसीय केशिकाओं का पृष्ठीय क्षेत्रफल वायु कोशों के पृष्ठीय क्षेत्रफल के लगभग बराबर है।

चूँकि 140 मिलीलीटर रूधिर संचरण के लिए 2800 किलोमीटर लम्बी फुप्फुसीय केशिकाओं की आवश्यकता पड़ती है।
अतः 5 लीटर(5000 मिलीलीटर) रूधिर संचरण के लिए आवश्यक लम्बाई

$$=\frac{5000}{140}\times2800 \text{ किलोमीटर} = 100000 \text{ किलोमीटर}$$

अंततः पुनः एक अविश्वसनीय तथ्य सामने आता है, जो इस प्रकार है:

"यदि सभी रूधिर केशिकाओं को परस्पर जोड़ दिया जाए तो ये पृथ्वी के विषुवतरेखा पर लगभग दो बार लपेटा जा सकता है।"

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वर्तमान में गणित का विज्ञान की सभी विधाओं में लगातार प्रयोग किया जा रहा है तथा नित् नवीन आयाम प्राप्त किये जा रहे हैं।

संदर्भ

1. एण्डरसन, एस0; लार्सन, के0; लार्सन, एम0 एवं जेकब, एम0(1999) बायोमैथेमेटिक्स, एलजेवियर।
2. फंग, वाई0 सी0(1996) बायोमिकेनिक्स, स्प्रिंगर।

देवकण–बोजान : कण–कण में भगवान

ज्योति काला
एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
jyotikala2010@gmail.com

सार

आज वैज्ञानिक 'हिग्स बोजान' की खोज द्वारा ब्रह्माण्ड के सृजन संबंधित रहस्यों का उद्घाटन करने को उत्सुक हैं। हजारों वर्ष पूर्व इस विषय पर वैदिक–चिंतन में सविस्तार वर्णन किया जा चुका है। जो न केवल भारतीय मनीषियों की मेधा का परिचय देता है अपितु प्राचीन ग्रंथों के आधार पर भविष्य में अन्य संभावित खोंजों की संभावना को भी इंगित करता है। प्रस्तुत लेख में आधुनिक विज्ञान एवं वैदिक चिंतन की ब्रह्माण्डीय अवधारणा के साथ 'हिग्स बोजान' की खोज पर आधारित क्रांतिकारी संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

God particle Boson: God in every particle

Jyoti Kala
Associate Professor, Department of English, B.S.N.V. Post Graduate College
Station Road, Charbagh, Lucknow(U.P.)-226001, India
jyotikala2010@gmail.com

Abstract

Today scientists are excited about exploring mysteries of creation of the universe on the possibility of discovery of Higgs Boson. Thousands of years ago, the subject had been speculated on in the Vedic philosophy. It does not only exhibit the magnificence of the Indian intellect but also indicates toward the possibility of future explorations based on ancient texts. In the present article, along with the concepts of modern science and Vedic philosophy related to our universe, there is mention of the revolutionary ideas possible on account of the discovery of Higgs Boson.

प्रस्तावना

पिछले दिनों 'हिग्स बोजान' की चर्चा आम रही। यहाँ तक कि ऐसे लोगों को भी इसकी चर्चा करते देखा गया जिनका विज्ञान से दूर–दूर तक कोई सम्बंध नहीं है। इसका कारण शायद आज के मीडिया का सशक्त होना रहा है और ऐसे में यह प्रश्न मुख्य हो जाता है कि यह हिग्स बोजान कौन सी वस्तु है जिसने सारे संसार को एक धरातल पर ला खड़ा किया? इसका उत्तर है कि हिग्स बोजान दरअसल पदार्थ के ऐसे मूल कण की अवधारणा है जिससे सभी पदार्थों का भार निहित होना माना गया है। क्वांटम भौतिकी में मूल कण एक ऐसे अकेले बिन्दु को कहा गया है जो अक्षत है, अर्थात् इसका कोई घटक नहीं होता और न ही इसे खण्डित किया जा सकता है। सामान्य अर्थों में हिग्स बोजान परमाणु निर्मित तत्वों को भार प्रदान करने वाले ऊर्जा के 'रहस्यमयी' स्वरूप को कहा गया है। ऐसी अवधारणा है कि हिग्स बोजान उसी क्षण जन्में जब यह सृष्टि अस्तित्व में आयी। अब प्रश्न उठता है कि मानव सभ्यता की इतनी सदियों के बाद सृष्टि के साथ जन्में इस कण की इतनी चर्चा क्यों? इसका उत्तर है कि पिछले कई वर्षों से वैज्ञानिक इस प्रयास में लगे हुए थे कि हीलियम के प्रोटान कणों को लगभग प्रकाश की गति से आपस में टकराकर ऊर्जा के उसी स्वरूप को प्रयोगशाला में उत्पन्न किया जा सके जिसे सृष्टि में सर्वत्र विद्यमान होने के बावजूद हम देख या जान नहीं सके हैं और वर्षों के अथक परिश्रम के बाद अंततः वह समय आ गया जब इस प्रयोग के सफल होने की सम्भावना बनती सी प्रतीत हो रही है।

वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

ब्रिटिश वैज्ञानिक पीटर हिग्स ने 1964 में यह परिकल्पना दी कि मूल कणों को उनका द्रव्यमान एक विशेष बल–क्षेत्र से मिलता है। पीटर हिग्स के नाम पर ही इस बल क्षेत्र को हिग्स फील्ड कहा गया। इसके साथ ही भारतीय वैज्ञानिक सत्येन्द्र नाथ बोस ने परम शून्य तापमान पर पदार्थ की पांचवी अवस्था की अवधारणा दी जिसे बोस आइन्सटीन कन्डेन्सेट कहा गया। नई वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार हिग्स फील्ड में भी आवेशित और आवेशहीन क्षेत्र होते हैं जिन्हें सत्येन्द्र नाथ बोस के नाम पर 'बोसान' नाम दिया गया है। इस कण को 'गॉड पार्टिकल' अर्थात 'देवकण' नाम देने के पीछे यही कारण है कि ईश्वर ही सृजन का कारक माना जाता है और वैज्ञानिकों के अनुसार इस कण को भी। उनके अनुसार यह कण शक्ति का वह पुंज है जिसने सृष्टि का सृजन किया। यही कारण है कि इसे इस सदी की सबसे बड़ी खोज माना जा रहा है। फ्रांस और स्वीट्जरलैण्ड की सीमा पर जेनेवा में बनी 27 किमी

लम्बी सुरंग के अन्दर बनी प्रयोगशाला में मूल कण की तलाश की प्रक्रिया में वैज्ञानिक संलग्न रहे हैं। उनका मानना है कि यह सृष्टि इसी कण से बनी है। उन्हें इस कण की खोज में एक सीमा तक सफलता भी मिली है। सर्न लैब(यूरोपियन सेन्टर फॉर न्यूक्लियर रिसर्च) में एक साथ दो प्रयोगों का प्रयास हो रहा है, इनके नाम एटलस और सीएमएस हैं। तीन वर्षों से चल रहे इस प्रयोग में लगभग 13.7 खरब वर्ष पहले घटित महाविस्फोट(बिग बैंग) जैसे वातावरण को जन्म दिया गया ताकि महाविस्फोट के समय जन्मे इस ईश्वरीय कण अर्थात हिग्स बोजान को समझा जा सके।

वैदिक दृष्टिकोण

यद्यपि एक सूक्ष्म कण में सृष्टि के सार अथवा भगवान की बातें अब कही जा रही हैं पर हमारे वेद शास्त्रों में यह बात पहले ही कही जा चुकी है। दुनिया में दर्शन चिंतन की दो धारायें हैं। एक धारा है भौतिकवादी दर्शन जिसके अनुसार इस जगत की आधारभूत इकाई है–पदार्थ। दर्शन–चिंतन की दूसरी अध्यात्मवादी धारा के अनुसार जगत की आधारभूत इकाई विचार है। पदार्थ हमें अनुभव होता है, तो वह सब विचार की सघनता है। जिसे हम अपने भीतर विचार के रूप में अनुभव करते है, वही ऊर्जा बाहर सघन होकर अलग–अलग रूप और आकृतियां बन जाती है। ''रहस्यपूर्ण ब्रह्माण्ड(द मिस्टीरियस यूनिवर्स) में सर जेम्स जीन्स लिखते हैं : ''ज्ञान का प्रवाह अब यंत्रविहीन वास्तविकता की ओर बहने लगा है:, अब ब्रहमाण्ड एक विराट यंत्र नहीं, बल्कि एक विराट् विचार प्रतीत होने लगा है।''[1] इस प्रकार बीसवीं सदी का विज्ञान प्राचीन वेदों की भाषा बोलने लगा है। गयाचरण त्रिपाठी का मत है कि ''वैदिक ऋषियों को प्रकृति के विभिन्न प्रभावशाली, सशक्त एवं लाभदायक रूपों के पीछे एक ही अज्ञात सर्वशक्तिमती सत्ता कार्य करती हुई प्रतीत होती थी। जड़ दृश्यों के पीछे उनकी दिव्य दृष्टि किसी ऐसी चेतना का अनुसंधान करती थी जो जगत की प्रत्येक क्रिया शीलता में व्याप्त है, इस प्रकार वे प्रकृति के उस विशिष्ट तत्व की नहीं अपितु उसमें अभिव्यक्त दिव्यशक्ति की उपासना करते थे।''[2] क्या हिग्स बोजान की खोज उसी 'दिव्यशक्ति' को जानने का द्वार खोल देगी, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा।

ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म कणों एवं विराट संरचनाओं की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के आधार पर लेखक चंद्र मणि सिंह के अनुसार– ''बीसवीं सदी के साठ के दशक के अंत में तथा सत्तर के दशक के प्रारम्भ में ब्रिटिश वैज्ञानिक स्टीफेन हॉकिंग, जार्ज एलिस एवं रोजन पेनरोज ने आईन्स्टीन के व्यापक आपेक्षिकता सिद्धान्त को ''काल'' एवं ''आकाश'' की गणना में प्रयुक्त करते हुए यह बताया कि ''काल'' एवं ''आकाश'' सदैव से विद्यमान नहीं थे, वरन् उनकी उत्पत्ति एक नियत घटना के रूप में 'महाविस्फोट' के साथ हुई। इसी समय द्रव्य एवं ऊर्जा भी प्रकट हुए। एकीभूत बिन्दु(सिंगुलरिटी) या एकत्व या वेदों में वर्णित हिरण्यगर्भ या ब्रह्म–बिन्दु कहीं पहले से विद्यमान नहीं था, वरन ''काल'' एवं ''आकाश'' उसी में निहित थे और उसके पूर्व न तो काल था और न ही आकाश। द्रव्य एवं ऊर्जा भी नहीं थे। फिर कहाँ और किससे 'एकत्व' बना किसी को ज्ञात नहीं। कहाँ से आया और कब आया, यह भी ज्ञात नहीं। केवल इतना ही ज्ञात है कि हम उसमें हैं और एक समय पर वह विद्यमान नहीं था और न ही हमारा कोई अस्तित्व था।''[3] ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में महाविस्फोट सिद्धान्त द्वारा अब प्रमाणित हो चुका है कि ''पूरा ब्रह्माण्ड एक चरम संघनित अवस्था में एक काल एवं आयामरहित परम–सूक्ष्म बिन्दु के रूप में परमतप्त अवस्था में विद्यमान था, जिसमें लगभग 14 अरब वर्ष पूर्व एक भीषण विस्फोट हुआ। यहीं से ''काल'' एवं ''आकाश'' की उत्पत्ति हुई। आकाश का विस्तार अभी भी जारी है। आकाश गंगायें हमसे दूर जा रही हैं। उनकी गति हमसे उनकी दूरी की समानुपाती है। यह सिद्धान्त हबल का सिद्धान्त कहलाता है जिसका आविष्कार खगोल विज्ञानी एडविन हबल ने 1929 में किया था। ब्रह्माण्ड का विस्तार इस मान्यता की पुष्टि करता है कि ब्रह्माण्ड पहले सूक्ष्म एवं संघनित अवस्था में रहा होगा।''[4]

मानव की सृष्टि विषयक जिज्ञासा लगभग मानवीय सृष्टि जितनी पुरानी है। ऋग्वेद दशम् मंडल के सूक्त में इस जिज्ञासा को सर्वप्रथम आलंकारिक शैली में प्रस्तुत किया गया है–

किं स्विद्धनं क उ स वृक्ष आस,
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। (ऋग्वेद, 10/31/7)

मन्त्रांश का भाव है कि कौन सा वन था? कौन सा वृक्ष था? जिसे काट छांट कर द्यावापृथ्वी का निर्माण किया गया? आगे कहा है–

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमि जनयन्विश्वकर्मा वि धामोर्णोन्महिना विश्वचक्षाः।। (ऋग्वेद, 10/82/4)

अर्थात इस जगत का आधार, कारण और उपादान क्या है? जिससे उस विश्वकर्मा ने भूमि और द्यौ को उत्पन्न करते हुए अपनी महिमा से आच्छादित किया है।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त की आरम्भिक तीन ऋचाओं में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से पूर्व की परिस्थितियों का व्यापक चिन्तन मिलता है–

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीदगहनं गभीरम्।। (ऋग्वेद, 10/129/1)

उपरोक्त प्रथम मंत्र के अनुसार उस समय न असत् था न सत्, न रज(अन्तरिक्ष) था और न व्यापक व्योम। क्या ढका हुआ था? किसका आश्रय या शरण थी? क्या गहन गम्भीर जल ही विद्यमान था?

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।। (ऋग्वेद, 10/129/2)

इस द्वितीय मंत्र के अनुसार–उस समय मृत्यु, अमृत, रात, दिन, वायु आदि या अन्य किसी भी चिन्ह की सत्ता स्वीकार नहीं की गई है। वह मात्र एक परमात्मा स्वधा अपनी स्वयमेव की धारणा शक्ति से सम्पन्न था, उसके अतिरिक्त कोई और नहीं था।

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।। (ऋग्वेद, 10/129/3)

अर्थात तब अन्धकार से आवृत गहन अंधकार ही था, यह सब चिन्हविहिन जल ही था, जो भी एक तत्व था वह तुच्छ से आवृत्त और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार ''जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण के अनुसार महाभूतों की सृष्टि से पूर्व मात्र शून्य आकाश ही था, यह आकाश सूक्ष्मतत्व के रूप में 'वाक्' था। **'तामेतां वाचं प्रजापति रभ्यपीडयत'** से अभिप्राय है कि उस प्रजापति ने अव्यक्त वाक् को गति प्रदान कर हलचल पैदाकर दी, वह व्यक्तीभूता होकर प्राण–ऊर्जा (शक्ति) सम्पन्ना हो गई, इसी व्यक्त वाक् का परिणाम हुआ–ऋक्–यजु–साम रूपात्मक त्रयी विद्या। त्रयी विद्या से **'इमे लोका अभवन्'** ततः विश्वकर्मा प्रजापति के द्वारा इन लाकों में एक बडे स्तर पर गति दी गई, जिसमें एक परमाणु का अन्य परमाणु से संयोग होकर बहुत से पदार्थों का उद्भव स्वाभाविक ही रहा होगा।[5] इस प्रकार ''ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति को सविस्तार समझाया गया है जिसमें कहा गया है कि सृष्टि का जन्म एक महाविस्फोट से हुआ। तो क्या यह माना जाये कि एक दिन हमारे वैज्ञानिकों की बिगबैंग थ्योरी ऋग्वेद में वर्णित सृष्टि निर्माण के महाविस्फोट से ही आ मिलेगी?

सिंगुलैरिटी एवं अद्वैत

बिगबैंग की थ्योरी में कहा गया है कि 10–20 खरब साल पहले ब्रहमाण्ड के सभी कण एक दूसरे के बिल्कुल आस पास थे। इतने पास कि सारा ब्रह्माण्ड एक सूक्ष्मतम बिन्दु की शक्ल में था। यह वह सूक्ष्मतम सृष्टि थी जिसमें आधुनिक गणित और विज्ञान के सिद्धान्त काम नहीं करते। इस सृष्टि में दिशा, दूरी, गति और काल जैसे मानक अर्थहीन हो जाते हैं। ''सिंगुलैरिटी की अवस्था सामान्य सापेक्षता–सिद्धान्त एवं क्वांटम–सिद्धान्त की बाध्यताओं से परे है जहाँ भौतिकी एवं गणित के कोई ज्ञात नियम नहीं लगते इसलिए जो कुछ भी अनुमान लगाया गया है वह 'महाविस्फोट' के 10^{-43} सेकेण्ड बाद से ही सम्भव हो सका है जब ब्रहमाण्ड का आकार 10^{-33} से0मी0 रहा होगा और घनत्व 10^{94} ग्राम प्रति घन से0मी0 रहा होगा। इस प्रकार एकत्व या सिंगुलैरिटी की अवस्था में आकाश–काल वक्रता अनंत होगी तथा पदार्थ–ऊर्जा संघीभूत होकर 10^{-33} से0मी0 के आकार में सिमट जायेगी जिसकी गुरूत्व–शक्ति ही प्रधान होगी और घनत्व 10^{94} ग्राम प्रति घन से0मी0 होगा जिसकी जकड़ इतनी अधिक होगी कि कुछ भी नहीं दिखाई देगा क्योंकि प्रकाश–ऊर्जा इतने अधिक बलशाली गुरूत्वीय क्षेत्र से बाहर निकल ही नहीं सकती। सापेक्षीय क्वांटम यान्त्रिकी जो हेजेनबर्ग के अनिश्चितता–सिद्धान्त और आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षता–सिद्धान्त पर अवधारित है, भी महाविस्फोट के 10^{-43} सेकेण्ड के बाद की ही दशा का दिग्दर्शन कराती है। उसके पूर्व क्या हुआ था, हमें ज्ञात नहीं...''महाविस्फोट'' के एक सेकेण्ड बाद भी ब्रह्माण्ड का तापक्रम 10^{10} डिग्री0 से0 अर्थात् 10 अरब डिग्री से0 था और सम्पूर्ण द्रव्य आयनीकृत प्लाज्मा के रूप में विद्यमान था, जहाँ द्रव्य एवं ऊर्जा एक दूसरे से भिन्न नहीं थे और ब्रह्माण्ड का घनत्व अब भी इतना अधिक था, कि प्रकाश उससे बाहर उत्सर्जित नहीं हो सकता था''।[6] वेद की ये अवधारणा कि सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में सम्पूर्ण विश्व 'अज्ञान' से ग्रस्त था, सर्वत्र एक ही प्रभाव था और सबकुछ अव्यक्त था, सिंगुलैरिटी या एकत्व के इस वैज्ञानिक तथ्य को इंगित करती है जब द्रव्य–ऊर्जा की अत्यधिक घनत्व–गुरूता के कारण न तो द्रव्य–प्रकाश का विभेद सम्भव था और न ही उसका उत्सर्जन। ऐसी अवस्था में कोई भी सूचना व्यक्त या सम्प्रेषित नही की जा सकती थी। महाविस्फोट के साथ ही मूल सूक्ष्म कणों की रचना हुई और मूल कणों एवं उनके प्रतिधर्मी मूल कणों अर्थात इलेक्ट्रान एवं पॉजीट्रान के संयोग एवं उसके फलस्वरूप हुए उनके विनष्टीकरण से अनन्त ऊर्जा का सृजन हुआ और 'एकत्व' से 'द्वैत' की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

सापेक्षता एवं द्वैत

''वेदशास्त्र कहते हैं कि भौतिक जगत माया के एक ही मूल सिद्धांत के अन्तर्गत कार्य करता है– सापेक्षता और द्वैत का सिद्धान्त। समस्त जीव सृष्टि एकमात्र ईश्वर ही है और वह अखंड, निरपेक्ष एकत्व है। द्वित्व प्रदान करने वाला चोला ही माया है। प्रकृति की मूलभूत क्रियाएं अपनी माया–मूलकता का ही परिचय देती हैं। उदाहरण के लिए, विद्युतशक्ति आकर्षण और विकर्षण के कारण निर्मित होती है: उसके इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन परस्पर–विरोधी विद्युतआवेग हैं। दूसरा उदाहरण अणु, अर्थात पदार्थ की सूक्ष्मतम कणिका स्वयं पृथ्वी की तरह ही धनात्मक और ऋणात्मक ध्रुवों से युक्त एक चुम्बक है। यह समस्त गोचर जगत ध्रुवता के प्रभाव में है, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र या किसी भी अन्य विज्ञान का कोई भी नियम कभी अंतर्निहित परस्पर–विरोधी तत्वों से मुक्त नहीं मिलता।''[7] ''न्यूयार्क की बेल टेलिफोन लैबोरेटरीज के डॉ0 क्लिन्टन जे0 डेविसन तथा डा0 लेस्टर एच0 जर्मर ने 1927 में सर्वप्रथम इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप के सिद्धान्त का आविष्कार किया जिन्होंने यह देखा कि इलेक्ट्रॉन के अस्तित्व के दो पहलू हैं: उसमें स्वतंत्र कण के भी गुण हैं और तंरग के भी गुण हैं(अर्थात् यह पदार्थ भी है और ऊर्जा भी).....इलेक्ट्रान की द्विमुखी गुणात्मकता के आविष्कार के लिए, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि समस्त भौतिक जगत् द्विगुणात्मक है, डॉ0 डेविसन को भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।''[8]

कॉस्मिक बैंक ग्राउन्ड रेडिएशन एवं आदिनाद

परीक्षणों एवं वैदिक चिन्तन में समानता का एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है– ''वर्ष 1964 में आर्नो वेन्जियाज एवं रॉबर्ट विल्सन के एक परीक्षण के दौरान उनके रेडियो रिसीवर में एक गूंज सुनाई दी जिसका स्रोत उन्हें ज्ञात नही था। सभी तरह के प्रसारण बंद कर दिये जाने के बाद भी वह गूंज सुनाई देती रही और आश्चर्य की बात यह थी कि उसकी तीव्रता सभी दिशाओं में समान थी। अब यह सिद्ध हो चुका है कि महाविस्फोट के तीन–चार लाख वर्षों बाद जब द्रव्य से प्रकाश मुक्त हुआ होगा तो उसी ब्रह्माण्डीय विकिरण की पुरातन पश्चात्वर्ती आभा की इंफ्रारेड फ्रीक्वेंसी रेंज में माइक्रोवेव तरंगों से बड़ी रेडियों तरंगों के रूप में यह 'गूंज' पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इस ब्रह्माण्डीय गूंज को 'आदिनाद' के रूप में सम्बोधित करना अधिक उपयुक्त होगा। वेदों में ब्रह्म से हिरण्यगर्भ तथा हिरण्यगर्भ से उद्भूत सृष्टि के सिद्धान्त में 'ऊँ' एक महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि जब अव्यक्त से व्यक्त ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आया तो उस पल के घटनाक्रम का साक्षी ऊँ ही है जो विकिरण–ऊर्जा के रूप में काल संग यात्रा करते–करते न केवल ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण आयामों में व्याप्त है वरन् उसका अस्तित्व आज भी कॉस्मिक माइक्रोवेव बैंक ग्राउन्ड रेडिएशन(गूंज) के रूप में सर्वत्र विद्यमान है और भविष्य में भी रहेगा। यह मात्र संयोग नहीं है कि श्रुतियों में ऊँ को भूत, वर्तमान एवं भविष्य का साक्षी होना बताया गया है और उसको प्रणव के साथ एकीभूत किया गया है जो ब्रह्मानाद अथवा आदिनाद है। कृष्ण यजुर्वेद की शाखा मैत्रायाणि उपनिषद में ऊँ को ब्रहमाण्ड का आदिस्पन्दन कहा गया है। इस प्रकार ऊँ एक आदि ऊर्जा का ही प्रथम क्षणों का साक्षी रहा है इसी ब्रहमाण्डव्यापी 'गूंज' को वर्ष 1964 में पेन्जियाज और विल्सन ने अपने रिसीवर में सुना था।

जैमिनी 2–404 में कहा गया है कि–

अंतरिक्षे दुन्दभयो वितना वदन्ति–आर्धिकुम्भाः

अर्थात, अंतरिक्ष में दुन्दुभि के समान विस्तृत और सर्वव्यापी परम वाद्यध्वनि होती रहती है। इसमें भी उसी 'आदिनाद' की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है जो महाविस्फोट के पश्चात उत्सर्जित ऊर्जा के माइक्रोवेव गूंज के रूप में आज भी गूंजता रहता है।[9]

हमारे उपनिषद में उल्लिखित है कि ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और आत्मा, यह तीन तत्व ही हैं। ब्रह्म, 'ब्रह' धातु से बना है जिसका अर्थ 'बढ़ना' या फूट पड़ना है। अर्थात ब्रह्म वह तत्व है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि और आत्मा का सृजन हुआ है, या कहें कि उसी से यह दोनों फूट पड़े हैं। यह ही नहीं यहीं तो यह भी कहा गया है कि ब्रह्म ही सृष्टि के उत्पन्न होने और विनष्ट होने का कारक केवल ओर केवल ब्रह्म ही है। उपनिषद के अनुसार पदार्थ का संगठित रूप जड़ है और विघटित रूप परम अणु। इसी अणु को वेदों में परम तत्व कहा गया है उपनिषद में आगे विस्तार करते हुए लिखा गया है कि आकाश के बाद वायु, वायु के बाद अग्नि, अग्नि के बाद जल, जल के बाद पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरूष अर्थात् शरीर पैदा होता है। पाश्चात्य जगत् को इस अवधारणा ने काफी प्रभावित किया कि प्रकृति के नियम दैविक एवं शाश्वत हैं। न्यूटन को विश्वास था कि उनके वैज्ञानिक शोधों का उद्देश्य केवल प्रकृति को संचालित करने वाले ईश्वरीय नियमों का प्रमाण ढूंढना भर है। न्यूटन के बाद तीन सौ वर्षों तक प्रकृति के मूलभूत नियमों की खोज करना ही वैज्ञानिकों का उद्देश्य था'। ''जब आइन्स्टीन ने अपना एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त(यूनीफाइड फील्ड थ्योरी) प्रस्तुत किया तो उसमें उन्होंने एक ही गणितीय सूत्र में गुरूत्वाकर्षण नियम तथा विद्युत–चुंबकत्व नियम को अन्तर्भूत करने का प्रयास किया। इस प्रकार ब्रह्माण्ड की रचना को एक ही नियम के प्रकारान्तर के सिद्धान्त में लाकर आइन्स्टाइन युग–युगों को पार कर उन ऋषियों की श्रेणी में जा पहुंचे हैं जिन्होंने सृष्टि का एक ही आधार होने की घोषणा की थीः नित्य परिवर्तनशील माया।''[10]

''आईन्सटीन की नील बोहर से मतभिन्नता का आधार उनका यह विश्वास था जिसमें उनका मानना था कि कोई वाह्य सत्ता अवश्य है जिसमें स्थानिक रूप से नियुक्त स्वतंत्र तत्व विद्यमान हैं भारतीय चिन्तन का केन्द्र बिन्दु 'ब्रह्म' ही वह कड़ी है जो सूक्ष्म एवं स्थूल जगत के बीच अन्तर्निहित ब्राहमी चेतना के रूप में विद्यमान है जो अनिश्चितता के सिद्धांत के अनुरूप अनिर्वचनीय, अविभाज्य एवं अमूर्त है तथा अस्थानिक सम्बंधों के कारण समष्टि की पूर्णता से भी परे 'सम्पूर्ण' है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा महानतम् से भी महान् सम्पूर्ण एक है। वह कण–कण में व्याप्त है और नहीं भी है। डेकोर्ट एवं न्यूटन की यांत्रिकीय मान्यताओं से परे आधुनिक विज्ञान की साकल्यवादी(होलिस्टिक) एवं अंतः सम्बन्धित परिस्थितिक (इकोलॉजिकल) मान्यताओं का आधार ब्रह्म है। अतएव वेद आज पहले की तरह किन्तु विशिष्ट भूमिका में अधिक प्रासंगिक एवं सारवान हैं ईशावास्योपनिषद् का पांचवां मंत्र आधुनिक विज्ञान की उक्त मान्यताओं के अनुरूप उसी ब्रह्म तत्व का दर्शन कराता है, जिसमें कहा गया है–

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तत्वसर्वस्यास्य बाहयतः।।

अर्थात वह आत्मतत्व चलता है और नहीं भी चलता। वह दूर है और समीप भी है। वह सबके अन्तर्गत है और इस सबके बाहर भी है।''[11]

निष्कर्ष

हमारे ज्ञान की सीमाओं में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई हैं तथापि ब्रह्माण्ड को पूरी तरह समझ पाना असम्भव है। ''महान अविष्कारक मार्कोनी ने सृष्टि के आदि कारण को ढूंढने में विज्ञान की असमर्थता को इन शब्दों में स्वीकार किया थाः ''जीवन के रहस्य को सुलझाने में विज्ञान पूर्णतः असमर्थ है। यदि श्रद्धा नहीं होती तो सचमुच यह बडा ही भयंकर तथ्य होता। मनुष्य की बुद्धि के सामने खड़े होने वाले प्रश्नों में जीवन का रहस्य निश्चय ही सबसे बड़ा और सबसे अधिक जटिल प्रश्न है।''[12] यह प्रश्न कि सर्न की लैब में

चल रही खोज हमें आखिरकार कहाँ ले जायेगी? दरअसल बहुत पहले उठ चुका है क्योकि जब गैलिलियो ईसाईयत के खिलाफ खड़े होकर सारे संसार को यह बता रहे थे कि सूर्य धरती का चक्कर नहीं लगाता बल्कि धरती सूर्य के चक्कर लगाती है उससे जानें कितनी सदियों पूर्व हमारे वेद और उपनिषद हमें समझा चुके थें कि यह सृष्टि कैसे बनी, आकाश गंगायें और अद्वैतवाद क्या है हमारा वैदिक ज्ञान वस्तुतः बहुत पहले ही उन सत्यों का उल्लेख कर चुका है जिन्हें हमने बहुत बाद में स्वीकारा और स्वीकारते आयेंगे। गीता में श्री भगवान अर्जुन से कहते हैं–

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत।।42।।

श्री भगवान कहते हैं–"हे अर्जुन! बातें बहुत हुई, जिज्ञासायें भी बहुत हो चुकी, सवाल भी बहुत किये जा चुके, पर इस बहुतायत का प्रयोजन ही क्या है? अब मैं तुमसे कहता हूँ सार बात, सुन सको तो ध्यान से सुनो। इसे समझ सको तो समझो– मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योग माया के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ।" भले ही हम श्री भगवान के इस बहूमूल्य वचन पर विश्वास न करें परन्तु यदि वैज्ञानिक देवकण हिग्ज बोजान को ढूंढ निकालने में सफल हो जाते हैं तो विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में एक नये युग की शुरूआत हो जायेगी। वैज्ञानिकों का दावा है कि–

1. गॉड पार्टिकल मिलने के बाद इंटरनेट स्पीड कई गुना बढ जायेगी।
2. किसी वस्तु के द्रव्यमान के स्त्रोत का पता लग जाने पर उस वस्तु को आसानी से भारहीन किया जा सकेगा। इससे वस्तु के स्थानान्तरण में बल का प्रयोग नहीं होने से ऊर्जा की बचत हो सकेगी।
3. किसी भी वस्तु का द्रव्यमान हटा लेने पर उसे प्रकाश की गति से कहीं भी भेजा जा सकेगा। इससे अंतरिक्ष में भेजे जाने वाले सेटेलाइट के प्रक्षेपण में बहुत कम ऊर्जा का इस्तेमाल होगा एवं अंतरिक्ष तकनीक को और भी प्रभावशाली बनाया जा सकेगा।
4. इसे परिवहन के साधनों पर भी क्रियान्वित कर ईंधन की ज्यादा से ज्यादा बचत की जा सकेगी।

सन्दर्भ

1. योगानंद, परमहंस(2006) *योगी कथामृत*, योगदा सत्संग सोसाइटी आफ इण्डिया, कोलकाता, पृ0 379।
2. त्रिपाठी, गया चरण(1981) वैदिक देवता : उद्भव और विकास, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 164।
3. सिंह, चन्द्र मणि(2012) वेद, विज्ञान एवं ब्रह्माण्ड, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 25।
4. तदैव, पृ0 26।
5. शास्त्री, रूपकिशोर(1990) सामवेदीय, ब्राह्मण दार्शनिक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 28।
6. वेद, विज्ञान एवं ब्रहमाण्ड, पृ0 27, 28, 30।
7. योगी कथामृत, पृ0 374।
8. तदैव, पृ0 378–379।
9. तदैव, पृ0 377।
10. *वेद, विज्ञान एवं ब्रहमाण्ड*, पृ0 32।
11. तदैव, पृ0 18–19।
12. *योगी कथामृत*, पृ0 374।

कृत्रिम झिल्ली और इसके अनुप्रयोगः एक तकनीकी समीक्षा

मुहम्मद अयूब अंसारी[1], के.के. मौर्य[2], प्रशांत कुमार पाठक[2]
[1]रसायन विज्ञान विभाग, बिपिन बिहारी महाविद्यालय, झाँसी(उ0प्र0)–284001, भारत
[2]रसायन विज्ञान विभाग, शासकीय एस0 एल0 पी0 (पी0जी0) कॉलेज, मुरार, ग्वालियर(म0प्र0)–474006, भारत
ayub67@rediffmail.com

सार

प्रस्तुत समीक्षा कृत्रिम झिल्ली के इतिहास और विभिन्न प्रकार की संश्लेषित झिल्लियों का वर्णन करती है। वर्तमान में प्रयुक्त नवीनतम झिल्ली औद्योगिक आवेदन झिल्ली प्रौद्योगिकी के अभिसरण से उत्पन्न झिल्ली प्रौद्योगिकी के विकास और उपयोग में रूझान भी संक्षेप में दिया गया है।

बीज शब्द– कृत्रिम झिल्ली, इतिहास, अनुप्रयोग।

Artificial membrane and its applications: A technical review

Muhammad Ayub Ansari[1], K.K. Maurya[2] and Prashant Kumar Pathak[2]
[1]Reader, Department of Chemistry
Bipin Bihari P.G. College, Jhansi(U.P.)-284001, India
[2]Department of Chemistry, Govt. S.L.P.(P.G.) College
Morar, Gwalior(M.P.)-474006, India
ayub67@rediffmail.com

Abstract

The review describes the history and different types of artificial membrane. The latest membrane industrial application deployed today originates from the convergence of membrane technologies. The trends in the development and use of membrane technology are also summarized.

Key words–Artificial membrane, history, applications.

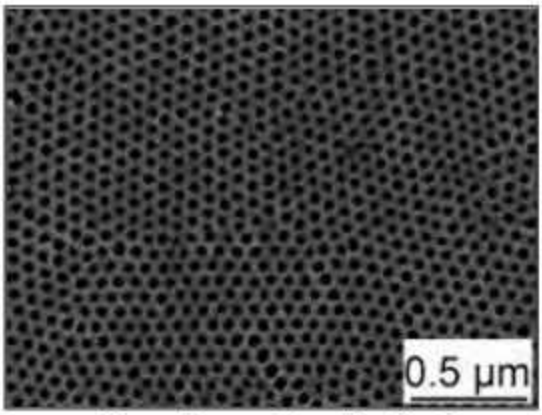
प्रस्तावना

कृत्रिम झिल्ली के इतिहास की प्रारम्भ 1748 में हुआ, जब, फ्रेंच वैज्ञानिक जीन एंटोनी नॉलेट(एबल नॉलेट) ने यह सिद्ध किया कि, पशु मूत्राशय, शराब की तुलना में पानी के लिए अधिक अर्ध–पारगम्य है। हेलफ़फेरीच, स्पाइग्लर, लॉस्डेल, लक्ष्मीनारायणईया, आदि वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम झिल्ली पर बहुत काम पहले से किया जा चुका है, एम0 एन0 बेग और रफीउद्दीन आदि ने विभिन्न सिंथेटिक आयन एक्सचेंज झिल्ली का निर्माण किया और उनकी संरचना और ऊष्मप्रवैगिकी के अध्ययन की जानकारी दी। अर्द्ध पारगम्य झिल्ली का, जलीय विलयन, औद्योगिक–प्रवाहित जल आदि के उपचार में वाणिज्यिक महत्व है। निष्क्रिय आयनों का वर्णन करने के लिए, आयन एक्सचेंज झिल्ली की तुलनात्मक जांच की गयी। झिल्ली का अध्ययन उसकी सफाई, दक्षता एवं जल के मृदुकरण लिए, विभिन्न आधार पर किया गया है। कुछ अन्य शोधकर्ताओं ने भी इसी क्षेत्र में कार्य किया है। अभी हाल ही में की गयी, आयन एक्सचेंज झिल्ली की तुलनात्मक जांच, केडम–कत्चलसकी के संशोधित समीकरणों एवं निष्क्रिय परिवहन के अनुप्रयोगों के वर्णन, आयन एक्सचेंज झिल्ली के परिवहन मानकों और आंतरिक सह–संबंध, प्रभारी घनत्व के मूल्यांकन, झिल्ली विभव क्षमता के विकास सिद्धांत के परीक्षण आदि ने झिल्ली विज्ञान के क्षेत्र में योगदान दिया है। कृत्रिम झिल्ली के पार, प्रसरण प्रक्रिया के, 'पूर्ण प्रतिक्रिया दरों के सिद्धांत' का प्रयोग कर, विभिन्न ऊष्मागतिक मापदंडों का मूल्यांकन किया गया। झिल्ली का इस्तेमाल, चिकित्सीय, अनुमापी और मिश्रण विश्लेषण में, चयनात्मक इलेक्ट्रोड के रूप में किया जा रहा है। वैज्ञानिक डोनन के झिल्ली संतुलन के शोध का झिल्ली अध्ययन करने के लिए, अग्रणी योगदान है। अलग–अलग पारगम्यता और अर्द्ध पारगम्यता वाली झिल्ली पौधे और पशु जीव में पाई जाती है, जो सामग्री के आदान प्रदान का कार्य करती है, और इस प्रकार जीवन के प्रवाह को विनियमित करती है। कई वैज्ञानिकों ने झिल्ली विभव और लवण–परागमयता की जांच की और वाई कोबाटेक एवं इनके साथियों द्वारा विकसित सिद्धांत के आधार पर प्रयोगात्मक–तथ्यों का मूल्यांकन किया।

कृत्रिम झिल्लियों के प्रकार

2.1 पॉलिस्टाइरीन आधारित कृत्रिम झिल्ली

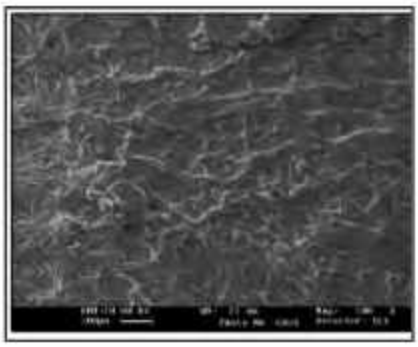
कृत्रिम झिल्ली, प्रयोगशालाओं में, विभिन्न पदार्थों जैसे, पॉलिस्टाइरीन, आयन एक्सचेंज रेजिन, अकार्बनिक तत्व, लिपिड और चर्मपत्र आदि द्वारा तैयार की जाती है। सेलोफेन प्रकार की झिल्ली, बड़े पैमाने पर रिवर्स ऑस्मोसिस की प्रक्रिया का उपयोग कर, खारे पानी को परिष्कृत करने में और अन्य एलेक्ट्रोलिटिक प्रक्रियाओं में की जाती है। ऐसी कृत्रिम रूप से तैयार झिल्ली पर साहित्य की बहुतायत, उस पर विस्तृत समीक्षा के साथ उपलब्ध है।



पॉलिस्टाइरीन आधारित कृत्रिम झिल्ली

चर्मपत्र आधारित कृत्रिम झिल्ली

चर्मपत्र समर्थित झिल्ली की अपरिवर्तनीय प्रक्रिया की ऊष्मागतिकी पर आधारित, 'नागासावा एवं इनके साथियों, टोयोशिमा और नोज़ाकी, द्वारा विकसित सिद्धांतों के अनुप्रयोग और द्विआयनिक विभव का परीक्षण एफ0ए0 सिद्दीकी एवं इनके साथियों ने किया। रफीउद्दीन एवं इनके साथियों और एस0 एम0 हुसैन ने, झिल्ली संरचना एवं लक्षण वर्णन के लिए मुख्यतया, स्कैनिंग इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोपी, एक्स–रे विवर्तन, सांध्वनिक अंतरण स्पेक्ट्रोस्कोपी, अवरक्त स्पेक्ट्रोस्कोपी आदि का उपयोग किया है।



चर्मपत्र आधारित कृत्रिम झिल्ली

झिल्ली की समग्र छिद्र संरचना, सूक्ष्म/वृहद सरंध्रता, एकरूपता, मोटाई, दरार और सतह बनावट/आकारिकी आदि का वृहद अध्ययन स्कैनिंग इलैक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप द्वारा किया गया है। झिल्ली की, स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप द्वारा ली गयी सूक्ष्म छवियों से प्राप्त जानकारी ने, सुव्यवस्थित, अवक्षेप/दरार–मुक्त झिल्ली बनाने में मार्गदर्शन दिया है।

कृत्रिम अकार्बनिक झिल्ली के अनुप्रयोग

अकार्बनिक झिल्ली बहुमुखी है। ये धातु झिल्ली के साथ 500–800 डिग्री सेल्सयस तापमान पर स्थिर है और सरेमिक झिल्ली के साथ 1000 से अधिक डिग्री सेल्सियस पर प्रयोग करने योग्य है। अकार्बनिक झिल्ली, रासायनिक हमले की बहुत अधिक प्रतिरोधी है। संक्षारक तरल पदार्थ और गैसों से, उच्च तापमान पर भी प्रतिरोधात्मक व्यवहार रखती है। अतः इसके निर्माण और इस्तेमाल की व्यापकता, महसूस

की जा रही है। अकार्बनिक झिल्ली वाणिज्यिक उपयोग के लिए जैविक झिल्ली के साथ प्रतिस्पर्धा में है। कठोर परिचालन वातावरण में कई, जैविक झिल्ली अच्छा प्रदर्शन नहीं करती, इस वातावरण के लिए, केवल अकार्बनिक झिल्ली समाधान प्रदान करती है।

कृत्रिम झिल्ली के कुछ महत्वपूर्ण उपयोग निम्नलिखित है–

1. तेल और पेट्रो रसायन उद्योग

* तेल शोधन और अन्य प्रक्रियाओं के साथ जुड़े हाइड्रोजन–पृथक्करण, रिकवरी और अन्य प्रक्रियाओं की लागत को कम करने में।
* तेल–उत्पादों के पुनः प्रयोज्य पदार्थों के पृथक्करण द्वारा पेट्रोलियम उत्पादन लागत को कम करने में।

2. जीवाश्म ईंधन ऊर्जा उत्पादक

* लागत कम करने और कोयला गैसीकरण की दक्षता में सुधार करने में।
* आर्थिक रूप से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में।
* जीवाश्म ईंधन के दहन से उर्त्सजित लोहे के आक्साइड और अन्य अवांछनीय उत्पादों के पृथक्करण में।

3. प्राकृतिक गैस ऊर्जा उत्पादक

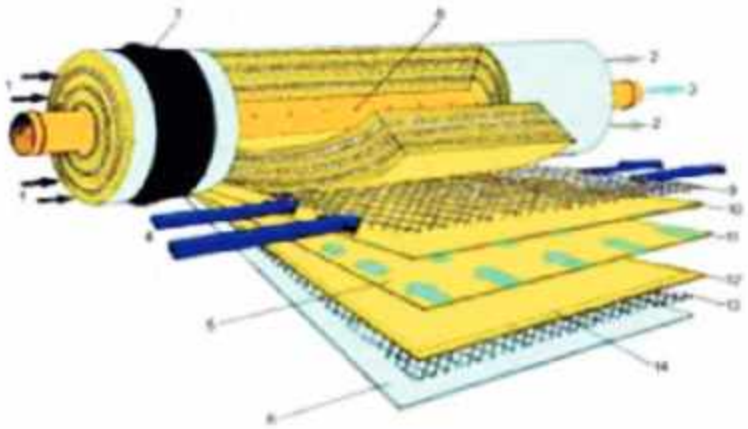
* प्राकृतिक गैस कुओं से अतिरिक्त कार्बन डाइआक्साइड, नाइट्रोजन, और नमी हटाने के द्वारा प्राकृतिक गैस के भंडार बढ़ रहे है।

4. लुगदी और कागज विनिर्माण उद्योग

* सामान्य रूप से प्रवाह में खो दिए गए, फाइबर के पृथक्करण में।
* पुनः उपयोग के लिए मूल्यवान रसायनों के पृथक्करण और पर्यावरण में अवांछनीय रसायनों की मात्रा को कम करने में।
* पानी को रसायनों और कचरे से अलग करने और मूल्यवान रसायनों को रीसाइक्लिंग द्वारा, वापस उपयोग हेतु बनाने में।

5. जल सफाई–शुद्धि अनुप्रयोग

* उद्योगों और नगरपालिका द्वारा अकार्बनिक झिल्ली का उपयोग कर रिवर्स ऑस्मोसिस(आर0ओ0) द्वारा बेकार पानी, खारा पानी, समुद्र के पानी आदि को पीने के लिए योग्य बनाया जाता है। अकार्बनिक आर0ओ0 झिल्ली क्लोरीन आदि के लिए प्रतिरोधी है।



आर0 ओ0 झिल्ली

निष्कर्ष

इस समीक्षा लेख का उद्देश्य, कृत्रिम अकार्बनिक झिल्ली बनाने की विधि, झिल्ली के लक्षण एवं झिल्ली के संभावित अनुप्रयोगों का संक्षिप्त वर्णन करना है। इस लेख में झिल्ली–साहित्य का सर्वेक्षण किया गया है। झिल्ली की समग्र छिद्र संरचना, सूक्ष्म/वृहद सरंध्रता, एकरूपता, मोटाई, दरार और सतह बनावट/आकारिकी आदि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, एवं लेखक की प्रयोगशाला में किए गए अनुसंधान कार्यक्रमों में से कुछ के बारे में बताया गया है। गत 200 वर्षों में, झिल्ली एक प्रयोगशाला उपकरण से उबरकर, महत्वपूर्ण

तकनीकी, वाणिज्यिक और औद्योगिक महत्व की हो गयी है। पिछले तीन दशकों में झिल्ली पर्म सिलेक्टिविटी में अपेक्षाकृत प्रगति हुई है और अब शोधकर्ता झिल्ली फाउलिंग की समस्या हल करने लिए कृत्रिम अकार्बनिक झिल्ली बनाने की नई–नई विधि की ओर अग्रसर हैं। अकार्बनिक झिल्ली का उपयोग रिवर्स ऑस्मोसिस(आर0ओ0) द्वारा बेकार पानी, खारा पानी, समुद्र के पानी आदि को पीने के योग्य बनाने में भी होता है। झिल्ली का प्रयोग रसायनों के प्रथक्कीकरण में भी किया जाता है। झिल्ली विज्ञान के क्षेत्र में संभावनाएं बहुत अधिक हैं। अतः यह कहना भी उचित होगा कि झिल्ली विज्ञान का समाज के विकास में बहुत अधिक महत्व है।

संदर्भ

1. नोलेट, जे0 ऐ0(ऐब्बी)(1752) हिस्ट0 ऐकेड0 आर0 साइंस, पेरिस एम0डी0सी0सी0, खण्ड 48, पृ0 57।
2. एच0के0 लोन्सडेल(1972) रिवर्स आसमोसिस मेम्ब्रेन रिसर्च, प्लेनम, न्यूयॉर्क।
3. हेल्फरीच, एफ0(1962) आयन एक्सचेन्ज, मेकग्रा हिल, न्यूयार्क।
4. स्वीगलर, के0 एस0(1962) साल्ट वाटर प्यूरीफिकेशन, वाइले, न्यूयार्क।
5. लक्ष्मीनारायाना, एन0(1969) ट्रान्सपोर्ट फिनोमिना इन मेम्ब्रेन, एकेडमिक प्रेस, न्यूयार्क।
6. बेग, एम0 एन0 (1981) ज0 मेम्ब्रेन साईन्स, खण्ड 9, पृ0 303।
7. रफीउद्दीन, तनवीर आरफीन(2012) डिसेलीनेशन, खण्ड 284, पृ0 100।
8. रफीउद्दीन, तनवीर आरफीन एवं खान, एम0 एम0 ए0(2013), ज0 इन्ड0 एण्ड इन्जी0 केमि0, खण्ड 19, पृ0 120।
9. अन्सारी, एम0 ए0; दादोरिया, के0 एस0, कुशवाहा, आर0 एस0(2011) एड0 एप्ला0 एण्ड साइंस रिसर्च, खण्ड 3, अंक 1, मु0 पृ0 251–260।
10. अन्सारी, एम0 ए0(2012) प्रोग्रेसिव रिसर्च, खण्ड 7, पृ0 159।

आधुनिक जीवन में योग चिकित्सा की भूमिका

रेनू मौर्या
प्रवक्ता, शारीरिक शिक्षा विभाग
सन्त कवि बाबा बैज नाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हरख, बाराबंकी(उ0प्र0)-225121, भारत

सार

योग चिकित्सा आत्म जागरूकता, और परमात्मा प्राप्ति के उद्देश्य के लिए शरीर को स्वस्थ बनाने और विचारशील मन को विकसित करने के लिए पहली बार भारतीय योगियों द्वारा विकसित की गयी है। इन योगियों द्वारा योग के माध्यम से अद्भुत शारीरिक स्वस्थता और मानसिक शक्तियों का विकास किया गया था। इस आधुनिक दुनिया में नियमित रूप से योग अभ्यास के द्वारा स्वास्थ्य में सुधार के साथ–साथ योग के सभी लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। योग का विधिपूर्वक अभ्यास करके आप एक स्वस्थ, संतुलित, शारीरिक और मानसिक स्थिति में होने के कारण अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ा कर आत्म चिकित्सा के लिए अपने शरीर में अच्छा वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं। योग आत्म–समझ को बढ़ावा देता है और यह आप और आपके शरीर में ही सामंजस्य बनाने की अनुमति देता है। योग दृष्टिकोण आपके शरीर और एक स्वस्थ मन के साथ अपने उचित समन्वय में सभी प्रणालियों के समुचित संचालन पर केंद्रित होता है। लम्बे समय तक नियमित योग किए जाने से समग्र स्वास्थ्य सुधार में मदद मिलेगी तथा इससे महत्वपूर्ण शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त होगा।

Importance of Yoga Therapy in Modern life

Renu Maurya
Assistant Professor, Department of Physical Education
Sant Kavi Baba Baij Nath Govt. P. G. College
Harakh, Barabanki(U. P.)-225121, India

Abstract

Indian yogi's for the first time developed yoga therapy in order to inculcate self awareness, divine realization, thinking capacity of soul and make human body healthy. They invisaged amazing body fitness and grater mental power through yoga. In this modern world we can get all benefits of yoga for improvement in health that comes with regular practice. By practicing yoga methodically you can lift your immune system, being in a healthier, balanced physical and mental condition; can create great environment in your body for self-healing. Yoga promotes self-understanding and this allows you and your body to reconcile itself. Yoga viewpoint concentrates on proper operation of all systems in your body and their appropriate coordination with a healthy mind. As you learn the long-tested art of yoga, the positions and breathing exercises will expressively help to improve your overall health. Regular practice of yoga positively does provide significant physical and mental health benefits.

प्रस्तावना

वर्तमान समय में मानव ने स्वयं को अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों के चक्रव्यूह में फँसा लिया है। इन रोगों की चपेट में आने का मुख्य कारण है व्यक्ति द्वारा शारीरिक कार्य न करना अर्थात् मशीनों की सहायता से ही सभी कार्य करने की प्रवृत्ति का तेजी से बढ़ना। व्यक्ति का अकेले घंटों तक मशीनों के साथ रहना तथा सुबह–शाम पैदल न चलने की आदत आदि न होना भी विभिन्न रोगों को जन्म देती है। इन रोगों से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति भिन्न–भिन्न चिकित्सा पद्धतियों का सहारा लेता है। किन्तु वर्तमान में व्यक्ति की कार्य–प्रणाली व खान–पान को देखते हुऐ 'योग उपचार' से बढ़कर अन्य कोई भी पद्धति कारगर सिद्ध नहीं हो सकती है। अतः वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति को योग चिकित्सा का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

योग चिकित्सा का अर्थ

योग चिकित्सा से अभिप्राय है– योग के द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार करना। योग चिकित्सा एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा चिकित्सक के बिना भी यदि व्यक्ति रोग का गहन अनुभव रखता है तो अपना उपचार स्वयं कर सकता है। योग चिकित्सा में व्यक्ति स्वयं अपने स्वास्थ्य की देखभाल करते हुए अनेक असाध्य रोगों पर भी नियंत्रण पा सकने में समर्थ हो सकता है। योग चिकित्सा एलोपैथी चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा, होम्योपैथिक चिकित्सा, यूनानी चिकित्सा व चुम्बकीय चिकित्सा से सर्वथा अलग है। किन्तु योग चिकित्सा जहाँ यौगिक क्रियाओं व अन्य योग के साधनों से चिकित्सा करती है वहीं अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ दवाइयाँ व अन्य तरीकों से अपनी चिकित्सा करते हैं। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि योग चिकित्सा अन्य उपरोक्त

सभी चिकित्सा पद्धति से उपचार कराते समय भी चिकित्सक की परामर्श पर की जा सकती है।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य में योग चिकित्सा का स्थान

कई चिकित्सा पद्धतियाँ व्यक्ति के मनोकायिक व्याधियों व जीर्ण रोगों से छुटकारा दिलाने में विफल रही हैं, क्योंकि रोगी के सूक्ष्म शरीर के तल का स्पर्श नहीं कर सकी है। व्यक्ति इस भौतिक शरीर से कहीं अधिक है। अधिकांश चिकित्सा प्रणालियाँ मन की बीमारियों को समझने में सफल नहीं हुई है। वे मन के अन्तःकरण तक नहीं पहुंच पायी है। उन्हें मन की गहराई व शक्ति का अनुभव नहीं है। इस दिशा में मानसिक व्याधियों(बीमारियों) के नियंत्रण में योग की भूमिका अद्वितीय है, क्योंकि यौगिक ध्यान की तकनीकें हमें मन की गहराइयों तक ले जाती है। यौगिक क्रियाएं हमारे चेतन मन का विस्तार करती हैं।

योग के अनुसार मानव– अस्तित्व के भौतिक, भावात्मक, मानसिक, इन्द्रिय बोध से परे एवं आध्यात्मिक आयाम है और जब तक इनमें से प्रत्येक पक्ष का समुचित पोषण एवं विकास नहीं होगा, हमें संतुलित और समग्र स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होगा। इस सन्दर्भ में अत्याधुनिक औषधियों को योग का सहयोग अत्यन्त लाभकारी होगा। योग न केवल हमारे मन और व्यक्तित्व के अति सूक्ष्म आयामों की स्पष्ट रूप–रेखा प्रस्तुत करता है, वरन् हमें कुछ ऐसी विधियाँ प्रदान करता है, जिनसे हम अपने मन और चेतना को स्वस्थ एवं संतुलित रख सकते हैं।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि दमा, मधुमेह अथवा अन्य मनोकायिक व्याधियों के उपाचार या निराकरण के लिए हमें वाह्य शारीरिक लक्षणों के परे जाकर देखना चाहिए। योग द्वारा हमें अपने मन तथा अन्यों के मन को समझने के लिए अच्छी सहायता प्राप्त होती है। चाहे कोई मरीज हो या योग शिक्षक अथवा चिकित्सक हो, सबको योग द्वारा यह दक्षता प्राप्त हो सकती है।

योग चिकित्सा पद्धति एवं अन्य चिकित्सा पद्धति

योग चिकित्सा पद्धति व अन्य चिकित्सा– पद्धतियाँ एक दूसरे की विरोधी न होकर परस्पर एक–दूसरे की सहयोगी है। सभी चिकित्सा पद्धति मानव–जाति के स्वास्थ्य लाभ की दिशा में कार्य करती हैं। सबका लक्ष्य मानव को बीमारियों से बचाकर स्वस्थ व पुष्ट बनाये रखना है। योग की भूमिका उन चिकित्सा पद्धतियों जैसे एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद, चुम्बकीय चिकित्सा आदि की तरह उपचारात्मक नहीं है। इसकी भूमिका सुदृढ़ स्वास्थ्य प्रदान करने की है। विशुद्ध रूप से रोग की प्रगति और औषधि की खुराक को घटाने–बढ़ाने एवं अन्य जाँच–पड़ताल के लिए बनी रहती है। योग शरीर को स्वस्थ कर दवा की मात्रा को घटाने का कार्य करता है और धीरे–धीरे रोग को ठीक करने में मदद करता है। इस प्रकार दवा और योग परस्पर एक दूसरे से सहयोगी है। यदि हम दोनों प्रणालियों का सर्वोत्तम उपयोग करे तो रोगी और चिकित्सक दोनों लाभान्वित हो सकते हैं।

इसके लिए रोगी को समय–समय पर अपने चिकित्सक के पास जाँच–पड़ताल के लिए जाते रहना चाहिए। इससे योग शिक्षक को भी पता चलता रहेगा कि उसकी पद्धति कितनी कारगर सिद्ध हो रही है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि योग चिकित्सा व अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ एक–दूसरे की पूरक हैं, विरोधी नहीं और इनके बेहतर समन्वय से व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक व भावात्मक व्याधियों का निवारण किया जा सकता है।

योग चिकित्सा की आव यकता

योग चिकित्सा के द्वारा शरीर का वाह्य तथा आंतरिक अंगों को स्वस्थ रखने में मदद मिलती है। जब तक हमारे शरीर के अन्तः व वाह्य अंग स्वस्थ नहीं होंगे, तब तक हम कोई भी कार्य भली–भांति नहीं कर पायेंगे। शरीर एवं मन का परस्पर, पर बड़ा गहरा सम्बन्ध है। योग चिकित्सा पद्धति द्वारा शरीर के समस्त विकार सात मार्गों–दायें बायें नाक, गुदा, जननेन्द्रियों, त्वचा, दांये–बायें कानों व दांयी–बायीं आँखों के द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं। जिसके कारण शरीर स्वस्थ रहता है।

योग चिकित्सा द्वारा न केवल रोगोपचार किया जा सकता है, बल्कि इसका प्रतिरोधात्मक उपयोग भी किया जा सकता है और रोग से उपजी पीड़ा का दमन भी हो सकता हे। योग सर्वदा स्वास्थ्यवर्द्धक है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि शरीर और मन का समग्रतः समन्वित स्वरूप ही हमारा स्वास्थ्य है। जब तक हम अपने समग्र व्यक्तित्व के विविध आयामों को संतुलित नहीं कर लेते तब तक पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं कर सकते।

योग के सुधारात्मक एवं बचावात्मक प्रभाव

योग विभिन्न रोगों को दूर करने में एक अहम् भूमिका निभाता है। योग शरीर में एकत्र एवं संचित विषाक्त तत्वों, रसायनों, अपशिष्ट द्रव्यों, जिनसे मुख्य कोशिकाएं, लसिका, तंत्रिका तथा अन्य शारीरिक प्रणालियाँ अवरूद्ध हो गई हैं, उनको साफ कर शरीर को स्वस्थ एवं संतुलित करने में मदद करता है। ये विकार शरीर क्रियात्मक कार्यों को अस्त–व्यस्त कर देते हैं। जिसके परिणामस्वरूप प्राण ऊर्जाओं के क्षेत्र विकृत हो जाते हैं और रोग प्रकट होता है। शारीरिक ऊर्जा की विकृति से मन प्रभावित होता है। जिससे पीड़ा, तनाव और दुःख उत्पन्न होते हैं। शरीर की विकृत प्रक्रियाओं में सुधार लाकर उन्हें स्वाभाविक रूप से कार्य करने योग्य बनाने हेतु योग एक उत्तम क्रिया विधि है। विभिन्न रोगों में योग के सुधारात्मक एवं बचावात्मक प्रभावों का वर्णन निम्न प्रकार से है–

1. उक्त रक्त चाप

क) आसन	सुप्त ताड़ासन	10 मिनट
ख) प्राणायाम	चन्द्र भेदी	10 मिनट
ग) जप	'ऊँ'	10 मिनट
घ) मुद्रा	अपान वायु मुद्रा	
ङ) प्रेक्षा	दीर्घश्वास प्रेक्षा, शरीर पर नीले रंग का ध्यान	
च) तप	तले, चिकने भोजन का त्याग।	

2. निम्न रक्तचाप

क) आसन	उत्तानपादासन, पद्मासन, सिद्धासन, शशांकासन	5 मिनट
ख) प्राणायाम	कपालभाति, उज्जाई, सूर्यभेदी, भस्त्रिका	5 मिनट
ग) प्रेक्षा	दर्शन केन्द्र पर लाल रंग का ध्यान, शरीर प्रेक्षा	10 मिनट
घ) मुद्रा	प्राण मुद्रा	
ङ) जप	'ऊँ'	10 मिनट
च) तप	तली–भुनी वस्तुओं का त्याग	

3. सिर दर्द

क) आसन	पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, शशांकासन	
ख) प्राणायाम	नाड़ी शोधन, स्वर परिवर्तन, शीतली	5 मिनट
ग) प्रेक्षा	ललाट पर सफेद रंग का ध्यान	10 मिनट
घ) मुद्रा	अपान मुद्रा	
ङ) जप	'ऊँ'	
च) तप	तली–भुनी वस्तुओं का त्याग	

4. जुकाम

क) आसन	सिद्धासन, उत्तानपादासन, मत्स्यासन, भुजंगासन	
ख) प्राणायाम	नाड़ी शोधन, सूर्यभेदी	5 मिनट
ग) प्रेक्षा	मुख पर लाल रंग का ध्यान	5 मिनट
घ) जप	'ऊँ' (वज्रासन मुद्रा में)	10 मिनट
ङ) मुद्रा	प्राण मुद्रा, सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा	
च) तप	तली एवं चिकनी वस्तुओं का त्याग	

नोट : पेट की सफाई के लिए एनिमा आदि का प्रयोग तथा आवश्यकतानुसार कफ शुद्धि के लिए कुंजल का प्रयोग एवं नेत्ती क्रिया भी कर सकते हैं।

5. ज्वर (बुखार)

क) आसन	कायोत्सर्ग	
ख) प्राणायाम	स्वर परिवर्तन, पित्त के प्रयोग से आए ज्वर में चन्द्र स्वर का प्रयोग	
ग) प्रेक्षा	तेजस केन्द्र पर ध्यान 20 या 25 मिनट विशुद्धि केन्द्र पर ध्यान	10 मिनट
घ) जप	'ऊँ'	10 मिनट
ङ) तप	उपवास	

6. कमर दर्द

क) आसन	उत्तानपादासन, भुजंगासन, मकरासन, मत्स्यासन	
ख) प्राणायाम	सूर्यभेदी, दर्द के स्थान पर ध्यान केन्द्रित के सूक्ष्म भस्त्रिका	5 मिनट
ग) प्रेक्षा	कमर तथा उसके होने वाले दर्द की प्रेक्षा	10 मिनट
घ) जप	'ऊँ'	10 मिनट
ङ) तप	अनामिका और अगुंष्ठ को सटाकर दबाव दें	15 मिनट
च) मुद्रा	वायु, मुद्रा, सहनमुख मुद्रा।	

7. त्वचा के रोग

क) आसन	पेट और श्वास की दस क्रियाएँ, भुजंगासन, सर्वांगासन पश्चिमोत्तानासन, मत्स्यासन

	ख) प्राणायाम	नाड़ी शोधन, अनुलोम–विलोम, ग्रीष्म ऋत में शीतली, सूक्ष्म भस्त्रिका	5 मिनट
	ग) प्रेक्षा	पूरे शरीर पर हरे रंग का ध्यान	10 मिनट
	घ) जप	'ऊँ'	10 मिनट
	ङ) मुद्रा	वरूण मुद्रा	
	च) तप	नमक में कमी करना, भोजन भी कम लेना।	
8.	पाचन तंत्र की बीमारियाँ		
	क) आसन	अग्निसार, उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, इष्टवंदन, पेट की दस क्रियाएं	
	ख) प्राणायाम	सूर्यभेद्री, अनुलोम–विलोम	10 मिनट
	ग) प्रेक्षा	पाचन तंत्र पर पीले रंग का ध्यान	10 मिनट
	घ) जप	'ऊँ'	10 मिनट
	ङ) मुद्रा	सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, सुरभि मुद्रा	
	च) तप	तली, चिकनी व अपाच्य वस्तुओं का त्याग	
9.	कब्ज होने पर		
	क) आसन	अग्निसार, पेट की दस क्रियाएं, इष्टवंदन	
	ख) प्राणायाम	दीर्घश्वास, अनुलोम–विलोम	5 मिनट
	ग) प्रेक्षा	तुड्डी के नीचे के भाग को हथेली से दबायें और उस पर ध्यान केन्द्रित करें	10 मिनट
	घ) जप	'ऊँ'	10 मिनट
	ङ) मुद्रा	सूर्य मुद्रा, शंख मुद्रा, नमस्कार मुद्रा।	
	च) तप	तला–भुना भोजन का त्याग।	
10.	श्वसन सम्बन्धी रोग		
	क) आसन	पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, सुप्त वज्रासन, नौकासन	
	ख) प्राणायाम	सूर्यभेद्री, उज्जाई, अनुलोम–विलोम,सूक्ष्म भस्त्रिका	
	ग) प्रेक्षा	श्वास पर नारंगी रंग का ध्यान	10 मिनट
	घ) जप	'ऊँ'	
	ङ) मुद्रा	वायु मुद्रा, प्राण मुद्रा	
	ङ) तप	शीतल पदार्थों का त्याग।	
11.	पैर व घुटने में दर्द		
	क) आसन	पवनमुक्तासान, पश्चिमोतानासन	
	ख) प्राणायाम	दीर्घ श्वास, घुटने पर ध्यान केन्द्रित कर सूक्ष्म भस्त्रिका	
	ग) प्रेक्षा	दर्द वाली जगह का ध्यान	10 मिनट
	घ) जप	'ऊँ' का दीर्घ उच्चारण	10 मिनट
	ङ) मुद्रा	वायु मुद्रा, अपान मुद्रा	
	च) तप	मीठे व खटाई वाले पदार्थ का त्याग	
12.	नेत्र–दोष		
	क) आसन	गर्दन एवं नेत्र की यौगिक क्रियाएं, मत्स्यासन, सिंहासन, सर्वांगासन	
	ख) प्राणायाम	दीर्घश्वास, शीतली	5 मिनट
	ग) प्रेक्षा	आँख पर हरे रंग का ध्यान	10 मिनट
	घ) जप	'ऊँ' नमः शिवायः	10 मिनट
	ङ) मुद्रा	प्राण मुद्रा, नमस्कार मुद्रा	
	च) तप	तामसिक भोजन का त्याग	

उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त अन्य अनेक रोगों का उपचार भी यौगिक चिकित्सा द्वारा सम्भव है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यौगिक चिकित्सा के सुधारात्मक एवं बचावात्मक प्रभाव अत्यन्त सकारात्मक सिद्ध होते हैं तथा इनका अनुकरण करके विभिन्न रोगों से बचा जा सकता है।

संदर्भ

1. आनंद, श्री(1999) द कंपलीट बुक ऑफ योग, हार्मोनी ऑफ बॉडी एण्ड माइंड, ओरिएंट पेपर बैंक, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

2. आइंगर, वी0 के0 एस0(1982) लाईट ऑन योग, ग्रेट ब्रिटेन, जॉर्ज एलन एण्ड अनविन।
3. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द(1995) आसन, प्राणायाम मुद्रा, बदर, बिहार स्कूल ऑफ योग गंगा दर्शन, मुंगेर, बिहार, भारत।
4. शर्मा, ललिता(1999) ऑल यू वांटेड टू नो अबाउट योग, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लि0।
5. शर्मा, पी0 डी0(1984) योग, योगासन, प्राणायाम फॉर हेल्थ, नवनीत पब्लिकेशंस लि0, अहमदाबाद, गुजरात, भारत।

विषाक्त मछलियाँ

सुधीश चन्द्र
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग,
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0 प्र0)-226001, भारत
sudhish1953@gmail.com

सार

अधिकांश विषाक्त मछलियां समुद्र तलहटी के प्रवाल द्वीपों के समीपस्थ समूहों में पाई जाती है। आविष इनके श्लेष्मा, रक्त, मांसपेशियों, जनद एवं अन्तरांगों में पाये जाते हैं। मीन विषाक्ता की मात्रा भोजन, वातावरण, समय, स्थान, प्रजननकाल आदि से संबंधित परिलक्षित होती है। मीन आविष विशिष्ट रसायनिक पदार्थ युक्त होते हैं तथा मनुष्य या अन्य स्तनी द्वारा खाने पर उनमें गम्भीर विपत्तिजनक लक्षण प्रकट होते हैं जो अन्ततः मृत्युकारक होते हैं। निःसन्देह मत्स्य आहार एक सुलभ, सुपाच्य पौष्टिक एवं संतुलित आहार है, किन्तु मछलियों के गुणधर्म एवं मानव उपयुक्तानुसार ही इनका चयन किया जाना चाहिए।

Poisonous fishes

Sudhish Chandra
Associate Professor and Head, Department of Zoology
B. S. N. V. P. G. College, Lucknow(U.P.)-226001, India
sudhish1953@gmail.com

Abstract

Most of the poisonous fishes inhabit in deep ocean and tend to occur in large numbers around coral islands. The toxin is distributed in their mucus, blood, musculature, gonads and viscera of these fishes. Intensity of poison seem to be related with feeding, environment, time, habitat, reproductive cycle etc. Ichthyotoxins consists of specific chemicals and has been reported to cause several dangerous symptoms, leading to even death, if eaten by human beings and other mammals. Perhaps, fish is an easily available rich source of nutritious and balanced diet, yet be selected according to their characteristics and suitability as food for human beings.

मनुष्य के लिये अनाज के साथ ही मछली एक उपयुक्त एवं संतुलित आहार है। मछलियाँ विटामिन, खनिज,उच्चगुणी प्रोटीन एवं अल्प संतृप्त वसा युक्त होने के कारण एक अत्यन्त पौष्टिक आहार है। इसके अतिरिक्त मछली एक सुलभ, स्वादिष्ट, सुपाच्य आहार गुणवत्ता वृद्धि का सरल साधन है। ओमेगा–3 आयल, जो मस्तिष्क के न्यूरान की झिल्लियों में द्रवीय स्थिति उत्पन्न कर तंत्रिका संचार को सुगम बनाता है, की उपस्थिति के कारण इसे 'ब्रेन फूड' भी कहते हैं। अनुमान लगाया गया है कि विकासशील देशों में लगभग साठ प्रतिशत जनंसख्या प्रोटीनयुक्त भोजन हेतु मछलियों पर निर्भर है। स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता एवं सघन मत्स्य पालन से, सहज उपलब्धता के फलस्वरूप आज लगभग सत्तर प्रतिशत विश्व मत्स्य उत्पादन मानव द्वारा उपयोग किया जा रहा है।

सभी मछलियां मानव के भोजनोपयोगी नहीं होती है। विश्व में वितरित मछलियों में लगभग एक हजार से अधिक विषाक्त होती हैं। अपनी विषाक्तता के कारण वातावरण में यह कोई विशेष पारिस्थितिक समस्या उत्पन्न नहीं करती है। वह मछलियां जिनके ऊतक आंशिक अथक पूर्णरूपेण विषाक्त होते हैं इस समूह में समाहित है (होर तथा रैडल 1969)। कई मछलियां जीवाणु रोग जनकता एवं मृत्योपरांत अंतरागों के सड़ने के फलस्वरूप भी विषाक्त हो जाती है। मत्स्य विषाक्तता वस्तुतः मीन आविषता का पर्याय है। हैलस्टेड (1967) ने विषाक्त मछलियों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया है।

1. मीनाशन विषाक्त(इक्थियोसारकोटाक्सिक)– वह मछलियां जिनमें आविष उनके चर्म, मांस पेशियों या अंतरागों में पाये जाते हैं।
2. मीन विषाक्त (इक्थियोटाक्सिक)–वह मछलियां जिनमें आविष प्रायः इनके जनदों में सीमित होते हैं। इनकी जनद सक्रियता तथा आविष मात्रा अंतरसंबंधी होते हैं। इनसे उत्पन्न अंडे भी विषाक्त होते हैं।
3. मीन रक्त विषाक्त (इक्थियोहीमोटाक्सिक)– इन मछलियों के रक्त में आविष पदार्थ पाये जाते हैं।
4. मीन श्रावविषाक्त(इक्थियोक्रिनोटाक्सिक)– वह मछलियां जिनमें आविष ग्रन्थिश्राव द्वारा उत्पन्न होता है, परन्तु विशिष्ट दंश उपकरण अनुपस्थित होता है। ऐसी मछलियां अंतचर्म में निहित ग्रन्थियों द्वारा आविष श्रावित करती है जो अंततः वातावरण में निर्मुक्त हो जाता है।

अधिकांश मछलियां प्रायः प्रवालमित्ति क्षेत्रों में पाई जाती हैं। वे इन प्रवालद्वीपों के समीप ही अधिकाधिक संख्या में वास करती हैं। विषाक्त मछलियां ज्यादातर अप्रवासी होती हैं। कुछ मछलियों में विषाक्तता सदैव पायी जाती है, जबकि अन्य में विशिष्ट समय अथवा स्थान पर ही परिलक्षित होती है। रसेल(1965) के अध्ययन से विदित है कि मछलियों में विषाक्तता की मात्रा समय, वातावरण एवं स्थान के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। मीन

विषाक्तता के निम्न कारण प्रतिपादित किये गये हैं–

क) प्रायः विषाक्त समुद्री पादपों को खाने के कारण।
ख) विषाक्त प्रोटिस्ट जीवों (विशेषकर डाइनोफ्लैजलेट) के अशन के कारण
ग) प्रवालो, जेलीफिश, मोलस्क, पलैलोवर्म आदि को संवरण करने के कारण
घ) समुद्र का कालुष्य/प्रदूषण
च) वातावरणीय परिवर्तन
छ विघितनाभिक एवं भारी घातुओं का समुद्र में निक्षेप
ज) अंडजनन क्रियायें
झ) त्वचा द्वारा उत्पन्न अंतःपदार्थ व उपापचय क्रियायें।
ट) चन्द्र प्रकाश की अनाश्रयता

इन विषाक्त मछलियों के खाने से विभिन्न प्रकार की निम्नांकित विषाक्तता उत्पन्न होती है–

मीना ान विषाक्तता

ऐसी विषाक्तता उन मछलियों के खाने से होती है, जिनमें विष वाह्य त्वचा, श्लेष्मा, मांस पेशियों एवम् अंतरांगों में पाये जाते हैं। विशिष्ट समूह की मछलियों में विषाक्त गुणधर्म भिन्न होते है। उदाहरणार्थ–

साइक्लोस्टोम विषाक्तता – प्रायः लैम्प्रे व हैगफिश जिनके श्लेष्मा में विषाक्तता पाई जाती है, के खाने से उत्पन्न होती है। श्लेष्मा आविष के रासायनिक अथवा भेषजीय प्रवृत्ति के बारे में जानकारी नगण्य है।



इलैस्मोब्रैंक विषाक्तता– शार्क मछलियों के मांस खाने से विषाक्तता देखी की गई है। कूपर(1964) ने अंकित किया है कि टाइगर शार्क, श्वेत लैगून शार्क व अन्य के यकृत में आविष पाया जाता है। इनके खाने से मनुष्यों में जठराँत्र व तंत्रिकीय विकार शीघ्र एवं गम्भीर परिलक्षित होते हैं। ग्रीनलैंड में *सोम्नियोसस माइ ोसिफैलस* शार्क के ताजा मांस सेवन से प्राणघातक विषाक्तता देखी गई है (बोजे,1939)। हेल्सटेड व शाल (1958) ने पाया कि ग्रे रीफ शार्क के यकृत व जनद विषाक्त होते हैं। जिनमें कोलीनइस्टरेज विरोधी पदार्थ पाये जाते है। कतिपय स्केट, रे व रैट मछलियों भी विषाक्त होती है। इलैस्मोब्रैंक विषाक्तता को जटिल एवं भिन्न हेतु विज्ञानी बताया गया है।

सिगुआटेरा विषाक्तता

लगभग 440 समुद्री विषाक्त मछलियां इस श्रेणी में आती हैं। ऐसी अधिकांश मछलियां प्रायः तलहटी में, अधिकतर लैगून व प्रवालभित्ति के आसन्न निवसित होती है। ये शैवाल, छोटी मछलियों व अन्य सूक्ष्म जीवों को खाती है (रैन्डल, 1958)। एक ही प्रजाति में प्राय बड़ी मछलियां छोटी मछलियों की अपेक्षा अधिक विषाक्त होती हैं। इन मछलियों में मांस व जनद की अपेक्षा यकृत अधिक विषाक्त होता है। वैज्ञानिकों ने मछलियों की सिगुआटेरा विषाक्तता को उनकी खाद्य श्रृंखला से सहसंबंधित माना है(रैन्डल, 1958, हेलफ्रिश व बैनर, 1963, कूपर 1964)। इन मछलियों में आविष का श्रोत तलहटी समुदी शैवाल *लिंगबुआ मैजस्कुटा, प्लेक्टोनीमा टेरेब्रैंस* से माना जाता है। 'सिगुआटाक्सिन' जल एवं तनु अम्ल में अघुलनशील, वसीय पदार्थ है। श्यूअर आदि(1967) ने इसे एक चतुष्क नाइट्रोजन परमाणु, एक या अधिक हाइड्राक्सिल समूह तथा साइक्लोपेन्टोन अर्धांश युक्त वसीय रासायनिक पदार्थ विश्लेषित किया है। इस समूह की मछलियों के अशन से मनुष्य में त्वरित रक्तचाप में ह्रास तथा श्वसन गति युगपत में वृद्धि उत्पन्न होती है। बैनर आदि (1963) ने स्तनी के तंत्रिका पेशीय संचारण पर सिगुआटाक्सिन के प्रभाव को इंगित किया है। अभिनव प्रायोगिक तथ्यों से प्रतीत होता है कि यह आविष वस्तुतः एन्टीकोलीनइस्टरेज से कुछ अधिक ही है (रेनर आदि 1968) जो श्वासावरोध माध्यम से मृत्युकारक होता है। इसके अतिरिक्त सिगुआटेरा आविषी मछलियों के उपयोग से स्तन्यधारियों में पेशीय दुर्बलता, पेशीय असमन्वयन, वमन, अतिसार, श्वसन व्यथा तथा परानुकम्पी क्रियाओं में वृद्धि जैसे लक्षण परिलक्षित होते हैं।

टेटाडान विषाक्तता

टेट्राडान्टीफार्मीस वर्ग की अधिकांश मछलियां जैसे कि पफर फिश, सन फिश, पारकूपाइन फिश, ट्रिगर फिश, स्पाइक फिश, ट्रंक फिश, फाइल फिश आदि विषाक्त होती हैं। अधिकांश मछलियों में आविष जनद, यकृत, आंत्र, त्वचा एवं मांस में समाहित होता है। उनमें आविष की उपस्थिति एवं मात्रा इनकी प्रजनन चक्र से सहसंबंधित है, तथा अधिकतम मात्रा अंडजनन के ठीक पूर्व पाई गई हे। इन मछलियों का आविष 'टेट्राडोटाक्सिन' (टीटीएक्स) एक एमीनोपरहाइड्रोक्यूनाजोलीन यौगिक है। (वुडवर्ड, 1964, मोशर आदि, 1964) जो अति शक्तिशाली प्रोट्रीन रहित आविष है। इन मछलियों के खाने से आविष सुगमता एवं शीघ्रता से मुख व जठरांत्र द्वारा अवशोषित कर दिया जाता है। कोइजुगी आदि (1967) ने पाया कि आविष की अल्पमात्रा भी उपभोक्ता के श्वसनगति, हृदय स्पंदन, वाहिका प्रेरक एवं वाह्यक गतिविधियों को क्रमशः समाप्त कर देता है। आलस्य, पेशीय शिथिलता,शारीरिक क्रियाओं में समन्वय का अभाव जैसे प्रारम्भिक लक्षण भी परिलक्षित होते हैं। आविष का सीधा प्रभाव फ्रीनिक तंत्रिका के माध्यम से मस्तिष्क के श्वसन संचालन केन्द्र पर होता है, जिससे श्वसन अवरोध तत्पश्चात् मृत्यु हो जाती है (चेमल आदि 1962, ली, 1963)। जापान में पफर फिश एक बहुमूल्य स्वादिष्ट व्यंजन के रूप में प्रचलित है। इससे निर्मित भोजन के असन से ओंठ व जिह्वा में हल्की आनन्ददायक चुनचुनाहट उत्पन्न होती है। इसकी




विभिन्न बाक्स फिश प्रजातियाँ



ट्रंक फिश




विभिन्न सन फिश प्रजातियाँ



पफर फिश




विभिन्न पफर फिश प्रजातियाँ






विभिन्न शार्क प्रजातियाँ



लत से हजारों व्यक्ति अंगघातग्रस्त होकर मर जाते हैं(कांव, 1968)।

स्कामब्रायड विषाक्तता– स्कामब्रायडी कुल की मछलियां उदाहरणार्थ–टयूना, स्किपजैक, बोनिटोस, स्काम्बर आदि भी विषाक्त होती है। इन मछलियों के अनुपयुक्त परिरक्षण से एक विशिष्ट प्रकार का आविष 'साउरीन' इनके मांसपेशियों में बन जाता है, जो हिस्टामीन व एसिटिलकोलीन गुणसम है यद्यपि रासायनिक रूप से भिन्न है।

क्लूपिआयड विषाक्तता– हेरिंग, एन्कोवीस, टारपोंस, स्किल हेड आदि मछलियां भी विषाक्त होती हैं। इनमें विषाक्तता इनकी विषाक्तता इनकी खाद्य श्रृंखला से संबंधित होती है जो वर्ष के विभिन्न ऋतुओं में भिन्न होती है।

जिम्पाइलिड विषाक्तता– कैस्टर आयल व काड मछलियों में तरल मोम की अधिक मात्रा पाई जाती है जो प्रायः सेटिल व ओलिल ईस्टर युक्त होते हैं। इन मछलियों के खाने से मनुष्य में वसीय स्वेद व अतिसार के लक्षण विदित हैं।(मोरी आदि,1966)।

मीनश्राव विषाक्तता

कुछ मछलियां जैसे सोपफिश, बाक्सफिश आदि, त्वचा से विशिष्ट आविष पदार्थों का श्रावण करती हैं जो वातावरण में निर्मुक्त होता रहता है तथा सम्पर्क में आने वाले जीवों के लिये विपत्ति जनक एवं मृत्युकारक हो सकता है (मारेट्जकी व डेल कैस्टिलो 1967)। प्रतीत होता है कि यह श्राव मछली सम्भवतः सम्भावित आक्रामक परभक्षी को सचेत करने तथा अपने प्रतिरक्षा हेतु करती है (फ्रीफर,1962)। जल एवं कार्बनिक विलायकों में घुलनशील, तापअचल, अम्ल व क्षारीय विलयनों में स्थिर 'आस्ट्रेसिटाक्सिन' आविष का अध्ययन थाम्सन ने 1964 में किया।

निष्कर्ष

स्पष्टतः प्रतीत होता है कि विषाक्तता का गुण इन मछलियों को आक्रामक परभक्षियों को चेतावनी देने, स्व–सुरक्षा, आवास रक्षा, जनन वृद्धि एवं समष्टि विसर्जन हेतु सहायक एवं उपयोगी है। निःसंदेह मानवोपयोगी आठ आवश्यक एमिनोएसिड जो शरीर द्वारा संश्लेषित नहीं कियेजा सकते हैं, मछलियों में सुलभ हैं तथा भोजन के माध्यम से आसानी से ग्रहण किये जा सकते हैं, पर आवश्यकता है कि मछलियों के गुणधर्म एवं मानव उपयुक्तता व अनूकूलता के अनुसार ही उनका भोजन में उपयोग किया जाय।

आभार

अनवरत् प्रोत्साहन एवं समसामयिक सुझावों हेतु लेखक, प्रो0 आर0 एस0 टन्डन, डी0 एस सी0, पूर्व विभागाध्यक्ष प्राणि विज्ञान एवं डीन, विज्ञान संकाय, कुमायूँ विश्वविद्यालय का आभारी है।

संदर्भ

1. बैनर, ए0 एच0; हेलफ्रिच, पी0; श्यूअर, पी0 जे0 तथा योशिदा, टी0 (1963) पैसिफिक प्रो0 गल्फ कैरिबियन फिश इन्सिटी0, खण्ड 16, मु0 पृ0 84 – 98।
2. बोजे, ओ0(1939) मेडी, ग्रीनलैंड, खण्ड 125, मु0 पृ0 1–16।
3. चेमल, जे0; फौलहाक्स, पी0; बोरीलेट, एफ0 तथा साइमन, पी0(1962) कम्प0 रेन्ड, सो0 बाय0, खण्ड 156, मु0 पृ0 602–607।
4. कूपर, एम0 जे0(1964), पैसिफिक साइंस, खण्ड 18, मु0 पृ0 411–440।
5. हैलस्टेड, डब्ल्यू0 बी0(1967) यू0 एस0 गव0 प्रिंट ऑफ वाशिंगटन डी0 सी0।
6. हैलस्टेड, बी0 डब्ल्यू0 तथा शाल, डी0 डब्ल्यू0(1958) एक्टा ट्रापि0, खण्ड 15, मु0 पृ0 193–233।
7. हेलफ्रिच, पी0 तथा बैनर, ए0 एच0(1963) नेचर, खण्ड 197, मु0 पृ0 1025–1026।
8. होट, डब्ल्यू0 एस0 तथा रैन्डल, डी0 जे0(1969) फिश फिजियोलोजी, खण्ड 3, एकेडेमिक प्रेस, न्यूयार्क, मु0 पृ0 401–449।
9. काव, सी0 वाई0(1966) फारमैको0 रिव्यू, खण्ड 18, मु0 पृ0 997–1049।
10. कोइजुमी, के0; लेविन, डी0 जी0 तथा बुक्स, सी0(1967) न्यूरोलोजी, खण्ड 17, मु0 पृ0 395–404।
11. ली, के0 एम0(1963) नेचर, खण्ड 200, मु0 पृ0 791–769।
12. मारेट्जकी, ए0 तथा डेल कैस्टिलो, जे0(1967) टाक्सिका0, खण्ड 4, मु0 पृ0 245–250।
13. मोरी, एम0; सायटो, टी0; नाकायुशी, वार्ड0; मियाजावा, के0 तथा हाशिमोटो, वाई0(1966) बुले0 जापान सोसा0 साइंस फिश0, खण्ड 32, मु0 पृ0 137–145।
14. मोशर, एच0 एस0; फूहरमैन, एफ0 ए0; बुचवाल्ड, एच0 डी0 तथा फिशर, एच0 जी0(1964) साइंस, खण्ड 144, मु0 पृ0 1100–1110।
15. फीफर, डब्ल्यू0(1962) वाय0 रिव्यू0, खण्ड 37, मु0 पृ0 495–511
16. रैन्डल, जे0 ई0(1958) बुले0 मैरीन साइंस गल्फ कैरिबियन, खण्ड 8, मु0 पृ0 236–267।
17. रेनर, एम0 डी0; कोसाकी, टी0 आई0 तथा फेलमेथ, ई0 एल0(1968) साइंस, खण्ड 160, मु0 पृ0 70–73।

18. रसेल, एफ0 ई0(1965) एडवा0 मेरीन बाय0, खण्ड 3, मु0 पृ0 225–384।
19. श्यूअर, पी0 जे0; टाकाहाशी, डब्ल्यू, सुट सुमी, जे0 तथा योशिदा, टी0(1967) साइंस, खण्ड 155, मु0 पृ0 1267–1268।
20. थामसन, डी0 ए0(1964) साइंस, खण्ड 146, मु0 पृ0 244–245।
21. वुडवर्ड, आर0 बी0(1964) प्योर एप्ला0 केमि0, खण्ड 9, मु0 पृ0 49–74।

प्राकृतिक प्रतिसूक्ष्मजीवी रसायन

महेश पाल, शिप्रा शुक्ला, तृप्ति मिश्रा, डी0 के0 उप्रेती
पादप रसायन विभाग
सी0 एस0 आई0 आर0–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान(एन0 बी0 आर0 आई0)
राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
drmpal.nbri@rediffmail.com

सार

पिछले अध्ययन के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि प्रतिसूक्ष्मजीवी औषधियां, परजीवी प्रतिरक्षा की सक्रियता के कारण अपनी प्रभावशीलता खो रही हैं। इस कारण यह आवश्यक है कि नई प्रतिसूक्ष्मजीवी औषधियों को प्राप्त किया जाए, जो बाजार में दुर्लभ रूप से पहुँच पाती हैं। प्राकृतिक उत्पाद, फार्मास्युटिकल क्षेत्र में नई रसायन पद्धति का एक अच्छा स्त्रोत हैं। इस लेख का उद्देश्य प्राकृतिक उत्पादों से प्राप्त प्रतिसूक्ष्मजीवी औषधि की प्रभावशीलता तथा उनके कम हानिकारक होने के गुण को उजागर करना है। यह लेख प्राकृतिक उत्पादों द्वारा प्राप्त कुछ महत्वपूर्ण, लाभदायक प्रतिसूक्ष्मजीवियों की संरचना तथा उनकी एम0 आई0 सी0 वैल्यू का उल्लेख करता है।

Natural antimicrobial chemicals

Mahesh Pal, Shipra Shukla, Tripti Misra, D. K. Upreti
Phytochemistry Division
CSIR-National Botanical Research Institute(NBRI)
Rana Pratap Marg, Lucknow(U.P.)-226001, India
drmpal.nbri@rediffmail.com

Abstract

Over the last decade, it has been clear that antimicrobial drugs are loosing their effectiveness due to the evolution of pathogen resistance. Therefore, there is a need to containing the search for new antibiotics, especially for new drugs only those rarely reach the market. Natural products are both fundamental sources of new chemical diversity and integral components of today's pharmaceutical compendium and the aim of this review is to explore and highlight the diverse natural products that have potential to lead the more effective and less toxic antimicrobial drug. This review describe only those products having potentially useful antimicrobes regarding their structure and MIC(Minimum Inhibitory Concentration) values, obtained from natural resources.

प्रस्तावना

प्राचीनकाल से मानव कई घातक संक्रामक रोगों और महामारी से त्रस्त रहा है, परन्तु 19 वीं सदी के अन्त तक मनुष्य इस बात से अनभिज्ञ रहा कि ये रोग और महामारी किस कारण होती है। सन् 1976–1677 में हॉलैण्ड निवासी एन्टोनी वॉन लुइवेनहॉक ने प्रकृति के अत्यन्त महत्वपूर्ण रहस्य का पता लगाया। उन्होने पृथ्वी पर ऐसे "सूक्ष्मजीवी" के छिपे संसार का पता लगाया जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्षियों द्वारा देखा जा सकता है, उन्होंने तालाबों आदि के जल मे कई प्रकार के सूक्ष्मजीव (जीवाणु, प्रोटोजोआ, यीस्ट आदि) देखे। इन जीवों को उन्होंने "सूक्ष्मजन्तुक" कहा। इसी खोज के कारण वे "सूक्ष्मजैविक" के पिता कहलाए, हालांकि सूक्ष्मजैविकी की विधिवत् स्थापना 19वीं सदी में लुई पॉश्चर के अनुसन्धानों से हुई।

18वीं तथा 19वीं सदियों में कई प्रकार के जीवाणुओं की खोज हुई और यह स्पष्ट हो गया कि जीवाणु वर्तमान पृथ्वी पर सबसे छोटे एक–कोशिकीय जीव होते हैं। 20वीं सदी के प्रारम्भ तक यह पता लग चुका था कि मनुष्य तथा पशुओं में कई प्रकार के संक्रामक रोग जीवाणुओं के संक्रमण से होते हैं, परन्तु चेचक, पीतज्वर, खसरा, पोलियो, गलसुआ, अलर्क रोग, डेंग्यू आदि कई प्रकार के रोगो का

जीवाणुओं से सम्बन्ध स्थापित नही हो पाया। तब वैज्ञानिकों को आभास हुआ कि ऐसे रोग जीवाणुओं से भी अधिक सूक्ष्म अर्थात् अतिसूक्ष्म, परन्तु अज्ञात रोगोत्पादकों के संक्रमण से होते है। ऐसा आभास पहले तब हुआ जब लुई पाश्चर(1885) कुत्तों में अलर्क रोग(रेबीज या हाइड्रोफोबिया) के कारण का पता लगाने की चेष्टा कर रहे थे।

प्राचीनकाल से पेड़–पौधों को औषधीय रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। आज के युग में लगभग 25–50% की औषधि पौधों के द्वारा ही प्राप्त की जा रही है, जो कि सूक्ष्मजीवियों के विरूद्ध काफी प्रभावी साबित हुई है। प्राचीनकाल से ही पेड़ो का उपयोग कई संक्रामक बीमारियों से बचाव के लिए किया जाता है। पेड़–पौधों में माध्यमिक उपापचयी पदार्थ जैसे–एल्केल्वाइड, फ्लेवोन्वाइड, फिनॉल, टर्पेन्वाइड, क्यूनोन्स आदि पाए जाते हैं, जिनकी समीक्षा करके यह ज्ञात हुआ कि ये अत्याधिक प्रभावशाली, और रोगाणुरोधी गुण रखते हैं। ऐसा ज्ञात है कि पेड़ो की 25,000–50,000 प्रजातियां धरती पर पाई जाती हैं, जिसमें से एक छोटे भाग(1–10%) का उपयोग मनुष्य और जानवरों के द्वारा भोजन के रूप में किया जाता है। यह सम्भव है कि इस संख्या से अधिक पेड़ चिकित्सा उद्देश्य के लिए दवाइयों के रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

पेड़ों में पाए जाने वाले माध्यमिक उपापचयी पदार्थ स्वयं पेड़ों की रक्षा क्रिया विधि में सहायक होते हैं, जो कि सूक्ष्मजीवों, कीटों और खरपतवारनाशी के विरूद्ध पेड–पौधों की रक्षा करते हैं। जैसे– टर्पेन्वाइड तथा कुछ अन्य क्यूनोन्स, टैनिस, उपापचयी पेड़ों के रंग के लिए जिम्मेदार होते हैं, तथा कई पदार्थ जैसे (टर्पेनॉइड कैप्साइसिन फ्रॉम चिली पैपर) पेड़ों के स्वाद के लिए जिम्मेदार होते हैं। जो कि मनुष्यों द्वारा खाने और औषधीय रूप में प्रयोग किए जाते हैं। प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले उत्पाद नई रसायन पद्धति के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं।

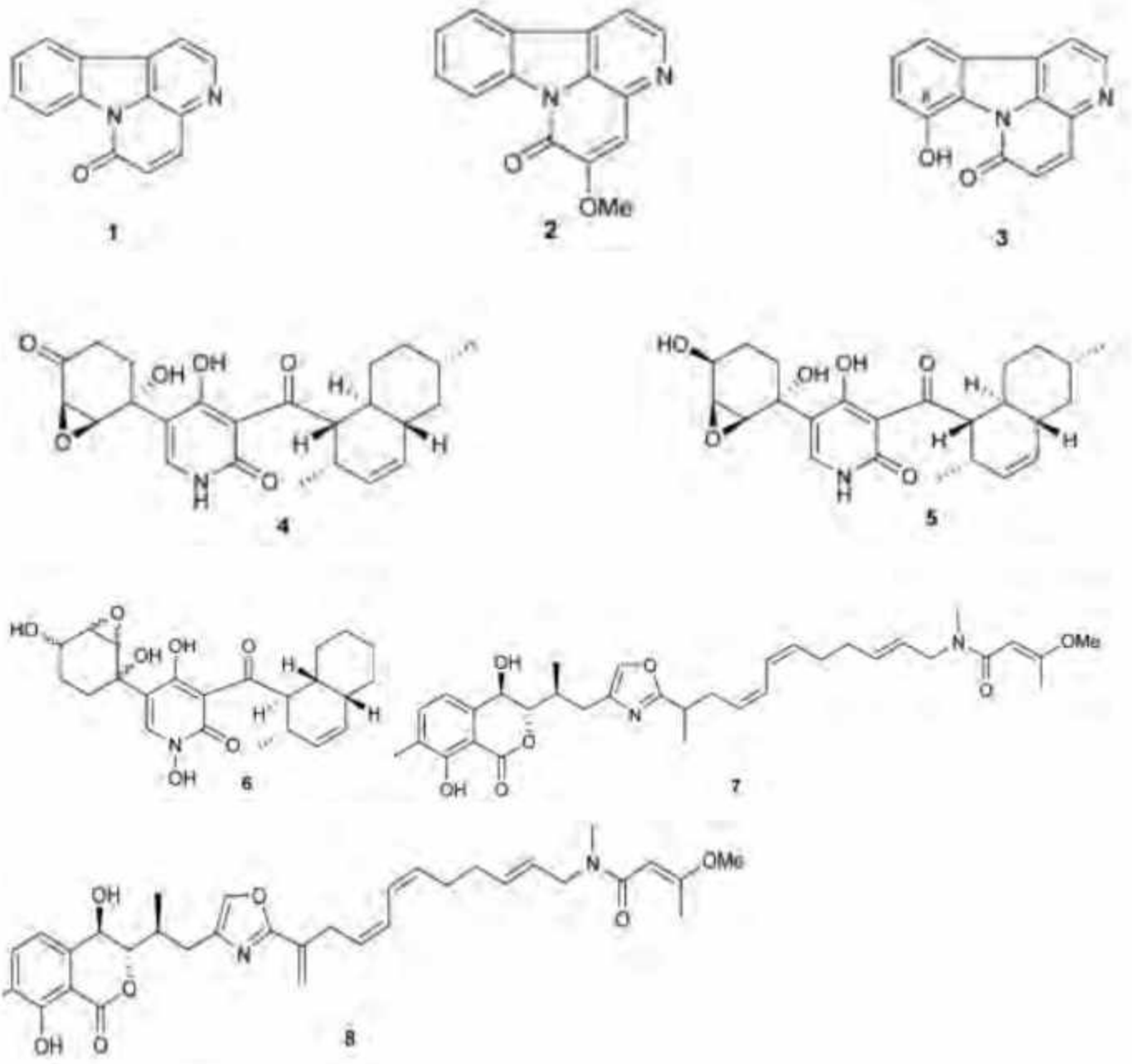
प्राकृतिक रूप से पाए जाने कुछ महत्वपूर्ण उपापचयी पदार्थ निम्नलिखित हैं–

1. एल्केल्वाइड
2. फ्लेवोन्वाइड
3. फिनॉल
4. टर्पेन्वाइड
5. क्यूनोन्स

1. ऐल्केल्वाइड

ये प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले रसायनिक पदार्थ हैं। जो ज्यादातर बेसिक नाइट्रोजन एटम को संग्रहित करते हैं। एल्केल्वाइड एक बडी मात्रा में (बैक्टीरिया) जीवाणु, विषाणु, कवक तथा जीव–जन्तुओं द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं तथा प्राकृतिक उत्पादों के समूह का भी एक हिस्सा होता है। बहुत से ऐल्केल्वाइड्स, क्रूड एक्सट्रेक्ट के अम्ल–क्षार अभिक्रिया द्वारा शुद्ध किए जाते हैं। बहुत से ज्ञात लक्षणों मे से एक ऐल्केल्वाइड का काम रक्षा करना होता है। जैसे– एपॉर्फिन ऐल्केल्वाइड लिरियोडेनाइन "ट्यूलिप वृक्ष" से बनाए जाते हैं, जो इसकी परजीवी मशरूम के विरूद्ध रक्षा करते हैं। इसके अलावा पेड़ों में ऐल्केल्वाइड की उपस्थिति उन्हें कीटों तथा कार्डेट जीवों से बचाती है, ताकि वे इनको ना खा पाएं। सामान्यतः पहला मुख्य औषधीय ऐल्केल्वाइड "मॉरफिन" पाया गया जो *पापवेज सोमनीफेरम* से प्राप्त किया गया। इनसे सम्बंधित कई पेड़ो की प्रजातियां प्रति–सूक्ष्म जीवी ऐल्केल्वाइड को उत्पन्न करने के लिए जानी जाती हैं। प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले कई ऐल्केल्वाइड्स प्रतिसूक्ष्म जीवी गुणवत्ता रखते हैं। जो कि औषधीय रूप में प्रयोग किए जाते हैं। कुछ प्रमुख ऐल्केल्वाइड निम्न हैं, जो वृक्षों द्वारा प्राप्त किए जाते हैं, तथा प्रति–सूक्ष्मजीवी भी होते हैं।

कुछ प्रमुख ऐल्केल्वाइडस संरचनाएं निम्नलिखित हैं:– कैन्थीन–6–ओन (1) को *एलियम नियापोलिटेनम* द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो एक बड़े पैमाने पर सूक्ष्म जीवियों के विरूद्ध सक्रिय हैं जैसे *एस्परजिलस फ्यूमिगेट्स, एस्परजिलस नाइजर, कैनडीडा एल्बीकेन* आदि। इनकी एम0आई0सी0 वैल्यू 1.66–10.12 $\mu g\ ml^{-1}$ है। 5–मेथाक्सीकैन्थीन–6–ओन(2), टी0मेन्टाग्रोफाइट्स के विरूद्ध सक्रिय होते हैं, जिनकी एम0आई0सी0 वैल्यू 3.075 $\mu g\ ml^{-1}$ है। 8–हाइड्राक्सी कैन्थीन–6–ओन (3), एलियमनिआपोलिटेनम द्वारा प्राप्त हुआ, जो *माइकोबैक्टीरियम स्मेगमेटिस, स्टेफाइलोकोकस ऑरियस* के विरूद्ध कार्य करता है। इनकी एम0आई0सी0 वैल्यू 2.0 $\mu g\ ml^{-1}$ है। वाई0 एम0–215343 (4) यह प्रतिकवक सक्रियता के विरूद्ध (*कैन्डिडा एल्बीकेन्स, कैन्डिडा नियोफॉरमेन्स*) काम करता है। इनकी एम0आई0सी0 वैल्यू 2 से 16 $\mu g\ ml^{-1}$ है। एपिओस्पोरेमाइड (5)तथा फिस्चेरिंग (6) भी वाई0 एम0–215343 ऐल्केल्वाइड की तरह कार्य करता है। एजुडेजोल (7,8) भी कुछ कवक तथा ग्राम (–) जीवाणुओं के विरूद्ध सक्रियता रखतें हैं।

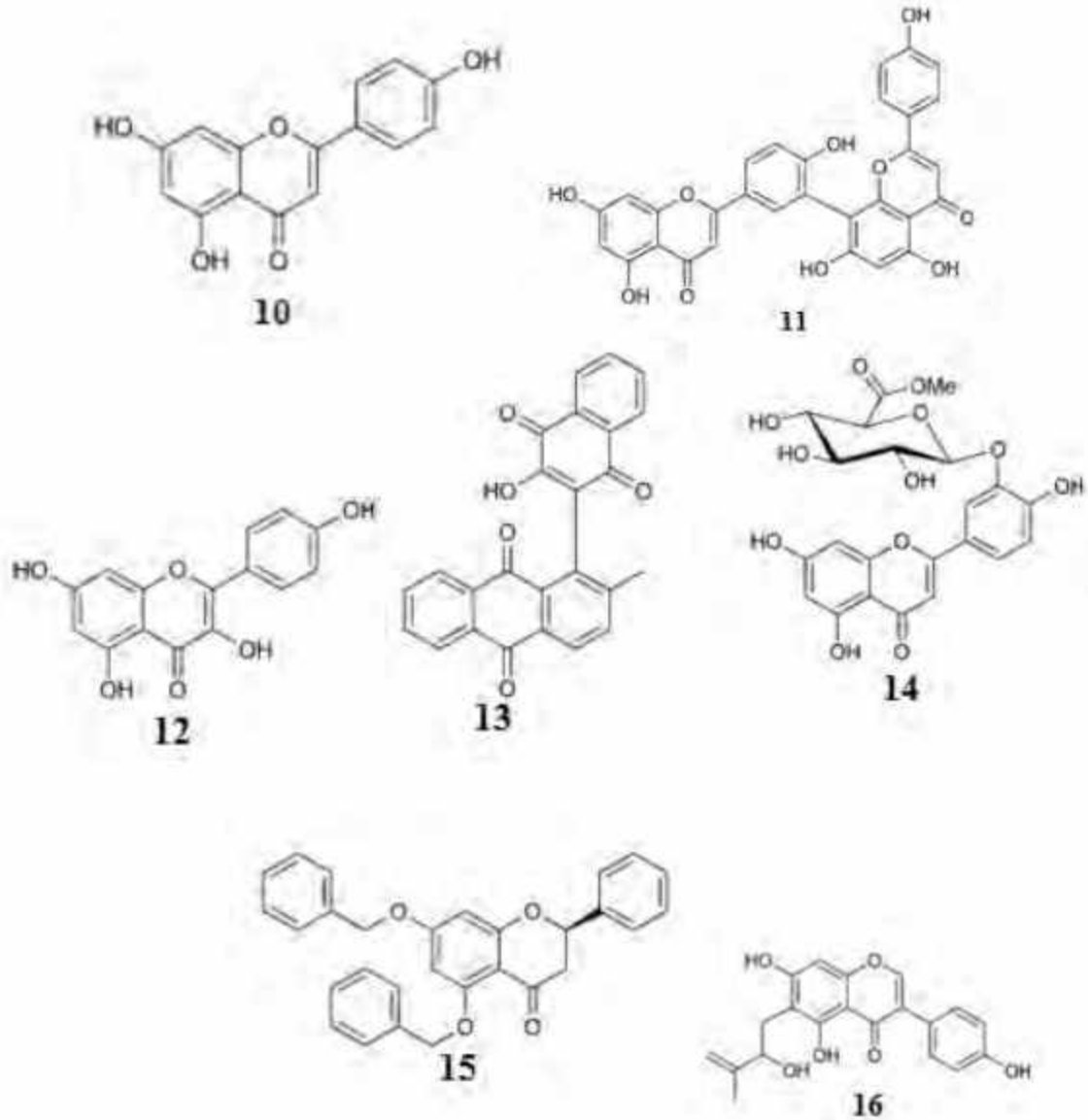


कुछ प्रमुख प्रतिसूक्ष्मजीवी ऐल्केल्वाइडस संरचनाएं

2. फ्लेवोन्वाइडस

फ्लेवोन्वाअड्स पेडो मे जटिल रूप से वितरित रहते है, जो पेडो के कई उपयोगिताओं तथा आवश्यकताओं को पूरा करते है। फ्लोवोन्वाइड एक प्रमुख महत्वपूर्ण वृक्ष रंजन है जो फूलो के रंग के लिए जिम्मेदार होता है, तथा पत्तियों मे पीला, नीला, लाल रंग उत्पन्न करते है। उच्चवस्तरीय पौधो मे फ्लोवोन्वाइडस यू0वी0 फिल्ट्रेशन, सिम्बयाटिक नाइट्रोजन फिक्सेशन तथा पुष्पीय रंजन की क्रिया में सम्मिलित होते हैं। यह रसायनिक दूतवास तथा फिजोयोलॉजिकल रेगुलेटर की तरह काम करते हैं। जो कि पेड़ों तथा कोषिका चक्र रोधी के रूप में भी सहयोग करते है। कुछ अन्य फ्लेवोन्वाइड्स सूक्ष्मजीवियों के विरूद्ध कार्य करते है, जो वृक्ष–रोग उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार होते है, जैसे :– *फ्यूजेरियम ऑक्सीपोरम*

कुछ प्रमुख फ्लेवोनाइड संरचनाएं निम्नलिखित हैं:– ऐपिजेनिन (10), स्क्यूटिलेरिया बारबाटा से प्राप्त किया जाता है, जो 20 (एम0आर0एस0ए0) स्ट्रेन्स के विरूद्ध सक्रिय होतें हैं जिनकी एम0आई0सी0 वैल्यू 3.9–15.6 $\mu g\ ml^{-1}$ है। एमेन्टोंफ्लेवॉन (11), सिलेजिनेला टामानिसिना द्वारा प्राप्त किया जाता है जो कवक परजीवी के विरूद्ध सक्रिय पाये गयें। जैसे (*कैन्डीडा एलबीकेन्स, स्टेफाइलोकोकस सेरेविसी*)। केइम्फेरॉल (12), विस्मिया लारेन्टी से प्राप्त किये गये हैं। जो कुछ ग्राम (–) तथा ग्राम (+) परजीवियों (*कैन्डीडा ग्लेबराटा*) के विरूद्ध सक्रिय है। जिनकी एम0आई0सी0 2.4 $\mu g\ ml^{-1}$ है। क्राईसोएरीऑल (13), जो *न्यूबोल्डिया नेइविस* द्वारा प्राप्त किये गये। यह एक बड़े स्तर पर ग्राम (–) तथा ग्राम (+) जीवाणुओं के विरूद्ध सक्रिय हैं। जिनकी एम0आई0सी0 1.2–9.76 $\mu g\ ml^{-1}$ है। फ्लेवॉन ग्लाइकोसाइड (14) *वाइटेक्स निगुन्डा* की पत्तियों से प्राप्त किया गया। जो *ट्राइकोफाइटॉन मेन्टाग्रोफाइट्स* तथा *सी0 नियोफार्मेन्स* के विरूद्ध सक्रियता दिखाता है। जिसकी एम0आई0सी0 वैल्यू 6.25 $\mu g\ ml^{-1}$ है। डाईबेन्जिल ऑक्सीफ्लेवान(15), जो कि *हेलीक्रिसम जिमनोकामम* से प्राप्त होता है इसमें *क्रिप्टोकॉकस नियोफारमेन्स* के प्रति बहुत अच्छी क्षमता देखी गयी है इसकी एम0आई0सी0 वैल्यू 7.8 $\mu g\ ml^{-1}$ है। लेबुरनेटिन (16), *फीकसक्लेमाइडो क्लेमाइडोकार्पा* के मेथेनॉलिक अर्क द्वारा प्राप्त किया गया। जो *माइको बैक्टीरियम स्मेग्मैटिस* तथा *माइको बैक्टीरियम ट्यूबरक्लोसिस* के विरूद्ध सक्रिय होतें हैं। इसकी एम0आई0सी0 वैल्यू 0.61 तथा 4.88 $\mu g\ ml^{-1}$ है।



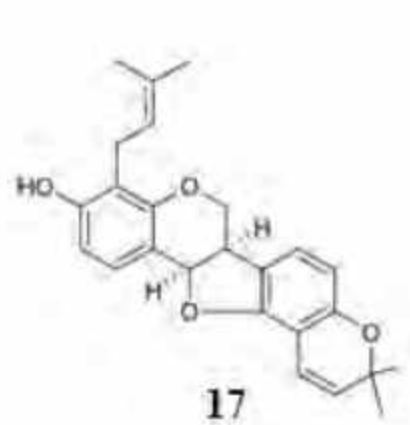
कुछ प्रमुख प्रतिसूक्ष्मजीवी फ्लेवोनाइड संरचनाएं

फ्लेवोन्वाइड्स माध्यमिक उपापचयियों की एक बड़ी श्रेणी होती है, जो कि पेड़–पोधो की कई प्रजातियों में विस्तृत होते है। यह पेडो की U.V. विकिरण तथा वातावरणीय दबाव से सुरक्षा करते है। तथा इनमें प्रति – आक्सीकारक का भी लक्षण पाया जाता है। यह प्रतिसूक्ष्मजीवी घटक के रूप में प्रदर्षित होते है।

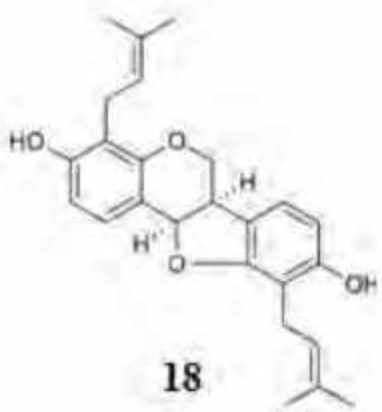
3. फिनॉलिक्स

फिनॉलिक्स भी प्रतिसूक्ष्मजीवी के रूप में जाना जाता है, तथा यह वृक्ष –परजीवी को भी नियंत्रण में रखते है। इनकी संकियता मानव परजीवी के रूप में भी अविष्कारित की गई है, जो कि चिकित्सीय पदार्थ तथा औषधीय रूप मे भी प्रयोग की जा रही है। फिनॉल्स कम्पाउन्ड पेड़ो तथा सूक्ष्मजीवियों द्वारा उत्पन्न किए जाते है, इन्ड्रस्टियल स्तर पर संश्लेषित किए जाते हैं। यह अधिक अम्लीय होते हैं। पेड़–पौधों मे यह सामान्यतः सभी सभ्यता में औषधि के रूप में प्रयोग किए जाते है। तथा मनुष्यों में उनकी स्वास्थ्यता और रोग–निवारण के रूप में अत्यन्त कारगर सिद्ध हुए है। कुछ फिनॉल्स कीटाणुरोधी होते है, जो प्रति – संक्रामकता के रूप मे बनाए जाते है। कुछ फिनॉल भोजन के रूप में प्राप्त किए जाते है, तथा औषधि के रूप में भी अविष्कारित किए गए है। जैसे :– क्रोफेलेमर, एक औषधि है जिसे अतिसार के बचाव के रूप में प्रयोग किया गया है। कुछ प्रमुख फिनॉलिक्स संरचनाएं निम्नलिखित हैं:–

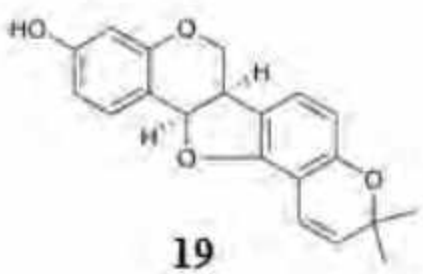
इरीब्रेइडिन बी (17), इरीब्रेइडिन ए (18), फॉसिओलिन (19), इरीश्राबाइसिन–II (20), इरिस्टागैलिन (21), इरिश्राबिसिन– I (22), इरीक्रिस्टागैलिन, (23), *इरीथीना स्युबमब्रेन्स* के तने से प्राप्त किया गया जो स्ट्रेप्टोकोकस के स्ट्रेन के विरूद्ध सक्रिय है। इनकी एम0आई0सी0 वैल्यू 0.78–1.56 $\mu g\ ml^{-1}$ है।



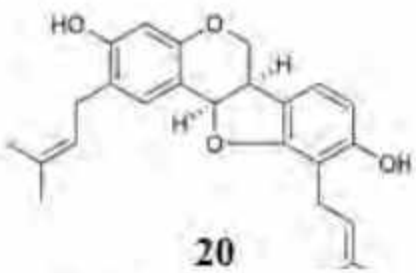
17



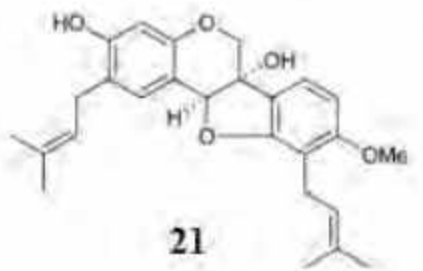
18



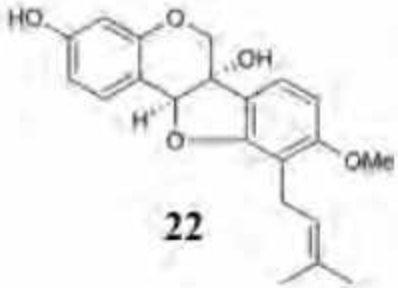
19



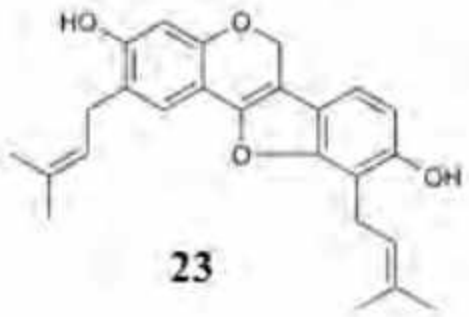
20



21



22



23

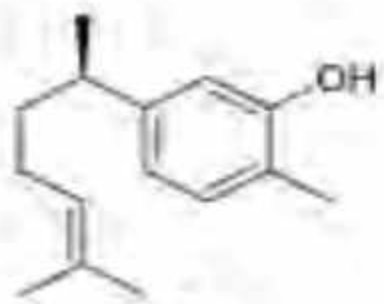
कुछ प्रमुख प्रतिसूक्ष्मजीवी फिनॉलिक्स संरचनाएं

केनजोनोल्स, फाइटो – फिनॉल्स के नाम से जाना जाता है, जिसकी सक्रियता के कारण ये प्रति –सूक्ष्मजीवी के नाम से ज्ञात है। केनजोनोल C58 तथा इसके एनॉलाग असइसोबेवेकैलकॉन, सटिपुलिन लारटेरी के दृविंग्स के अर्क से प्राप्त किए गए है। जो एक बड़ा स्पेक्ट्रम रखते है, तथा दोनो ग्राम (–) और ग्राम (+) जीवाणु, कवक के विरूद्ध सक्रिय होते है।

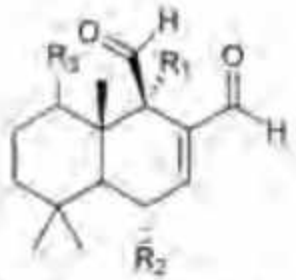
4. टरपेन्वाइड

यह प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले एक बड़े समूह के कार्बनिक रसायन होते है, जो टरपेन्स के समान होते है। जो 5–कार्बन आइसोप्रिन समूह द्वारा प्राप्त किए जाते है। ये एक दूसरे से भिन्न संरचना वाले होते है ना कि केवल उनके सहायक समूह के कारण बल्कि उनके आधारीय कार्बन तंत्र के कारण भी। यह लिपिड सभी श्रेणी के जीवित वस्तुओं मे पाए जा सकते है। अपितु ये बड़े समूह के प्राकृतिक उत्पादो में भी पाए जाते है। तथा फार्मास्यूटिकल कार्यों मे भी प्रयोग किए जाते हैं। यह अदरक तथा लौंग के स्वाद के लिए जिम्मेदार होते है। तथा सूरजमुखी में पीले रंग, टमाटर के लाल रंग के लिए भी। स्टेरवाइड्स तथा स्टेरॉल्स जैविक रूप से जन्तुओं में टरपेन्वाइड द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। बड़ी संख्या में टरपेन्वाइड्स माध्यमिक उपापचयी पदार्थों की श्रेणी होते है, जो आइसोप्रिन इकाई से मिलकर बने होते है। बहुत से उच्चस्तरीय टरपेन्वाइड को प्रतिसूक्ष्मजीवी गुणों के रूप में भी जाता है।

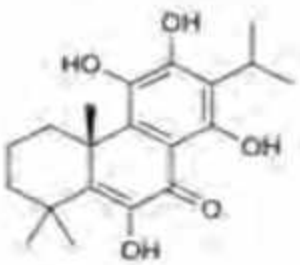
कुछ प्रमुख टरपेन्वाइड संरचनाएं निम्नलिखित है:–जेन्थारिजॉल (33), जेन्थॉरिजा के इथेनॉलिक अर्क से प्राप्त किया गया जो *बैसिलस सेरिअस, क्लोस्ट्रडियम परफ्रिन्जेन्स* के विरूद्ध सकिय है–(एम0आई0सी0 8.0–16.0 $\mu g\ ml^{-1}$)। सिन्नेमोडियल (34), *प्लिओडेन्ड्रान कोसटेरिसेन्स* की पत्तियों तथा छाल द्वारा प्राप्त किया गया। जो *अल्टरनेरिया अल्टरनेटा* के विरूद्ध सक्रियता प्रदर्षित करते हैं–(एम0आई0सी0 3.9 $\mu g\ ml^{-1}$)। कोलिओन यू I (35), कोलिओन यू क्यूनोन (36), *प्लेक्ट्रान्थस सैकेट्स* द्वारा प्राप्त हुआ जो बी0 सबट्यूलिस, *स्यूडोमोनास साइरिन्जी* के विरूद्ध सक्रिय है–(एम0आई0सी0 क्रमषः 3.12, 3.13, 6.15 $\mu g\ ml^{-1}$)। 6 अल्फा–मेनोनिलऑक्सीमेनोइल ऑक्साइड (37) *स्टेमोडिया फोलिओसा* द्वारा प्राप्त हुआ, जो *स्टेफाइलोकोकस ऑरियस* के विरूद्ध सक्रिय है–(एम0आई0सी0 क्रमषः 7.0–15.0 $\mu g\ ml^{-1}$)। डाइटरपेन्वाइड हार्डविकाइक एसिड (38), इरविन्जिया गैबोनिसिस के तने तथा छाल द्वारा प्राप्त किया यह ग्राम (+) जीवाणुओं (निजेरिया गोनोरोइ) के विरूद्ध सक्रिय होतें हैं–(एम0आई0सी0 1.22–4.8 $\mu g\ ml^{-1}$)।



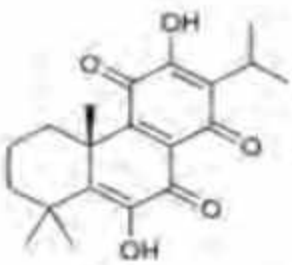
33



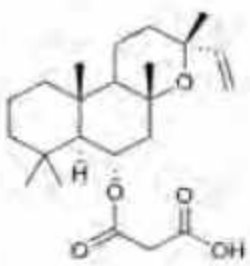
34 R_1 = OH, R_2 = OAc, R_3 = H



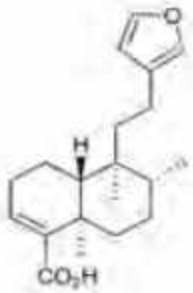
35



36



37



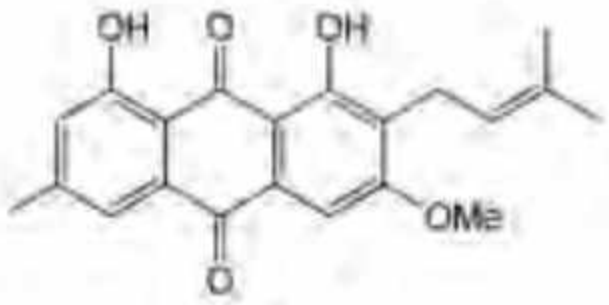
38

कुछ प्रमुख प्रतिसूक्ष्मजीवी टरपेन्वाइड संरचनाएं

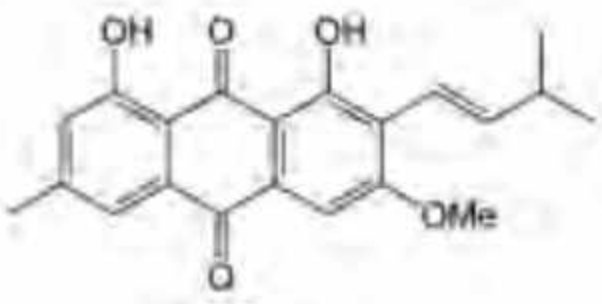
5. क्यूनोन

क्यूनोन कार्बनिक पदार्थों की एक श्रेणी है, जो कि सामान्यतः ऐरोमैटिक यौगिकों द्वारा प्राप्त की जाती है। जैसे–बेन्जीन, नेफ्थलीन। प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक रूप से प्राप्त क्यूनोन जैविक तथा फार्माकोलॉजिकल गुण दर्शाती है तथा प्रति–ट्यूमर क्षमता भी प्रदर्शित करती है। इसका उपयोग प्रतिसूक्ष्मजीवी, प्रति–ट्यूमर तथा हृदय रोधी बीमारियों के रूप में भी किया जाता है। बहुत प्राकृतिक तथा कृत्रिम रंगीन पदार्थ जैसे– (डाई, और रंजक) क्वीनोन के समस्थानिक होते हैं। बेन्जो–क्यूनोन को रसायनिक तथा कार्बनिक रसायन में आक्सीकारक घटक की तरह उपयोग किया जाता है। प्राकृतिक रूप से प्राप्त क्यूनोन में जैविक क्रियाओं की विशिष्टता पायी जाती है तथा इसे सामान्यतः जीवाणुरोधी गुण के नाम से भी जाना जाता है।

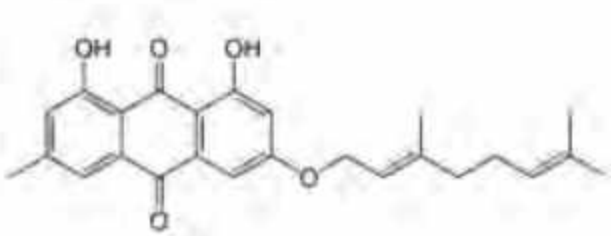
कुछ प्रमुख क्यूनोन संरचनाएं निम्नलिखित हैः– 4 प्रतिसूक्ष्म जीवी क्यूनोन (24–28), *विरिमया लॉरेन्टाई* से निकाले गये जो ग्राम (–) जीवाणु और दो कैन्डीडा प्रजाति के विरूद्ध सक्रिय थे। इसकी एम0आई0सी0 वैल्यू क्रमशः 4.8, 2.4, 2.4, 4.8, 1.2 $\mu g\ ml^{-1}$ है। (29), एक आस्ट्रेलियन प्लान्ट *इरिमोफिला सिरूलाटा* का मुख्य घटक है। जो *स्टेफाइलोकोकस ऑरियस* के विरूद्ध सक्रिय है–(एम0आई0सी0 7.8 $\mu g\ ml^{-1}$)। (30) 7–एपी–क्लूसिअनोन, *रिडिया बेजीलेइन्सिस* के फल से निकाला गया जो बहुत ही कम सान्द्रता पर अधिक प्रतिक्रिया देता है। (31) म्यूटाएक्टीमाइसिन, एच0पी0एल0सी0 से प्यूरीफाई किया गया जो ग्राम (+) जीवाणु के विरूद्ध सक्रिय था–(एम0आई0सी0 7.8 $\mu g\ ml^{-1}$)। (32) डेकास्पाइरॉन ए, जो कि ताजे पानी के जलीय कवक *डेकास्नेला थाइरिऑवइड्स* से प्राप्त हुआ। जो *स्पर्जिलस फ्लेवस* के विरूद्ध सक्रिय था–(एम0आई0सी0 7.8 $\mu g\ ml^{-1}$)।



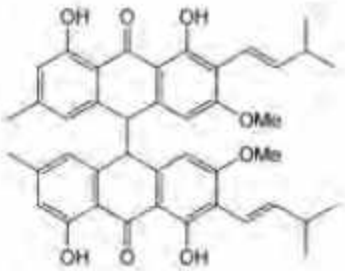
24



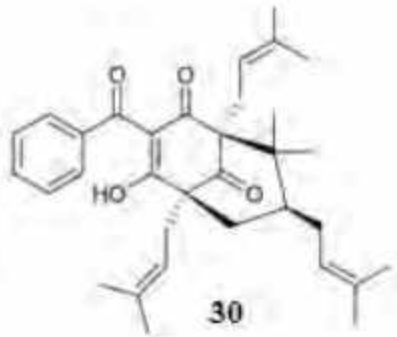
25



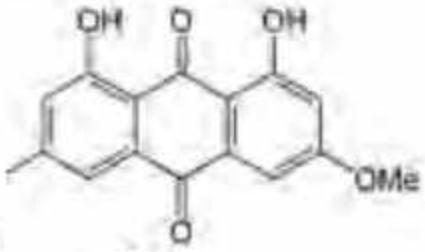
26



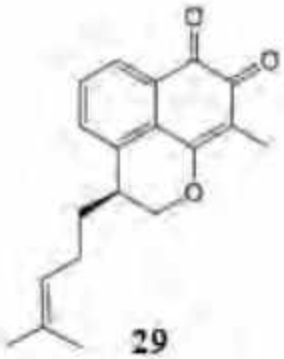
27



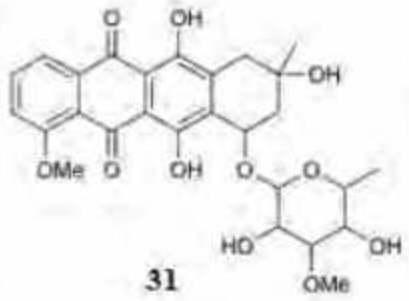
30



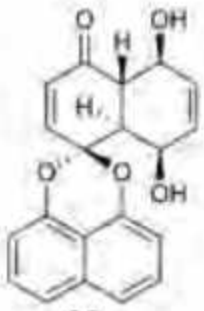
28



29



31



32

कुछ प्रमुख प्रतिसूक्ष्मजीवी क्यूनोन संरचनाएं

निष्कर्ष

उपरोक्त लेख में विभिन्न प्रकार के माध्यमिक उपापचयी पदार्थों के स्रोतों तथा उनकी संरचनाओं का वर्णन किया गया है जो सक्रिय प्रतिसूक्ष्मजीवी की भूमिका निभाते हैं। प्राचीनकाल में बहुत से प्रतिसूक्ष्मजीवी, सूक्ष्मजीवियों द्वारा प्राप्त किए गये हैं तथा यह स्पष्ट किया गया है कि सूक्ष्मजीवियों के साथ–साथ पेड़ पौधे भी प्रति सूक्ष्मजीवियों के लिए एक अच्छे स्रोत होते हैं। उपरोक्त लेख से यह प्रदर्शित होता है कि कुछ प्राकृतिक रूप से प्राप्त माध्यमिक उपापचयी जैसे–एल्केल्वाइड, फ्लेवोन्वाइड्स, फिनॉल, टरपेन्वाइड, क्यूनोन, सूक्ष्मजीवियों के विरूद्ध महत्वपूर्ण लक्षण प्रदर्शित करते हैं।

संदर्भ

1. बेरीस आ0 पी0(1996) प्राकृतिक उत्पाद शोधः पर्सपेक्टिव फ्रॉम ए मेजर फार्मास्युटिकल कम्पनी, जे0 इथेनोफार्माकॉल0, खण्ड 51, मु0 पृ0 29–38।

2. मोरमेन डी0 ई0(1996) एन एनालिसिस ऑफ द फूड प्लान्टस एण्ड प्लान्ट ऑफ नेटिव नार्थ अमेरिका, जे0 इथेनोफार्माकॉल0, खण्ड 52, मु0 पृ0 1–22।
3. मोह्, शीरो(1938) रिसर्च फॉर विटामिन पी0, द जर्नल ऑफ बायोकेमिस्ट्री, खण्ड 29, अंक 3, मु0 पृ0 487–501।
4. गैलिओटी, एफ0; बारिली, ई0; कुरिर, पी0; डोलकी, एम0 एवं लेनजोती, वी0(2008) फ्लेवोन्वाइड्स फ्रॉम कारनेशन(डाईएन्थस केरियोफाइलस) एण्ड दियर एन्टीफन्गल एक्टिविटी।
5. स्पेन्सर, जेरिमी पी0 ई0(2008) फ्लेवोन्वाइड्सः मॉडिलेटर्स ऑफ ब्रेन फंक्शन, ब्रिटिश जर्नल ऑफ न्यूट्रीशन, खण्ड 99, मु0 पृ0 60–77।
6. ओ–डोन्नेल, जी0 तथा गिब्बंस, एस0(2007) एण्टीबैक्टीरियल एक्टिविटी ऑफ टू कैंथीन–6–वन एल्कलॉइड्स फ्रॉम ऐलियम नियापोलिटेनम, फाइटोथेर0 रिस0, खण्ड 21, मु0 पृ0 653–657।
7. सातो, वाई0; सुजेकी, एस0; निशकवा टी0; किहारा, एम0; शिबाटा एच0 एवं हिगूती, टी0(2002) ज0 इथेनाफार्माकोलॉजी, खण्ड 72, मु0 पृ0 483–488।
8. सिंह, डी0 एन0; वर्मा, एन0; रघुवंशी, एस0; शुक्ला, पी0 के0 एवं कुलश्रेष्ठ, डी0 के0(2006) बॉयोआफर्ग, मेड0 केम0 लेट0, खण्ड 16, मु0 पृ0 4512–4514।
9. कोरेशी, ऐ0 एम0; फोस, एस0 आर0; कार्टेज, डी0 ऐ0; नाकामुरा, टी0 वेदा, नाकामुरा, सी0 वी0 एवं डाइस फिहो, बी0 पी0(2008) ज0 इथेनाफार्माकोलॉजी, खण्ड 117, मु0 पृ0 270–277।
10. जुंग, एच0 जे0; सुंग, डब्ल्यू0 एस0; इयो, एस0 एच0; किम, एच0 एस0; ली, एल0 एस0; यू, ई0 आर0 एवं ली, डी0 जी0(2006) आर्क0 फार्माकॉल0 रिस0, खण्ड 29, मु0 पृ0 746–751।

ई-वाणिज्य तकनीकी की व्यवसाय में उपयोगिता

डी0 डी0 मिश्र
प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, भारत
durgaadutt@gmail.com

सार

वर्ल्ड वाइड वेब तथा इन्टरनेट के उद्भव से दुनिया भर में व्यापार के नये तरीकों को अपनाकर संगठन अपना व्यवसाय देश–विदेश में कर रहे है। ई वाणिज्य, जो कि कम्प्यूटरों के जरिए व्यापारों का लेन देन है, में इन्टरनेट की अहम भूमिका है। ई वाणिज्य का उद्भव वर्ल्ड वाइड वेब के एक महत्वपूर्ण अनुप्रयोग के रूप में हुआ है। अधिकांश लोग समझते हैं कि ई वाणिज्य का तात्पर्य ऑनलाइन शापिंग से है लेकिन वेब शापिंग, ई वाणिज्य का छोटा अंग है इसका अर्थ व्यापक है जिसमे ऑनलाइन स्टॉक, बाण्ड ट्रॉजक्शंस, सॉफ्टवेयर डाउनलोड करना व बेचना आदि है वह भी किसी स्टोर में जाये बिना। ई वाणिज्य में व्यापार का व्यापार से सम्बन्ध है जो कि बड़े संगठनो के लिए परचेजिंग को आसान करता है। ई वाणिज्य उत्पाद तथा सेवाओं को इलेक्ट्रॉनिकली खरीदने का एक तरीका है। ई वाणिज्य का मुख्य साधन इन्टरनेट तथा वर्ल्ड वाइड वेब है।

बीज शब्द: इन्टरनेट, वर्ल्ड वाइड वेब, पी0 एस0 टी0 एन0

Utility of e-commerce technique in trade

D. D. Misra
Lecturer, Commerce Department
B.S.N.V. Post Graduate College, Lucknow(U.P.)-226001, India
durgaadutt@gmail.com

Abstract

Electronic Commerce emerged as a very important application of the world wide web. With the emergence of internet and the world wide web new methods of carrying out business transactions using the world wide web began to be explored. It is cheaper and faster to carry out business transactions within an organization and among organizations electronically using the network connection. Thus it is important to understand how business transactions are carried out electronically reliably and securely. Sharing business information, maintaining business relationships and conducting business transactions using computers connected to a telecommunication network is called E-Commerce. E–commerce means better and quicker customer service. Businesses can gain more control and flexibility and are able to save time when manual transactions are done electronically. E–commerce helps consumers to comparison shop. E–commerce helps create knowledge markets. A business develops an interactive interface with customers via a website. The main source of E Commerce is internet and World Wide Web. Many People think online shoping is E commerce but it has wide meaning.

Key words. Internet, world wide web, P.S.T.N.

प्रौद्योगिकी तथा इन्टरनेट के बढ़ते प्रचार प्रसार ने आज विश्व में कम्प्यूटर के प्रयोग को उस शिखर तक पहुँचा दिया है जहाँ हमारा दैनिक जीवन भी अब इससे अछूता नही रहा है। सुबह के अखबार से लेकर दिनभर ऑफिस के कार्यों में तथा शाम के टी0 वी0 कार्यक्रमों तक सभी को हमारे पास तक पहुँचाने में कम्प्यूटर के योगदान को देखा जा सकता है। ई वाणिज्य इन्टरनेट की एक उपयोगिता है एक अनुप्रयोग है जिसकी सहायता से इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से व्यापार किया जाता है। वाणिज्य का सम्बन्ध लेन देन अर्थात व्यापार से है तथा यही लेन–देन कम्प्यूटर तथा उसके नेटवर्क एव संचार प्रणाली की सहायता से इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से किया जाये तो इसे ई वाणिज्य कहते हैं। ई वाणिज्य के द्वारा कम्पनियां अपना व्यापार राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय दोनों स्तर पर कर सकती है। रेल विभाग, बिजली विभाग, बैंक एवं निजी क्षेत्रों की कम्पनियाँ ई वाणिज्य के द्वारा ग्राहक को अपनी सेवाएं एवं वस्तुएं आसानी से उपलब्ध करा सकती है। ई वाणिज्य के द्वारा कम्पनियां विशेष रूप से निम्न क्षेत्रों में अपना व्यापार कर रही हैं।

1. डायरेक्ट मार्केटिंग एवं सेलिंग
2. ऑनलाइन बुकिंग एवं बिलिंग

3. सूचना का सुरक्षित वितरण
4. वैल्यू–चेन व्यापार एवं कॉर्पोरेट पर्चेजिंग



बहुत सी कम्पनियाँ टी0 वी0 चैनलों के माध्यम से अपने उत्पादों का प्रचार करती है जिसे इन्टरनेट के माध्यम से उस कम्पनी के वेबसाईट से आर्डर करके घर बैठे मँगाया जा सकता है यह सब ई वाणिज्य का ही अंग है।

ग्राहक केन्द्रित अनुप्रयोग

1. पर्सनल फाइनेंस एवं होम बैंकिग मैनेजमेंट
2. बिल पेमेन्ट
3. डायरेक्ट डिपॉजिट
4. फण्ड ट्रांसफर
5. ए0 टी0 एम0
6. होम शॉपिंग
7. आनलाइन स्टोर
8. होम इन्टरटेनमेन्ट
9. मूवी देखना, म्यूजिक सुनना

ई वाणिज्य अनुप्रयोग की दूसरी एक्टिविटी होमशापिंग है जो कि बहुत व्यापक एक्टिविटी है होमशॉपिंग की सहायता से हम घर बैठे किसी भी उत्पाद को खरीद सकते हैं तथा साथ ही साथ अन्य सेवाओं की जानकारी भी आसानी से ले सकते हैं। इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य का उद्‌भव वर्ल्ड वाइड क्षेत्र के महत्वपूर्ण अनुप्रयोग के रूप में हुआ है।

ई वाणिज्य को निम्न श्रेणी में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. बिजनेस टू बिजनेस (बी टू बी)
2. बिजनेस टू कस्टमर (बी टू सी)
3. कस्टमर टू कस्टमर (सी टू सी)

ई वाणिज्य के अनुप्रयोग के निम्न उदाहरण हैं रिटेल स्टोर–किताब, संगीत(बुक, म्यूजिक), नीलामी साईट(ऑक्शन साईट), सहकारी व्यवसाय(आर्डर प्लेस करना, इनवॉयस पे करना आदि)

इलेक्ट्रॉनिक बैंकिंग
टिकट बुक करना (रेल, बस, सिनेमा हवाईयात्रा)
इलेक्ट्रॉनिक बिलिंग
सरकार को आयकर जमा करना

बिजनेस टू बिजनेस ई वाणिज्य



1. लोकल एरिया नेटवर्क इन्टरनेट के टी0 सी0 पी0/आई0 पी0 प्रोटोकाल को फॉलो करता है और इसे कॉरपोरेट इन्टरनेट कहते है।
2. बिजनेस 1 के द्वारा परचेज आर्डर कम्प्यूटर में एन्टर किया जाता है तथा इसे वेण्डर को इलेक्ट्रॉनिकली डिसपैच कर दिया जाता है या इलेक्ट्रानिक मेल द्वारा वेण्डर को भेज दिया जाता है।
3. वेण्डर, परचेज आर्डर प्राप्त होने की पुष्टि करता है।
4. वेण्डर द्वारा भौतिक रूप में गुड्स भेज दिया जाता है तथा डिलीवरी नोट इलेक्ट्रॉनिक रूप में बिजनेस 1 को भेज दिया जाता है।
5. बिजनेस 1 डिलीवरी नोट तथा परचेज ऑर्डर को तुलना करके चेक कर लेता है।
6. अगर डिलीवरी नोट में कोई असंगति होती है तो बिजनेस 1 उसे तुरन्त वेण्डर को भेज देता है।
7. बिजनेस 1 तथा वेण्डर द्वारा सम्पूर्ण लोकल ट्रॉजक्शन अपने लोकल एरिया नेटवर्क द्वारा की जाती है।
8. स्टोर द्वारा इन्वेण्टरी अपेडट करना, एकाउण्टस को पेमेन्ट के लिए सलाह देना(स्टोर में प्राप्त हुए गुड्स के लिए), ये सभी लोकल ट्रॉजक्शन हैं।
9. एकाउण्ट्स के द्वारा पेमेण्ट इलेक्ट्रानिकली की जा सकती है।

बीटूबी ई वाणिज्य को इम्प्लीमेण्ट करने के लिए आवश्यकताएं

1. परचेज ऑर्डर, डिलीवरी आर्डर, पेमेण्ट ऑर्डर आदि के फार्मेट पर सहमत होना। डाक्यूमेण्ट्स को इलेक्ट्रानिकली भेजने के लिए ई0 डी0 आई0(इलेक्ट्रानिक डाटा इण्टरचैन्ज स्टैण्डर्ड) का प्रयोग किया जाता है।
2. प्रत्येक बिजनेस का अपना कार्पोरेट इण्टरनेट होना चाहिए जो कि पी0 एस0 टी0 एन0 या लीज लाइन से कनेक्ट होगा।
3. ट्रांजैक्शन सुरक्षित होने चाहिये अगर पी0 एस0 टी0 एन0 प्रयोग किया जा रहा है।
4. भुगतान का सुरक्षित तरीका प्रयोग किया जाना चाहिये।

बी टू सी ई वाणिज्य के चरण

1. कस्टमर एक ब्राउजर प्रयोग करता है तथा वेण्डर का वेब ऐड्रेस लोकेट करता है।
2. वेण्डर के वेब पेज पर प्रोडक्ट, मूल्य आदि की जानकारी उपलब्ध रहती है।
3. कस्टमर वेण्डर के वेब पेज से आइटम सेलेक्ट करता है और आर्डर प्लेस करता है तथा पेमेण्ट मोड सेलेक्ट करता है।
4. वेण्डर कस्टमर के आर्डर की पुष्टि करता है तथा डिलवरी डेट तथा डिसपेच आदि की जानकारी देता है।
5. वेण्डर कस्टमर के आर्डर तथा पेमेण्ट मैथड के अनुसार प्राडक्ट को भेज देता है।
6. कस्टमर पेमेण्ट के बाद प्रोडक्ट रिसीव करता है।

सी टू सी कस्टमर ई वाणिज्य



ब्रोकर वेबसाइट

1. विज्ञापन – बिक्री हेतु
2. क्रेता तथा विक्रेता को एक साथ जोड़ता है।
3. आइटम ट्रॉसपोर्ट करता है।
4. क्रेता तथा विक्रेता से फीस लेता है।

ई वाणिज्य के लाभ

1. विभिन्न वस्तुओ एवं सेवाओ का क्रय/विक्रय घर या बिजनेस से ।
2. कही भी, कभी भी ट्रॉजक्शन ।
3. सही कीमत की जानकारी किसी भी वस्तु अथवा सेवा के लिए ।
4. वर्ल्ड वाइड क्लाइण्टस के साथ बिजनेस करना ।
5. आर्डर प्रोसेस कीमत को कम करना ।
6. इलेक्ट्रॉनिक फंडस ट्रॉसफर को तेज करना ।

7. ई वाणिज्य के द्वारा सप्लाई चेन मैनेजमेण्ट को आसान, तेज तथा सस्ता बनाया जा सकता है जैसे कि बहुत सारे वेण्डर को आर्डर किया जा सकता है तथा सप्लाई को मानिटर किया जा सकता है।

ई वाणिज्य के दोष

1. छोटे व्यापार के लिए ई डी आई प्रयोग करना महँगा होता है ।
2. इण्टरनेट सुरक्षित नही होता है वायरस, हैकर, ई वाणिज्य को आक्रमण करके पंगु बना सकते हैं।
3. ई ट्राँजक्शन की पायरेसी की कोई गारण्टी नही होती है।
4. ग्राहक मोल–भाव(बारगेन) नही कर सकता है।

ई वाणिज्य सिस्टम आर्किटेक्चर

लाजिकल लेयर्स	सर्विसेज इन लेयर्स
एप्लीकेशन लेयर	बी टू बी, बी टू सी, सी टू सी
मिडिलमैन सर्विसेज	होस्टिंग सर्विसेज, वैल्यू ऐडड नेट पेमेण्ट सर्विसेज, सर्टिफिकेट्स
सिक्योर मैसेजिंग	इनक्रिपशन, ई डी आई फायर वॉल
वर्ल्ड वाइड वेब सर्विसेज	एच टी टी पी, एच टी एम एल, एक्स एम एल, ओ एल ई, सॉफ्टवेयर एजेण्ट्स पी एस टी एन, लैन, ब्रिज, राउटर्स

ई वाणिज्य की सुरक्षा

इण्टरनेट के प्रयोग द्वारा बहुत से आर्गेनाइजेशंस में ई वाणिज्य के अनुप्रयोग द्वारा ट्राँजक्शंस किये जाते हैं। इण्टरनेट व्यापक रुप से एक्सेस किया जा सकता है जो कि असुरक्षित है इसलिए कम्पनी के विश्वसनीय सूचना को सुरक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है। तथा कम्पनी के नेटवर्क को प्रतिबंधित प्रवेश से सुरक्षित करना आवश्यक है। जब किसी संगठन को मैसेज प्राप्त होता है तो यह सुनिश्चित होना चाहिए कि वह मैसेज कहाँ से भेजा गया है आथेन्टिक है कि नही अथवा किसी ने परिवर्तित तो नही किया है। इसलिए डिजिटल हस्ताक्षर की आवश्यकता होती है जिसे कोर्ट मे प्रयोग किया जा सकता है।

निम्नलिखित द्वारा ई वाणिज्य ट्राँजक्शंस को सुरक्षित किया जाता है।

नेटवर्क सिक्योरिटी यूंजिग फायर वाल

फायरवाल द्वारा नेटवर्क सिक्योर करना फायरवाल एक सिक्योरिटी डिवाइस है जिसे आर्गेनाइजेशन के नेटवर्क की बाउण्ड्री पर डेपलोय किया जाता है तथा किसी बाहरी प्रतिबंधित एक्सेस से यह नेटवर्क की सुरक्षा करता है।

प्रोक्सी एप्लीकेशन गेटवे

प्रोक्सी एप्लीकेशन प्रोगाम फायरवाल मशीन पर रन किया जाता है जो कि किसी संगठन के सभी मैम्बर्स के बीहॉफ पर कार्य करता है जो कि इण्टरनेट प्रयोग करते हैं। यह प्रोग्राम सभी रिक्वेस्ट को मानीटर करता है तथा केवल सेलेक्टड इनफार्मेशन को आने देता है।

पेमेन्ट इन ई वाणिज्य

ई वाणिज्य में आनलाइन बैकिंग, डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड, आदि के माध्यम से किया जाता है। इन्टरनेट के द्वारा भुगतान करने से पूरी प्रक्रिया तेज हो जाती है।

निष्कर्ष

ई वाणिज्य ने व्यवसाय के अवसरो को बढ़ाया है तथा वस्तुओं एवं सेवाओं को अधिकाधिक ग्राहकों तक पहुँचाने में बहुत योगदान दिया है। भारत देश में इसके विस्तार एवं प्रसार के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

सन्दर्भ

1. डेविड कोसर(1997), अण्डरस्टैंडिंग इलैक्ट्रॉनिक कामर्स, माइक्रोसॉफ्ट प्रेस।
2. बजाज, के0 के0 एण्ड नाग, देवजनी(2005) इलेक्ट्रानिक कामर्स, द कटिंग एज ऑफ बिजनेसेस, टाटा मैक्ग्रा हिल्स, नई दिल्ली।
3. एच टी टी पी/इल. विकीपीडिया. ओ आर जी
4. डब्लूडब्लूडब्लू. इ.बुक्सडायरेक्ट्री.कॉम

उत्तराखण्ड के टेरिडोफाइट्स पादप समुदाय की औषधीय गुणों वाली कुछ प्रजातियाँ

एन0 पुनेठा एवं ऋचा पुनेठा
वनस्पति विज्ञान विभाग, एल0 एस0 एम0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
पिथौरागढ़-262502(उत्तराखण्ड),भारत
punethan_bot@yahoo.co.uk

सार

चूंकि उत्तराखण्ड का अधिकतम भाग पर्वतीय है, इसलिए इस राज्य में शीतोष्ण एवं एल्पाइन जलवायु में पाई जाने वाली वनस्पतियों की बहुतायत है। इन्हीं वनस्पतियों में से लगभग 350 प्रजातियां टेरिडोफाइटा समुदाय की हैं जिनमें से 22 प्रजातियों का उपयोग विभिन्न बीमारियों में स्थानीय लोगों के द्वारा या जन जातियों द्वारा किया जाता रहा है। इस लेख में इन्हीं प्रजातियों के बारे में सूचना दी गई है।

Some medicinally useful Pteridophytes of Uttarakhand

N. Punetha and Richa Punetha
Department of Botany
L. S. M. Govt. P. G. College
Pithoragarh(U. K.)-26502, India
punethan_bot@yahoo.co.uk

Abstract

Nearly all the known ecological zones are found in the hill state of Uttarakhand, therefore, plants of subtropical to alpine climate are found here. About 350 species of Pteridophytes occur in different climatic regimes of the state. In this communication mention of 22 species of Pteridophytes is made which are often traditionally used in various ailments by the local people and various tribal groups.

हमारा सौभाग्य है कि हम जैव विविधता से परिपूर्ण पृथ्वी पर रहते हैं। अद्यतन लगभग 16 लाख जीवों की प्रजातियों का वर्णन आधुनिक जीव विज्ञान में मिलता है यद्यपि कुल 80 लाख से ऊपर जीवों की प्रजातियां इस पृथ्वी पर होने का अनुमान है। जीवों की लगभग 1.2 लाख प्रजातियां भारतवर्ष में होने का अनुमान है जो कुल ज्ञात प्रजातियों का 7.5% है जबकि भू–भाग के आधार पर भारत का क्षेत्रफल पृथ्वी के क्षेत्रफल का मात्र 2.2% ही है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि जैव विविधता की दृष्टि से भारत की दुनियां में अपनी अहम भूमिका है। इन्हीं कारणों से भारत को विश्व के 12 बड़े जैव विविधता (मेगा बायोडायवर्सिटी) वाले देशों में स्थान मिला है। जीवों की ज्ञात प्रजातियों में से लगभग 50% वनस्पतियां हैं जिन पर सम्पूर्ण जीव जन्तु निर्भर हैं। इन्हीं वनस्पतियों से जीव–जन्तुओं को भोजन, प्राणदायी वायु, आश्रय आदि मिलते हैं। अनेकानेक वनस्पतियों से औषधियां तैयार की जाती हैं। भारत वर्ष में टेरिडोफाइटा समुदाय की लगभग 1100 प्रजातियां पाई जाती है जिनमें से अधिकतर हिमालयी क्षेत्र में हैं। इनकी विविधता दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट में भी देखने योग्य है। इस समूह के अंतर्गत फर्न तथा लाइकोफाइटा प्रजाति के पौधों को रखा गया है। इसी समूह के पूर्वजों की उत्पत्ति पृथ्वी की सतह पर कुछ स्थानों में आज से लगभग 65 करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी। तब से अबतक के इस लम्बे एवं जटिल जैविक विकास में आधुनिक फर्न प्रजातियों की उत्पत्ति तो हुई ही, इन्हीं से अन्य पादप वर्गों की उत्पत्ति भी मानी जाती है। इस समुदाय की अधिकतर प्रजातियां जंगलों में छायादार, नमी वाले स्थानों पर पाई जाती हैं। कुछ ट्री फर्न्स को छोड़कर अधिकतर प्रजातियों की पत्तियों की ऊंचाई 1–1.5 मीटर तक होती है, इनमें तना सामान्यतया भूमिगत या सतह पर होता है। केवल कुछ प्रजातियों को छोड़कर इस प्रजाति के पौधों का उपयोग मानव हित में नगण्य ही रहा है। *डिप्लेज़ियम मैक्ज़िमम, डिप्लेज़ियम एस्कुलेंटम, मैटुकिया स्ट्रुथियोप्टेरिस* आदि प्रजातियां ऐसी हैं जिनकी कोमल पत्तियां सब्जी में प्रयोग में लाई जाती हैं। कुछ प्रजातियों को भारतवर्ष के विभिन्न भागों में रहने वाली जन–जातियों के द्वारा विभिन्न बीमारियों में औषधियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। विगत कुछ वर्षों में कतिपय प्रजातियों के रासायनिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इन पौधों में भी औषधीय तत्व विद्यमान हैं तथा इनसे अब विभिन्न प्रकार की औषधियां तैयार की जा रही हैं।

टैरिडोफाइटा की लगभग 350 प्रजातियां उत्तराखण्ड की विविध जलवायु में (ऊष्मा कटिबंधीय, सम–शीतोष्ण, शीतोष्ण तथा एल्पाइन जलवायु वाले क्षेत्रों में) बहुतायत से पाई जाती हैं। कुछ स्थानों पर तो इनकी संख्या अन्य वनस्पतियों से कहीं अधिक है। इसी प्रकार की कुछ प्रजातियों का उल्लेख निम्नवत है जिनका उपयोग उत्तराखण्ड की जन–जातियों एवं अन्य लोगों द्वारा कुछ बीमारियों में किया जाता है। पाठकों की जानकारी के लिए कुछ ऐसी प्रजातियों का उल्लेख भी किया गया है जो अन्य देशों के साथ ही साथ उत्तराखण्ड में भी पाई जाती हैं लेकिन इनका औषधीय उपयोग अन्य देशों में तो किया जाता है लेकिन उत्तराखण्ड में नहीं किया जा रहा है

तालिका– 1 उत्तराखण्ड राज्य में पाई जाने वाली टेरिडोफाइटा समूह की कुछ प्रजातियों के औषधीय गुण

क्र. सं0	प्रजाति	परंपरागत उपयोग
1.	*एडिएंटम कैपिलस वेनेरिस*	खाँसी, गले के रोगों में, कुछ प्रकार के चर्म रोगों में भी
2.	*एडिएंटम इन्सिजम*	पेट के जलन में, ज्वर से राहत मिलती है
3.	*एडिएंटम फिलिपेंसे*	गर्भनिरोधक औषधि
4.	*एडिएंटम वैनुस्टम*	ज्वर कम करने के लिए, जनरल टॉनिक
5.	*काइलैन्थीज फैरिनोसा*	त्वचा की सूजन में
6.	*एस्प्लीनियम इन्डिकम*	पेशाब के साथ रक्त स्राव रोकने के लिए
7.	*एस्प्लीनियम लैसिनियाटम*	ल्यूकोरिया में
8.	*एस्प्लीनियम निडस*	पीलिया रोग में, मलेरिया में
9.	*ब्लैकनम ओरिएन्टेल*	जनरल टॉनिक के रूप में
10.	*डाइ ैनोपटैरिस लीनियैरिस*	कब्ज में, पेट के कीड़ो को मारने के लिए
11.	*हैलमिथोस्टैकिस जैलैनिका*	सियाटिका दर्द में
12.	*स्फैनोमेरिस चाईनेनसिस*	मूत्र विसर्जन में सहायक, आँत्र ज्वर में
13.	*लाइकोपोडाईला सरनुआ*	चर्म रोग में
14.	*लाइगोडियम फ्लैक्सुओसम*	पित्ताशय की पथरी के ईलाज में
15.	*लाइगोडियम जैपोनिकम*	मूत्र विसर्जन में सहायक
16.	*नै ोलेपिस कॉर्डिफोलिया*	घाव भरने में सहायक, आँतों के रोगों में सहायक
17.	*ओफियोग्लोसम रेटिकुलेटम*	घाव भरने में सहायक, जले हुए स्थान पर लगाने से आराम मिलता है।
18.	*पाइरोसिया एडनेसेन्स*	रयूमेटाइड आर्थराइटिस में उपयोगी
19.	*पाइरोसिया लेनसियोलेटा*	चर्म रोगों में
20.	*टेरिडियम रिवोल्यूटम*	दस्त में, पेट के कीड़ो को मारने में सहायक
21.	*टेरिस बाइऑरिटा*	विभिन्न प्रकार के क्रॉनिक रोगों में
22.	*सिलैजिनेला ब्रायोप्टेरिस*	जनरल टॉनिक, मूत्र विसर्जन में सहायक

संदर्भ

1. पुनेठा, एन0 तथा खोलिया, बी0 एस0(2010) फ्लोरिस्टिक डायवर्सिटी ऑफ फर्नस् एण्ड फर्न एलाइज इन उत्तराखण्ड, अध्याय– पुस्तक; पी0 एल0 उनियाल; बी0 पी0 चमोला एवं डी0 पी0 सेमवाल– द प्लांट वैल्थ ऑफ उत्तराखण्ड, जगदम्बा पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, मु0 पृ0 293–304।
2. घीमन, ऐ0 के0(1998) ईथनोमैडिसिनल यूजेज ऑफ सम टेरियोफाइटिक स्पेसीज इन इंडिया, इंडियन फर्न जर्नल, खण्ड 15, मु0 पृ0 61–64।
3. उप्रेती, के0; जलाल, जे0 एस0; तिवारी, एल0 एम0; जोशी, जी0 सी0 तथा पांगती, वाई0 पी0 एस0(2009) ईथनोमैडिसिनिल यूजेज ऑफ टेरियोफाइटस ऑफ कुमाऊँ हिमालय, उत्तराखण्ड, भारत, जर्नल ऑफ अमेरिकन साइंसेज, खण्ड 5, मु0 पृ0 167–170।

उत्तराखण्ड आपदा के कारण एवं निवारण

ध्रुवसेन सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी
भूविज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ(उ0प्र0)-226007, भारत
dhruvsensingh@rediffmail.com

सार

हिमालय हिमनदों एवं प्राकृतिक संसाधनों का बहुत बड़ा स्रोत है। भारत की सारी सततवाहिनी नदियों का उद्भव हिमालय से ही हुआ है। अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य से इसने पूरे विश्व का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया है। भारत को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सुरक्षा प्रदान करने वाला हिमालय पिछले कुछ दशकों से विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित हो रहा है, जिसके कारण धन एवं जन की हानि हो रही है। 16 एवं 17 जून 2013 को तेज वर्षा से प्रेरित भूस्खलन ने मंदाकिनी नदी एवं उसकी उपशाखाओं की धारा को रोककर, अल्पकालिक झील का निर्माण कर दिया बादल के फटने से आयी त्वरित बाढ़ ने बस्तियों एवं सडकों को बहा दिया और उत्तराखण्ड में विशेष कर केदारनाथ क्षेत्र में ऐसा विनाश किया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

बीज शब्द– हिमालय, आपदा, बादल का फटना, भूस्खलन, त्वरित बाढ़।

Causes and mitigation of Uttrakhand disaster

Dhruv Sen Singh
Associate Professor, Centre of Advanced Study in Geology
University of Lucknow, Lucknow-226007
dhruvsensingh@rediffmail.com

Abstract

Himalaya is the home of glaciers and store house of natural resources. It is the birth place of all the perennial rivers of India and has attracted international attention due to its natural beauty. The Himalaya which provides the social, economical and political security to India is affected by various disasters from last few decades, which causes loss of life and property. On 16 and 17 June, 2013, cloud burst induced landslides blocked the Mandakini River and its tributaries and formed the ephemeral lakes. Bursting of these lakes causes flash floods which washed out the settlements and roads and caused huge devastation in Uttarakhand state mainly in Kedarnath region, never witnessed so far.

Key words : Himalaya, disaster, cloud burst, landslides, flash floods

भूमिका

पर्यावरण, हमारे चारों ओर का व्याप्त वातावरण मुख्यतः स्थलमण्डल, जलमण्डल एवं वायुमण्डल का योग है, जिसमें जीवन पाया जाता है। पृथ्वी पर जीवन इन तीनों मण्डलों के अन्तः सम्बन्ध एवं प्राकृतिक सन्तुलन से ही हुआ है। पर्यावरण का भौतिक भाग जो मानव नियन्त्रण से परे है, प्रकृति कहलाती है।

प्रकृति ने मानव की समस्त मूलभूत आवश्यकताएं सुख एवं सम्पदा के सारे संसाधन अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझते हुए प्रदान किए हैं। प्रकृति ने वह मृदा जिसमें हम अन्न पैदा करते हैं, पानी जिसे हम पीते हैं, एवं हवा जिसमें हम सांस लेते हैं तथा जिनके अभाव में पृथ्वी पर जीवन सम्भव नहीं है, बिना किसी सीमा एवं शुल्क के उपलब्ध कराया है। तमाम वैज्ञानिक विकास के बावजूद भी हम इन मूलभूत आवश्यकताओं के निर्माण में अक्षम है।

वैसे तो मानव भी पर्यावरण का ही एक अंग है, और इसका अस्तित्व प्रकृति के ऊपर ही निर्भर है। इसीलिए मानव का उद्विकास, उसकी संस्कृति एवं सभ्यता प्राकृतिक नियमों एवं वैज्ञानिक तथ्यों को ध्यान में रखकर पल्लवित एवं पुष्पित हुई जैसे सिन्धु घाटी की सभ्यता (सिन्धु नदी), मेसोपोटामिया (दजला एवं फरात के बीच में), मिश्र (नील नदी)।

आदिवासी सभ्यता से बाहर निकलकर मानव ने जब विकास की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया होगा तो उसे यह अहसास भी नहीं रहा होगा कि इस

अनियन्त्रित, असंतुलित एवं अनियोजित विकास से वह अपने ही विनाश का मार्ग बना रहा है किन्तु आज विश्व के तमाम देश चाहे तो विकासशील हों या विकसित, विगत वर्षों में आए हुए आपदाओं के बाद भली–भांति जान गये हैं कि प्रकृति कितनी बड़ी है और मानव कितना बौना। विकास के साथ–साथ मानव ने प्राकृतिक सीमा पार कर दी है और अब वह प्रकृति की कीमत पर विकास कर रहा है। अब वह सारे सुख सम्पदा प्राप्त करना चाहता है जिसको किसी ने भी पर्यावरण को प्रदूषित करते हुए, प्राकृतिक नियमों की अनदेखी करते हुए एवं प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से प्राप्त किया है। जिसके परिणामस्वरूप वरदान स्वरूप जीवन दायिनी प्रकृति अभिशाप बनती हुई दिखाई दे रही है। प्रकृति के सारे घटक एवं तत्व साम्यावस्था में हैं। मानवीय गतिविधियों ने विगत वर्षों में प्रकृति को असंतुलित किया है जो आपदाओं का कारण बन रहा है।

उत्तराखण्ड की त्रासदी के कारण

गंगोत्री हिमनद उत्तरकाशी जिले में स्थित है जहां से भगीरथी नदी निकलती है। सतोपन्थ एवं भगीरथ खरक हिमनद बद्रीनाथ के पास जोशीमठ जिले में स्थित है जहां से अलकनन्दा नदी निकलती है। भगीरथी एवं अलकनन्दा देवप्रयाग में मिलती है जहां से इसका नाम गंगा हो जाता है। चोराबारी एवं साथी हिमनद केदारनाथ के पास रूद्रप्रयाग जिले में स्थित है जहां से मन्दाकिनी नदी निकलती है जो रूद्रप्रयाग के पास अलकनन्दा से मिलती है। केदारनाथ, गढ़वाल हिमालय में 3440 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है(चित्र 1)। चोरावारी ने निकलकर दक्षिण पश्चिम दिशा में लगभग 85 किमी0 दूरी तय करने के बाद मन्दाकिनी, अलकनन्दा में मिल जाती है। सरस्वती, कशी गंगा एवं मध्यमहेश्वर गंगा बायें तरफ से एवं सोनगंगा तथा लेस्टर दाहिने तरफ से मन्दाकिनी नदी में मिलती है। सरस्वती नदी की एक धारा मन्दिर से उत्तर में केदारनाथ के पीछे मन्दाकिनी नदी में मिलती है तथा एक धारा जो अब निष्क्रिय हो गयी है, केदारनाथ के सामने मन्दिर के दक्षिण दिशा में मिलती है।

15,16 एवं 17 जून 2013 को दक्षिणी मानसून एवं पश्चिमी विक्षोभ दोनों सक्रिय थे। इन दोनों प्रक्रियाओं के कारण उत्तराखण्ड में बहुत तेज बरसात हुई जिसे बादल फटना कहा जाता है। जिसके कारण मन्दिर के पीछे उत्तर दिशा में स्थित गांधी सरोवर एवं मन्दिर से दक्षिण दिशा में स्थित वासुकी ताल जो कि 2–3 किमी0 दूर स्थित है पूरी तहर भर गये। तेज एवं लगातार हो रही वर्षा के कारण भूस्खलन होने लगा। भूस्खलन से आने वाले अवशादों ने मन्दाकिनी एवं उसकी उपशाखाओं की धारा को रोक दिया। धारा अवरूद्ध हो जाने के कारण अल्पकालिक झीलों का निर्माण हो गया। कुछ देर बाद स्थायी एवं अल्पकालिक झीलें वर्स्ट कर गयीं जिसके कारण त्वरित बाढ़ आ गयी। त्वरित आयी बाढ़ ने मन्दिर के पास बायें तट पर स्थित निष्क्रिय धारा को सक्रिय कर दिया एवं कई नई धाराओं को भी उत्पन्न कर दिया। क्योंकि हिमजलीय मैदान पर, नदी की निष्क्रिय धारा पर एवं मंदाकिनी नदी की घाटी में बस्तियों का निर्माण हो गया था, जिसके कारण नदी की घाटी, नदी के अधिकतम बहाव को धारण करने में सक्षम नहीं थी। अधिक ऊर्जा वाले त्वरित बाढ़ ने केदारनाथ को पूरी तरह से तबाह कर दिया। इस बाढ़ एवं भूस्खलन ने केदारनाथ के नीचे भी मन्दाकिनी घाटी में रामबाड़ा, गौरीकुण्ड, सोनप्रयाग एवं फाटा में भी ऐसी बर्बादी की जैसा इस क्षेत्र में पहले कभी भी देखने को नहीं मिला। चित्र 2 एवं 3 केदारनाथ में प्रकोप के पहले एवं बाद की स्थिति को प्रदर्शित करते हैं। उत्तराखण्ड, मुख्य रूप से केदारनाथ की इस त्रासदी में कितने परिवार एवं लोग समाप्त हो गये, कितने लापता हो गये, कितने घर विहीन हो गये, कितने गांव, मुख्य मार्ग से कट गये, कितनी सड़कें एवं पगडंडियां बह गयी, कितने मकान, दुकानें एवं होटल बह गये एवं क्षतिग्रस्त हो गये यह अभी भी शत–प्रतिशत प्रामाणिकता के साथ नहीं पता है।

हमारे दायित्व

ऐसी घटना हिमालय या उत्तराखण्ड में नई नहीं है। पहाड़ी क्षेत्रों में बादल का फटना एवं भूस्खलन एक साधारण घटना है लेकिन केदारनाथ क्षेत्र में इतनी बड़ी आपदा पहली बार हुई है। इसी तरह से बादल का फटना, भूस्खलन, नदी की धारा बाधित होना, अल्पकालिक झील का निर्माण, झील का बर्स्ट होना एवं त्वरित बाढ़ का आना एवं अवसादों के अपवहित होने की घटना गंगोत्री हिमनदीय क्षेत्र में सिंह एवं मिश्रा ने 2002 में अध्ययन किया है।

इस तरह की घटना इस बात का संदेश देती है कि प्राकृतिक घटनाएं मानव नियन्त्रण एवं पूर्वानुमान से परे हैं लेकिन इतना अवश्य है कि बेहतर नियोजन एवं प्रबन्धन के द्वारा इन आपदाओं से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। पिछले कुछ दशकों में विकास प्राकृतिक नियमों एवं वैज्ञानिक तथ्यों की अनदेखी करके किया गया। एवं आपदाग्रस्त क्षेत्रों में भी बस्तियां बनायी गई। आज हम प्रकृति के साथ नहीं बल्कि उसकी कीमत पर विकास कर रहे हैं। यह समस्या सिर्फ किसी व्यक्ति, गांव, नगर, शहर या राज्य की समस्या नहीं है, अपितु यह पूरे जनमानस की समस्या है। सभी इसके निराकरण के लिए प्रयासरत हैं फिर भी यह समस्या दिनों दिन विशालकाय होती जा रही है। आज मानव का अस्तित्व अपने ही क्रियाकलापों के कारण खतरे में दिखायी दे रहा है। अतः इसके समाधान के लिए जन–जन की सहभागिता की आवश्यकता है। तभी हमारी पृथ्वी हरी भरी एवं साफ सुथरी दिखाई देगी एवं हम पूरे विश्व को यह संदेश दे पायेंगे कि हम उस देश के रहने वाले है जहां पर प्रकृति को संरक्षित करने के लिए पूरा जनमानस जागरूक है।

निष्कर्ष

अगर उत्तराखण्ड में वननाशन न हुआ होता, डायनामाइट का वृहद प्रयोग न हुआ होता, भूस्खलन के क्षेत्र में मकान न बने होते एवं नदी के घर में बस्तियां न होती तो सम्भवत जीवन एवं सम्पदा की उतनी बर्बादी नहीं होती जितनी अभी हुई है। यदि हम प्रकति का सृजन नहीं कर सकते तो हमें उसका विध्वंस भी नहीं करना चाहिए और यह सदैव याद रखना चाहिए कि जो प्रकृति हमें मुफ्त में जीवनदायिनी तत्व प्रदान कर रही है हमें उसकी रक्षा करनी है एवं प्राकृतिक नियमों एवं वैज्ञानिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ऐसा विकास करना है जिसमें पर्यावरण भी प्रदूषित न हो। प्रकृति भी संरक्षित रहे एवं प्राकृतिक संसाधन भी आने वाले पीढ़ी के लिए बचे रहें।

आभार

उच्च शिक्षा विभाग, उ0 प्र0 सरकार अनुदान प्रदान के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। हम विभागाध्यक्ष, भूविज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय एवं इस शोध पत्रिका के सम्पादक मण्डल को भी धन्यवाद देते हैं।

संदर्भ

सिंह, ध्रुवसेन एवं मिश्रा, अजय(2002) रोल ऑफ ट्रिब्यूटरी ग्लेशियरस फन लैन्डस्केप माडीफिकेशन इन द गंगोत्री ग्लेशियर एरिया, गढ़वाल हिमालय इन्डिया, करेन्ट साइन्स, खण्ड 82, अंक 5, मु0 पृ0 101–105।



चित्र 1
केदारनाथ चोरावारी हिमनद,
मन्दाकिनी नदी एवं गाँधी सरोवर



चित्र 2
त्रासदी के पूर्व का केदारनाथ एवं मन्दिर



चित्र 3
त्रासदी के बाद का केदारनाथ एवं मन्दिर

वैदिक विज्ञान की आधुनिक प्रामाणिकता

के0 के0 बाजपेई
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
kkbajpai.hodm@gmail.com

सार

आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों ने जहाँ वर्तमान में मानव के लिए जीविकोपार्जन के साथ–साथ जीवनयापन के नये आयाम उपलब्ध कराये हैं, जिससे मानव जीवन मशीनों के प्रयोग पर अधिक निर्भर हो गया है, जो आर्थिक रूप से खर्चीला साथ ही दुष्परिणाम का द्योतक है। परन्तु वर्तमान में विज्ञान जिस ज्ञान को मशीनों की सहायता से खोज रहा है, वह ज्ञान हमारे प्राचीन शास्त्रों जिनका उल्लेख हमारे वेदों में भी किया गया है; हमारे पूर्वजों को पौराणिक काल में आधुनिक विज्ञान से ज्यादा सरीक और परिष्कृत ज्ञान था, जिसका साक्ष्य प्रमाण सहित हमारे चारो युगों के वेद पुराणों मे जीवन दर्शन के चित्रण के साथ दृष्टिगोचर होता है। युगो उपरान्त आधुनिकता के मद में विरासत से मिले जीवन दर्शन, ज्ञान और विज्ञान की अनदेखी करते–करते जो प्रायः लुप्त हो गया, जिसका प्रमाण तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरित मानस एवं हनुमान चालीसा से ज्ञात होता है।

Modern authenticity of Vedic Science

K. K. Bajpai
Associate Professor and Head, Department of Mathematics
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow(U. P.)-226001, India
kkbajpai.hodm@gmail.com

Abstract

The science of the Vedic period in current scenario seems powerful, accurate rather more advance and comprehensive during the period of our four ugas than the modern existing science exemplary by looking into our vedas, vedvyas's Mahabhart, Tulsidas's Ram Charit Manas & Hanuman Chalisa. There were several examples found regarding universe science, oceans science, physical science, chemical science, science and technology providing arms and aviation which are illustrated here, showing the authenticity of Vedic Science than Modern Science.

यह अद्भुत, आश्चर्यजनक एवं अचंभित कर देने वाली बात है कि जाने माने वैज्ञानिक स्टीफन हाकिंग, नासा के कुर्जनीक वैज्ञानिक प्रोफेसर रिचर्ड हॅकिंग सहित विश्व के अनेकों वैज्ञानिकों ने वर्ष 2100 तक विज्ञान प्रौद्योगिकी में प्रवेश कर अनेक नवीन परिष्कृत ऊचाइयों को छूने का दावा किया है जो आर्थिक तौर पर विश्व को जर्जर कर सकता है बल्कि यों कहें कि विनाश की ओर भी ले जा सकता है।

पर हमारे शास्त्रों में बिना मशीनों के पृथ्वी से ग्रहों, द्वीपों एवं समुद्री मार्गों की दूरियां का शत–प्रतिश विवरण सटीय गणितीय शास्त्रीय सूत्रों के माध्यम से मिलता है, जिसको आधुनिक मशीन उतना सटीक नहीं माप पाती है, जिनका वर्णन हमारे शास्त्रों में है, जिसका अध्ययन चोरी छिपे करने के लिए महाशक्तियां प्रयत्नशील है। हमारे ऋषि–मुनियों एवं शास्त्र रचयिताओं ने प्रत्येक युग में विज्ञान के अस्तित्व का परिचय पूरी प्रमाणिकता के साथ फहरा दिया था, चाहे चिकित्सा क्षेत्र, चाहे वायु सेवा हो, चाहे पृथ्वी से सौरमण्डल का अध्ययन हो, चाहे समुद्रीय विज्ञान हो, एवं उस समय आज से ज्यादा परिष्कृत हथियार ही रहे हों। उदारहणतः पृथ्वी से सूर्य की दूरी वैज्ञानिकों ने अथक अनुसंधान एवं परीक्षण कर लगभग 15करोड़ किलोमीटर मापी है जबकि एक साधारण से परिवार में जन्में अशिक्षित ज्ञान–विज्ञान की दक्षता के बिना अपने अलौकिक ज्ञान के माध्यम से रामचरित मानस के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने विलक्षण खगोलीय ज्ञान के माध्यम से गणतीय आंकलन कर पृथ्वी से सूर्य की सटीक दूरी 15 करोड़ छत्तिस लाख किलोमीटर मापी, जिसका वर्णन रामचरित मानस एवं हनुमान चालीसा की इन पंक्तियों को एक गणितीय सूत्र तरह से लिखकर वर्णित किया है–

"युग सहस्त्र योजन पर भानु, लील्योताहिं मधुर फल जानु।" (हनुमान चालीसा)

का विश्लेषण यह है कि भानु का अर्थ सूर्य, लील्योताहिं मधुर फल जानु का अभिप्राय हनुमान जी ने सूर्य को मधुर फल समझकर खा लिया या निगल गये। तुलसीदास नें यह बताकर सभी को स्तब्ध कर दिया था कि हनुमान जी ने पृथ्वी से छलांग लगाकर 15 करोड़ छत्तिस लाख किलोमीटर दूरी तय कर आकाश में जा कर सूर्य को निगल लिया था, इसका अभिप्राय यह भी है कि अंतरिक्ष विज्ञान का परिष्कृत ज्ञान भी उनको अलौकिक ज्ञान के माध्यम से ज्ञात था।

हनुमान चालीसा से ली गई उपरोक्त पंक्तियों का अभिप्राय पूर्णतः गणितीय सूत्र है, जिसका विश्लेषण सटीक रूप से इस प्रकार है, युग सहस्त्र योजन

पर भानु की गणितीय गणना इस प्रकार है–

= 1200 (युग) x 1000 (सहस्त्र) 1 युग
= 1200 (युग) x 1000 (सहस्त्र) x 8 मील (1 योजन = 8 मील)
= 9, 60, 000 मील
= 9,60,000 x 1.6 किमी (1 मील = 1.6 किमी.)
= 15,36,000 00 किमी.

इस तरह तुलसीदास जी ने अनेकों उदाहरण रामायण के प्रत्येक काण्ड में दिये हैं जिनमें मुख्यतः सुन्दरकाण्ड में वर्णित उनका ज्ञान त्रेतायुग में सटीक गणनाओं को चौपाई रूपी सूत्रों को प्रमाणित करता है जो पृथ्वी से सौर मंडलीय आधुनिक गणनाओं से ज्यादा सटीक है। इसी क्रम में तुलसीदास जी ने हनुमान जी को समुद्र पार कर लंका जाने के सदर्भ का वर्णन करते हुए कहा–

"जो बांघाई सौयोजन सागर। करइ सो राम काजमति आगर।।"

जिसका गणितीय अभिप्राय समुद्र के दोनों तटों के बीच की दूरी यानि सौ योजन यानि चार सौ कोस, यानि आठ सौ मील, यानि 1280 किमी. जिसकी प्रमाणिकता श्री रामेश्वरम् धाम से श्रीलंकाई समुद्र तट की दूरी के रूप में विद्यमान है। तुलसीदास जी का ज्यामिति ज्ञान भी हनुमान जी के समुद्र पार कर लंका जाने के सम्बन्ध वर्णित निम्न प्रसंगों से ज्ञात होता है, जिसमें तुलसीदास जी ने हनुमान जी के समुद्र पार लंका जाने के समय सर्पों की माता सुरसा के प्रसंग के वर्णन में अपनी गणितीय आंकलन की सटीक दक्षता इन पंक्तियों के माध्यम से दर्शाया–

"योजन भरितेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा।।
सोरह योजन मुख तेहिं ठहऊँ। तुरत पवनसुत बतिस भयऊ।। (दोहा 1 के उपरांत 4 चौपाई, सुन्दरकाण्ड)
"जस जस सुरसा वादनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।।
सत योजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।। (दोहा 1 उपरांत 5 चौपाई, सुन्दरकाण्ड)

अर्थात सुरसा ने जब एक योजन, यानि चार कोस में मुँह फैलाया तब हनुमान जी ने अपना आकार दुगुना फैला दिया ताकि वह हनुमान जी को खा न सके, ऐसा न हो सकने पर सुरसा ने अपना मुंह सोलह योजन, यानि चौंसठ कोस फैलाया तुरन्त ही हनुमान जी ने अपना आकार बत्तीस योजन यानि 128 कोस का कर दिया, अन्ततः निराश हो कर सुरसा ने अपने मुंह का विस्तार सौ योजन यानि चार सौ कोस कर लिया तब हनुमान जी ने अपना आकार अति सूक्ष्म कर के सुरसा के मुंह जाकर बाहर आ गये। यह वृतांत ज्यामितीय आकार प्राकर का सटीक वर्णन करता है।

इन वृतांतों से यह ज्ञात होता है कि भौतिक विज्ञान आज भी कितना पीछे है। तुलसीदास जी यहीं नहीं रूकते, उन्होंने रामायण में कई अन्य वृतांतों के माध्यम से उस समय चिकित्सकीय सुविधा, आयुधो एवं उस समय आकाश मार्ग से जाने वाले यानों का भी सजीव वर्णन किया जो वर्तमान विज्ञान तकनीकी से ज्यादा परिष्कृत थे, जिनके कोई भी दुष्परिणाम नहीं थे। रामायण की इन चौपाइयों में वर्णित वृतांत के माध्यम से यह सिद्ध और प्रमाणित होता है।

वीरछाविनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी।।
मुरछा भई सक्ति के लांगे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे। (दोहा 53 के उपरांत चौपाई 4, लंकाकाण्ड)

मेघनाद और लक्ष्मण जी के युद्ध में जब मेघनाद को लगा कि खुद प्राण बचाना मुश्किल है तब मेघनाद ने वीरछाविनी शक्ति चलाई, जो लक्ष्मण जी के छाती में जा लगी और वे मूर्छित होकर गिर पड़े। मेघनाद क्षण भर खुश होकर उनके पास जा कर उन्हें उठा ले जाने के लिए उठाने की कोशिश करता है पर वह जरा सा हिला भी नहीं पाता तथा लजाकर चला जाता है। राम की सेना में हाहाकार मच जाता है, श्रीरामचन्द्र जी अति व्याकुल हो जाते हैं, तब तुलसीदास इन पंक्तियों के वृतांत में वैद्य एवं चिकित्सा के बारे में उल्लेख किया है–

जामवंत कह वैद सुषेना। लंका रहई को पठई लेना।
घरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता।। (दोहा 54 के उपरांत 4 चौपाई, लंकाकाण्ड)

श्री रामचन्द्र जी की सेना एवं स्वयं भगवान राम विलाप कर रहे हैं तब जामवंत जी ने लंका में रहने वाले सूषेन वैद्य को उपचार के लिए बुलाये जाने के लिए सुझाया, तब हनुमान जी अपना लघु रूप कर गये और सुषेन वैद्य को उनके घर समेत उठा लाये, तब सुषेन ने रामचन्द्र की चरण वंदना उपरांत औषधियां एवं उस पर्वत का नाम सुझाया जिस पर औषधि पाई जाती है जिसका वृतांत निम्न पंक्तियों में उल्लिखित है–

राम पदारविद सिर नायउ आई सुषेन।
कहा नाम गिरि औषणि जाहु पवनसुत लेन।। (दोहा 55, लंकाकाण्ड)

अंततः हनुमान जी उस पर्वत पर पहुंच जाते हैं लेकिन औषधि की पहचान न कर पाने की स्थिति में पूरा पर्वत ही उठाकर हवाई मार्ग से निहित समय में

लौट आते हैं जिसका वृतांत निम्न पंक्तियों में उल्लिखित है–

देख सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।।
गहि गिरि निसि नभ धावत भयउ। अवधपुर अपर कपि गयऊ।। (दोहा 57 के उपरांत 4 चौपाई, लंकाकाण्ड)

सूषेन वैद्य ने हनूमान जी द्वारा लाये गये पर्वत से वह औषधि निकाल कर उचित मात्रा में लक्ष्मण जी को पिला दी, जिससे वह चैतन्य हो कर उठ गये, भगवान राम और सम्पूर्ण रामचन्द्र जी की वानर और भालुओं की सेना प्रसन्न हो गई, यह वृतांत निम्न पंक्तियों से उल्लिखित होता है–

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना।।
तुरत वैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लक्ष्मण हरषाई।। (दोहा 61 के उपरांत पहली चौपाई, लंकाकाण्ड)

तुलसीदास जी ने रावण के वध उपरांत विभीषण का राजतिलक कर लंका का राज्य सौंपने के उपरांत, राम, सीता, लक्ष्मण एवं समस्त वानर, भालुओं की सेना को लेकर लौटते वक्त लंका के राजा विभीषण ने आकाश मार्ग से जाने के लिए विशेष पुष्पक विमान उपलब्ध कराया, जिसमें रामचन्द्र जी की सम्पूर्ण सेना राम, सीता और लक्ष्मण जी के साथ बैठ सकते थे। उसके उपरांत भी उसमें बैठने की जगह उपलब्ध थी। इस बात का अभिप्राय निम्नलिखित पंक्तियों के वर्णन से सारगर्भित होता है–

अति सय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हें सकल विमान चढ़ाई।
मन महु विप्र चरन सिरु नाई। उत्तर दिसिहिं विमान चलाई। (दोहा 118 के उपरांत पहली चौपाई, लंकाकाण्ड)

निष्कर्ष

इन वृतांतों के सार गर्भित उदाहरणों के उपरांत यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी द्वारा राम चरितमानस में वर्णित वृतांतों में प्रमाणित जीवन दर्शन के आधार पर आज का भौतिक विज्ञान काफी पीछे है, जिसके अनेकों उदाहरण हमारे अन्य ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

संदर्भ

1. तुलसीदास जी रचित रामचरितमानस
2. हनुमान चालीसा, हनुमाष्टक
3. वाल्मीकि जी रचित रामायण

न्यायालयिक विज्ञान में वानस्पतिक साक्ष्यों का महत्व

अर्चना राजन्
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
सन्त कवि बाबा बैजनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हरख, बाराबंकी(उ0प्र0)–225121, भारत

सार

किसी भी आपराधिक घटना का वैज्ञानिक विधि व तकनीक द्वारा किया गया विश्लेषण विधि विज्ञान या न्यायालयिक विज्ञान के अन्तर्गत आता है। यह अध्ययन घटनास्थल से प्राप्त अनेक साक्ष्यों पर आधारित होता है। वानस्पतिक साक्ष्यों में शैवाल, डायटम, कवक, स्पोर, परागकण आदि सूक्ष्म साक्ष्य तथा कांटेदार फल, बीज, लकड़ी, रूई व रेशे आदि दृष्ट साक्ष्यों की श्रेणी में आते हैं, पहले घटना स्थल पर उपस्थित इन पादप साक्ष्यों को नजर अन्दाज कर दिया जाता था, परन्तु अनेक मामलों में न्यायालय ने इन साक्ष्यों के महत्व को स्वीकारा है, और अब यह मान्यता प्राप्त साक्ष्य हैं।

Importance of Botanical evidences in Forensic science

Archna Rajan
Associate Professor, Department of Botany
Sant Kavi Baba Baijnath Govt. P. G. College
Harakh, Barabanki(U.P.)-225121, India

Abstract

Scientific studies or investigations of crime can be termed as Forensic science. Forensic biologists play an important role in examining biological exhibits oriented with crime. For long times the botanical evidences at crime sites were ignored but now court considered them as an important evidence. These plant evidence includes microscopic plants like algae, Diatoms, Fungal spores and pollen grain and macrocopic plant parts such as hooked fruits, seeds, wood, fibers etc. There are so many cases where court considered the evidences of plant parts which decides the judgement of the case and accused was punished.

Key words : Forensic Science, Botanical Evidences, Pollengrain, Hooked fruits & seeds.

आज जैसे–जैसे विज्ञान व भौतिक संसाधन विकसित होते जा रहे हैं, वैसे–वैसे हमारा सामाजिक विन्यास बदलता जा रहा है। भौतिकरूप से सम्पन्न इस समाज में नये–नये तरीकों व तकनीक का उपयोग आपराधिक कृत्यों में भी बढ़ता जा रहा है।

किसी भी आपराधिक घटना को सुलझाने व अपराधियों को दण्ड दिलाने में पुलिस विभाग के साथ–साथ न्यायालिक विज्ञान या विधि विज्ञान (फोरेंसिक विज्ञान) के विशेषज्ञ भी शामिल होते हैं। यह विशेषज्ञ घटना को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जांचकर घटनाक्रम में प्रयोग की गयी वस्तुओं व तकनीक का विश्लेषण कर अपराधियों की पहचान करते हैं। न्यायिक प्रक्रिया में इन विशेषज्ञों के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए अब देश के अनेकानेक विश्वविद्यालयों में स्नातक, स्नातकोत्तर व शोधस्तर पर फोरेंसिक विज्ञान का अध्ययन आरम्भ हो चुका है। इस समय देश में विधि विज्ञान की 5 केन्द्रीय व अनेकानेक राज्यस्तरीय प्रयोगशालाएं स्थापित की जा चुकी हैं। इन प्रयोगशालाओं में विज्ञान की 8 शाखाओं के विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है, यह विषय है भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान, सीरोलॉजी, बैलेस्टिक विज्ञान, विष विज्ञान, चित्रांकन विज्ञान व आवश्यक पत्र जात संरक्षण विज्ञान।

इस आलेख में हम किसी भी आपराधिक स्थल से प्राप्त होने वाले पादप साक्ष्यों के अध्ययन की बात करेंगे कि किस प्रकार अनेक उलझे हुए घटनाक्रम को पादप विज्ञानियों ने सुलझाया व अपराधियों को सजा दिलायी गयी। यह पादप वैज्ञानिक, न्यायायिक जीव विज्ञानी(फोरेंसिक बायोलोजिस्ट) कहलाते हैं, जिनका कार्य घटना स्थल से प्राप्त पशु, पक्षी, मानव या पादप साक्ष्यों या उनके अवयवों का विश्लेषण करना होता है, विधि विज्ञान के साक्ष्यों में पादप साक्ष्यों को काफी लम्बे समय तक महत्व नहीं दिया गया, क्योंकि इस क्षेत्र में कार्य करने वाले वैज्ञानिक अधिकतर जन्तुविज्ञान से सम्बन्धित होते थे, परन्तु पादप वैज्ञानिक की विधि विज्ञान प्रयोगशालाओं में बढ़ती उपस्थिति व बढ़ती तकनीक दक्षता ने पादप साक्ष्यों के महत्व को स्वीकार किया है। वर्ष 2003 की विधि विज्ञान की हैण्ड बुक में घटना स्थल से प्राप्त पादप साक्ष्यों यथा–परागकण, स्पोर, लकड़ी, रेशे, रूई, बीज, फल, शैवाल, घटना स्थल के आसपास की वनस्पतियों को महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में सम्मिलित किया है, तथा न्यायालय द्वारा इनको साक्ष्य रूप में मान्यता दी गयी है।

वानस्पतिक साक्ष्यों के प्रकार, आकार–प्रकार के आधार पर इनको 2 वर्गों में बांटा गया है।

1. अदृष्ट साक्ष्य (माइक्रोस्कोपिक साक्ष्य) – यह आकार में अति सूक्ष्म होते हैं तथा इनको देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है जैसे– शैवाल, कवक, स्पोर, परागकण इत्यादि। किसी भी घटना स्थल से प्राप्त यह साक्ष्य अपराधी के बारे में या संदिग्ध व्यक्ति के वस्त्रों, बालों इत्यादि से प्राप्त होने पर घटना स्थल के विषय में अतिआवश्यक संकेत प्रदान करते हैं।

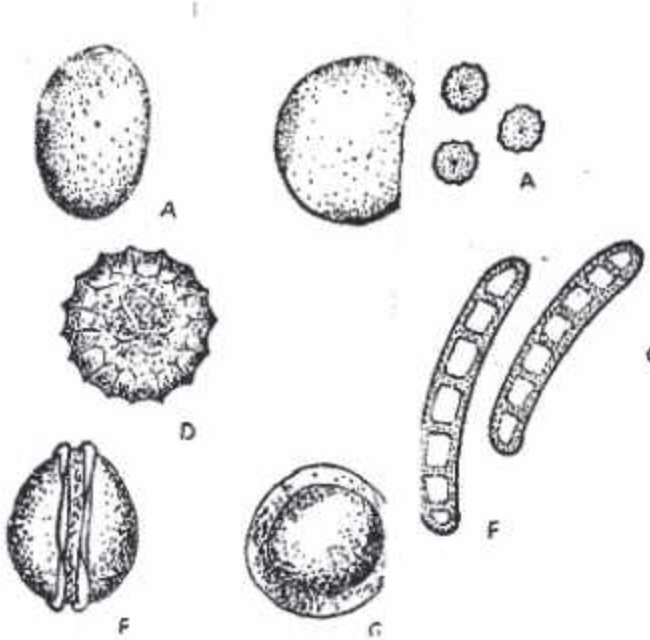
2. दृष्ट साक्ष्य (मैक्रोस्कोपिक साक्ष्य)– यह बड़े आकार के होते हैं जिनको बिना किसी आवर्धन के नेत्रों द्वारा देखा जा सकता है जैसे– पत्ती, फल, बीज, लकड़ी, रूई या रेशे, कांटे इत्यादि।

अदष्ट साक्ष्य

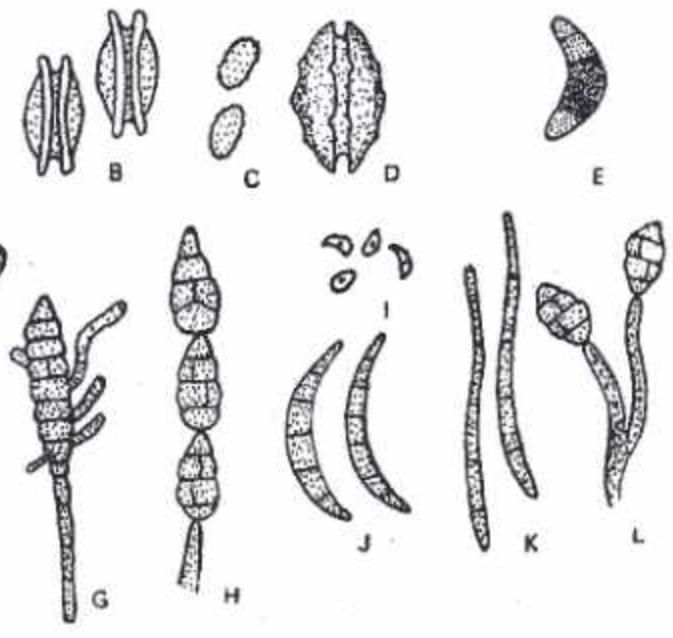
1. शैवाल– शैवाल (एल्गी) पानी में पाये जाने वाले अधिकतर हरे रंग के पौधे होते हैं, इनके लिए सामान्यतः 'काई' शब्द प्रचलित है। वनस्पति विज्ञान के दृष्टिकोण से इनके विशिष्ट गुण धर्मों यथा संरचना, प्रजनन व प्राप्ति स्थान के आधार पर इनकों 11 वर्गों में बांटा गया है। समुद्री पानी में अलग प्रजातियां मिलती हैं, इसी प्रकार बहते हुए मीठे पानी व रूके हुए मीठे पानी में अलग–अलग प्रजातियां पायी जाती हैं। प्रदूषित पानी में भी प्रदूषण की प्रकृति व मात्रा के अनुसार इनकी प्रजातियां मिलती है। इस प्रकार प्रत्येक प्राप्ति स्थान के गुणधर्मों यथा पानी, तापमान व भोज्य पदार्थों के अनुसार एक स्थान विशेष पर विशिष्ट प्रजातियां मिलती है। अतः स्पष्ट है कि किसी भी तालाब, नदी, पोखर, झील या समुद्र के स्थान विशेष का जलसंसार अति विशिष्ट होता है। विधि विज्ञान के दृष्टिकोण से यदि पानी के भीतर कोई शव मिलता है तो 2 संभावनाएं बनती हैं–

1. मृत्यु का कारण डूबना है– इस दशा में शव के पेट व फेफड़ों में भरे पानी का विशलेषण किया जाता है और यदि वहां के पानी व जलीय वातावरण के पानी में एक जैसी वनस्पतियां(शैवाल व डायएटस्) मिलती है तो मृत्यु पानी में डूबने से हुयी है।
2. हत्या के उपरान्त शव को पानी में डाला गया– इस दशा में सांस बन्द होने के कारण पानी फेफड़ों व पेट में नहीं पहुंचता है अतः वहां वाह्य जल के सूक्ष्मजीवी नहीं पहुंच पाते हैं, जोकि स्पष्ट कारण बनता है कि मृत्यु के बाद शव को पानी में फेंक दिया गया।

2. कवक– कवक भी सूक्ष्म क्लोरोफिल रहित पौधे होते है जो कि हर प्रकार के वातावरण में उग सकते हैं परन्तु कुछ कवक विशिष्ट वातावरण में उगते हैं। कभी–2 किसी आपराधिक घटना से गुमराह करने के लिए शव को घटना स्थल से बहुत दूर फेंक दिया जाता है, इस स्थिति में उस पर उगने वाले कवक व उनके स्पोर द्वारा घटना स्थल के बारे मे संकेत मिलते हैं।



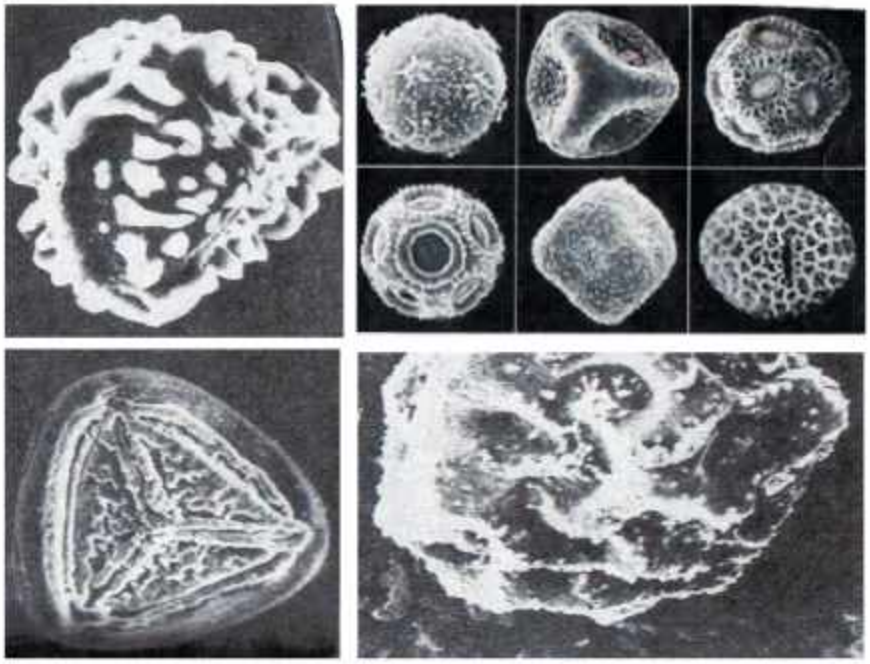
एस्परजिलस के एस्कोस्पोर



विभिन्न आकार–प्रकार के कवक स्पोर व कोनिडिया

3. परागकण– परागकण पुष्प में पायी जाने वाली अतिसूक्ष्म गोलाकार या अण्डाकार रचनाएं होती हैं जोकि बहुत अधिक संख्या में उत्पन्न होती है। प्रत्येक जाति के पौधे का परागकण आकार एवं वाह्यभित्ति संरचना में दूसरी प्रजाति से एकदम अलग होता है। बाह्यभित्ति अत्यन्त कठोर व एक विशिष्ट पैटर्न की होती है, जिससे जाति विशेष की पहचान की जा सकती है। कठोर बाह्यभित्ति के कारण परागकण कुछ वर्षों से लेकर हजारों वर्षों तक सुरक्षित रह सकते है। अपने अतिसूक्ष्म आकार के कारण यह हवा में भी उपस्थित रहते हैं, व किसी का ध्यान इनकी ओर नहीं जाता है तथा यह

घटना के मूक गवाह के रूप में उपस्थित रहते हैं व घटना के मौसम व भौगोलिक स्थिति के विषय में भी जानकारी देते हैं। जैसे– अपराध स्थल व संदिग्ध के वस्त्रों से प्राप्त *आरटीमीसिया अरबोरिसेन्स* के परागकणों के आधार पर न्यूजीलैण्ड में हुए रेप केस में अपराधी को 8 वर्षों की सजा दी गयी (मिडेन हॉल, 1996)



विभिन्न आकार–प्रकार व बाह्यभित्ति संरचना के परागकण

दृष्ट साक्ष्य

1. फल– अनेक पादप प्रजातियों के फल का बाह्य आवरण कांटे या हुक जैसी संरचनाओं से घिरा होता है, जैसे गोखर, लटजीरा, रिसिनस इत्यादि। यह संरचनाएं इन फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रकीर्णन में मदद करती हैं, परन्तु आपराधिक घटनाओं में यह संदिग्ध के बालों, कपड़ों में फंसकर एक साक्ष्य का कार्य करती है। जैसे (स्टेट ऑफ ओहियो वर्सेज केविन नील, 2000) ओहियो में 1997 में 2 बच्चों के गुम होने की सूचना उनके सौतेले पिता ने दर्ज करायी, कुछ समय बाद दोनों बच्चों के शव एक स्थानीय कब्रिस्तान के बाहर दफन मिले। वहां पर *जीयम कैनोडेन्स*(रोजेसी) व *गैलियम अपराइन* (रूबिएसी) के पेड़ लगे थे इनके बीज व फल में रोयेदार रचनाएं पायी जाती है। पिता को संदिग्ध मानकर घर की तालाशी में बरामद उसके कपड़ों में यह फल व बीज लगे पाये गये। कपड़ों को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया और पिता ने अपराध कबूल किया।



कॉंटेदार व हुक संरचना वाले फल व बीज

2. बीज– घटनास्थल से प्राप्त कांटेदार बीज के अलावा भोजन के रूप में ग्रहण किये गये बीज भी घटना को सुलझाते हैं। प्रत्येक प्रजाति के बीज का बाह्य आवरण अनूठा व दूसरों से अलग होता है जिससे उसके पौधे को पहचाना जा सकता है। *फैबेसी, सोलोनेसी व ब्रेसीकेसी* कुल के बीज आहारनाल के रसायनों से अप्रभावित रहते है। यह बीज व्यक्ति के अन्तिम भोजन की जानकारी दे सकते हैं (बौक एवं अन्य, 1998)। सितम्बर 2001 में लन्दन की टेम्स नदी में एक बच्चे का सिरविहीन शव प्राप्त हुआ, आस–पास के किसी बच्चे के गुम होने की कोई सूचना नहीं थी। डी0एन0ए0 परीक्षण में बच्चा पश्चिमी अफ्रीका का पता लगा, आहार परीक्षण में एलडर पौधे के परागकण, मिट्टी की गोलियां जिनपर सोना चढ़ा था तथा एक विषैली सेम जो कि पश्चिमी अफ्रीका में पायी जाती थी के बीज मिले, इससे सिद्ध हुआ कि बच्चे को विष देने के बाद मानव बलि के लिए इस्तेमाल किया गया व शव को लन्दन में फेंका गया। इस केस में किसी को नही पकड़ा गया, परन्तु इन सूत्रों को इस्तेमाल कर मानव तस्करी से जुड़े 21 लोगों को बाद में गिरफ्तार किया गया। (द गार्डियन 2004, विचक्राफ्ट्स मर्डर, 13 फरवरी 2005, नेशनल जियोग्राफिक चैनल)

3. लकड़ी– कभी–कभी अपराध स्थल से लकड़ी के टुकड़े या डालें बरामद होते हैं। प्रत्येक वृक्ष की लकड़ी की संरचना विशिष्ट होती है अतः विशेषज्ञ उस लकड़ी के पेड़ की जानकारी कर सकता है तथा उस पेड़ की भौगोलिक स्थिति ज्ञात कर अपराधी तक पहुंचा जा सकता है। (चार्लिक

लिंडबर्घिसन–लैडर वुडेन किडनैप केस, 1997)

4. रेशे/रस्सी– रस्सी या डोरी जिन रेशों से बनती है वे पौधे के तने या पत्तों से प्राप्त होते हैं हर पौधे में रेशे बनाने वाले ऊतक आकार व रासायनिक संरचना में एकदम अलग होते हैं। अतः घटनास्थल से प्राप्त इस साक्ष्य के द्वारा भी अपराधी की स्थिति को पहचाना जा सकता है।

5. आणविक साक्ष्य– वनस्पति साक्ष्यों में आणविक साक्ष्य एक उभरता हुआ क्षेत्र है, जैसे मानव की डी0एन0ए0 फिंगरप्रिंटिंग द्वारा बहुत सारे केस सुलझाए गये हैं वैसे ही पौधों की डी0एन0ए0 फिंगरप्रिंटिंग द्वारा घटनाओं से सुलझाने की दिशा में कार्य किया गया व न्यायालय ने इसे मान्यता दी है जैसे (स्टेट ऑफ एरिजोना वर्सेज बोगान) एक युवा महिला की हत्या कर शव को रेगिस्तान में दफना दिया गया। घटनास्थल पर एक पेजर पाया गया जिसके मालिक को संदिग्ध माना गया। परन्तु उसके बताया कि उसने उस महिला को कुछ देर के लिए अपनी गाड़ी में लिफ्ट दी थी व उसने उस व्यक्ति का पेजर व वालेट चुरा लिया था। इस घटना की जांचकर्ता टीम के एक सदस्य चार्ल्स वारटन ने घटना स्थल पर एक *पारकिनसोनिया माइ ोफिला* का वृक्ष देखा जिसका तना छिला हुआ था। जो कि संभवतः किसी वाहन के टकराने से हुआ था। उन्होंने उस वृक्ष में लगी फली को तोड़ लिया और बोगान की ट्रक कर निरीक्षण किया, उसके ट्रक में भी उसी प्रकार की फली व फूल पाये गये, उन्होंने एरिजोना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर टिम हेलन टेजारिस से दोनों फलियों का डी0एन0ए0 परीक्षण करवाया, जो कि एक समान निकला। अतः बोगान को अपराधी माना गया।

इस घटना से उत्साहित होकर आस्ट्रेलिया के केनबरा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के पादप डी0एन0ए0 शोध द्वारा घासों के डी0एन0ए0 का एक प्रोटोटाइप तंत्र विकसित किया है जिसे आणविक वर्गीकरण कुंजी कहा गया है (वार्ड एवं अन्य, 2005)। पृथ्वी पर घास, हर ओर मिलती है अतः किसी भी अपराधिक घटना में मौजूद घास का आणविक साक्ष्य एक महत्वपूर्ण सूत्र होगा।

निष्कर्ष

इन तथ्यों के महत्व को देखते हुए आवश्यकता है कि किसी भी अपराध स्थल पर उपलब्ध छोटे से छोटे वानस्पतिक साक्ष्य की अनदेखी न की जाए। उसके संग्रह एवं संरक्षण की और उन्नत विधियाँ विकसित की जाएं तथा अधिक से अधिक वनस्पति वैज्ञानिकों को प्रशिक्षित किया जाए व विधि विज्ञान प्रयोगशालाओं में इनकी संख्या को बढ़ाया जाए।

संदर्भ

1. ग्राहम,एस0(1997) एनाटमी ऑफ दि लिंडबर्ग किडनैपिंग, जर्नल ऑफ फोरेंसिक साइन्स, खण्ड 42, मु0 पृ0 368–377।
2. द गार्जियन(27 जुलाई 2004) जेल फार टोरसो केस पीपुल स्मगलर, यूनाइटेड किंगडम।
3. बोक, जे0 एच0; लाने, एम0 ए0 एवं नोरिस, डी0 ओ0(1988) आइडेंटीफाइड प्लान्ट फूड सेल्स इन गैस्ट्रिक कन्टेंट फार यूज इन फोरेंसिक इन्वेस्टीगेशन, अ लैबोरटरी मैनुअल, यू.एस.डिपार्टमेन्ट आफ जस्टिस, नेशनल इन्स्टीटयूट आफ जस्टिस रिसर्च रिपोर्ट।
4. मिडनहॉल, डी0(1998) इट टैक्स जस्ट अ फ्यू स्पेक्स आफ डस्ट एण्ड यू आर कॉट, कनैडियन एसोसियेशन आफ प्लैनोलोस्टिस न्यूज लेटर, खण्ड 21, मु0 पृ0 18–21।
5. वार्ड, जे0 आर0; पीवाल, एस0 आर0 गिलमोर एवं राबर्टसन, जे0(2005) अ मोलिक्यूलर आइडेन्टिफिकेशन सिस्टम फार ग्रासेस, अ नोवल टेक्नोलॉजी फार फोरेंसिक बांटनी, फोरेसिंग साइनस इण्टरनेशनल, खण्ड 152, मु0 पृ0 121–131।

एम0 कॉमर्स – भारत में अवसर एवं चुनौतियाँ

प्रीति पन्त
प्रवक्ता, वाणिज्य संकाय
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
preeteepant@gmail.com

सार

तकनीकी विकास के इस युग में मोबाइल कामर्स(एम0 कामर्स) उत्तरोत्तर वृद्धि के पथ पर अग्रसर है। इस नवीनीकरण को दिन प्रतिदिन समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है। इसका प्रभाव न केवल किसी देश की तकनीकी पर वरन् वहाँ के सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवहारों पर भी पड़ रहा है। एम0 कामर्स की बढ़ती हुई लोकप्रियता का आभास मोबाइल बैंकिंग, मोबाइल मार्केटिंग एंव मोबाइल इन्टरटेनमेन्ट के बढ़ते हुए प्रयोगों के माध्यम से आसानी से लगाया जा सकता है। भारत जैसे देश में एम0 कॉमर्स और भी महत्व रखता है, जहाँ कि लगभग 71 प्रतिशत जनसंख्या मोबाइल फोन का प्रयोग करती है। प्रस्तुत आलेख भारत में एम0 कामर्स के अवसरों एवं चुनौतियों पर प्रकाश डालने के साथ–साथ इसे और भी सफल एंव प्रभावी बनाने के लिए सुझाव भी देता है।

बीज शब्दः एम0 कामर्स, मोबाइल बैंकिंग, ई0 कामर्स, मोबाइल एप्लिकेशंस।

M-Commerce: Opportunities and Challenges in India

Preeti Pant
Lecturer, Department of Commerce,
B.S.N.V.P.G. College, Lucknow(U.P.)-226001, India
preeteepant@gmail.com

Abstract

In this era of technology Mobile Commerce (M-Commerce) is giving momentum. It is being accepted by various sectors of society. It is not only effecting a country's technology but also effecting its social and cultural behaviour. The fame of m-commerce could be easily traced by the increasing uses of mobile banking, mobile marketing, and mobile entertainment. It is more important in a country like India where approx 71% population is widely using the mobile phone. Present article not only discuses the opportunities and challenges of m-commerce in India but also gives some recommendations to make in successful and effective.

Key words: M- commerce, Mobile Banking, E-commerce, Mobile applications.

प्रस्तावना

आज का युग तकनीकी विकास का युग है। वैश्वीकरण के माध्यम से देशों के बीच न केवल विनियोगों का अपितु तकनीकी का भी आदान प्रदान किया जा रहा है। इन्टरनेट तकनीकी नवीनीकरण के क्षेत्र में बहुआयामी भूमिका निभा रहा है। इन्टरनेट को और अधिक अत्याधुनिक बनाने के लिए अब ई0 कामर्स के पश्चात् एम0 कामर्स का प्रादुर्भाव हुआ है। एम0 कामर्स का शाब्दिक अर्थ तारारहित तकनीकी के माध्यम से ई0 कामर्स (इलेक्ट्रानिक कामर्स) के समस्त प्रयोगों को उपभोक्ताओं के हाथों में सुगम एवं प्रत्यक्ष रूप से पहुँचाना है। एम0 कामर्स शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1997 में किया गया था। वास्तव में एम0 कामर्स, ई0 कामर्स का ही एक रूप है, जिसमें ई0 कामर्स के समस्त लेन–देन मोबाइल फोन, पर्सनल डिजिट एसिसटेन्ट (पी0डी0ए0), स्मार्टफोन एंव अन्य तारारहित तकनीकियों का प्रयोग करके किया जाता है। नवीन तारारहित तकनीकियों में लैपटाप, टैबलेट एंव इयरपीस व स्मार्टफोन (मोबाइल फोन एवं पी0डी0ए0 तकनीकी से युक्त) बहुत लोकप्रिय हैं।

एम0 कामर्स के बढ़ते प्रयोग

इन्टरनेट के प्रति बढ़ती जागरूकता ई0 कामर्स के बढ़ते प्रयोग एंव तारारहित तकनीकियों एंव उपकरणों में विकास के कारण आज एम0 कॉमर्स न केवल व्यक्तिगत क्षेत्र में अपितु व्यवसायिक क्षेत्र में भी सफलतम रूप से प्रयोग किया जा रहा है। आज के समय में व्यवसायिक संगठनो में एम0 कामर्स, वित्त, सेवा रिटेल, दूरसंचार एंव इनफारमेशन टैक्नोलॉजी में अपनी सशक्त भूमिका निभा रहा है। एम0 कामर्स की बढ़ती हुई लोकप्रियता एवं लोगों में एम0 कामर्स के प्रति बढ़ते रूझान को देखते हुए ही आजकल कई मोबाइल निर्माता कम्पनियाँ स्मार्ट फोन का अधिकाधिक निर्माण कर रही हैं और अधिक से अधिक तारारहित इन्टरनेट एवं वेब सुविधाएं भी उपलब्ध करा रही हैं। इन कम्पनियों में ब्लैकबेरी, सैमसंग, एच0टी0सी0, एप्पैल जैसी लोकप्रिय कम्पनियाँ शामिल हैं। अनेक भारतीय बैंक भी इस दिशा में अपने ग्राहकों को मोबाइल बैंकिंग की सुविधा प्रदान कर रहे हैं जैसे आई0सी0आई0सी0आई0 बैंक, ए0बी0एन0 ऐमरो इत्यादि। अब उपभोक्ता ए0टी0एम0 एंव क्रेडिट कार्ड के स्थान पर मोबाइल एवं अन्य तारारहित उपकरणों का प्रयोग भुगतान माध्यम के रूप में कर रहे हैं।

एम0 कामर्स का प्रयोग उपभोक्ता अनेक माध्यमों के लिए कर रहे हैं, जिनमें मोबाइल फाइनेन्सियल एप्लीकेशन, मोबाइल बैंकिंग, मुद्रा हस्तान्तरण, मोबाइल भुगतान, मोबाइल विज्ञापन, मोबाइल शॉपिंग, मोबाइल द्वारा नीलामी, मोबाइल इन्टरटेनमेन्ट एंव मोबाइल द्वारा दूरस्थ शिक्षा प्रमुख हैं। मोबाइल कॉमर्स की लोकप्रियता का प्रमुख कारण तारारहित उपकरणों का ग्राहकों के पास सहज एवं सुगम रूप से होना है। एम0 कामर्स की सफलता के कुछ विशेष एवं रूचिकर तथ्य इस प्रकार हैं–

- एक सर्वेक्षण के अनुसार 18 जुलाई 2013 तक 90 प्रतिशत वैश्विक मोबाइल फोन विक्रय, एन्ड्रॉइड एंव स्मार्टफोन के क्षेत्र में रहा है।
- वालमार्ट के अनुसार उनके इन्टरनेट शॉपिंग साइट में दिसम्बर 2012 में लगभग 40 प्रतिशत विजिट, मोबाइल के माध्यम से था।
- बी0आई0 इन्टैलीजेन्स के अनुसार जनवरी 2013 में 29 प्रतिशत मोबाइल फोन उपभोक्ताओं ने अपने फोन का प्रयोग ऑनलाइन शॉपिंग के लिये किया था।
- मोबाइल बाजार के तथ्यों पर शोध करने वाली संस्था जूनियर रिसर्च की रिपोर्ट के अनुसार एम0 कॉमर्स के लेन–देनों का मूल्य 2017 में 3.2 ट्रिलियन डॉलर होने की उम्मीद है जबकि यह मूल्य सन् 2013 में 1.5 ट्रिलियन डॉलर आंका गया है।
- बैंक ऑफ अमेरिका के अनुसार सन् 2015 में मोबाइल फोन के माध्यम से यूरोप एवं अमेरिका में 67.1 बिलियन डॉलर का क्रय होने का अनुमान है।

भारत एवं एम0 कॉमर्स

इन्टरनेट क्रान्ति के पश्चात् अब भारत में एम0 कॉमर्स के लिये आधारशिला का निर्माण हो रहा हैं। भारत में मोबाइल फोन का प्रयोग बढ़ने के साथ–साथ मोबाइल फोन के माध्यम से ई0 कॉमर्स का प्रयोग भी बढ़ रहा हैं। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि भारत 86.78 करोड मोबाइल फोन उपभोक्ताओं के साथ विश्व में मोबाइल फोन प्रयोग की दृष्टि से द्वितीय स्थान पर है। यह मोबाइल फोन उपभोक्ताओं की संख्या भारत की कुल आबादी का लगभग 71 प्रतिशत है। भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग युवा वर्ग से है जो कि न केवल मोबाइल फोन का प्रयोग करती हैं वरन् उसकी नयी–नयी तकनीकियों एवं एप्लीकेशन्स को लेकर जागरूक एवं उत्सुक भी है। मोबाइल फोन निर्माता कम्पनियाँ युवा वर्ग में एम0 कॉमर्स के बढ़ते हुए अवसरों का आसानी से लाभ कमा सकती हैं। भारतीय समय के साथ–साथ जीवन शैली की भी नयी ऊँचाइयों को छू रहे हैं जिसमें मोबाइल फोन के माध्यम से ई–कॉमर्स दोनों ही समय, सुविधा एवं पहुँच तीनों की दृष्टि से ही उपयुक्त एवं सुगम है। मोबाइल के अतिरिक्त लैपटॉप एवं टैबलेट इत्यादि का भी इस दिशा में प्रयोग किया जा रहा है। बॉस्टन कन्सलटेन्सी ग्रुप की रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 45 प्रतिशत इन्टरनेट उपभोक्ता, इन्टरनेट चलाने हेतु मोबाइल फोन का प्रयोग करते हैं और आने वाले तीन सालों में इसके 60 प्रतिशत होने की सम्भावना है।

एम0 कॉमर्स के लिए भारत में इतनी सारी सम्भावनायें होने के बावजूद अनेक चुनौतियाँ भी एम0 कॉमर्स की सफलता में बाधक हैं। सबसे बड़ी चुनौती एम0 कॉमर्स के लिए उचित एवं सक्षम ईको–सिस्टम की स्थापना करना है। इसके अतिरिक्त भारत का 3–जी एवं 2–जी नेटवर्क सिस्टम भी दिशा में बड़ा बाधक हैं। भारतीय उपभोक्ताओं का इस नयी तकनीकी के प्रति दृष्टिकोण भी एक चुनौती है। भारतीय मोबाइल उपभोक्ताओं में अभी भी सिक्यूरिटी एप्लिकेशन को लेकर पूर्ण जानकारी नहीं है। उपभोक्ता साइबर अपराध, छल–कपट, वायरस इत्यादि के कारण भी इन एप्लिकेशंस का प्रयोग नहीं करते हैं। उपभोक्ता अपनी व्यक्तिगत सूचनाओं को भी सांझा करने से डरते हैं। साइबर अपराध एवं वायरस का जोखिम मोबाइल के माध्यम से प्रयोग करने में कहीं अधिक बढ़ जाता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार से एम0 कामर्स के लिए भारतीय बाजार में अवसर एवं चुनौतियाँ दोनों ही हैं परन्तु भारतीय बाजार में इस नवीन तकनीकी को सफलता के सोपानों को छूने के लिए उचित एवं उपयुक्त ईको सिस्टम की आवश्यकता है।

इस दिशा में कुछ सुझाव इस प्रकार हैं–

- बैंक, नेशनल पेमेन्ट कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया एवं अन्य इकाईयों का एम0 कामर्स के लिए सामूहिक प्रयास आवश्यक है।
- आर0बी0आई0 को एम0 कामर्स के क्षेत्र में मुद्रा के प्रसार को नियन्त्रित करने के लिए एवं छल–कपट को रोकने के लिए आवश्यक एंव प्रभावी दिशा–निर्देश बनाने चाहिए, इसके अतिरिक्त ट्राई को भी टेलीकॉम नेटवर्क के सम्बन्ध में प्रभावी नियम बनाने चाहिए।
- सिक्योरिटी एप्लिकेशंस को सुरक्षित बनाने हेतु शोध होने चाहिए और सिक्योरिटी लैबों का भी निर्माण होना चाहिए।
- नेटवर्किंग में भी सुधार होना चाहिए।
- लोगों को इस तकनीक के विषय में जागरूक करने के लिए जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए।
- सरकार को एम0 कामर्स के विषय पर तथ्य एकत्रित करने हेतु एक अलग सेल का निर्माण करना चाहिए और समय–समय पर इन तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी कराना चाहिए ताकि इसकी सफलता का अंकन भी किया जा सके।
- इसके अतिरिक्त उपभोक्ताओं के लिए अत्याधुनिक एन्टी वायरस सॉफ्टवेयर व अन्य उच्चीकृत सॉफ्टवेयर्स् से सम्पन्न तारहित उपकरणों का निर्माण किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. ग्रेवाल, सीमा (2012), "एम0 कामर्स एण्ड इट्स ग्रोथ : एन एनालिसिस",
2. "मोबाइल कामर्स : आपोरच्यूनिटीस एण्ड चैलेन्जस्" (2008) ए0जी0एस0आई0 मोबाइल कॉन व्हाइट पेपर,
3. श्रीधर अय्यर, "एम0 कामर्स : मोबाइल एप्लिकेषनस्",
4. मोबाइल कामर्स, विकीपीडिया

शरीर रचना विभाग में देहदान की प्रासंगिकता: एक समीक्षा

अर्चना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर, शरीर रचना विभाग
किंग जॉर्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ(उ0 प्र0)–226003, भारत
archana71gupta@yahoo.co.in

सार

चिकित्सा अनुसंधान और शिक्षा के लिये मरणोपरान्त शरीर का दान महादान माना गया है। दान में मिले हुए शव ही चिकित्सा शिक्षकों विशेष रूप से एनाटॉमिस्ट के लिए शिक्षा का प्रमुख माध्यम है। शारीरिक विच्छेदन के बिना एनाटॉमी का सम्पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं है। एनाटॉमी एक्ट में भी अस्पतालों और शिक्षण संस्थाओं को लावारिस शव की आपूर्ति का प्रावधान है। इस अनुच्छेद में, शरीर दान का महत्व, उसकी उपयोगिता और विभिन्न कारकों जैसे धर्म, संस्कृति, आयु आदि पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द : एनाटॉमी, एनाटॉमी एक्ट, चिकित्सा, शरीर–दान, शिक्षा।

Relevance of body donation in Anatomy: a review article

Archana Rani
Associate Professor, Department of Anatomy
King George Medical University, Lucknow(U.P.)-226003, India
archana71gupta@yahoo.co.in

Abstract

Body donation is a greatest noble deed given for medical research and education after death. Donated bodies remain a principal teaching tool for medical teachers especially anatomists. The perfect knowledge of anatomy cannot be completed without body-dissection. The Anatomy Act also has provision to provide unclaimed bodies to hospitals and teaching institutions. In this article, the importance of body donation, its suitability and various factors like religion, culture, age etc. is discussed.

Key words: Anatomy, Anatomy Act, medical, body-donation, education.

भूमिका

एनाटॉमी(शरीर रचना विज्ञान), चिकित्सा शिक्षा में पढ़ने वाला सबसे पहला, बुनियादी और महत्वपूर्ण विषय है। यह विषय मूलरूप से मानव शव के विच्छेदन पर आधारित है। एक सफल चिकित्सक बनने के लिए, एनाटॉमी का अच्छा ज्ञान आवश्यक है जो मानव शव के विच्छेदन से ही प्राप्त हो सकता है। देश में बढ़ते हुए चिकित्सा संस्थाओं के खुलने से, शरीर विच्छेदन के लिये शवों की माँग बढ़ गयी है। शवों की आपूर्ति आजकल 'देहदान–अभियान' के माध्यम से पूरी हो रही है। मरणोपरान्त अपने शरीर को चिकित्सा शिक्षा एवं अनुसंधान के लिए देने को देह–दान कहते हैं। इस प्रकार मनुष्य मेडिकल छात्रों को शिक्षा के क्षेत्र में निपुण बनाने का एक अच्छा कदम बढ़ाता है जिससे आने वाली पीढ़ी और समाज का कल्याण हो सके।

चिकित्सा संस्थाओं में प्रथम वर्ष के छात्रों को एनाटॉमी की शिक्षा रासायनिक द्रवों द्वारा संरक्षित किए गए शवों पर दी जाती है। इससे छात्र शरीर के विभिन्न अंगों को अपनी आँखों से देखने के साथ ही छूकर और पकड़कर भी उसकी जानकारी ले सकता है। यह सर्वविदित है कि देखे और सुने हुए तथ्य हमें ज्यादा दिनों तक याद रहते हैं। अतः एनाटॉमी विषय याद रखने के लिए शव–विच्छेदन आवश्यक है। इसका दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

देहदान और एनाटॉमी एक्ट

भारत के विभिन्न प्रदेशों में एनाटॉमी एक्ट का प्रयोजन चिकित्सा संस्थाओं को शव–विच्छेदन के लिये लावारिस शवों की आपूर्ति करना है, जिससे शिक्षा और अनुसंधान में मदद मिल सके। इन संस्थाओं में उपयोग होने वाले शव, अधिकतर पुलिस

को मिले हुए लावारिस शव होते हैं। कुछ शव, शिक्षा के लिए मृतक की इच्छा के अनुसार परिवार द्वारा दान की हुई होती हैं। पटनायक(2002) के अनुसार एनाटॉमी एक्ट, एक प्रादेशिक एक्ट है। यह एक्ट, चिकित्सा शिक्षा में शवों के इस्तेमाल का नियंत्रण करता है। कोई भी अपने शरीर का दान कर सकता है। स्वास्थ्य, रोग या उम्र शरीर दान में बाधक नहीं है, पर कौन सा अंग उपयोग में लाना है, इस पर निर्भर करता है। सभी दान देने वालों की एच0आई0वी/एड्स, हिपेटाइटिस बी0 और सी0, टी0 बी0 आदि के लिए जाँच की जाती है। इनमें से जो किसी बीमारी से पीड़ित हैं, उनका दान निरस्त कर दिया जाता है।

बढ़ती हुई शिक्षा और अनुसंधान को देखते हुए, देहदान का महत्व बहुत बढ़ गया है। आजकल, बहुत से लोगों ने इस बात को समझा है और अपने शरीर को मृत्युपरांत दान के लिए पंजीकृत करवाने के लिए आतुर हैं।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में एनाटॉमी एक्ट

भारत में एनाटॉमी एक्ट सन् 1949 में सभी प्रदेशों में एक साथ लागू हुआ। इस एक्ट के अन्तर्गत शवों का शिक्षा के लिए तभी उपयोग किया जाए, जब मृत्यु, जिला अस्पताल या सार्वजनिक स्थल पर हुई हो और पुलिस के अनुसार 48 घंटे तक उसका कोई रिश्तेदार न मिला हो(सुब्रमण्यम, 1999)। पंजाब एनाटॉमी एक्ट, 1963; मैसूर एनाटॉमी एक्ट, 1957 तथा कनार्टक एनाटॉमी एक्ट 1998 आदि थोड़ी विभिन्नता के साथ अपने क्षेत्र में कार्य कर रही हैं।

नियमानुसार, चिकित्सा संस्थाओं को शव को किसी भी कारण से न लेने का अधिकार प्राप्त है।

देहदान का महत्व

देहदान से छात्रों एवं शोधकर्ताओं को मानव शरीर के अध्ययन करने का सुअवसर मिलता है। किताबें एवं कम्प्यूटर द्वारा अर्जित ज्ञान, शव–विच्छेदन द्वारा प्राप्त ज्ञान का स्थान नहीं ले सकते हैं। इसका स्थान उन सबसे ऊपर है। मानव शरीर के शव का शिक्षा में उपयोग सदियों से चला आ रहा है।

विभिन्न कारकों का देहदान पर प्रभाव

उम्र, धर्म, संस्कृति, मृत्यु के प्रति विचारधारा और मानवता के प्रति जागरूकता देह–दान को प्रभावित करने वाले कारक हैं(गोल्वेट आदि, 2000)।

सभी धर्मों में शरीर एवं अंग–दान को एक परोपकार बताया गया है। अधिकतर लोगों का यह मानना है कि यह एक व्यक्तिगत निर्णय है। धार्मिक रूढ़िवादी विचारधाराएँ भी लोगों का पथभ्रष्ट करती हैं। कुछ लोगों का मानना है कि देहदान उनकी धार्मिक आस्था के विरूद्ध है। इस कारण से वह अपनी सहमति देने में हिचकिचाते हैं।

जनमाध्यम की भूमिका

ज्ञान की कमी, धार्मिक आस्था, अविश्वास और अपूर्ण जानकारी देहदान में बाधक है(केनटारोविच, 2005)। कोनेसा आदि (2004) ने टेलीविजन, प्रेस, रेडियो, पोस्टर, पत्रिका, जनसभाओं आदि स्रोतों की भूमिका का देहदान पर अध्ययन किया। इसमें सर्वोपरि भूमिका टेलीविजन की पायी गयी है।

निष्कर्ष

सभी को अपनी स्वेच्छा से शरीर–दान को व्यवहार में लाना चाहिए। शरीर दान का व्यक्तिगत निर्णय चिकित्सा शिक्षा की अच्छी समझ और प्रगति में सहायक है। स्वैच्छिक देहदान प्रेरित करने के लिए सरकार को उचित कदम उठाने चाहिए और लोगों को इसकी जानकारी देनी चाहिए, जिससे कि चिकित्सा संस्थाओं में मानव शवों की कमी न होने पाए।

संदर्भ

1. केनटारोविच, एफ0(2005) पब्लिक ओपिनियन और ऑर्गन डोनेशन सजेशन्स फॉर ओवरकमिंग बैरियर्स। एन ट्रांसप्लांट, खण्ड 10, अंक 1, मु0 पृ0 22–25।
2. कोनेसा सी0; रिओस जैमबूडियो ए0; रामीरेज़ पी0; केनटेरास एम0; रोडरीग्यूज़ एम0 एम0 तथा पारिला पी0 (2004) इन्फलूयन्स ऑफ डिफरेन्ट सोर्सेज़ ऑफ इन्फॉरमेशन ऑन एटीट्यूड, टुवर्ड ऑर्गन डोनेशनः ए फैक्टर एनालिसिस। ट्रान्सप्लान्ट प्रॉक:, खण्ड 36, अंक 5, मु0 पृ0 1245–1248।
3. गोलचेट जी0; कार जे0 तथा हैरिस एम0 जी0(2000) व्हाय वी डोन्ट हैव इनफ कॉर्निया डोनर्स? ए लिटरेचर रिव्यू एण्ड सर्वे। ऑप्टोमेट्री, खण्ड 71, अंक 5, मु0 पृ0 318–328।

4. पटनायक वी0 वी0 जी0(2002) एडिटोरियल, जर्नल ऑफ एनाटॉमिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया, खण्ड 50, अंक 2, मु0 पृ0 143–144।
5. सुब्रमण्यम बी0 वी0(1999) लॉ इन रिलेशन टू मेडिकल मेन। इन मोदी मेडिकल जूरिसप्रूडेन्स एण्ड टॉक्सिकोलॉजी। 22वां एडिशन; बटरवर्थस, नई दिल्ली, मु0 पृ0 724–727।

ब्रायोफाइट्स–प्रदूषण के जीव सूचक के रूप में

उदय शंकर अवस्थी
वनस्पति विज्ञान विभाग
बी० एस० एन० वी० पी० जी० कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ० प्र०)–226001, भारत

सार

ब्रायोफाइट्स में वातावरण में व्याप्त प्रदूषण के प्रति अधिक संवेदनशीलता होती है जिस कारण उन्हें प्रदूषण के जीव सूचक के रूप में देखा जाता है और इसी कारण से वातावरण में उपस्थित प्रदूषण के अध्ययन में सहायक होते हैं।

Bryophytes-as bioindicators of pollution

Udai Shanker Awasthi
Department of Botany
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow(U.P.)-226001, India

Abstract

Bryophytes are very sensitive to environmental pollution and therefore known as bioindicator of pollution and due to this quality, they are helpful in the study of environmental pollution.

पर्यावरण प्रदूषण–पर्यावरण की अशुद्धि या पर्यावरण की शुद्धता में गिरावट को ही पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। पोल्यूटेन्ट्स या प्रदूषण फैलाने वाले कण–जो एक निश्चित मात्रा में उपस्थित हो कर अनचाहा प्रभाव पैदा करते हैं। उदाहरण के लिये –कार्बन मोनो आक्साइड, सल्फर डाइ आक्साइड, धूल, सीमेन्ट, स्मोक, धातुओं के ऑक्साइड इत्यादि। शहरीकरण तथा औद्यौगीकरण मुख्य रूप से प्रदूषण के कारण है।

प्रदूषकों द्वारा ब्रायोफाइट्स पर होने वाले कुप्रभाव–

क– पोल्यूटेन्टस, ब्रायोफाइट्स के लैंगिक प्रजनन को घटाते हैं(डे स्लूवर और ले ब्लैंक, 1970)।
ख– पौधों की वृद्धि तथा उनमें होने वाली प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को घटाते या कम करते हैं, परिणामतः उनकी मृत्यु हो जाती है।

घटक, जो क्षति की तीव्रता को प्रभावित करते हैं–

- प्रदूषण के उद्गम स्थल से दूरी,
- "एक्सपोजर फैक्टर" (सघनता x समय),
- जीव सतह की प्रकृति,
- आवास,
- पी एच,
- "प्रेसीपिटेशन",
- विकास की अवस्था,
- जाति या "स्पीसीज" की "लाइफ फार्म"।

ब्रायोफाइट्स और शैक में यह विशेषता है कि यह अन्य पौधों की अपेक्षा प्रदूषण के कणों को अधिक जल्दी और ज्यादा मात्रा में अवशोषित कर लेते हैं परिणामतः वह एक अच्छे जीव सूचक का कार्य करते हैं। जब प्रदूषण का स्तर बहुत कम होता है और अन्य पौधे उसे मापने में असमर्थ होते हैं तब यह उसकी उपस्थिति बता देते हैं।

इनकी इस विशेषता(जीव सूचक के रूप में) को काफी पहले जांचा परखा जा चुका है(ताओदा 1973, ले ब्लैंक और रॉव 1975, चोपड़ा और कुमार 1988 कुमार और सिन्हा 1989, पांडे तथा अन्य 2001)। यह पौधे स्वतंत्र रूप से या शैक के साथ में वातावरण की शुद्धता को मापने की सूची के लिये उपयोगी साबित होते हैं। यह निर्भर करता है किसी "स्पीसीज" की संख्या, "फ्रीक्वेन्सी कवरेज", तथा प्रतिरोध

घटक पर और एक साफ तस्वीर देता है, प्रदूषण से लम्बे अवधि में होने वाले प्रभाव के सम्बंध में किसी विशेष क्षेत्र का अध्ययन किया जाता है (डे स्लूवर) और ले ब्लैंक 1970, ले ब्लैंक तथा अन्य 1974, रॉव 1982।

दर असल दो तरह के ब्रायोफाइट्स पाये जाते हैं– प्रथम, जो प्रदूषण के प्रति बहुत संवेदन शील होते हैं और उनमे शीघ्र ही क्षति के लक्षण जो बहुत कम मात्रा मे "पोल्यूटेन्ट्स" की उपस्थिति से ही दिखाई देने लगते हैं । और इस प्रकार प्रदूषण की मात्रा को मापने में वे अच्छे जीव सूचक साबित होते हैं। द्वितीय, जो उसी क्षेत्र में उगने वाले अन्य पौधों की अपेक्षा अधिक मात्रा में "पोल्यूटेन्ट्स" को अवशोषित करने तथा एकत्रित रखने की क्षमता रखते हैं। ब्रायोफाइट्स "पोल्यूटैन्ट्स" को अवशोषित करने के साथ अलग–अलग समय अवधि के लिये। वातावरण मे पुनः आने से रोकते हैं ऐसे ब्रायोफाइट्स के विश्लेषण से वातावरण में उपस्थित धातुई प्रदूषण का अध्ययन किया जा सकता है। ब्रायोफाइटस की एक और विशेषता यह भी है कि ये सुखा कर "हरबेरियम स्पेसिमेन" की तरह रखे जा सकते हैं और ये गुनगुने जल में डालने पर पुनः वास्तविक रूप में आ जाते हैं। इस तरह एक लम्बे समय अन्तराल में किसी भी क्षेत्र में प्रदूषण के स्तर में हुये बदलाव को इन "हरबेरियम स्पेसिमेन" की मदद से जांचा परखा जा सकता है।

संदर्भ

कुमार, ए0 और सिन्हा, ए0 के0(1989) ब्रायोफाइट्स और जल प्रदूषण, ज्ञानोदय प्रकाशन , नैनीताल।

चोपड़ा, आर0 एन0 तथा कुमार, पी0 के0(1988) बायोलॉजी ऑफ ब्रायोफाइट्स, न्यू ऐज इण्टरनेशनल प्रा0 लिमिटेड पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 1–350।

डे स्लूवर जे. और ले ब्लैंक एफ (1970) बुल0 एकैड0 सोसा0 लोरियनस साइ0 9 (82)।

ताओदा, एच0(1973) हिकोबिया 6, पृ0 224।

पाण्डे, डी0 सी0; कुमार, ए0 और सिन्हा, ए0 के0(2001) ब्रायोफाइट्स गंगा नदी के किनारे से– "हेवी मेटल्स" की सघनता पर एक अध्ययन, "परस्पेक्टिव इन इंडियन ब्रायोलॉजी" बी0 एस0 एम0 पी0 एस0, देहरादून।

रॉव, डी0 एन0(1982) "रिसपॉनसेज आफ ब्रायोफाइट्स टू एयर पोल्यूशन" ए0 जे0 ई0 स्मिथ द्वारा सम्पादित, ब्रायोफाइट्स इकोलॉजी, चैपमैन और हाल, लन्दन और न्यूयार्क, पृ0 445–471।

ले ब्लैंक एफ0; रोबिटैले जी0 और रॉव डी0 एन0(1974) जे0 हटोरी बॉट0 लैब नं0 38, 405।

ले ब्लैंक एफ0 और रॉव डी0 एन0(1975) "एफेक्ट ऑफ एयर पोल्यूशन ऑन लाइकेन एन्ड ब्रायोफाइट्स" में जे0 वी0 मड और टी0 टी0 कोजलोवस्की द्वारा सम्पादित "रिसपानसेज ऑफ प्लांट टू एयर पोल्यूशन" एकेडेमिक प्रेस, न्यूयार्क, पृ0 237–272।

शून्य गणित – एक तकनीकी विवेचना

रमा जैन
एसोसिएट प्राफसर, गणित विभाग
महिला विद्यालय पी0 जी0 कॉलेज
अमीनाबाद, लखनऊ(उ0 प्र0)–226018, भारत
ramajain26@yahoo.com

सार

ईस्वी सन् के आरम्भ के लगभग, भारतवर्ष में शून्य का आविष्कार किया गया था। जिससे कि अंकों को दस के आधार पर लिखने में सुविधा हो। गणित के इतिहास में भारतीय अंकों के अपरिहार्य अंश के रूप में भारतीय शून्य का पश्चिमी देशों की तरफ विस्तार हुआ। वस्तुत: भारतीय शून्य एक बहुआयामी गणितीय विधा है जो कि एक प्रतीक, एक अंक, एक परिमाण, एक दिशा विभाजक और एक स्थिति परक, सभी एक पूर्ण रूप से स्थापित "दाशमिक अंक पद्धति" में क्रियाशील हैं एवं अंकगणित के साथ–साथ बीजगणित, में भी प्रयुक्त हैं। इसके अनंत व अनिर्णीत स्वरूप भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

बीज शब्द: इतिहास, आविष्कार, अंकगणित, बीजगणित, परमाल्प राशि, अनंत एवं अनिर्णीत स्वरूप।

Mathematics of zero-a technical analysis

Rama Jain
Associate Professor, Department of Mathematics
Mahila Vidyalaya P.G. College
Aminabad, Lucknow(U.P.)-226018, India
ramajain26@yahoo.com

Abstract

Zero was invented in India at the beginning of A.D.'s so that it becomes easier to write a number at the base of ten. Indian zero was disseminated towards western countries as an unavoidable part of Indian numbers in the history of Mathematics. However, Indian zero is a multi-faceted mathematical object, a symbol, a magnitude, a number, a direction separator and a place holder, all in one operating within a fully established "Decimal number system", and is useful in Arithmetic as well as in Algebra. Its infinity and indefinite forms are also equally important.

Key words: History, invention, Arithmetic, Algebra, limiting number, infinity and indefinite form.

प्रस्तावना

विश्व के विभिन्न स्थानों पर स्वतंत्र रूप से अलग–अलग तरह के गणना चिन्हों(अंकों) व गणना पद्धतियों का विकास हुआ, जिसमें भारतीय, रोमन, मिश्र व क्रीट द्वीप के जनजातियों की गणना पद्धतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है, पर इन सभी में भारतीय गणना पद्धति सबसे सरल, व्यावहारिक व सटीक थी, जिस कारण उसने अन्य सभी को प्रचलन से बाहर करके सारे विश्व में अपना एक छत्र आधिपत्य स्थापित किया।

भारतीय गणना पद्धति को "दाशमिक गणना पद्धति" भी कहा जाता है। इस गणना पद्धति का आधार दस ही है। प्रश्न यह है कि विश्व के अलग–अलग हिस्सें में स्वतंत्र रूप से विकसित गणना पद्धतियों का आधार दस के स्थान पर बारह क्यों नहीं लिया गया? वैज्ञानिक आधार से बारह अधिक उपयुक्त होना चाहिए क्योंकि यह आधे, तिहाई और चौथाई हिस्से तक पूर्णांकों में विभक्त हो जाता है। इस पर नृतत्व शास्त्री का कथन है कि चूँकि गणना के प्रारम्भिक समय के लोग अपनी हाथों की अंगुलियों का इस्तेमाल किया करते थे जो कि संख्या में दस होती हैं। इसी से विश्व की अधिकांश गणना पद्धतियों में दस अंकों का आधार विकसित हुआ।

शून्य का आविष्कार

भारतीय गणना पद्धति में "शून्य" वह अनुपम गणना चिन्ह(अंक) है जो इसे विश्व के अन्य किसी भी गणना चिन्ह पद्धति से अधिक सरल, श्रेष्ठ व सुव्यवस्थित सिद्धांत बनाता है। परन्तु शून्य कैसे प्रचलन में आया, इस पर मतैक्य नहीं है। चूँकि भारतीय गणना पद्धति के अनुसार, शून्य का मान "कुछ नहीं" और "अनंत" दोनों होता है और भारतीय दार्शनिक मान्यता है कि अनंत हमेशा जहाँ कुछ न हो अर्थात् शून्य से प्रकट होता है। इस लिए बहुत सम्भव है कि गणित में शून्य की अवधारणा दर्शन से आई हो। शून्य को शुरू से डॉट(.) के रूप में या फिर गोलाकार रूप में लिखा जाता है। वह इसलिए, क्योंकि गोलाकार का मतलब "घूम–फिर के वही" होता है यानि की कुछ नहीं। यह रूप संस्कृत से निकला है क्योंकि संस्कृत में भी शून्य का मतलब कुछ नहीं होता है।

इतिहासकार मानते हैं कि सन् 458 ए0 डी0 से शून्य अस्तित्व में आया परन्तु इस पर काफी मतभेद है। शून्य के बारे में सबसे पहले गणितज्ञ "ब्रह्मगुप्त"(598–600 ए0 डी0), जिनका जन्म मुल्तान(पाकिस्तान) में हुआ था, ने अपनी पुस्तक "ब्रह्मगुप्त–सिद्धांत" में दिया जिसको बाद में भारतीय गणितज्ञ "भास्कर"(1114–1185 ए0 डी0) ने थोड़ा संशोधित करते हुए अपनी पुस्तक "लीलावती" में विस्तार पूर्वक लिखा। शून्य के आविष्कार से ही प्रेरित होकर भारतीयों ने ऋणात्मक अंकों का आविष्कार किया और बाद में "बीजगणित" को विकसित किया। शून्य के आविष्कार के कारण ही अंकों को दस के आधार पर लिखने में सुविधा है। शून्य की गणना हिन्दू लोग अंकों में करते थे और बक्षाली हस्तलिपि के मूल के समय(लगभग 300 ई0) में वे लोग अपनी अंकगणित में उसका प्रयोग करते थे। शून्य को जोड़ने व घटाने के परिक्रमों का उल्लेख प्रसंगवश "वाराहमिहिर"(लगभग 500 ई0) की "पंचसिद्धांतिका" में हुआ है। दशमलव गणित का सर्वस्व भास्कर प्रथम(629 ई0) के आर्यभटीय–भाष्य में उपलब्ध है। सामान्यत: यह जाना जाता है कि शून्य की अवधारणा भौगोलिक रूप से दो पृथक सभ्यताओं से प्रारम्भ हुई। एक भारतीय शून्य जो कि अब सर्वव्यापी शून्य है और दूसरा "माया" का शून्य जो कि केन्द्रीय अमेरिका में पृथक रूप से प्रकट हुआ है।

यदि शून्य केवल परिमाण या दिशा विभाजन(यानि शून्य स्तर से ऊपर व शून्य स्तर से नीचे) को प्रदर्शित करता है, तो चार हजार वर्ष पूर्व मिस्र में भी यह दिखता है। यदि शून्य केवल स्थान परक मात्र था जो कि एक स्थान विशेष पर अंक की अनुपस्थिति प्रदर्शित करता है उदाहरणत: 101 में शून्य, दशम् स्थान पर अंक की अनुपस्थिति प्रदर्शित करता है(जोसेफ, 98–99) तो यह शून्य बेबीलोन के स्थैतिक अंक पद्धति में भारतीय शून्य के प्राकट्य से बहुत पहले से उपस्थित था। सुपरिभाषित स्थैतिक अंक पद्धति में मात्र एक रिक्त स्थान प्रदर्शित करने वाला ऐसा शून्य चीन के गणित में वर्तमान भारतीय शून्य के कुछ शताब्दियों पहले भी था। यद्यपि प्रतीक शून्य की चीन में अनुपस्थिति ने उच्च घात के समीकरणों की, जिसमें भिन्न सम्मिलित है, कुशल गणना में बाधा नहीं डाली (जोसेफ, 2008)।

शून्य गणित की तकनीकी विवेचना

हिन्दुओं की अंकगणित में मिलने वाला शून्य गणित का विवेचन उनके लिए बीजगणित के विवेचन से भिन्न है। इस भेद को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए नीचे हम पाटीगणित(अंकगणित) और बीजगणित में मिलने वाले शून्य संबंधी निष्कर्षों को अलग–अलग उपस्थित करेंगे।

अंकगणित में शून्य

ब्राहम स्फुट सिद्धांत में शून्य की परिभाषा इस प्रकार मिलती है–

$$अ - अ = 0$$

बाद के सब ग्रंथों में भी इसी को दोहराया गया है।

पाटीगणित(अंकगणित) के हिन्दू ग्रंथों में बताये गये शून्य परिक्रम संबंधी निष्कर्ष

श्रीधर कहते हैं–

"यदि शून्य में किसी संख्या को जोड़ दें तो योगफल जोड़ी हुई संख्या के तुल्य मिलता है। यदि किसी संख्या में शून्य को जोड़ दे या घटा दें तो उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यदि शून्य को गुणा इत्यादि(वर्ग या वर्गमूल भी) करें तो फल शून्य ही मिलता है। यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा करें तो भी गुणनफल शून्य ही मिलता है।"
इसी प्रकार के कथन आर्यभट्ट द्वितीय ने अपने "महासिद्धांत" में पाटीगणित नामक अध्याय में तथा नारायण ने अपने "पाटीगणित" में दिये हैं। महावीर अपनी गणित "सार–संग्रह में लिखते हैं–

"यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा करें तो गुणनफल शून्य मिलता है। यदि किसी संख्या को शून्य से भाग दें या उसमें शून्य को जोड़ या घटा दे तो उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता है।"

महावीर का कथन कि शून्य से भाग देने पर भाग दी हुई संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता है, सपष्टतया अशुद्ध है। इसका शुद्ध उत्तर महावीर से तीन शताब्दी पहले के गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त को ज्ञात था। अतएव आश्चर्य की बात है कि महावीर ने इस प्रकार का अशुद्ध कथन किस कारण से दिया है। संभव है कि जहाँ तक अंकगणित का संबंध है कि शून्य द्वारा किये गये भाग को भाग ही न मानते हों।

बीजगणित में शून्य

बीजगणित में शून्य की चर्चा सबसे पहले ब्रह्मस्फुट सिद्धांत में इस प्रकार मिलती है–

"ऋणात्मक संख्या में शून्य घटाने पर शेष ऋणात्मक मिलता है। धनात्मक संख्या में शून्य घटाने पर शेष धनात्मक मिलता है। शून्य में शून्य घटाने पर शून्य मिलता है।"

"शून्य और ऋणात्मक संख्या, शून्य और धनात्मक संख्या तथा शून्य और शून्य, प्रत्येक का गुणनफल शून्य है।"

"शून्य को शून्य से भाग देने का फल शून्य है"

भास्कर द्वितीय ने "लीलावती" तथा अपनी "बीजगणित" में शून्य परिक्रम संबंधी निष्कर्षों का कथन किया है–

"शून्य में किसी संख्या को जोड़ने पर योगफल जोड़ी हुई संख्या के तुल्य होता है..... यदि किसी संख्या का गुणा शून्य हो और हर भी शून्य हो तो समझना चाहिए कि उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसी प्रकार शून्य को जोड़ने या घटाने पर भी संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता।"

बीजगणित में भी यही निष्कर्ष दिये गये हैं। साथ ही साथ यह भी बताया गया है कि जब कोई राशि शून्य से घटाई जाती है तब उसका चिन्ह बदल जाता है परन्तु जोडने में चिन्ह वही रहता है।

परमाल्प राशि के रूप में शून्य

परमाल्प संख्या के रूप में शून्य की कल्पना भास्कर द्वितीय के ग्रंथों में अधिक स्पष्ट है। वे कहते हैं–

"किसी संख्या को शून्य से गुणा करने पर गुणनफल शून्य होता है, परन्तु बाद में यदि और परिक्रम करने हैं तो गुणनफल को शून्य न लेकर शून्य को गुणक की तरह रखना चाहिए"

टीकाकार कृष्ण ने– $0 \times अ = 0 = अ \times 0$

को इस प्रकार सिद्ध किया है–

"जैसे–जैसे गुण्य कम किया जायेगा, वैसे–वैसे गुणनफल भी कम होता जायेगा ..... यदि गुण्य को परमाल्प कर दिया जाए तो गुणनफल भी परमाल्प हो जायेगा। परन्तु परमाल्प होने का अर्थ शून्य होता है, अतएव यदि गुण्य शून्य हो तो गुणनफल भी शून्य होगा ..... इसी प्रकार, जैसे–जैसे गुणक कम किया जायेगा, वैसे–वैसे गुणनफल भी कम होता जायेगा और गुणक के शून्य हो जाने पर गुणनफल भी शून्य हो जायेगा।"

उपर्युक्त अवतरण में शून्य को अवरोही राशि की सीमा के रूप में कल्पित किया गया है।

अनंत

किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर जो लब्धि मिलती है उसे भास्कर द्वितीय ने "ख–हर" कहा है। जो कि ब्रह्मगुप्त के "खच्छेद"(वह राशि जिसका हर शून्य है) का पर्यायवाचक है। "ख–हर" के मान के विषय में भास्कर द्वितीय कहते हैं–

"जिस प्रकार अनंत और अच्युत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत से भूतगणों का प्रवेश होने से, या सृष्टि के समय उनके निकल जाने से कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार इस शून्य हर वाली(ख–हर) राशि में बहुत बड़ी संख्या को भी जोड़ने या घटाने से कोई परिवर्तन नहीं होता।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि भास्कर द्वितीय को ज्ञात था कि

$$\frac{अ}{0} = \infty \quad और \quad \infty + क = \infty$$

अनिर्णीत स्वरुप

ब्रह्मगुप्त का यह कथन अशुद्ध है कि

$\frac{0}{0} = 0$

भास्कर द्वितीय ने ब्रह्मगुप्त की इस अशुद्धि को शुद्ध करने का प्रयत्न किया है, उनके अनुसार

$$\text{सीमा}_{क \to 0} \frac{ख \times क}{क} = ख$$

तथापि पारिभाषिक शब्द के अभाव के कारण उन्होंने परमाल्प राशि को शून्य कहा है फिर भी ज्योतिष विज्ञान में इस निष्कर्ष का जो प्रयोग किया है इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि शून्य से उनका तात्पर्य उस छोटी राशि से है, जिसका सीमान्त मान शून्य है। टेलर और बापूदेव शास्त्री का भी यही मत है। वस्तुत: भास्कर द्वितीय ने इसे व्यक्त करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया है वह दोषपूर्ण है। उनका यह कथन कि

$$\frac{अ}{0} \times 0 = अ$$

बिल्कुल शुद्ध नहीं है, क्योंकि यह स्वरूप वस्तुत: अनिर्णीत है और इसका मान सदैव 'अ' नहीं होगा, परन्तु तो भी इतने प्राचीन काल में 0 को एक अर्थ देने का उनका प्रयत्न तथा इस प्रश्न का आंशिक हल अत्यन्त सराहनीय है, जबकि हम देखते हैं कि यूरोप के गणितज्ञों ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल तक इस प्रकार की अशुद्धियाँ की हैं।

निष्कर्ष

शून्य की अवधारणा से ही 'दाशमिक अंक पद्धति' बलवती हुई है और स्थैतिक अंक पद्धति में शून्य एक रिक्त स्थान प्रदर्शित करता है शून्य का अंकगणित व बीजगणित में प्रयोग अपरिहार्य है इसके अनंत व अनिर्णीत स्वरूप के अस्तित्व के बिना आधुनिक गणित का विकास अकल्पनीय है।

संदर्भ

1. जोसेफ, जॉर्ज जी0(2008) ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ जीरो, ईरानियन जर्नल फॉर द हिस्ट्री ऑफ साइंस, खण्ड 6, मु0 पृ0 37–48।
2. ब्रह्मगुप्त(628 ई0) ब्रह्मस्फुट सिद्धांत, नियम 31–35, पृ0 309–310।
3. आर्यभट्ट द्वितीय(ल0 950 ई0) महासिद्धांत, पृ0 146।
4. भास्कर द्वितीय(1150 ई0) भास्करीय बीजगणित, पृ0 5–6।
5. थीबो, जी0(1899) एस्ट्रोनॉमी, एस्ट्रोलॉजी एण्ड मैथेमेटिक्स, स्ट्रॉसबर्ग, पृ0 73।
6. नारायण(1356 ई0) गणित कौमुदी(हस्तलिखित), प्रकरण 1, श्लोक 30।
7. दत्त, विभूति विभूषण तथा सिंह, अवधेश नारायण(1956) हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, भाग 1, मु0 पृ0 224–232।
8. दत्त, विभूति विभूषण(1927) अर्ली हिस्ट्र ऑफ द अर्थमेटिक ऑफ जीरो एण्ड इनफिनिटी इन इण्डिया, बुलेटिन ऑफ कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसायटी, भाग 18, मु0 पृ0 165–176।
9. महावीर(850 ई0) गणित सार संग्रह, श्लोक 49, पृ0 6।

भारतवर्ष में विज्ञान की परम्परा एवं विकास

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव
गणित एवं सांख्यिकी विभाग
दी0 द0 उ0 गोरखपुर विश्व विद्यालय, गोरखपुर(उ0प्र0)–273009, भारत
rcs.shockwoves@gail.com

सार

इस अध्ययन में पुरातन काल में भारतवर्ष में विज्ञान की परम्परा से लेकर आधुनिक भारत में विज्ञान की स्थिति को दर्शाया गया है। इस अवधारणा की भी पुष्टि की गयी है कि, बिना विज्ञान के प्रौद्योगिकी का विकास सम्भव नहीं है।

Tradition of Science in India and Development

Ramesh Chandra Srivastava
Department of Mathematics & Statistics
D. D. U. Gorakhpur University, Gorakhpur(U.P.)-273009, India
rcs.shockwoves@gail.com

Abstract

In this study tradition of science in India is discovered starting from ancient time up to the present scanning of science, technology and development.

भारतवर्ष में आजादी के बाद विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उन्नतिशील विकास की एक सतत गाथा है उस समय देश प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक स्थायी समाज के निर्माण में लगा था जो हर तरह से सुख सुविधाओं से सम्पन्न हो।

विज्ञान, खगोल शास्त्र, औषधिविज्ञान के क्षेत्र में भारत का गौरवशाली इतिहास रहा है। महान खगोलशास्त्री एवं गणितज्ञ आर्यभट्ट, बाराहमिहिर, सुश्रुत और भाष्कराचार्य आदि अनेक महापुरूषों ने विज्ञान के क्षेत्र में अद्भुत योगदान दिया है। 300 वर्षो की गुलामी के कारण भारतवर्ष में वैज्ञानिक शोधकार्य काफी हद तक प्रभावित रहा और औद्योगिक विकास लगभग ठप पड़ गया। आजादी के समय भारत वर्ष मुख्यतः एक गरीब कृषिप्रधान देश था और कुछ हद तक कपड़ा तथा इस्पात उद्योग को छोड़कर बाकी सभी वस्तुओं के लिये विदेश पर ही निर्भर था। वैज्ञानिक परम्परा की पुर्नस्थापना का श्रेय जवाहरलाल नेहरू को जाता है। उनका दृढ़ विश्वास था कि केवल विज्ञान भूख, गरीबी, निरक्षरता तथा स्वास्थ्य की समस्या का समाधान कर सकता है।

प्राचीन काल में विज्ञान के क्षेत्र में भारत वर्ष में किया गया कार्य आधुनिक विज्ञान की आधार शिला है। महान ज्योतिषविद् और मेधावी गणितज्ञ आर्यभट्ट अपनी प्रतिभा के द्वारा नये–नये वैज्ञानिक तथ्यों का आविष्कार कर ज्योतिष ज्ञान को विकसित कर अभूतपूर्व योगदान किया। सम्भवतः वे विश्व के प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने घोषणा की थी कि पृथ्वी गोल है, वह चल रही है तथा अपनी धुरी पर घूमती है। यह वह सत्य है जिसके आविष्कार के लिये पाश्चात्य देशों को कोपर्निकस की प्रतिक्षा करनी पड़ी। वह कौन सी दिव्यदृष्टि थी जिससे कोपर्निकस से 1000 वर्ष पूर्व आर्यभट्ट ऐसे महान रहस्य का उद्घाटन कर सकने में सक्षम हो सकें। ग्रहण के सम्बन्ध में प्राचीन काल से चली आ रही रूढ़ि के वैज्ञानिक कारण को आर्यभट्ट ने बताया। हम 22 जुलाई 2009 को लगे पूर्ण सूर्यग्रहण की बात करें। नासा ने बताया कि पटना के पास तारेगना नामक स्थान पर सबसे अच्छा सूर्यग्रहण दिखेगा। वहां डायमण्डरिंग, बेली बीड और कोरोना बहुत अच्छा दिखेगा। सारे वैज्ञानिक उस स्थान पर उमड़ पड़े और अत्याधुनिक यन्त्रों द्वारा इस खगोलीय घटना का आनन्द लिया। यह वही स्थान है जहां आर्यभट्ट ने आज से 1500 वर्ष पूर्व अपनी बोधशाला स्थापित किया था। आर्यभट्ट के वैज्ञानिक योगदान को सदैव स्मरण रखने के उद्देश्य से भारत सरकार ने प्रथम कृत्रिम भू–उपग्रह का नामकरण आर्यभट्ट किया जिसका प्रक्षेपण 19 मई 1975 को किया गया।

आर्यभट्ट का जन्म कुसुमपुर (पटना) में 476 ईसा पूर्व में हुआ था और ईसा पूर्व 550 में 74 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आज लगभग 2000 वर्ष बाद भी आर्यभट्ट का योगदान वैज्ञानिक शोध का आधार है। उनकी कृतियाँ, आर्यभट्टीय, आर्यभट्ट सिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्त प्रकाश हमारे बीच आज भी विराजमान है। आर्य भट्टीय पर अबतक 20 टीकाये लिखी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त विदेशों में अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। सबसे पहला अनुवाद अरबी भाषा में अलअर्जवहर के नाम से सन् 800 में अबूहसन अहवाजी ने किया था। 13 वीं शताब्दी में जी0 डी0 लूर्डस द्वारा लैटिन में और 1875 में एल्फिरिंग द्वारा जर्मन, में 1879 में रोडेट द्वारा फ्रेन्च में, 1899 और 1908 में थीवों और जी. आर. केश द्वारा अंग्रेजी में किया गया। रूषीभाषा में इसका अनुवाद बोलोडार्स्की ने किया था।

ज्यामितीय श्रेणी ओर इनडिटरमिनेट समीकरण का हल भारत के महान गतितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने निकाला था। बीज गणित और खगोल के क्षेत्र में

भास्कराचार्य ने महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने सिद्धान्तशिरोमणि की रचना चार भागों में की। वे प्रथम गणितज्ञ थे जिन्होने आर्यभट्ट की खोज से शून्य का अध्ययन किया। उनके सम्मान में इसरो के दो उपग्रहों का नाम भाष्कर I और भाष्कर II क्रमशः 1979 और 1999 रखा गया।

इन तीनों भारतीय गणितज्ञों द्वारा हजारों वर्ष पूर्व किया गया कार्य आधुनिक विज्ञान की आधार शिला है। इस शताब्दी के महान वैज्ञानिक एलबर्ट आइनस्टीन ने कहा था "हम भारतीयों के ऋणी हैं जिन्होंने गणना करना सिखाया, नहीं तो आज वैज्ञानिक खोज करना सम्भव नहीं हो पाता।

उन्नीसवी सदी का सातवां (1860–69) दशक भारतीय इतिहास में काफी महत्व रखता है। एक जाने माने रसायनज्ञ अनिमेष चक्रवर्ती ने लिखा है कि 19 वीं सदी का उत्तरार्ध सर्वश्रेष्ठ काल था। अकेले 1860–69 के दशक में ही रवीन्द्र नाथ टैगोर, मोतीलाल नेहरू, स्वामी विवेकानन्द, मदनमोहन मालवीय, आशुतोष मुखर्जी, लाला लाजपत राय, श्रीनिवास शास्त्री प्रफुल्ल चक्र रे और मोहनदास करमचन्द्र गांधी जैसे लोगों ने जन्म लिया। इस तरह मुर्झाए भारत में प्रकाश और आशा की ऋतु का शुभारम्भ हुआ। आधुनिक भारत में विज्ञान की पुर्नस्थापना 1861 से 1888 के बीच हुई।

भारतीय रसायन स्कूल के संस्थापक आचार्य प्रफुल्ल चक्र रे का जन्म 2 अगस्त 1861 को जैसोर (खुलना), जो अब बांगलादेश में है, हुआ था। आचार्य रे का जीवन सादगी का प्रतीक था। उनके बारे में महात्मा गांधी ने कहा था यह विश्वास करना कठिन है कि साधारण सी भारतीय वेषभूषा और सरल व्यवहार वाला यह व्यक्ति महान वैज्ञानिक और प्रोफेसर हो सकता है। आचार्य रे के पिता की इच्छा थी कि, वह अपने बेटे को उच्च शिक्षा के लिये इंग्लैण्ड भेजे। प्रफुल्ल चक्र अपने पिता की इच्छा जानते थे इसलिये उन्होंने गिल क्राइस्ट छात्रवृत्ति के लिये तैयारी की और वह पहले भारतीय थे जिन्हें यह छात्रवृत्ति प्राप्त हुयी। यह छात्रवृत्ति एडिनबरा विश्वविद्यालय लंदन द्वारा दी जाती थी। आचार्य रे 1882 के मध्य एस0 एस0 कैलिफोर्निया नामक जहाज से इंग्लैण्ड के लिये रवाना हुये। इंग्लैण्ड में उनकी अगवानी जगदीश चन्द्र बोस ने की जो कई वर्षों से केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा पा रहे थे। 1885 में रे ने बी0 एस–सी0 की डिग्री प्राप्त की और 1887 में एडिनबरा विश्वविद्यालय में "ताम्र और मैग्नीशियम समूह के कान्जुगेटेड सल्फेटस सल्फेटो" के बारे में किये गये शोध कार्य को मान्यता देते हुये उन्हें डी0 एस–सी0 की उपाधि दी। उन्हें एडिनबरा विश्वविद्यालय के केमिकल सोसाईटी का अध्यक्ष चुना गया। इंग्लैण्ड में 6 वर्ष बिताने के बाद रे 1888 में भारत लौट आये। आचार्य रे की प्रसिद्ध रचना "द हिस्ट्री आफ हिन्दू केमेस्ट्री" का प्रथम खण्ड 1902 में और दूसरा खण्ड 1908 में प्रकाशित हुआ। रे के इस कृति को एक अनूठे योगदान के रूप में स्वीकार किया गया। नेचर और नालेज जैसी प्रख्यात अर्न्तराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं ने इस पुस्तक की काफी प्रशंसा की। 1912 में डुरहान विश्वविद्यालय ने रे को डी0एस–सी0 की मानद् उपाधि देते हुये कहा "उनकी प्रसिद्धि मुख्यतः हिन्दूरसायन के बारे में किये गये ऐतिहासिक कार्य से जुड़ी है। उस काम की वैज्ञानिक एवं भाषागत, दोनों तरह की उपलब्धियां समानरूप से असाधारण हैं और पुस्तक के बारे में हम कह सकते है कि वह निश्चयात्मक है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रहे तेजी से विकास को ध्यान में रख कर तथा युवा मस्तिष्क का विज्ञान, मुख्यरूप से गणित के प्रति उदासीनता को देखते हुए भारत सरकार ने 2012 को 'राष्ट्रीय गणित वर्ष' और 22 दिसम्बर को 'गणित दिवस' के रूप में मनाने का निर्णय लिया। 22 दिसम्बर 1887 को भारतवर्ष में एक ऐसे महान गणितज्ञ श्री निवास रामानुजन् का जन्म हुआ जिसके योगदान से देश फिर से एक बार गणित के क्षेत्र में विश्वपटल पर स्थापित हो गया। श्रीनिवास रामानुजन की प्रारम्भिक शिक्षा कुम्बकोनम में हुयी थी। स्कूल में रामानुजन का सारा ध्यान गणित पर केन्द्रित हो गया जिसके कारण उनकी औपचारिक शिक्षा अधिक समय तक जारी नहीं रह सकी। जब वे विद्यालय में थे तब उन्होने जार्ज सूब्रीजकार जो केम्ब्रीज के गणितज्ञ थे, उनका कोचिंग नोट "ए सिनाफसिस आफ एलिमेन्ट्री रिजल्ट्स इन प्योर एण्ड आप्लायड मैथेमेटिकल" पढ़ी। यह दो वालूम में 1880 और 1886 में प्रकाशित हुयी थी। जी.एच. हार्डी ने कहा था रामानुजन की खोज कार के 6000 थ्योरम्स, अलजबरा, कैलकुलस, ट्रिग्नामेट्री और एनालिटिकल ज्योमेट्री पर आधारित था। उनका शोध कार्य मैजिक स्कायर, कान्टीन्यूड फेक्शन, हार्डपरज्योमिट्रिकी सीरीज, प्रापर्टीस आफ नम्बर, इलीप्टकल इन्ट्रीग्रल पर आधारित था। रामानुजन के समय या इसके पूर्व किसी ने भी इन विषयों पर भारत में कार्य नहीं किया था। आज उनके शोध कार्य की व्याख्या करने के लिये विश्व के अनेक गणितज्ञ लगे है। 33 वर्ष की कम उम्र में 1920 में रामानुजन का मद्रास में निधन हो गया।

विज्ञान की व्याख्या करते हुये सी0 वी0 रमन ने कहा था, सत्य की खोज ही विज्ञान है। केवल भौतिक जगत में ही नहीं, केवल प्रयोगशाला में ही नहीं बल्कि दैनिक जीवन और व्यवहार में भी और वैज्ञानिक मास्तिष्क हमेशा असत्य को खारिज करने के लिये तैयार रहता है। मानव का सर्वांगीण विकास जाने अनजाने में वैज्ञानिक सोच से सम्भव है। सी0 बी0 रमन का जन्म 7 नवम्बर 1888 को तिरूचिरापल्ली के पास तिरूबनार्डकवल में हुआ था। उनके पिता गणित और भौतिक शास्त्र के प्रवक्ता थे। चार वर्ष की उम्र में रमन सागर के किनारे बसे विशखापट्टनम शहर में आ गये और दस वर्षों तक वहां रहे। 15 वर्ष की आयु में 1904 में बी0 ए0 और 18 वर्ष की आयु में 1907 में एम0 ए0 की डिग्री प्राप्त की और इसी वर्ष उन्होंने वित्त सिविल सेवा की परीक्षा उत्तीर्ण की और प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1907 के अन्त में रमन ने कलकत्ता में असिस्टेन्ट एकाउन्टेन्ट जनरल का पद ग्रहण किया। लेकिन रमन का अर्न्तमन हमेशा भौतिक विज्ञान से जुड़ा रहा। भौतिकी विज्ञान के प्रति प्रगाढ़ समर्पण रमन को इन्डियन एसोसियेशन फार कल्टीवेशन आफ साइन्स के सम्पर्क में ला दिया। इस संस्था की स्थापना डा0 महेन्द्र लाल सरकार ने 1876 में किया जोकि एक चिकित्सक थे। उनके मन में विज्ञान के प्रति अद्भुत लगाव और उन्हें विश्वास था कि आने वाले दिनों में भारत को विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। 31 वर्षों तक इस संस्था में धूल जमती गई क्योंकि उन दिनों भारत में शोध कार्य नहीं के बराबर होता था। रमन ने यहीं पर अपना शोध कार्य शुरू किया और 1907 सो 1917 तक लगातार अपने आफिस के बाद के समय को इसी संस्था में ही बिताते थे। जुलाई 1917 में महान शिक्षाविद् और कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति आषुतोष मुखर्जी ने रमन को तारका नाथ पत्रिका प्रोफेसन आफ फिजिक्स के पद पर नियुक्त किया। 28 फरवरी 1928 को रमन ने अपना महान शोध कार्य विश्व के सामने रखा। "रमन इफेक्ट" के नाम से प्रसिद्ध इस शोध कार्य के लिये उन्हें भौतिक विज्ञान का नोबेल पुरस्कार 10 दिसम्बर 1930 को मिला।

28 फरवरी को भारत में 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इसका मूल उद्देश्य जनता के बीच विज्ञान तथा इसके अनुप्रयोगों को प्रसारित करना है। विकास की गति को बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि हम बच्चों में वैज्ञानिक सोच पैदा करें। कई महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद

21वीं शताब्दी में भी हमारे समाज के निश्चित वर्ग अभी भी अंधविश्वासों और मान्यताओं में फंसे है, जो विकास के मुद्दों पर निर्णय की गुणवत्ता से साफ झलकते है। विज्ञान ने मानव कल्याण में बहुत बड़ा योगदान दिया है। विज्ञान के कारण और प्रयोगात्मक अवलोकन सिद्धान्त के जरिये, मनुष्य को बौधिक और मानसिक उत्कृष्टता प्राप्त करने के योग्य बनाया है। भौतिक वादी दृष्टिकोण से देखा जाय तो पर्यावरण मुद्दों, रोगउन्मूलन, अन्तरिक्ष खोज, ऊर्जाउत्पादन, इन्फार्मेशन हाईवे, कृषि, दुग्धउत्पादन, उद्योग और अनेक क्षेत्रों में विज्ञान मानव कल्याण कार्य किया है। विज्ञान के रोजमर्रा के अनुप्रयोग, जैसे पीने का स्वच्छ पानी, संक्रामक बीमारी उन्मूलन, फसल उत्पादन में वृद्धि, जैव विविधता संरक्षण के लाभ आदि का प्रचार होना चाहिए। आधुनिक भारत को विज्ञान के क्षेत्र में शिखर पर पहुंचाने वाले वैज्ञानिकों में से प्रमुख रूप से तीन नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने तीन संस्थाओं की स्थापना की। डा0 डी0 एस0 कोठारी, डा0 होमी जहांगीर भाभा और डा0 विक्रम साराभाई का विज्ञान के क्षेत्र में नेतृत्व की क्षमता ने देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ये तीनों वैज्ञानिक डी0 आर0 डी0 ओ0, डी0 ए0 ई0 एवं इसरो के संस्थापक हैं।

डा0 कोठारी दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर थे। प्रोफेसर कोठारी 1948 में रक्षामंत्री के सलाहकार हुये तब उन्होंने रक्षा विभाग में वैज्ञानिक शोध की परम्परा स्थापित की। उन्होंने रक्षा विज्ञान केन्द्र की स्थापना की जिसमें इलेक्ट्रानिक मेटीरियल, न्यूक्लियर मेडिसिन और प्रक्षेपण विज्ञान सम्बन्धी शोध कार्य होते है। उन्हें भारत में रक्षा विज्ञान का निर्माता कहा जाता है।

डा0 होमी जहांगीर भाभा ने थियोरेटिकल फिजिक्स में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में 1930–1939 तक शोध कार्य किया। 1939 में वे सी.वी. रमन के साथ काम किये और बाद में उन्होने टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फन्डामेन्टल रिसर्च की स्थापना की जहां पर नाभिकीय विज्ञान और गणितीय विज्ञान पर शोध कार्य होता है। उन्होंने 1948 में एटॉमिक एनर्जी कमीशन की स्थापना की।

डा0 साराभाई ने सी0 वी0 रमन के साथ एक्सपेरिमेन्टल कॉस्मिक रे पर शोध कार्य किया। उन्होंने अहमदाबाद में भौतिक विज्ञान शोध प्रयोगशाला की स्थापना की जिसमें अन्तरिक्ष विज्ञान पर शोध कार्य होता है उनकी दूरदृष्टि और कल्पना ने इसरो को जन्म दिया।

ये तीनों वैज्ञानिक भौतिक विज्ञान विद् थे उन्होंने भौतिक विज्ञान में शोध कार्य विश्वविद्यालयों और शोध संस्थाओं में किया था। इनके शोध कार्य रक्षा प्रौद्योगिकी, नाभिकीय प्रौद्योगिकी और अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी के रूप में देश की प्रगति में लगातार नये कीर्तिमान स्थापित कर रहे है। इन वैज्ञानिकों ने एक महत्वपूर्ण संदेश दिया कि, "मौलिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी को जन्म देता है और विज्ञान में नये नेतृत्व विकसित करने के लिये परम् आवश्यक है"

कोई भी देश अगर विकसित होना चाहता है तो उसे देश में विज्ञान के शिक्षण पर बल देना होगा। विज्ञान के बिना प्रौद्योगिकी का अस्तित्व ही नहीं है। आज हम अगर जर्मनी की विकास की बात करें तो स्पष्ट हो जाता है कि उन्नीसवीं सदी में विज्ञान के हर क्षेत्र में महान लोग थे। वे लोग विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर थे उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक शोध किया जिससे वहां प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। हम यहां केवल एक उदाहरण देना चाहेंगे– रोटेनगेन का, जो भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर थे और उन्होने एक्स रे पर मौलिक शोध कार्य किया और उन्हें 1901 भौतिक विज्ञान का प्रथम नोबेल पुरस्कार मिला। 100 वर्ष पूर्व किया गया मौलिक शोध कार्य आज विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में प्रयोग होने के साथ ही चिकित्सा के क्षेत्र में क्रान्ति ला दिया है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत का वर्तमान परिदृश्य बहुत उत्साह वर्धक नहीं है। हमें अगर स्थायी विकास के बारे में सोचना है तो हमें विज्ञान के शिक्षण पर बल देना होगा। बिना विज्ञान के हम आधुनिक तकनीकी विकसित नहीं कर सकते और हम तकनीकी के मामले में आत्मनिर्भर नहीं हो सकते। हमने देखा है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ खाद्यान्न की समस्या हमें नहीं हुयी। इसके पीछे हरितक्रान्ति के जनक प्रोफेसर एम0 एस0 स्वामीनाथन का योगदान था। वर्गीजकूरियन ने अपने शोध द्वारा श्वेतक्रान्ति के माध्यम से दुग्ध और दुग्ध उत्पादकों से देश को अमूल्य योगदान दिया। जो नेषले जैसी विदेशी कम्पनियों को टक्कर देती है और उनके क्षेत्रों में हमने विज्ञान और प्रौद्योगिकी में कीर्तिमान स्थापित किये है। अन्तरिक्ष विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी में हमने महारथ हासिल की है। फिर भी हमें तेजी से विकास करने के लिये मौलिक विज्ञान के शिक्षण को एक चुनौती के रूप में लेना होगा। तभी हम सार्वभौम विकास का सपना पूरा कर सकने में समर्थ होंगे।

संदर्भ

1. अब्दुल कलाम, ए0 पी0 जे0(1999) विंग्स ऑफ फॉयर, यूनिर्वसिटी प्रेस(इंडिया) प्रा0 लि0।
2. अब्दुल कलाम, ए0 पी0 जे0(2002) इग्नाइटेड माइन्डस, पेन्गुइन बुक्स।
3. जय राम, ए0(1989) सी0 वी0 रमन–ए मेमॉयर, ईस्ट–वेस्ट प्रेस प्रा0 लि0।
4. रंगनाथन, एस0 आर0(1967) रामानुजन्–द मैन एण्ड मैथमेटिशियन, एशिया पब्लिशिंग हाउस।
5. शर्मा, के0 वी0(2001) आर्य भट्ट–हिज नेम, टाईम एण्ड प्रॉमिनेन्स, इण्डियन ज0 हिस्ट्री ऑफ साइंस, खण्ड 36, मु0 पृ0 105–115।
6. यादव, बी0 एस0(2010) एन्सियन्ट इंडियन लीप्स इन टू मैथमेटिक्स, स्प्रिंगर वर्लाग।

घोड़ा-कटोरा झील राजगीर (नालन्दा) आदर्श पक्षी विहार-एक विवेचना

नन्दजी कुमार[1] तथा विकास कुमार प्रभात
स्नातकोत्तर वनस्पति विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, गया(बिहार)–824234, भारत
[1]कुलपति, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, गया(बिहार)
kumarnandjee@rediffmail.com, kumarnandjee@gmail.com

सार

घोड़ा कटोरा झील मीठे एवं वर्षा जल से भरी, राजगीर(जिला–नालन्दा) के पास स्थित है। यह झील अब पर्यटक स्थल के रूप में जानी जाती है। यहाँ किसी प्रकार की जीव हत्या वर्जित है। कालान्तर में यह पक्षी विहार का रूप ले चुका है। यहाँ पर विचरण करने वाले 37 पक्षियों का एक वर्ष तक के साप्ताहिक अवलोकन का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

Ghoda-Katora Lake, Rajgir(Nalanda), an Ideal Bird Sanctuary - A Review

Nandjee Kumar[1] and Vikash Kumar Prabhat
Department of Botany, Magadh University, Bodhgaya, Gaya(Bihar)-842434, India
[1]Vice Chancellor, Magadh University, Bodhgaya, Gaya(Bihar)
kumarnandjee@rediffmail.com, kumarnandjee@gmail.com

Ghora-Katora, a fresh water lake located near Rajgir of Nalanda District in Bihar is now a well known tourist place having beautiful natural habitat with well protected fauna and flora. It has now been developed as a bird sanctuary. About 37 species of birds including 8 migratary have been observed to inhabit the area during different seasons of the year.

प्रस्तावना

विश्व की जितनी भी पक्षी की जातियाँ पायी जाती है उनमें से चौदह प्रतिशत भारत में निवास करती है। भारत जैविक सम्पदा का बहुत बड़ा भाग है। भारतीय उपमहाद्वीप में इनकी 1300 जातियाँ पायी जाती है। इनमें से कई पक्षी प्रवास यात्रा करते हुए घोड़ा कटोरा झील की ओर नियमित तथा मौसम के अनुसार आते हैं और कुछ समय बाद दूसरे भौगोलिक क्षेत्र की ओर पलायन कर जाते हैं। इस तरह का आवागमन इस क्षेत्र (झील) में पूरे वर्ष लगा रहता है।

प्रयोग विधि एवं संसाधन

घोड़ा कटोरा झील में उपस्थित पक्षियों का साप्ताहिक अवलोकन द्विनेत्री दूरबीन की सहायता से फरवरी 2010 से जून 2012 तक किया गया। अवलोकन के लिये प्रातःकाल के सूर्योदय के चार घण्टे एवं सूर्यास्त के दो घण्टे का समय लगाया गया। इस समय भोजन की खोज में पक्षी अत्यधिक क्रियाशील देखे गये। पक्षियों की पहचान में उनके आकार, चोंच, पंख, पंजा इत्यादि को आधार मानकर नोटबुक में उनकी जाति तथा संख्या का समावेश किया गया। इस कार्य के लिए झील के विभिन्न कोणों का अवलोकन किया गया। प्रातः काल में पर्यटक के कम आवागमन के कारण अधिकांश पक्षी स्वतंत्र एवं निर्भय रूप से विचरण करते देखे गये हैं। दिन में पर्यटकों का आवागमन बढ़ जाने के कारण अधिकांश पक्षी उड़ जाते हैं या आस–पास वृक्षों या पहाड़ों की ओर जा कर विश्राम करने लगते हैं। ऐसे समय पर इनका सही अवलोकन संभव नहीं है पर शाम ढलने पर पुनः रंग–बिरंगे पक्षी झील में पहुंच जाते हैं। इनमें से बहुत सारे पक्षियों के चित्र भी लिये गये, जिसकी सहायता से उन्हें पहचाना गया। इसमें से अधिकांश पक्षियों को पूरे वर्ष नहीं देखा गया। इन पक्षियों की सही पहचान के लिए उपलब्ध साहित्य का सहारा लिया गया।

सारणी–1 अवलोकित पक्षियों की सूची

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	हिन्दी नाम	उपस्थिति
1.	*ऐनडिंगा रूफा डाउडिन*	पनडुब्बी	–
2.	*फैलेकोरैक्स नाइजर बीलट*	पनकौवा	–
3.	*आर्डिया सिनेरिआ लिनीअस*	अंजन	–
4.	*प्लैटेलिया ल्यूकोरोडिया रियनीगस*	चमचवाज	+
5.	*एग्रेटा गारजेटा रियनीयस*	किलचिया वगला	+
6.	*एग्रेटा गूलेरिस वोस्क*	कालावगला	+

7.	*पेरियकैनस फिलीपेन्सिस गैमेलिन*	हवावील	+
8.	*नैटटा रूफाइना पेलास*	लाल चोंच	++
9.	*रोडोनेसा कैरिओफिलेसिआ लैथम*	गुलाबसिर	++
10.	*ऐथिया फ्यूलिगुला लिनीयस*	रहवर	++
11.	*ऐनस पेनीलोप लिनीयस*	छोटा लायसिर	+
12.	*ऐनस स्टेपेरा लिनीयस*	वेखुर	–
13.	*ऐनस प्लैटीरिक्स लिनीयस*	नीलसिर	++
14.	*ऐनस `का लिनीयस*	छोटी मुर्गखी	++
15.	*ऐनस क्यूरक्यूडुला लिनीयस*	चेतवा	+
16.	*ऐनस एक्यूटा लिनीयस*	डिगोंच	++
17.	*टेडोर्ना फेसजिनिआ पैलास*	डिगोंच	++
18.	*पोडिसेप्स रूफीकोलिस पैलास*	पण्डुब्बी	++
19.	*ऐथ्रिया नाडरोका गोल्डेन स्टेट*	कुर्रिया	++
20.	*ऐनस क्लाइपिएटा लिनीयस*	पुनन	+
21.	*ऐनस पीरिनलोरिका फार्स्टर*	गुगरल	+
22.	*सर्किडिओर्निस मेलैनोटस पेनैन्ट*	नक्ता	++
23.	*नेप्टेपस कोरो मैन्डेलिएनस गैमेलिन*	गुड़गुड़ा	–
24.	*अंसर इन्डिकस लैथम*	राजहंस	+
25.	*फोनिकोप्टेरस रोसियस पैलेस*	बोगहंस	+
26.	*व्यक्तस आइविस लिनीयस*	पशुबगुला	–
27.	*बूटराइडेस स्टिएटस लिनीयस*	कॉच बंगला	–
28.	*आर्डियोला ग्रेयाई साइक्स*	अंधा बगला	–
29.	*निक्टीकोरक्स निक्टीकोरक्स लिनीयस*	कोकरई	+
30.	*इक्सोब्राइक ससिनेमोलियस गैमोलिन*	लाल बंगला	–
31.	*सिकोनिया एपिस्कोपस वाडैर्ट*	मनिक जोर	++
32.	*सिकोनिया सिकोनिया लिनीयस*	जगलग	++
33.	*स्यूडिविस पैगीलोसा टेंयिक*	कालाबाज	++
34.	*थ्रेस्किओर्निस मेलैनोसेफैला लैथम*	मुंड	+
35.	*जीनोरिंकस एिाएिटिक्स लैथम*	लोहा सारंग	+
36.	*आइविस ल्याकोसेफैलस पेनैन्ट*	जंघिल	+
37.	*एनस्टोयस आस्टिनैन्स वाडेर्ट*	घोघिस	–

संकेत

- ● केवल एक बार देखे गये।
- \+ केवल जाड़े के मौसम में देखे गये।
- • गर्मी को छोड़कर शेष पूरे वर्ष देखे गये।
- ++ पूरे वर्ष देखे गये।
- – अधिसंख्य आबादी पूरे वर्ष देखे गये।

परिणाम व विवेचना

झील के विभिन्न भागों से किये गये अवलोकनों को एकत्रित करके प्रति सप्ताह सारणीबद्ध किया गया। अवलोकन में केवल जल पक्षियों का ही समावेश किया गया है। इसमें साइबेरियन पक्षी सबसे प्रमुख है। अतः कई क्षेत्रीय सामान्यतः पाये जाने वाले पक्षी को सूचीबद्ध नहीं किया गया है। जिन पक्षियों का अवलोकन किया गया उसे सारणी–1 में प्रस्तुत किया गया है।

यह झील बुद्धकालीन मानी गयी है जो कि 2500 वर्षों पूर्व अस्तित्व में आई। हाल ही में इसे पर्यटक स्थान बना दिया गया, इसका जल का स्रोत वर्षा पर आधारित है। गर्मी के दिनों में जलस्तर कम जाता है। या सूखने के कगार पर आ जाता है। इस झील का जल मीठा तथा अप्रदूषित है, आये दिन यहाँ नौका विहार भी किया जाता है। यहाँ पर मूर्ति विसर्जन, दीपदान, कपड़ा साफ करना, गाय बैल धोना तथा आखेट इत्यादि प्रतिबंधित है। प्रारम्भ में जैन तथा बौद्ध श्रद्धालु इस झील में स्नान कर यहाँ की मिट्टी को ले जाते थे।

निष्कर्ष

प्राचीन काल से मानवीय गतिविधियों से अछूती यह झील प्राकृतिक जलीय, पर्यावास का एक अनूठा नमूना है। इसका पारितंत्र पूर्ण रूपेण अप्रदूषित है, आये दिन यह झील पक्षियों का आश्रय स्थल का रूप ले चुका है। हमारे प्रस्तुत अध्ययन में 37 प्रजातियों की उपस्थिति पायी गई है, जिनमें से लगभग 8 प्रवासी प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत ही नहीं यह विश्व को जैविक संपदा के संरक्षण में की गई अनूठी भूमिका है। मानव के अस्तित्व के लिए पर्यावरण संरक्षण अत्यंत ही आवश्यक है।

संदर्भ

1. अली, सलीम(1985) भारतीय पक्षी; हरियाणा, साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ द्वारा हिन्दी अनुवाद(अनुवादक रामकृष्ण सक्सेना)।
2. रहमानी, असद रफी(2006) हमारे पक्षी; प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (अनुवादक देवेन्द्र मेवाड़ी)।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम के स्वर्ण जयन्ती वर्ष – 2013 पर आलेख
भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के 50 वर्ष : एक विहंगावलोकन

कृष्ण कुमार मिश्र
होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,
वी0 एन0 पुरव मार्ग, मानखुर्द, मुम्बई-400088, भारत
kkm@hbese.tifr.res.in

प्रस्तावना



वर्ष 2013 भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का स्वर्णजयन्ती वर्ष है। आज से 50 वर्ष पहले 21नवम्बर 1963 को भारत ने एक 'छोटा–सा ' राकेट छोड़कर अंतरिक्ष में एक बहुत 'बड़ा कदम' रखा था। पिछले पचास वर्षों में भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम ने एक लम्बा फासला तय किया है। चांद तक मिशन पहुंचाने के बाद भारत अब मंगल के लिए अभियान भेजने की तैयारी कर रहा है। भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का पचास साल का सफर बड़ा ही रोचक तथा प्रेरणादायी है। इसके पीछे सुविख्यात वैज्ञानिक डॉ0 विक्रम साराभाई की दूरदृष्टि तथा कल्पना की अहम् भूमिका है। उन्हें भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का शिल्पी कहा जाता है। बात सन् 1961 की है जब डॉ0 साराभाई ने अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम की एक विस्तृत योजना भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू को सौंपी थी। नेहरूजी को यह योजना पसंद आयी तथा भारत सरकार द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया। बस वहीं से देश के अंतरिक्ष कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ। सन् 1962 में परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत अंतरिक्ष अनुसंधान समिति का गठन किया गया। डॉ0 साराभाई को इस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

अंतरिक्ष कार्य म की ुरूआत



अंतरिक्ष कार्यक्रम की स्थापना के साथ डॉ0 साराभाई को एक उचित स्थान की तलाश थी जहां से राकेट अंतरिक्ष में भेजे जा सकें। वह जगह चुनी गयी केरल की राजधानी तिरूवनन्तपुरम के पास भारतीय प्रायःद्वीप के पश्चिमी तट पर स्थित थुम्बा में। यहां से देश का पहला राकेट छोड़ने पर काम चल रहा था। उस दौरान भारत के छह वैज्ञानिकों को अमेरिकी अंतरिक्ष संस्था 'नासा' में साउंडिंग राकेट के प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। इनमें मिसाइलमैन के नाम से सुप्रसिद्ध डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भी शामिल थे। साउंडिंग राकेट वायुमंडल के अध्ययन के लिए छोड़े जाते हैं। भारत ने 21 नवम्बर 1963 को अमेरिका से प्राप्त 'नाइक अपाचे' नामक पहले साउंडिंग राकेट को थुम्बा से छोड़कर अपने अंतरिक्ष अनुसंधान की शुरूआत की। सन् 1965 में थुम्बा में अतंरिक्ष विज्ञान और प्रोद्योगिकी केन्द्र की स्थापना की गयी तथा उसके दो वर्ष बाद ही अहमदाबाद में उपग्रह दूरसंचार भूकेन्द्र स्थापित किया गया। देश के वैज्ञानिक राकेट प्रौद्योगिकी तथा ईंधन विकसित करने में लगे रहे। उन्होंने 20 नवम्बर 1967 को थुम्बा से रोहिणी–75 नामक स्वदेशी राकेट का प्रक्षेपण किया।



15 अगस्त 1969 को डॉ. साराभाई की अध्यक्षता में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का गठन किया गया। इसके साथ ही देश में उपग्रहों तथा उन्हें अंतरिक्ष में भेजने के लिए राकेटयान विकसित करने का फैसला लिया गया। भविष्य के राकेटों के प्रक्षेपण के लिए आंध्र प्रदेश स्थित श्रीहरिकोटा रेन्ज को नए प्रमोचन केन्द्र के रूप में विकसित किया गया। शुरू में इसरो द्वारा ऐसे राकेट तैयार करने की योजना बनायी गयी जिनसे लघु उपग्रहों को पृथ्वी की नजदीकी कक्षा में भेजा जा सके। इन्हें सैटेलाइट लांच वेहिकल यानी संक्षेप में एस0 एस0 वी0 कहा गया।

प्रक्षेपण प्रणालियों तथा उपग्रहों का विकास



यद्यपि भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की आधारशिला विक्रम साराभाई ने रखी लेकिन उसे आगे बढ़ाने में डॉ. अब्दुल कलाम तथा प्रो0 सतीश धवन का बहुमूल्य योगदान है। डॉ0 कलाम एस0 एल0 वी0–3 कार्यक्रम के प्रमुख थे। उनकी टीम द्वारा विकसित राकेट का 10 अगस्त 1979 को किया गया पहला परीक्षण तो असफल रहा किन्तु अगले ही वर्ष 18 जुलाई को किया गया दूसरा परीक्षण पूरी तरह सफल रहा। इस राकेट ने रोहिणी नामक 35किलोग्राम के उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया। एस.एल.वी. की बाद की उड़ानें भी सफल रहीं। इस सफलताओं के बाद और ज्यादा शक्तिशाली राकेटों के विकास पर बल दिया गया। इन्हें आग्मेंटेड सैटेलाइट लांच वेहिकल यानी ए.एस0 एल0 वी0 कहा गया।

ए0 एस0 एल0 वी0 भारत का एक महत्वपूर्ण प्रमोचन यान है जो तकनीकी क्षमताओं के प्रदर्शन और उनके वैधीकरण के लिए बनाया गया। इसके कम लागत के मध्यवर्ती यान के रूप में विकसित किया गया। इसकी 1987 तथा 88 में की गयी पहली दो उड़ाने सफल नहीं रहीं लेकिन तीसरी उड़ान कामयाब रही तथा उसने 'स्ट्रॉस–सी' नामक उपग्रह की अंतरिक्ष

में स्थापित कर दिया। ए0 एस0 एल0 वी0 की सफलता के बाद और भी ज्यादा शक्तिशाली पोलर सैटेलाइट लांच वेहिकल, पी0 एस0 एल0 वी0 का विकास किया गया। यह नया राकेट चार खंडों का बना था। पी.एस.एल.वी. की 1994 से लेकर अब तक की समस्त उड़ानें सफल रहीं हैं। इसने सफलता के कीर्तिमान बना दिए हैं। इस राकेट के जरिए सुदूर संवेदन के क्षेत्र में राष्ट्र ने बहुत शोघ किया है। अब तक इसकी कुल 23उड़ानें हो चुकी हैं और भारत तथा दूसरे देशों के अनेक उपग्रह अंतरिक्ष में पहुंचाए जा चुके हैं। विगत 9 सितम्बर 2012 का दिन भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम में स्वर्णिम दिन था जब इसरो के पी.एस.एल.वी. सी–21 राकेट ने फ्रांस तथा जापान के दो उपग्रहों को सफलतापूर्वक कक्षा में स्थापित कर दिया। इस तरह भारत ने मिशन भेजने का शतक पूरा कर लिया। अब तक भारत ने स्वदेशी राकेटों के जरिए कुल 62 देशों तथा 35 विदेशी उपग्रह अंतरिक्ष में प्रेषित किए हैं।



भारत को उपग्रहों के निर्माण में भी कुशलता प्राप्त है। देश का पहला कृत्रिम उपग्रह आर्यभट्ट 1975 में रूस के राकेट के जरिए छोड़ा गया। देश में ही डिजाइन तथा विकसित इस उपग्रह का भार 368किलोग्राम था। उसकी अपेक्षित आयु छः साल थी। लेकिन वह 17 वर्षों तक राष्ट्र को अपनी सेवाएं देता रहा। उसके बाद कहीं भारी तथा समुन्नत भास्कर–1 तथा भास्कर–2 का रूसी प्रक्षेपणयान से भेजा गया। ये भारत के शुरूआती सुदूर संवेदन उपग्रह थे जिन्हें क्रमशः 7 जून 1979 तथा 20 नवम्बर 1980 को अंतरिक्ष में भेजा गया।

ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान जिसे संक्षेप में पी0 एस0 एल0 वी. कहा जाता है, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा संचालित एक महत्वाकांक्षी प्रक्षेपण प्रणाली है। पी0 एस0 एल0 वी0 की ऊँचाई 44.4 मीटर है और इसके चार चरण हैं जो एकांतर से ठोस एवं द्रव नोदन प्रणालियों का उपयोग करते हैं। इसके प्रथम चरण में 138टन नोदक होता है जो विश्व के बृहद् ठोस नोदक बूस्टरों में से एक माना जाता है। इसके छः ठोस स्ट्रैप–ऑन नोदक मीटर हैं जिनमें से प्रत्येक में बारह टन ठोस नोदक होता है। दूसरे चरण में 41.5 टन द्रव नोदक रहता है। तीसरे चरण में 7.6 टन ठोस नोदक रहता है तथा चौथे में 2.5 टन द्रव नोदक सहित जुड़वां इंजन रहता है। इसी ताकतवर राकेट ने भारत के चन्द्रयान–1 मिशन को सफलतापूर्वक चांद तक पहुंचाया था।

चन्द्रयान–१

22 अक्टूबर 2008 का दिन देश के लिए बहुत मायने रखता है जब सुबह 6 बज कर 20 मिनट पर भारत के चन्द्रयान–1 का सफल प्रक्षेपण किया गया। विज्ञान के क्षेत्र में देश की प्रतिष्ठा को चार चाँद लगाने वाली यह एक अभूतपूर्व घटना थी। 8 नवम्बर 2008 को इसे चांद की कक्षा में 100 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थापित किया गया। फिर इसके बाद 14 नवम्बर 2008 को इस मिशन से 'मून इंपैक्ट प्रोब' नामक उपकरण को चन्द्रमा के धरातल पर सफलतापूर्वक उतारा गया। इस उपकरण ने धरातल पर मौजूद रसायनों के विश्लेषण से वहां जल होने का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किया। चन्द्रयान–1 मिशन 30 अगस्त 2009 तक काम करता रहा। इस उपलब्धि को अमेरिका सहित तमाम देशों ने सराहा। भारत अब चन्द्रयान–2 पर काम कर रहा है जिसे आने वाले दिनों में प्रक्षेपित किया जाएगा। चन्द्रयान मिशन की सफलता ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में भारत की योग्यता सिद्ध कर दी है। भारत अब एशिया के देशों, मसलन चीन और जापान की बराबरी में खड़ा हो गया। चन्द्रयान के सफल प्रक्षेपण के साथ ही भारत दुनियां का छठा देश बन गया है जिसने चाँद के लिए अपना मिशन भेजा है।



चन्द्रयान–२

चन्द्रयान–2, भारत का दूसरा मिशन है जो चन्द्रमा पर भेजा जाएगा। इसमें एक आर्बिटर, लैंडर तथा रोवर शामिल होगा। भारत के भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान (जी0 एस0 एल0 वी0–मार्क III) के द्वारा प्रमोचित इस यान में इसरो द्वारा निर्मित आर्बिटर तथा रोवर और रूसी अंतरिक्ष एजेंसी (रोसकोमॉस) द्वारा निर्मित लैंडर शामिल होगा। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य आर्बिटर पर स्थित यंत्रों के उपयोग से चन्द्रमा के मूल तथा विकास के बारे में और अधिक जानकारी जुटाना तथा लैंडर एवं रोवर का प्रयोग करते हुए लूनर नमूने का विश्लेषण करना है।

ऑर्बिटर के साथ 5 पेलोड भेजे जाने वाले हैं जिनका कार्य है,

1. चन्द्र सतह पर मौजूद प्रमुख तत्वों के मानचित्रण
2. चन्द्र सतह पर वॉटर आइस (हिमजल) सहित अन्य तत्वों की खोज,
3. खनिज, पानी तथा हाइड्रॉक्सिल की मौजूदगी संबंधी अध्ययन हेतु चन्द्रमा की सतह के काफी विस्तृत हिस्से का मानचित्रण,
4. चन्द्रमा के बर्हिमंडल का विस्तृत अध्ययन तथा
5. चन्द्रमा के खनिज–विज्ञान तथा भूविज्ञान के अध्ययन

चन्द्रमा–2, अभियान में एक कक्षीयान/अवतरण/भ्रमण विन्यास की योजना है। मिशन के वर्ष 2013 में ही साकार होने की उम्मीद है। अभियान का वैज्ञानिक लक्ष्य कक्षीयान पर मौजूद उपकरणों का उपयोग करते हुए चंद्रमा के उद्भव और विकास के बारे में हमारी जानकारी तथा समझ में सुधार करना तथा रोबोट/रोवरों का उपयोग करते हुए चंद्रमा के आवरण प्रस्तर गुणों का अध्ययन करना है।

मंगल की ओर प्रयाण

भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम चांद तक ही सीमित नहीं है। उसने अब मंगल ग्रह की ओर भी रूख किया है। भारत अपना मंगल अभियान नवम्बर 2013 में भेजने की तैयारी में जुटा है। कुल 450 करोड़ रूपये की लागत का यह अभियान भारत को उन पांच चुनिंदा देशों की कतार में ला खड़ा करेगा जो ऐसे अभियान पूरा कर चुके हैं। इनमें अमेरिका, रूस, फ्रांस, चीन और जापान शामिल हैं। 'इसरो' के अनुसार उसके अत्याधुनिक प्रक्षेपण यान 'पीएसएलवी–एक्सएल' का इस्तेमाल नवम्बर 2013 में शुरू होने वाले इस मंगल अभियान के लिए किया जाएगा। मंगल अभियान में इस्तेमाल होने वाले आर्बिटर का निर्माण चन्द्रयान–1 की तर्ज पर किया जा रहा है। इसका कुल वजन 1350 किलोग्राम है। आर्बिटर के निर्माण कार्यों की समीक्षा की जा रही है कि इसे अक्टूबर 2013 तक तैयार कर लिया जाएगा। यान की निगरानी के लिए नियन्त्रण केन्द्र में सभी तैयारियां की जा रही हैं तथा सहयोग के लिए दुनियां के अन्य देशों में स्थित नियंत्रण कक्षों से भी संपर्क किया जा रहा है।



इस अभियान के लिए नवम्बर 2013 समय चुना गया है क्योंकि इस समय मंगल ग्रह धरती के करीब होगा। ऐसी खगोलीय घटना 27 वर्षों में एक बार घटित होती है। मंगलयान का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या वहां जीवों के जीवन के लिए अनुकूल स्थितियां हैं? मंगलयान ग्रह की मिट्टी के नमूनों को इकट्ठा करके यह पता लगायेगा कि क्या कभी मंगल पर जीवन था? मंगल की सतह के बारे में भी जानकारियां हासिल की जाएंगी। मंगल ग्रह पर जीवन की संभावनाएं तलाशने पर विशेष जोर दिया जाएगा। मंगल मिशन के दौरान भारत मीथेन के रहस्य को सुलझा लेगा, साथ ही मंगल पर इसके अस्तित्व का पता लगाने की कोशिश की जाएगी। अभी तक की जानकारी के अनुसार हमारे सौरमण्डल में केवल पृथ्वी पर जीवन है। वैसे शुक्र ग्रह हमारी पृथ्वी के करीब तो है लेकिन वहां की परिस्थितियां जीवन के प्रतिकूल हैं। मंगल धरती के बहुत करीब है, वहां वायुमंडल बहुत विरल है, और उसमें ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम है। साथ ही उसके आस–पास चुंबकीय पदार्थ होने के बावजूद वहां कोई चुंबकीय क्षेत्र नहीं है, जो कि एक सवाल बना हुआ है। वैज्ञानिकों को आशा है कि इन सब सवालों के जवाब खोजने में यह अभियान महत्वपूर्ण साबित होगा।

इस अभियान में 15किलोग्राम के पांच एक्सपेरिमेंटल पेलोड भेजे जाएगें। इनमें कैमरे और सैंसर जैसे उपकरण शमिल हैं जो मंगल के वायुमण्डल और उसकी दूसरी विशिष्टताओं का अध्ययन करेंगे। मंगल के लिए जो मीथेन सेंसर भेजा जाएगा उसका वजन 3.59 किलोग्राम होगा। यह सेंसर मंगल के पूरे डिस्क को छः मिनट के अंदर स्कैन करने में सक्षम है। दूसरा उपकरण थर्मल इंफ्रारेड स्पेक्ट्रोमीटर है। इसका वजन चार किलोग्राम होगा। यह मंगल की सतह का मापन करेगा। एक और उपकरण मार्स कलर कैमरा है जिसका वजन 1. 4किलोग्राम है। इसके अलावा लाइमैन–अल्फा फोटोमीटर का वजन 1.5 किलोग्राम है तथा यह मंगल के वातावरण में एटॉमिक हाइड्रोजन का पता लगाएगा। मंगलयान को लाल ग्रह के निकट पहुंचने में आठ महीनें लगेंगे। मंगल की कक्षा में स्थापित होने के बाद यह यान मंगल के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां भेजना शुरू करेगा। भारत का मंगलयान मंगल के धरातल पर उतरेगा तो नहीं, लेकिन वह न्यूनतम 500 किलोमीटर तथा अधिकतम 8000 किलोमीटर की दूरी बनाए रखते हुए ग्रह की कक्षा की परिक्रमा करेगा।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान का सबसे भरोसेमन्द राकेट 'पीएसएलवी–एक्सएल' मंगलयान को लेकर श्री हरिकोटा से उड़ान भरेगा। पीएसएलवी मंगलयान को अंतरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में स्थापित कर देगा। इसके बाद मंगलयान के छः इंजन चालू होकर इसे पृथ्वी की उत्केन्द्री कक्षा में ऊपर उठा देगा। तब मंगलयान 600 से 2.15 लाख किमी. दूर रहते हुए पृथ्वी की परिक्रमा करने लगेगा। इसके बाद एक बार यान के इंजन फिर चालू किए जाएंगे जो मंगलयान को पृथ्वी की कक्षा से निकाल कर उसे सूर्यलक्ष्यी पथ पर मंगल की ओर अंतरग्रही यात्रा पर भेज देंगे। मंगलयान में ऊर्जा की आपूर्ति हेतु 760 वाट विद्युत उत्पादन करने वाले सौर पैनल लगे होंगे। यदि सब कुछ योजनानुरूप चला तो मंगलयान सितम्बर 2014 में मंगल की कक्षा में पहुंच जाएगा। पृथ्वी से बाहर ग्रहों के बीच किसी यान को भेजने का भारत का यह पहला अवसर होगा। यदि भारत अपने मंगलयान को सुरक्षित मंगल की कक्षा में पहुंचा कर उसे ठीक से स्थापित करके बखूबी नियंत्रित रख लेता है तो देश के लिए यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। इस तरह हम देखते है कि भारत ने अभी तक अपने अंतरिक्ष कार्यक्रम में आशातीत सफलता प्राप्त की है तथा यह कार्यक्रम निरन्तर नयी बुलंदियों की ओर अग्रसर है। स्वर्णजयन्ती वर्ष में प्रस्तावित चन्द्रयान–2 तथा मंगलयान की सफलता भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में दर्ज की जाएगी।

संदर्भ

1. भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, इसरो की वेबसाइट (http://www.isro.org)
2. विकीपीडिया मुक्त ज्ञानकोष (http://www.wikipedia.org)
3. मिश्र, कृष्ण कुमार (संपा0)(2009) ज्ञान–विज्ञान–समकालीन, शैक्षिक निबन्ध, होमी भामा विज्ञान शिक्षा केन्द्र (टी0 आई0 एफ0 आर0), मुंबई।
4. मिश्र, शिवगोपाल तथा मिश्र, आशुतोष(1998) अंतरिक्ष की रोचक बातें, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
5. कालीशंकर(2004) अंतरिक्ष अन्वेषण का स्वर्णयुग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
6. अग्रवाल, राधाकान्त(2012) भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम–पचास साल का सफरनामा, अविष्कार।
6. विविध इंटरनेट स्रोत।

आओ संवारे जैवविविधता

नवनीत कुमार गुप्ता
सी–24, विज्ञान प्रसार, कुतुब संस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली–110016
ngupta@vigyanprasar.gov.in

जैवविविधता और इसके अन्य अंग मानव के अस्तित्व के आधार हैं। इस जैवविविधता के कारण ही हमें भोजन, ऊर्जा, दवाएं, परितांत्रित स्रोत, वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी और छह अरब से अधिक लोगों को सांस्कृतिक आधार मिलता है। जैवविविधता नष्ट होने से हमारे समाज या आर्थिक तंत्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके सैंकड़ों उदाहरण उपस्थित हैं, कितने विस्थापन हो रहें हैं, कितने बीमार पड़ रहें हैं, कितनी भुखमरी बढ़ रही है। संयुक्त राष्ट्र की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार सन् 2020 तक विश्वभर में करीब पांच करोड़ पर्यावरण विस्थापित होंगे। और यह इसलिए विस्थापित होंगे क्योंकि जलवायु परिवर्तन के कारण खाना–पानी मिलना दुरूह हो जाएगा, यानी जैवविविधता का नाश होगा जिससे विस्थापन की प्रवृत्ति और बढ़ेगी। सच्चाई यह है कि गरीबी, भूख और अधिकतर अन्य पीड़ाएं इस जैवविविधता की तबाही का ही परिणाम हैं।

जैवविविधता का आर्थिक योगदान पता लगाना काफी मुश्किल है। जैवविविधता का सही मूल्यांकन थोड़ा जटिल है क्योंकि यह पूरी तरह मानव की सोच पर निर्भर करता है और यह सोच समाज और व्यक्तिगत स्तर पर काफी भिन्न हो सकती है। हाथी के उदाहरण से आप इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं। जिन लोगों का हाथी के साथ रोज सामना नहीं होता है, वे लोग हाथी को उसके आकार, उसकी भव्यता और समझदारी के लिए जानते हैं। जो लोग हाथियों के साथ जीवन यापन करते हैं उनके लिए हाथी उनकी फसलों और संपत्ति का दुश्मन है।

समाज में जैवविविधता के योगदान को समझने के लिए हमें थोड़ा गहराई से सोचना होगा। इसके लिए हमें जैवविविधता के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उपयोगों को समझना होगा। जैवविविधता के प्रत्यक्ष स्रोत के उदाहरण सब्जियां, लकड़ी, फल आदि हैं जिन्हें हम सीधे उपयोग में लाते हैं। जबकि पारितंत्र के कार्यों को जैसे पोषक तत्वों के चक्र का लाभ अप्रत्यक्ष रूप से पाते हैं।

जैवविविधता संपूर्ण अंश में हमारे लिए महत्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा "द इकोनोमिक्स ऑफ इकोसिस्टम्स एंड बायोडाइवर्सिटी" अर्थात टीब के अध्ययन में यह सामने आया है कि मानव समाज के लिए जैवविविधता के हनन से होने वाली तमाम मुसीबतें पूरी तरह अवहनीय है। पूरी दुनिया का आर्थिक खेल इन्हीं संसाधनों पर टिका है। सबसे पहले जैवविविधता के आर्थिक महत्व की ही बात करते हैं। इसमें सबसे पहले खाद्य सुरक्षा और जैवविविधता के सम्बन्ध को समझते हैं। करीब 12 हजार वर्षों पहले मानव ने खेती शुरू की और छोटी बस्तियों के रूप में अपने को बसाना शुरू किया। तभी से मानव जैवविविधता को नष्ट करता चला आ रहा है। जब खेती करनी आरंभ की तो इसके लिए जंगल काटे। वैसे आज हमें करीब ढाई लाख तरह के पेड़–पौधों के बारे में पता है, लेकिन हमारा 90 प्रतिशत खाना करीब 100 पौधों की प्रजातियों से ही आता है। एक वैज्ञानिक ने कहा था कि गेहूं और चावल ही मानव सभ्यता और भुखमरी के बीच खड़े हैं।

मधुमक्खी, तितलियां, चमगादड़, पक्षी आदि फसलों और फलों की पैदावार में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। हमारी करीब एक तिहाई खाद्य फसलें प्राकृतिक परागण पर निर्भर करती हैं। फूलों से शहद बटोरने के दौरान मधुमक्खियां परागों को अपने पैरों, परों आदि में चिपकाकर अन्य फूलों तक पहुंचा देती हैं। और इसी परागण के कारण हमें स्वादिष्ट फल और सब्जियां इत्यादि उपलब्ध होती हैं। इसलिए इन मधुमक्खियां की मेहनत का मूल्यांकन हमारे सामर्थ्य की बात नहीं।

मधुमक्खियों पर हमारा नियंत्रण तो नहीं है। लेकिन कीटनाशक छिड़क–छिड़ककर हमनें सभी लाभकारी कीटों जैसे मधुमक्खियों, तितियों आदि को खत्म कर दिया है। और इससे बुरी हालत हमनें मिट्टी की कर दी है। मिट्टी में कई प्रकार के जीवाणु, शैवाल, कवक, छोटे कीट, कृमि आदि होते हैं। यह सभी मिलकर जैविक पदार्थों के विघटन का कार्य करते हैं और पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। इनकी प्रक्रियाओं से जीवमंडल में जीव और निर्जीव पदार्थों के बीच में महत्वपूर्ण तत्वों जैसे नाइट्रोजन, कार्बन और फास्फोरस आदि का संचरण होता है। इसी कारण हमें बढ़िया फसल मिलती है। इन सभी जीवाणु, कवक आदि के सहयोग से बेहद उर्वरक मिट्टी की ऊपरी परत तैयार होती है जिसे ह्यूमस कहते हैं। इस पहली परत को बनाने में प्रकृति को करीब 100 वर्ष लगते हैं। हमने गहन कृषि पद्धति को अपनाकर इस ऊपरी परत को कई क्षेत्रों में नष्ट कर दिया है, अब पूरी तरह वहां की भूमि बंजर हो गई है। इस उर्वरक मिट्टी में फसल उगाकर किसान सालाना अरबों रुपये की पैदावार करता था, जिससे दुनिया में व्यापार का चक्र चलता है। आजकल तो वायदा व्यापार भी चल रहा है, यह फसल के संभावित उत्पादन पर ही तो आधारित है। खाद्य सुरक्षा के लिए जैवविविधता ही एकमात्र सहारा है। यदि पूरी दुनिया को बौनी किस्म का गेहूं न मिला होता, तो क्या हो पाती हरित क्रांति, मिलता भूखों को भोजन? लेकिन अगर दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अमेरिकी कृषि वैज्ञानिकों को जापान का बौनी किस्म का नौरीन गेहूं नहीं मिला होता तो न बौनी किस्म विकसित होती और न आती हरित क्रांति। अब भी जैवविविधता की आर्थिकी समझनी है। पूरी दुनिया इसी जैवविविधता पर निर्भर है। हम खेती में तमाम कीटनाशी आदि प्रयोग करने लगे हैं लेकिन अगर समझ से काम लें तो 99 प्रतिशत फसलों को नष्ट करने वाले कीटों को अन्य जीव जैसे पक्षी, हमारे मित्र कीट और फफूंद की कुछ प्रजातियां ही खत्म कर देती हैं। पूरी दुनिया में इन कीट नाशियों का कारोबार लाखों–करोड़ रुपये का है।

जैवविविधता का आर्थिक महत्व असीम है। जिस जैवविविधता पर पूरा जीवन टिका है उसका सही–सही आंकलन कर पाना तो मुश्किल है, यद्यपि संयुक्त राष्ट्र द्वारा टीब से कराए गए अध्ययन में प्राकृतिक संसाधनों की कीमत कई खरबों डॉलरों में लगाई है। सागर में मछलियों से लेकर आकाश में उड़ने वाले पक्षी सभी किसी न किसी रूप में हमारे काम ही आते हैं। मछलियां जीव प्रोटीन का सबसे बड़ा स्रोत है। सालभर में औसतन 10 करोड़ टन मछलियां पकड़ी जाती हैं। अफ्रीका और एशिया में तो करीब 20 प्रतिशत लोगों के लिए प्रोटीन का प्रमुख स्रोत मछली ही है। दवाओं में जैवविविधता काफी महत्वपूर्ण है और दुनिया में इस समय दवाओं का व्यापार काफी बड़ा है। अकेले भारत में दवाओं का व्यापार लगभग अस्सी हजार करोड़ रुपये का है। अब दवाओं में भी जैवविविधता का हिसाब लगा ले। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विकासशील देशों में करीब 80 प्रतिशत लोग पारंपरिक दवाओं पर निर्भर हैं, जिनका प्रमुख स्रोत पौधे ही हैं। मलेरिया से लेकर कैंसर तक के लिए करीब 6500 प्रकार के पौधे उपचार के लिए उपयोग किए जाते हैं। एक सर्वेक्षण में पता चला है कि विकसित देशों में प्रयुक्त दवा प्रणाली में भी जैवविविधता का बड़ा योगदान है। अकेले अमेरिका में जो 150 दवाएं डॉक्टरों द्वारा लिखी जा रही हैं इनमें से 118 प्राकृतिक स्रोतों पर आधारित हैं। अमेरिका के नेशनल कैंसर इंस्टिट्यूट के अनुसार कैंसर के इलाज के लिए करीब 70 प्रतिशत दवाएं पौधों से ही आती हैं। हाल ही में कोन स्नेल (एक प्रकार के घोंघे) में ऐसा दर्दनिवारक तत्व पाया गया है जो मॉरफीन से हजार गुना प्रभावी है और मॉरफीन की तरह इसकी लत भी नहीं लगती। औद्योगिकी क्षेत्र की बात करें तो सारा उद्योग ही जैवविविधता पर आधारित है। उद्योगों में जैसे कपड़ा उद्योग, लकड़ी, खाद्य तेल, परफ्यूम, रंग, कागज, मोम, रबर, कॉर्क, ऊन, सिल्क, फर, चमड़ा आदि सभी तो पौधों या जीवों की जैवविविधता पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त परिवहन के लिए भी तो पशुओं का उपयोग किया जाता है। पर्यटन में जैवविविधता की भूमिका महत्वपूर्ण है। पर्यटन तो अब बहुत बड़ा कारोबार है, इसमें इकोटूरिज्म का बड़ा महत्व है। प्राकृतिक पर्यटन से देशों में करीब बीस हजार अरब रुपये का वार्षिक व्यापार होता है। अमेरिका के फ्लोरिड़ा स्थित प्रवालभित्तियों से ही प्रतिवर्ष लगभग 6500 करोड़ रुपये की आमदनी होती है। वर्षा कराने के साथ वन्य जीवों और जैवविविधता का संरक्षण जंगल ही तो करते हैं। इसके अलावा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भी जंगलों का बड़ा योगदान होता है। जंगलों के अप्रत्यक्ष लाभ लकड़ी, बीज और फल के अलावा प्रदूषण को अपने में समा लेना, आक्सीजन का उत्पादन करना, मिट्टी के क्षय को रोकना भी हैं।

जैवविविधता मानव की प्रेरणा का स्रोत भी है। उड़ने का विचार शायद पक्षियों को देखकर ही आया होगा जो हवाई जहाज के आविष्कार का आधार बना होगा । और फोन का विचार भी चमगादड़ या शायद अन्य किसी जीव जैसे डालफिन या शार्क को देखकर आया होगा। आजकल सब बड़े मॉल और बड़े शो–रूम में इंफ्रा रेड़ सेंसर लगे रहते हैं जो रेडियो टैग लगी किसी भी वस्तु को देखकर या धातु की किसी वस्तु पर नजर रखते हैं। क्या आप जानते हैं कि इन इंफ्रारेड़ सेंसरों का विचार कहाँ से आया, एक बेहद जहरीले सांप रैटल स्नेक से। उसमें ताप संवेदी अंग होता है जिससे वह अपने शिकार या खतरे को पहचानता है। इसे बायोमिमिक्री कहते हैं। लेकिन जैवविविधता का विनाश किया जा रहा है। जब हम कीटनाशक छिड़कते हैं या बाढ़ आती है या आंधी, बारिश आती है तो इनसे मिट्टी का क्षरण होता है। अब जब खाद और कीटनाशियों से भरा पानी बह कर जलाशय या सागर आदि में मिलता है तो इससे शैवाल बहुत बढ़ जाती है इसे एल्गल ब्लूम कहते हैं। और जब शैवाल ज्यादा होगी तो वह पानी से काफी ऑक्सीजन खींच लेती है और इससे जलीय जीव मर जाते हैं।

जैवविविधता के अंतर्गत प्रत्येक प्रजाति की अपनी–अपनी भूमिका होती है। लेकिन कुछ प्रजातियाँ की–स्टोन प्रजातियाँ होती है, जिनका महत्व अधिक होता है। इसे इस प्रकार समझते हैं कि कभी किसी छोटी सी चट्टान को पहाड़ी पर टिके देखा है? उसके आसपास छोटे–छोटे पत्थर होते हैं, जिसपर वो चट्टान टिकी होती है। लेकिन सिर्फ एक पत्थर ऐसा होता है जिसके हटाने से पूरी चट्टान धड़–धड़ाती हुई नीचे आ गिरती है, बस उस पत्थर को की–स्टोन कहते हैं। की–स्टोन प्रजाति यानी जिसके हटाते ही पूरी चट्टान नीचे गिर जाए, अरे चट्टान नहीं पूरा पारितंत्र। की–स्टोन प्रजाति पूरे पारितंत्र को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ये प्रजातियां कई प्रकार की होती हैं जैसे परभक्षी, आपसी लेन–देन वाली या फिर इंजीनियर। अब परभक्षियों में सागर में रहने वाले ऊदबिलाव को हम की–स्टोन प्रजाति में गिनते हैं। यह ऊदबिलाव सागर में मौजूद सी–अर्चिन जीव को खाते हैं इस तरह से उसकी संख्या पर नियंत्रण रखते हैं और साथ ही सागर में पाए जाने जंगलों यानी केल्प को भी बचाते हैं। सी–अर्चिन केल्प की जड़ों को खाकर उसे नष्ट कर देते हैं, अगर ऊदबिलाव न हों तो केल्प खत्म और पूरा एक सागरी पारितंत्र भी समाप्त। यह की–स्टोन प्रजाति तो बड़े काम की है। अब उत्तरी अमेरिका में रहने वाले ग्रिजली भालू को ही लीजिए, इसे पारितंत्र के इंजीनियर के रूप में की–स्टोन प्रजाति माना जाता है। ग्रिजली भालू दुनिया के सबसे बड़े भालू होते हैं। ग्रिजली भालू महासागरीय पारितंत्र से पोषक तत्वों को जंगल के पारितंत्र में पहुचाते हैं। पहले चरण में सागर से सालमन मछली जो नाइट्रोजन, सल्फर, कार्बन और फास्फोरस से भरपूर होकर हजारों मील का नदियों में सफर तय करती है। फिर इस सालमन को भालू पकड़ते हैं। भालू लाइन लगा कर सालमन मछली को अपने मुंह से पकड़ते हैं। बस यही भालू अपने मल के द्वारा और बची–खुची सालमन मछली के जरिए जगंल की भूमि पर सागर से लाए पोषक तत्व पहुंचा देते हैं। एक अनुमान के अनुसार भालू पकड़ी गई सालमन का आधा भाग जंगल की भूमि पर छोड़ कर उसे उपजाऊ बनाते हैं, जिस पर विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधे पनपते हैं। और अगर ग्रिजली भालू खत्म तो फिर पूरा जंगल ही खत्म हो जाएगा। तो जैवविविधता खत्म होने का पूरे समाज पर काफी बुरा प्रभाव होगा। आप खुद ही सोचे अगर भूमि बंजर तो किसान बेहाल। फिर वो मजदूरी के लिए शहर जाएगा, शहरों में आबादी का बोझ बढ़ेगा, खाद्यान्न उत्पादन कम होने से दाम बढ़ेंगे, फिर शहरी गरीबों की संख्या में वृद्धि होगी और फिर अपराध, लूटमार और अराजकता। इसलिए हमें इस जैवविविधता को सहेजना और संवारना होगा।

संदर्भ

1. मणिवासकम, एन0, हवा और पानी में जहर, नेशनल बुक ट्रस्ट, आइएसबीएन 81–237–2346–66।
2. बसु, विमन(2009) अर्थस् चेंजिंग क्लाइमेट, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली, आइएसबीएन 978–81–148–165–5।
4. ड्रीम 2047 मासिक पत्रिका, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली।

पुष्प उत्पादन में महिलाओं की भूमिका व रोजगार के अवसर

मस्त राम धीमान एवं चन्द्र प्रकाश
भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, कटराईं,
कुल्लू घाटी(हि0 प्र0)–175129.
mrarjun01@yahoo.co.in

पूरे विश्व की आधी जनसंख्या महिलाओं की है तथा प्राचीन काल से ही नारी का योगदान, अनाज, फल–फूल, सब्जियां उगाने तथा भण्डारण एवं संरक्षण में सराहनीय रहा है। हमारे देश में पूरे परिवार के लिए भोजन प्रबंध, पोषण, रखरखाव व भण्डारण की पूरी जिम्मेदारी महिलाओं पर ही होती है। यदि घर की महिला थोड़ी जागरूक हो तो वह भोजन को संतुलित करके पूरे परिवार के पोषण स्तर को ठीक रख सकती है और भोजन में विविधता लाकर उसे आकर्षक बना सकती है। अनाज, दालों, सब्जियों के अतिरिक्त आजकल पुष्प उद्योग भी बड़ी तेजी से बढ़ रहा है जिसमें महिलाओं के लिए रोजगार की आपार संभावनाएं हैं। फल एवं सब्जियों की तरह कटाई एवं तुड़ाई के बाद फूल भी शीघ्र खराब हो जाते हैं। फूलों का परिरक्षण घर में, छोटे एवं बड़े स्तर पर भी किया जा सकता है। यदि थोड़ी बहुत पढ़ी लिखी नौजवान महिलायें इस ओर जागरूक हो जाएं तो वे फूलों में मूल्य–संवर्धन करके इनकी गुणवत्ता को बनाए रख सकती हैं। काम से हमें व्यक्तित्व और जीने के लिए धन कमाने का गौरव प्राप्त होता है। पुष्पोत्पादन महिलाओं की आय में वृद्धि, उनके अधिकार व आत्मनिर्वाह का अवसर देता है। आजकल फूलों की खेती एक महत्वपूर्ण कृषि–व्यवसाय बन गया है जो कि ग्रामीण और शहर से लगते इलाकों में रोजगार के अच्छे अवसर प्रदान कर रहा है। जिन इलाकों में पहले से ही महिलायें इस व्यवसाय से जुड़ी हैं वो पुष्पोत्पादन की आधुनिक तकनीकी को अपनाकर अपनी आय को और बढ़ा सकती हैं।

श्रमिकों की उपलब्धता तथा अनुकूल जलवायु ही भारत को अंतर्राष्ट्रीय पुष्प बाजार में आगे ले जाने के लिए अपेक्षाकृत लाभ व अहम भूमिका निभाता है। अन्य विकसित देशों की एक सूचना व सांख्यिकी के अनुसार पुष्पोत्पादन लगभग 20 मजदूरों को प्रति हैक्टर सीधा रोजगार प्रदान करता है। इसके अलावा अन्य रोजगार के साधन भी बहुत हैं जैसे प्लास्टिक व मिट्टी के गमले बनाना, पोलीहाउस के लिए प्लास्टिक सीट बनाना, कागज, फूलों को पैकिंग के लिए कार्टन बनाना, लम्बर, कृषि–दवाईयां, परिवहन या पुष्प विपणन के लिए शीत वाहन का आयोजन तथा अन्य सेवाओं में 1:2 का अनुपात है। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि आधुनिक पुष्पोत्पादन व्यवसाय लाखों नौजवान पढ़ी लिखी महिलाओं को अच्छा रोजगार प्रदान कर सकता है जो कि सार्थक रूप से राष्ट्रीय आर्थिक वृद्धि में योगदान होगा।



पुष्पोत्पादन में महिला मजदूरों का लगभग 7 प्रतिशत हिस्सा है। प्रारम्भ से ही महिलाओं का कृषि सम्बंधित कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । महिलाओं को पुष्पोत्पादन में वरीयता इस तर्क पर भी दी जाती है क्योंकि पुष्प उत्पादन एक छोटे बच्चे की देखभाल की तरह है जहाँ पर महिला उसकी वृद्धि व विकास के लिए पूरी तरह जिम्मेवार होती है।

पुष्पोत्पादन में महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर व महिला सशक्तीकरण :

फूल उगाने और इन्हें बेचने के अलावा महिलायें ग्रामीण स्तर पर समूह बनाकर या फिर एक दुकान खोलकर जहाँ पर फूलों में मूल्य–संवर्धन कर के जैसे मालाऐं बनाना, रीथ, वैनी, बुक्के, गजरा या फूलों को सुखा कर बड़ी आसानी से इस व्यवसाय को अपना सकती हैं। महिलाओं को इस विकल्प से जोड़ने व महिला सशक्तीकरण के लिए निम्न प्रणालियों में बदलाव की जरूरत है जैसे–

क. महिलाओं की गतिशीलता और सामाजिक पारस्परिक क्रियाओं में बदलाव।
ख. महिलाओं की मजदूरी के आधार में बदलाव ।
ग. महिलाओं के अभिगमन और सम्पति के अपर नियंत्रण में बदलाव।
घ. महिलाओं के फैसला लेने के अपर नियंत्रण में बदलाव ।

पुष्प उत्पादन में महिलाओं का सशक्तीकरण :

अगर महिलाओं को पुष्प उद्योग से जोड़ना हैं और इस उद्योग में वृद्धि करनी है तो विभिन्न स्तर पर बदलाव की बहुत जरूरत है–

1. नीति के स्तर पर
2. कृषि भूमि विस्तार के स्तर पर
3. महिला किसान के स्तर पर

अगर हम नीति के स्तर पर बदलाव की बात करते हैं तो यह एक अच्छा विचार होगा कि जिन किसान महिलाओं के नाम अपनी जमीन है उन्हें सस्ता कृषि ऋण उपलब्ध करवाया जाये। कृषि भूमि विस्तार में महिलाओं को संरक्षित खेती के बारे में जानकारी दी जाए और बहुत सी महिला प्रसार कार्यकर्ताओं की जरूरत है जो महिलाओं को फूलों की आधुनिक खेती, रखरखाव, विपणन इत्यादि के बारे में जानकारी व सूचना प्रदान करें। यहां पर यह भी आवश्यक है कि महिलाओं के लिए ज्ञान व अनुभवी प्रशिक्षण का आयोजन भी किया जाए जो केवल ग्रामीण स्तर पर महिलाओं के लिए ही हो या फिर महिलाओं को किसी घर के सदस्य के साथ किसी आदर्श पुष्प उत्पादन केन्द्र पर प्रशिक्षण उपलब्ध करवाया जाय जहाँ पर निम्न बातें बताई जाएं।



1. पुष्प उद्योग को एक व्यवसाय के रूप में अपनाना।
2. प्रजाति, जलवायु, क्षेत्र के बारे में ज्ञान व पहचान ।
3. बीज उत्पादन, कन्द व अन्य पौधों का चुनाव व रखरखाव।
4. मुख्य कीट, बीमारियों की पहचान, लक्षण व उनकी रोकथाम।
5. फूलों का कटाई उपरांत रख रखाव, मूल्य संवर्धन और विपणन।
6. पुष्प मंडी के लिए संवेदनशील सुझाव ।
7. साधारण हिसाब किताब की व्यवस्था ।

पुष्प क्षेत्र में पुष्प उत्पादक महिलाओं के लिए प्रसार संयोजन बहुत कमजोर या फिर बिल्कुल भी नहीं है। परन्तु भारत सरकार ने आदर्श पुष्प उत्पादन केन्द्र खोल कर इस ओर एक महत्वपूर्ण शुरूआत की है। फिर भी निचले स्तर पर महिला प्रसार कार्यकर्ता बिल्कुल नहीं है। इसके परिणाम स्वरूप महिला पुष्प उत्पादक किसानों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जब तक महिला पुष्प उत्पादकों के लिए कोई खास प्रयत्न नहीं किये जायेंगे तब तक वो इस क्षेत्र में व्यावसायिक खेती करने के लिए मिलने वाली सुविधाओं का लाभ पाने में पीछे रह जाएंगी। आधुनिक पुष्प उत्पादन के बारे में महिलाओं को प्रशिक्षण देने के अलावा यह भी जरूरी है कि उन्हें आपस में इकट्ठे व्यवसाय और संगठन की निपुणता को विकसित करने के लिए कुछ सहायता भी मुहैया करवाई जाए।

यदि ग्रामीण स्तर पर नौजवान लड़कियों के लिए शिक्षा प्रणाली में व्यवसायिक पुष्प उत्पादन विषय शामिल किया जाए तो यह अत्यधिक मददगार होगा। यदि उपयोगी प्रायोगिक शिक्षा स्कूली स्तर पर लड़कियों के लिए शामिल की जाए तो यह उनकी समाजिक और आर्थिक स्थिति को और सुदृढ़ करेगी। प्रायः यह महसूस किया जाता है कि सीमांत या छोटे किसान खासकर महिलाएं, जब किसी समूह में इकट्ठी होती हैं तो वो अपने आप को सशक्त महसूस करती है। एक समूह के सदस्य होने के नाते वे उन सब मूलभूत सुविधाओं को लेने की अच्छी स्थिति में होती हैं जो एक संगठन को सही तरीके से चलाने के लिए दी जाती हैं। पुष्प क्षेत्र में इन अवसरों को प्राप्त करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि महिलाएं 15–20 के समूह में ग्रामीण या खंड स्तर पर किसी प्रसार शाखा या उस क्षेत्र में काम कर रहे एन0जी0ओ0 की सहायता से एक स्वयंसेवक समूह बनाऐं। इस तरह के स्वयं सेवक संगठन आर्थिक सहायताओं व सस्ते ऋणों को लेने की अच्छी स्थिति में होती हैं जो छोटे स्तर पर पुष्प उत्पादक किसानों को दिये जाते हैं । अगर व्यवसायिक प्रेरणा के साथ – साथ तकनीकी प्रशिक्षण व समूह के अनुभव को भी मजबूत किया जाए तो महिलाएं पुष्प उत्पादन को एक स्वतंत्र व्यवसाय के रूप में अपना सकती हैं और अच्छा धन कमा सकती हैं।



पुष्प उत्पादन को बढाने के लिए सरकार के उपक्रम व नीतियां

पुष्पोत्पादन से अच्छी आमदनी, रोजगार के अवसर, महिला किसानों की भागीदारी और निर्यात में बढ़ोत्तरी को देखते हुए भारत सरकार ने इसे एक महत्वपूर्ण क्षेत्र घोषित किया है और इसकी वृद्धि के लिए बहुत सी योजनाएं चलाई हैं। फिर भी यहां पर महिलाओं की ओर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है ताकि इन योजनाओं का लाभ महिलाएं भी उठा सकें अगर संभव हो तो यह नियम बना देना चाहिए कि 30 प्रतिशत लाभ केवल महिला किसानों को दिया जाए।

पुष्पोत्पादन में विविधीकरण से रोजगार की संभावनाएं

1. पारंपरिक फूलों की खेती



आजकल घरेलू बाजार में खुले फूलों जैसे गेंदा, एस्टर, करोसैंडरा, गुलाब, रजनीगंधा, गुलदाउदी इत्यादि की मांग दिन–प्रतिदिन बड़ी तेजी से बढ़ रही है। भारत में फूलों की खेती के अंर्तगत लगभग 1,90,000 हैक्टेयर क्षेत्रफल है जिसमें से 90 प्रतिशत भाग खुले फूलों के अंतर्गत आता है। महिलाएं जिनके पास अपनी जमीन है या फिर वो किराये पर जमीन लेकर इन फूलों की खेती बड़ी आसानी से कर सकती हैं और अपनी आमदनी को बढ़ा सकती हैं। महिलाएं इन फूलों को खुले बाजार में मालाएं बना कर, बुक्के बनाकर या रीथ, गजरा या फलावर अरैन्जमेंट कर के या फिर ऐसे ही मंदिर में चढ़ाने के लिए बेच सकती हैं।

2. मूल्य प्रभावी ग्रीन हाउस प्रौद्योगिकी

मूल्य प्रभावी ग्रीन हाउस प्रौद्योगिकी छोटे स्तर के किसानों खासकर सामान्य महिलाओं के लिए विस्यमकारी अवसर प्रदान करती है। पारंपरिक पुष्प उत्पादक परिवारों में महिलाएं खेत में फूल उगाने में अत्यधिक योगदान देती हैं । महिलाएं रोपाई, निराई–गुड़ाई, सिंचाई, कटाई और फूलों को विपणन के लिए पैक करने तक सभी सस्य क्रियाएं करती हैं । महिलाएं खुले में फूल उगाने में बहुत पहले से ही सहयोगी रही हैं उनके लिए ग्रीन हाउस में फूलों की प्रौद्योगिकी एक वरदान के बराबर है। छोटे स्तर पर ग्रीन हाउस प्रौद्योगिकी इनके लिए अधिक लाभप्रद है क्योंकि यह 500 वर्ग मीटर क्षेत्र में बड़ी आसानी से की जा सकती है। यह इसलिए भी लाभप्रद है क्योंकि हमारे देश में बहुत सी महिलाएं घर का काम करती है और जमीन बहुत कम है जिस कारण इस पर पारंपरिक खेती करना अधिक रूप से उपयोगी नहीं है। परन्तु छोटे स्तर पर संरक्षित फूलों की खेती आर्थिक रूप से लाभप्रद है और महिलाओं की गरीबी को दूर करने में सक्षम होगी।

3. शुष्क पुष्प उत्पादन

यदि हम भारत से पुष्प उत्पादों के निर्यात के पिछले कुछ वर्षों की सांख्यिकी को देखें तो पता चलता है कि पुष्प उत्पादों के कुल निर्यात में करीब दो–तिहाई भागीदारी शुष्क पुष्प उत्पादों की है। इसलिए फूलों का उचित प्रयोग करने व इन्हें खराब होने से बचाने में महिलाएं बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान के साथ–साथ विभिन्न प्रकार से इनमें मूल्य–संवर्धन करके इनकी उपयोगिता बढ़ा सकती हैं। लघु एवं गृह उद्योग के रूप में इस कार्य को करके महिलाएं अच्छा धन अर्जित कर सकती हैं। शुष्क पुष्प उत्पादन के लिए जंगली फूल या पौधों की टहनियां या पत्तों को इकट्ठा किया जाता है या फिर कुछ फूल जैसे डहेलिया, गेंदा, पैन्जी, स्टैटिस, लार्कस्पर, हेलिकरइसिम, रोज हिप, कमल के फूल की डांडी इत्यादि को शुष्क फूलों के लिए बोया जाता है। कुछ फूलों को सुखाने की विधियों का विवरण सारणी 1 में दिया गया है । नमी निष्कासन के सिद्धांत पर पुष्प–पादप परिरक्षण की विभिन्न विधियां विकसित हुई हैं जो इस प्रकार हैं–

1. वायु शुष्कन विधि ।
2. अन्तः स्थापित विधि ।
3. धूप शुष्कन विधि ।
4. बंद चूल्हा गर्म हवा शुष्कन विधि ।
5. सूक्ष्म तरंगी बंद चूल्हा शुष्कन विधि ।
6. दबाव शुष्कन विधि ।
7. सिलिका जैल शुष्कन विधि ।
8. बर्फ बनाकर सुखाने की विधि ।
9. ग्लिसरीन शुष्कन विधि ।
10. ठाँचा रूप में शुष्कन विधि ।
11. निर्वात शुष्कन विधि ।

शुष्क पुष्पों से विभिन्न आकृतियां बनाना

शुष्क पुष्पों से विभिन्न आकृतियां बनाई जा सकती हैं जैसे ग्रीटिंग कार्ड, वैडिंग कार्ड, वॉल सीनरीज, टेबल सीनरीज, टेबल टॉप, वॉल हैंगिग, सैज, फ्लावर अरेन्जमेन्ट, फ्लावर पौट, पौटपौरी, पोमेन्डर इत्यादि।

सारिणी–1. शुष्क पुष्प उत्पादन के लिए उपयुक्त फूल व सुखाने की विधियां

कमांक	फूल का नाम	सुखाने की विधि
1	हेलिक्राइसम	हवा, दबाव शुष्कन
2	गोल्डन रोड	हवा, धूप शुष्कन
3	बोगेनविलिया	हवा, दबाव, बंद चूल्हा गर्म हवा शुष्कन
4	हाइड्रेन्जिया	हवा, धूप, दबाव,
5	गेंदा	हवा, दबाव, बंद चूल्हा गर्म हवा शुष्कन
6	स्टैटिस	हवा, धूप शुष्कन
7	गौम्फरिना	हवा, दबाव, अन्तःस्थापित शुष्कन
8	पैंजी	दबाव, बंद चूल्हा गर्म हवा शुष्कन
9	लार्कस्पर	हवा, दबाव, शूक्ष्मतरंगी बंद चूल्हा शुष्कन
10	गुलाब	सिलिका जैल, अन्तःस्थापित, शुक्ष्मतरंगी बंद चूल्हा शुष्कन
11	कारनेशन	अन्तःस्थापित, शूक्ष्मतरंगी बंद चूल्हा शुष्कन
12	डहेलिया	अन्तःस्थापित, शूक्ष्मतरंगी बंद चूल्हा शुष्कन
13	गुलदाउदी	बंद चूल्हा गर्म हवा, शूक्ष्मतरंगी बंद चूल्हा शुष्कन

4. पुष्प बीज उत्पादन

सफल पुष्प उत्पादन में बीज का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। गुणवत्तायुक्त बीजों की अनुपलब्धता पुष्प उत्पादन बढ़ाने तथा पुष्प उद्योग के प्रसार में मुख्य बाधा रही है। श्रमिकों की अनुपलब्धता तथा प्रतिकूल जलवायु के कारण अमेरिका, जापान, हालैंड तथा यूरोपीय देशों में बीज उत्पादन एक खर्चीला व्यवसाय है। इसलिए विकसित देशों की बीज कम्पनियां विकासशील देशों जैसे थाइलैंड, मलेशिया, भारत, ग्वाटेमाला, कीन्या आदि में बीज उत्पादन करवाती हैं। भारत में सस्ती मजदूरी, विविधतापूर्ण जलवायु की उपलब्धता के कारण विविध प्रकार के बीज उत्पादन की असीम सम्भावनाएं हैं। भारत वर्ष में जहाँ अनाज की फसलों का प्रति हैक्टेयर उत्पादन कम होता है, वहां बड़े पैमाने पर मौसमी फूलों का उत्पादन किया जा सकता है। मौसमी फूलों के प्रति लोगों में जागरूकता नहीं है। इस दिशा में जागरूकता लाई जाए तो देश के ग्रामीण इलाकों में लोगों के लिए रोजगार का सृजन होगा व उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होगी। किसी भी फूल के बीज उत्पादन में उन्नतशील प्रजातियों का चयन एक महत्वपूर्ण कारक है जिस पर गुणात्मक बीज उत्पादन निर्भर करता है। इसलिए बीज उत्पादन हेतु प्रजातियों का चुनाव करते समय कुछ विषेष सावधानियों की आवश्यकता होती है जैसे–प्रजाति जलवायु क्षेत्र के लिए उपयुक्त हो, अधिक उत्पादन क्षमता वाली हो, रोग व कीट रोधी तथा अगेती हो। किसान संकर बीज उत्पादन भी कर सकते हैं। संकर बीज उत्पादन के कई लाभ हैं जैसे संकर बीज अन्य बीजों की अपेक्षा मंहगा बिकता है। संकर बीज के उत्पादन में प्रयोग होने वाली निपुंसीकरण एवं परागण विधियों आदि में महिलाएं अधिक निपुण एवं कार्य कुशल हो सकती हैं यदि उन्हें इस क्षेत्र में व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया जाये तो इससे महिलाओं के लिए रोजगार भी प्राप्त होगा। इसलिए महिला किसान बीज उत्पादन करके न केवल अपने लिए उत्तम बीज प्राप्त कर सकती हैं अन्यथा इन बीजों का विक्रय करके स्वयं को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बना सकती है।

5. अच्छी प्रजाति का पौध उत्पादन



भारत में अच्छी किस्म के पौधे व बीज न मिलने से पुष्प उद्योग पूरी क्षमता से नहीं पनप पाया है यही कारण है कि अभी तक किसान अच्छी किस्म की पौध सामग्री बाहरी देशों से आयात करता है जो बहुत महंगा मिलता है। फूलों की व्यवसायिक खेती व गुणवत्ता पूर्वक व अच्छी गुणवत्ता वाले फूल प्राप्त करने के लिए अच्छे बीज व सामग्री बहुत जरूरी है। अगर महिलाएं इस व्यवसाय की ओर जागरूक हो जाएं और उन्हें सही जानकारी व सूचना दी जाएं तो वो इस व्यवसाय को अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को और सुदृढ़ बना सकती हैं।

6. पॉट प्यूरी

यह एक विशेष प्रकार की शुष्क पुष्प सज्जा है जिसे सजावटी कार्य के लिये और कमरे को तरोताजा रखने के लिए किया जाता है । आमतौर पर पॉट प्यूरी में शुष्क, मीठी सुगंध वाले पुष्प शग होते हैं जिसमें फूल, पत्ते, बीज, टहनियां व जड़ों का प्रयोग भी किया जाता है। इस कार्य के लिए जो सामग्री प्रयोग में लाई जाती है वह अविषाक्त और छोटी–मोटी टूट–फूट को सहन करने योग्य होनी चाहिए । पॉट प्यूरी शुष्क व आर्द्र दो तरह की बनाई जा सकती है । दोनों के अन्दर फेवीकोल की जरूरत होती है, जो सुगन्धित तेलों को अपने अन्दर सोख ले और फिर धीरे–धीरे उन्हें छोड़ सके । फेवीकोल में बहुत महीन पीसा हुआ आयोडीनयुक्त नमक, आइरिस की जड़ें, क्लैमस की जड़ें, गम बेनजोआइन, स्टोरैक्स व अम्बर गरिस मिले होते हैं । ये पदार्थ महीन पीसे हुए होने चाहिए ताकि सुगन्धित तेल इसमें अच्छी तरह समाहित हो जाये । पॉट प्यूरी को बनाने के लिए सूखे फूलों के 2 से 3 प्याले जड़ व पत्तों के साथ, 2 से 3 बड़े चम्मच पीसी हुई दालचीनी, स्टार एनाइज व लौंग, 1/4 कप सूखा संतरा या लेमन के छिलके, 2 बड़े चम्मच फेवीकोल या गोंद और 5 या 6 बूँदें मौलिक तेल को आपस में अच्छी तरह मिला लें तो पॉट प्यूरी बन जाती है । स्थाई कर द्रव्यों को एसेंशियल आयल्स लगाकर मिलने दें और लगभग 3–4 हफ्तों तक रहने दें । फिर इसे फूलों, पत्तियों व शंकुओं इत्यादि से मिला दें। पॉट प्यूरी को शीषे के कटोरे या चीनी मिट्टी के जार या मलमल या फिर छोटी–छोटी सैटिन थैलियों में रुपांकन किया जा सकता है। पॉट प्यूरी में सुगन्ध देने वाले उपयुक्त पौधे हैं जैसे– वर्बीना, गुलाब, आर्टिमेजिया, थाइम, रोजमेरी, अथिलिया, लवैन्डर, सेन्टड जरेनियम, मिन्ट, फेनल इत्यादि। महिलाएं इस कार्य को अपने घर पर बड़ी आसानी से कर सकती हैं और अपनी आर्थिक स्थिति को और सुदृढ़ बना सकती हैं।

पारंपरिक समय में या फिर कहीं भी पुष्प उत्पादन में महिलाओं का सशक्तीकरण करना इतनी जल्दी आसान नही है। परन्तु अगर हम आज की बात करें तो इस तरह के बदलाव के उदाहरण हमें मिलते हैं, फिर भी महिलाओं को पुष्प उत्पादन में बढ़ावा देने के लिए महिलाएं सामाजिक स्तर पर आपस में समूह बनाएं जो कि महिला सशक्तीकरण और इस उद्योग को आगे ले जाने में एक अहम भूमिका होगी।

संदर्भ

1. उपाध्याय, आर0 सी0(2008) एण्टरप्रेन्योरशिप अपारचुनिटीज फार वूमेन इन फ्लोरीकल्चर। प्रस्तुततीकरण: नेशनल सिम्पोजियम ऑन रीसेन्ट एडवांसेज इन फ्लोरीकल्चर, हेल्ड एट नवसारी एग्रीकल्चर यूनीवर्सिटी, नवसारी, मार्च 4.8, 2008, मु0 पृ0 75–80।
2. दत्ता, एस0 के0(1997) डिहाइड्रेशन ऑफ फ्लॉवर्स एण्ड फोइलेज एण्ड फ्लोरल क्राफ्ट, इकोनॉमिक बॉटनी इनफॉर्मेशन सर्विस, एन0 बी0 आर0 आई बुलेटिन, नं0 3, पृ0 20।
3. मानकर, डी0 एम0; शंभारकर, वाई0 बी0 एवं कविताखाडे(2013) रोल पर्फार्मेंस ऑफ फार्म वूमेन इंगेज्ड इन फ्लोरीकल्चर, कर्नाटक जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर साइंस, खण्ड 26, अंक 1, मु0 पृ0 161–163।
4. लाल, रोशन तथा खुराना, अशोक(2011) जेंडर इश्यू : द रोल ऑफ वूमेन इन एग्रीकल्चर सेक्टर, जेनिथ इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ बिजिनेस इकोनॉमिक्स एण्ड मैनेजमेंट रिसर्च, खण्ड 1, अंक 1, मु0 पृ0 1–11।

कस्तूरी मृग

सी0 पी0 सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय, नारायण नगर, पिथौरागढ़(उत्तराखण्ड)–262550
cpsingh26feb@gmail.com



कस्तूरी मृग

कस्तूरी मृग हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक दुर्लभ प्राणी है। यह समखुरयुक्त स्तनधारियों का समूह है। यह पशु मृगों के *अंगुलेटा* कुल की *मॉस्कस मॉस्किफेरस* नामक प्रजाति का जुगाली करने वाला श्रृंगरहित चौपाया है। कस्तूरी मृग की प्रमुखत: चार प्रजातियाँ चीन, रूस, नेपाल एवं भारत के हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाती है। यह उच्च हिमालयी क्षेत्रों में 2500 मीटर से अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में निवास करता है। कस्तूरी मृग को "हिमालयन मस्क डियर" के नाम से भी जाना जाता है। मृग प्रजाति का होने के बाद भी "कस्तूरी मृग" सामान्य मृग से अलग होता है। इसका रंग भूरा और उस पर काले मटमैले धब्बे होते हैं। 60 से 75 मिलीमीटर लम्बे दोनों दांत कैनाइन ऊपर से ठुड्डी के बाहर तक निकले रहते हैं। जिनका उपयोग यह अपनी सुरक्षा और जड़ी–बूटियों को खोदने में करता है। इसकी पिछली टांगे अगली टांगों से लम्बी होती हैं। खुर एवं नखों की बनावट इतनी छोटी, नुकीली एवं विशेष प्रकार की होती है कि बड़ी फुर्ती से भागते समय भी इसकी चारों टांगे चट्टानों के छोटे–छोटे किनारों पर टिक सकती है। खुर के नीचे खुरपोल होते हैं। इन्हीं खुरपालों की सहायता से यह बर्फ में भी आसानी से दौड़ सकते हैं। इनका प्रजनन काल प्राय: नवम्बर, दिसम्बर में होता है।

कस्तूरी मृग की घ्राणशक्ति एवं श्रवणशक्ति बहुत तेज होती है। अपने दोनों कानों को घुमाकर यह खतरे की टोह लेता रहता है। कस्तूरी मृग पहाड़ी जंगलों की चट्टानों के दर्रों, खोहों में निवास करता है। साधारणतया यह अपने निवास स्थान को कड़े शीतकाल में भी नहीं छोड़ता है। आराम से लेटने के लिए यह मिट्टी में गड्ढा बना लेता है। यह उन स्थानों पर रहना पसन्द करता है जहाँ मानवीय हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं होती। घास, पत्ती, जड़ी–बूटियां इसका आहार होता है। कस्तूरी मृग की एक प्रजाति उत्तराखण्ड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाती है। इसका वैज्ञानिक नाम *मॉस्कस क्राइसोगैस्टर* है। यह "हिमालयन मस्क डियर" के नाम से जाना जाता है। कस्तूरी मृग अपनी नाभि में पाये जाने वाली कस्तूरी के लिए प्रसिद्ध है। कस्तूरी केवल नर मृग में ही पायी जाती है। जो इसके उदर के निचले भाग में जननांग के समीप एक ग्रन्थि से स्रावित होती है तथा उदरीय भाग के नीचे एक थैलीनुमा स्थान पर इकट्ठा होती है। एक कस्तूरी मृग में लगभग 30 से 45 ग्राम कस्तूरी पायी जाती है। कस्तूरी का प्रमुखत: उपयोग औषधि रूप में दमा, मिर्गी, एवं निमोनिया आदि की दवाइयों को बनाने में होता है। कस्तूरी से बनने वाला इत्र अपनी खुशबू के लिए प्रसिद्ध है।

दिनांक: 01.07.2013 को दैनिक जागरण समाचार पत्र के "आफत और राहत" खण्ड के अंतर्गत छपी खबर के अनुसार, पिथौरागढ़ के पास ही कुमाऊँ के धारचूला के जंगलों में 16.06.2013 को आई जल प्रलय से क्षति हुई है। उसके पास ही एस्कॉट अभयारण्य है जो कस्तूरी मृग को संरक्षित रखने के लिए सन् 1986 में बसाया गया था। यह देश का अकेला कस्तूरी मृग अभयारण्य है जहाँ लगभग 86 कस्तूरी मृग निवास करते हैं। जो देश–दुनिया और प्रकृति के लिए बेशकीमती हैं। वन अधिकारी आर0 बी0 एस0 रावत के अनुसार वर्तमान प्राकृतिक आपदा के उपरांत इन कस्तूरी मृगों के सुरक्षित होने की कोई भी जानकारी उनके पास उपलब्ध नहीं है। उनके अनुसार, गर्मी में कस्तूरी मृग और अधिक ऊंचे स्थानों पर चले जाते हैं उन्हें यह भी उम्मीद है कि प्रकृति को समझने की उनकी क्षमता और चपलता के कारण वह पर्याप्त समय पहले ही सुरक्षित स्थानों पर चले गये होंगे। केदारनाथ घाटी में जल प्रलय के लिए पहले बादल फटने को कारण बताया जा रहा था। उसके बाद केदारनाथ और गांधी सरोवर से ऊपर ग्लेशियर पिघलने का तर्क दिया जा रहा है, लेकिन पूरी प्रामाणिकता से अभी कोई अंतिम वैज्ञानिक कारण बताया जाना बाकी है। जो भी कारण हो, आपदा को पहले ही भांप लेने की जानवरों की मौलिक क्षमता ही अब इन कस्तूरी मृगों के जीवित बचने में सहयोगी हैं।

भारत सरकार द्वारा कस्तूरी मृग को दुर्लभ प्राणियों की श्रेणी में रखा गया है। इसके संरक्षण हेतु समय–समय पर अनेक अधिनियम बनाये गये हैं किन्तु शिकारियों द्वारा लगातार इसका दोहन किया जाता रहा है। जब तक स्थानीय जनता इसके महत्व को नहीं समझ पायेगी, तब तक कस्तूरी मृग की प्रजाति खतरे में ही रहेगी। आज आवश्यकता है इस दुर्लभ प्रजाति के मृग को बचाने एवं उसे संरक्षित रखने की।

संदर्भ

1. ओजा, जी0 एम0(1988) द हिमालयन मस्क डियर: इनकैश्ड फॉर एक्सटिंकशन, एनवायरनमेंटलिस्ट, विन्टर 1986, खण्ड 8, अंक 4, मु0 पृ0 301–304।
2. "काश! भाग निकले हों कस्तूरी मृग", आफत और राहत पृष्ठ, दैनिक जागरण समाचार पत्र, दिनांक: 01.07.2013

पेट्रोपादप

उदय शंकर अवस्थी
वनस्पति विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, भारत

आज अनेकों ऐसे पौधों का पता लगाया जा चुका है जिनमें पाये जाने वाले "फोटोसिन्थेटिक प्रॉडक्ट्स"(अधिक आणविक भार वाले) तरल हाइड्रो कार्बन को पेट्रोलियम में परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए इन पौधों को "पेट्रोप्लांट" कहते हैं तथा इनकी क्रॉप को "पेट्रोक्रॉप" कहते हैं। कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के डॉ0 कैल्विन ने सबसे पहले प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से बनने वाले हाइड्रोकार्बन का पता लगाया जिससे पेट्रोलियम तैयार किया जा सकता था[2](पाण्डेय, 2011)। यह आशा की जाती है कि पेट्रोप्लांट से 40–50 बैरेल प्रति एकड़ पेट्रोल प्राप्त किया जा सकता है।



यूफोर्बिया स्पेल्नडेंस

यह पौधे आने वाले समय में अत्यन्त उपयोगी साबित हो सकते हैं। 385 से भी अधिक पादप जातियां यूफॉरबियेसी, एसक्लीपीडेसी, एपोसायनेसी, कानेंवानवुलेसी, सैपोटेसी, मोरेसी, डिप्टिरोकारपेसी, कम्पोजिटी लेग्यूमिनोसी तथा कुछ अन्य पादप परिवार के सदस्यों में हाइड्रोकार्बन की अधिक मात्रा पायी जाती है। वर्तमान में यह प्रयास किये जा रहे हैं कि इन पौधों को अधिक से अधिक संख्या मे लगाया जाय और इनमें पाये जाने वाले हाइड्रो कार्बन को पेट्रेलियम में परिवर्तित किया जाय। *यूफोर्बिया हिरटा, यू स्पलेंडेन्स, यू पुलचेरिमा,* से अधिक मात्रा मे पेट्रोल प्राप्त होता है । जेट्रोफा भी इसी श्रेणी में आता है। ऐसा समझा जाता है कि इन पौधों से प्राप्त होने वाले तेल से परंपरागत तरीके से प्राप्त होने वाले डीजल तथा पेट्रोल की कमी को पूरा किया जा सकेगा। नेचुरल गैस भी इनके हाइड्रोकार्बन से प्राप्त होती है। इसीलिए इन पौधों को विकल्प के रूप मे देखा जा रहा है। *जैट्रेफा क्यूरास* से मिलने वाले तेल को भी पेट्रोलियम में बदला जा सकता है। इसी तरह कुछ अन्य पौधों से मिलने वाले तेल को भी पेट्रोलियम में बदला जा सकता है जैसे *कारथेमस टिंकटोरियस, हेलिएन्थस एनुअस, रिसिनस कम्यूनिस, मधुका इंडिका, अरेकिस हाइपोजिया, ग्लाइसीन मैक्स,* आदि[2](पाण्डेय, 2011)। नेचुरल गैस भी इनके हाइड्रोकार्बन से प्राप्त होती है। इसीलिए इन पौधों को विकल्प के रूप में देखा जा रहा है।

उपरोक्त पौधों की एक यह भी विशेषता है कि इन्हें आसानी से लगाया जा सकता है। इनके लिये अधिक खाद पानी की भी आवश्यकता नहीं होती है। यही नहीं, खनिज तेल से डीजल, पेट्रोल प्राप्त करने की प्रक्रिया जटिल है और वातावरण भी प्रदूषित होता है परन्तु पेट्रोप्लांट से पेट्रोल प्राप्त करना आसान है और वातावरण भी प्रदूषित नहीं होता है। कुछ अन्य पादप प्रजातियां जैसे *कोपेफेरा लैड्सडॉर्फियाइ* और *को0 मल्टीजुगा* में तेल की मात्रा बहुत अधिक होती है। इन पौधों से प्राप्त होने वाले तेल को सीधे डीजल इंजन में इस्तेमाल किया जा सकता है बिना किसी प्रक्रिया के तथा बिना साफ किये।

भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून(उत्तराखण्ड), राष्ट्रीय वनस्पति शोध संस्थान, लखनऊ, मे पेट्रोप्लांट पर शोध कार्य किया जा रहा है[1](शुक्ला तथा चन्देल, 2010)।

कुछ शैवालों में भी हाइड्रो कार्बन पाये गये हैं जैसे *बॉट्रियोकॉकस ब्राउनियाइ* तथा *क्लोरेला पायरनॉइडोसा*। अतः इनकी उपज बढ़ा कर इनसे अधिक पेट्रोल प्राप्त किया जा सकता है।

हमारी खनिज सम्पदा सीमित है यदि इसका अंधाधुंध दोहन होता रहा तो आने वाले समय में हमारे यह सीमित भंडार समाप्त हो सकते हैं। अतः हमें उनका संरक्षण करना होगा तथा अन्य वैकल्पिक श्रोतों का पता लगाना होगा। इसीलिए इस दिशा में किया गया यह प्रयास निश्चय ही एक आशा की किरण के रूप मे देखा जा रहा है। परन्तु इस ओर अभी और शोध की आवश्यकता है।

यद्यपि चीन में तमाम पेट्रोकेमिकल उद्योगों से एक तरफ यदि बहुतायत में आर्थिक लाभ हो रहा है तो वहीं पर्यावरण को खतरा भी पैदा हो गया है तथा उसके पास के समुद्र, मृत समुद्र बनते जा रहे हैं। जिसके कारण वहाँ इसका विरोध प्रारम्भ हो गया है।

संदर्भ

1. शुक्ला, आर0 एस0 तथा चन्देल, पी0 एस0(2010) ए टेक्स्ट बुक ऑफ प्लांट इकोलॉजी, एस0 चांद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, मु0 पृ0 1–544।

2. पाण्डेय, एच0 पी0(2011) इकोनॉमिक बॉटनी, सिल्वर लाइन पब्लिकेशंस, भारत, मु0 पृ0 1–610।

पार्थेनियम से कैसे बचें

पी0 के0 मुखर्जी
ए0 ई0 528, साल्ट लेक
कोलकता(प0 बं0)–700064, भारत



पार्थेनियम का पौधा



पार्थेनियम का फूल

पार्थेनियम के पौधे के पत्ते में "पार्थनिन" नाम का एक बहुत जहरीला रासायनिक पदार्थ मौजूद है। वह मनुष्य शरीर के साथ लग जाने पर "एग्जिमा" जैसी त्वचा की व्याधि उत्पन्न कर सकता है, जिसका उपचार लगभग असंभव है। इसके प्रभाव से त्वचा में शोथ, रिसाव, कालेपन, मोटाई और रूखापन आदि हो सकते हैं। आँख, गले के दोनों हिस्से, कपाल और कोहनी में इसका ज्यादा प्रभाव पड़ता है। इस पौधे के रेणु से एलर्जी होने पर श्वांस नली में संक्रमण होने का खतरा भी बढ़ जाता है। मनुष्य के अलावा पशु और पक्षी भी इस पौधे के सन्निकट रहने से बीमार हो सकते हैं। पार्थेनियम के पौधे से निकलने वाला रस उसकी गन्ध या उसके सूखे हुए टुकड़े का जहरीलापन संलग्न पेड़ पौधों का उत्पादन कम कर देता है।

फल या फूल के बनने से पूर्व ही इस पौधे को जला देना चाहिए। रासायनिक तरीके से चूना या नमक पानी या खर–पतवार नाशक के इस्तेमाल से इस पर कुछ असर नहीं होता है। यह आस–पास के पेड़–पौधों और मिट्टी को ज्यादा हानि पहुँचाता है। यह बहुत तेजी से फैलकर बढ़ता है। इसके एक पौधे से आठ या दस हजार बीज पैदा होते हैं। बीज हल्का होने के कारण तेजी से फैल जाता है। पतित जमीन, राह के दोनों ओर तथा लोकालय में इस पौधे का उगना एक गंभीर समस्या है। कृषिविद्, परिवेशविद्, उद्भिदविद् और चिकित्सक सभी ने इसके बारे में चिंता व्यक्त की है।

"सेरेसिया" नामक जंगली पौधों के सहारे से पार्थेनियम के पौधे को विनष्ट किया जा सकता है। इस पौधे के नरम पत्ते को साग की तरह खाया जाता है, और पत्ते के रस से त्वचा की बीमारियों का इलाज होता है। यह पौधा इतने धीरे से बढ़ता और फैलता है ताकि पार्थेनियम वाली समस्या उत्पन्न नहीं होती है। पार्थेनियम का पौधा अपने से उत्सर्जित कई रासायनिक पदार्थों से दूसरे पौधों को हानि पहुँचाता है। एकदम उसी प्रकार से केसिया पार्थेनियम के पौधे को विनष्ट कर देता है। उसकी खुशबू और सूखे अंश में ऐसा कोई संघटक है जो पार्थेनियम के बीज को अंकुरित होने नहीं देता है। हमारे देश में *पार्थेनियम* के पौधे के बाद *केसिया* को देखा गया है। इसीलिए *पार्थेनियम* के पौधे पर इसका गहरा असर है।

इस प्रकार से पार्थेनियम के पौधे को पूरी तरह से समाप्त करने में बहुत समय बीत जायेगा। पर हमें यह आशा है कि केसिया को जमीन पर लगा के चार या पाँच वर्ष में अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

हाल ही में बंगलुरू सिटी कार्पोरेशन बहुत सारे स्थानों पर पार्थेनियम के पौधे उखाड़कर केसिया के बीज बोने का कार्य करने में जुटा है। *केसिया* के बीज के पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करने हेतु कई हैक्टेयर जमीन में *केसिया सेरिसिया* लगाया गया है।

नोट:– प्रस्तुत लेख लेखक के अपने व्यक्तिगत विषय ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित है तथा किसी भी अतिरिक्त अध्ययन सामग्री का प्रयोग नहीं किया गया है।

भारत की भूसंरचना – एक संक्षिप्त परिचय

बी0 एस0 तिवारी[1] एवं संजय शुक्ल[2]
[1]रिटायर्ड प्रोफेसर एवं अध्यक्ष भूविज्ञान विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पंजाब), भारत
bs_tewari@yahoo.com
[2]एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भूविज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कालेज, लखनऊ (उ0प्र0)–226001, भारत
drsanjaygeo@gmail.com

भारत एक विविधता पूर्ण देश है। यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृति, भाषा, वेषभूषा, जलवायु और भूसंरचना एक दूसरे से अलग तथा समृद्ध है जिस पर वहाँ की भौगोलिक स्थित का गहरा प्रभाव होता है। भौगोलिक दृष्टि से भारत को हम निम्नलिखित पांच भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला भाग उत्तर के पर्वतीय प्रदेश हैं, जो पश्चिम से पूर्व की ओर समानान्तर उत्तंग श्रेणियों के रूप में फैले हुये हैं इसे एक्स्ट्रा पेनिन्सुलर पार्ट या हिमालय के नाम से जाना जाता है। दूसरा भाग दक्षिण का त्रिभुजाकार प्रायद्वीप या पठार है जो पेनिन्सुलर पार्ट कहलाता है और समुद्र तक फैला है। तीसरा भाग जो पहले दो भागों के मध्य में स्थित है, गंगा जमुना का मैदान या इन्डोगैन्जेटिक प्लेन कहलाता है। चौथा भाग अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के किनारे के संकीर्ण समुद्री मैदान हैं जिन्हें वेस्टर्न तथा इस्टर्न घाट कहते हैं। पाँचवा भाग राजस्थान का रेगिस्तान तथा उसके दक्षिण पश्चिम में स्थित कच्छ का रण है। इन पाँचों भागों की भूवैज्ञानिक रचना, उत्पत्ति व वहाँ पाये जाने वाले विभिन्न खनिज पदार्थो का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है।

सन् 1910 ई0 में अल्फ्रेड वेगेनर ने दक्षिण अमेरिका के पूर्वी तट और अफ्रीका के पश्चिमी तट के रूपों में इतनी समानता पाई कि उसने इन दोनों महाद्वीपों के मानचित्रों को अलग करके एक दूसरे के समीप रखकर मिलाने का प्रयत्न किया और जिसमें वह पूर्णतः सफल रहे। आज से करीब 450 मिलियन वर्ष पहले पेलियोजोइक एरा में सभी महाद्वीप एक साथ इकट्ठे थे जिसे 'पैन्जिया' के नाम से जाना जाता है जो कि एक बड़े महासागर 'पैन्थालासा' द्वारा घिरा हुआ था। इस पैन्जिया के टुकड़ों में विभाजित होने से विभिन्न महाद्वीपों का विकास हुआ। वेगेनर ने इन दोनो महाद्वीपों की भूतकालिक युग की प्राचीन वनस्पतियों और जीव–जंतुओं में, जो इस समय प्रस्तरों में अवशेष या जीवाष्म के रूप में मिलते हैं में गहरी समानता पाई। इसी अनुभव से वेगेनर ने महाद्वीपो के विग्रह का सिद्धान्त (थियोरी ऑफ कांटिनेंटल–ड्रिफ्ट) प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार अफ्रीका महाद्वीप के पश्चिम में, दक्षिण अमेरिका पूर्व में, मेडागास्कर तथा उत्तर पूर्व में भारत का त्रिभुजाकार प्रायद्वीप और इसके समीप ही आस्ट्रेलिया तथा अन्टार्कटिका के महाद्वीप थे। इन सब प्रदेशों को मिला हुआ भू–भाग गोण्डवाना भूखण्ड के नाम से जाना जाता है। इस भू–खण्ड के उत्तर में इसी प्रकार का एक और भू भाग था जिसे अंगारा भूखण्ड कहते हैं। इन दोनो बड़े भूखण्डों को विभाजित करने वाला जल क्षेत्र टेथिस सागर कहलाया। इसी टेथिस सागर का अवशेष वर्तमान भूमध्य सागर है। सन् 1962 में हेस द्वारा दी गयी समुद्री सतह का विस्तार (सी फ्लोर स्प्रेडिंग) को वाइन और मेथ्यूज(1963) ने अग्रसरित किया जिसके कारण सत्तरवें दशक में मौर्गन(1971), पिचन(1968), डेवी और बर्ड(1970) आदि द्वारा प्रतिपादित प्लेट टेक्टॉनिक्स का सिद्धान्त आया जो महाद्वीपों ओर उसके समुद्री क्षेत्रों के एक साथ 'प्लेट' के रूप में गतिमान होने की पुष्टि करता है। वर्तमान में यह सिद्धान्त भू–विज्ञान में विभिन्न क्रियाओं की विवेचना करने में एक सार्थक भूमिका निभाता है और हमारे हिमालय पर्वत माला की उत्पत्ति जो कि टेथिस सागर के स्थान पर है, पर भी प्रकाश डालता है।

भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप पृथ्वी पर पाई जाने वाली प्राचीनतम शिलाओं का बना हुआ है। ये प्रधानतया आग्नेय (इग्नियस) हैं अर्थात किसी समय में भूगर्भ में उष्णता के कारण द्रव (मैग्मा) की शक्ल में थी और जो द्रव के ठंडा होने पर शिलाओं के रूप में परिवर्तित हो गयी होगी। इसमें से कुछ शिलायें पृथ्वी के प्रथम धरातल का अंश हो सकती है। इस क्षेत्र की रचना में परिवर्तित या कायान्तरित(मेटामॉर्फिक) शिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान है जो कि आग्नेय और अवसादी (सेडिमेंट्री) शिलाओं से ताप, दाब और समय के कारण कायान्तरित हो जाती है।

भारत का त्रिभुजाकार प्रायद्वीप सर्वदा से स्थल नहीं रहा है। पृथ्वी के इतिहास में कम से कम यह भाग तीन बार जल मग्न हो चुका है और लाखों वर्ष समुद्र की सतह के नीचे रहा है। सम्भवतः दो अरब वर्ष पहले यह भाग पहली बार जलमग्न हुआ था और इसके धरातल पर हजारों फीट ऊँची अवसादी शिलाओं का निर्माण हुआ था। कुछ समय पर्यन्त इन शिलाओं ने धरातल के संकुचन के कारण ऊँची–ऊँची पर्वत श्रेणियों को जन्म दिया और शिलायें पर्याप्त रूप से कायान्तरित हो गयीं। वर्षा, वायु, हिम तथा अन्य प्राकृतिक क्षय(वेदरिंग) करने वाली शक्तियों के कारण मारवाड़ की पहाडियों, नीलगिरी की पहाड़ियों और आरावली की पहाडियों के रूप में रह गयी हैं। यह प्रायद्वीप दूसरी बार संभवतः एक अरब वर्ष पूर्व फिर जलमग्न हुआ और इस बार पहले से कुछ कम समय जल में रहा। इस बार पृथ्वी के धरातल पर एकत्रित रेत आदि ने धरातल के संकुचन के कारण पर्वत श्रेणियों को जन्म दिया जिनके अवशेष कड़प्पा की पहाड़ियाँ हैं।

तीसरी बार यह क्षेत्र सम्भवतः 50–60 करोड़ वर्ष पहले फिर जलमग्न हुआ और इस बार जो शिलायें धरातल पर बनी उनसे विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों का निर्माण हुआ। इस समय यह श्रेणियां पहले के आकार की तुलना में बहुत छोटी रह गयी हैं। विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों के उत्थान के बाद यह प्रायद्वीप फिर कभी भी समुद्र में संपूर्ण रूप से जलमग्न नहीं हुआ। हाँ कभी–कभी कुछ हिस्से खाड़ियों के रूप में स्थल पर आ गये थे तथा स्वच्छ जल के दीर्घाकार जल क्षेत्र समय–समय पर यत्र–तत्र बने जिन्होंने विभिन्न प्रकार की अवसादी शैलों को जन्म दिया और जहाँ विभिन्न प्रकार के जीव और वनस्पतियाँ थे जिनके जीवाश्म आज हमें अवसादी शैलों में मिलते है। उन्हीं कुछ झीलों में समीप के जंगलो की वनस्पति के द्वारा कोयले की शिलाओं का निर्माण हुआ। भारत के प्रायद्वीप में आग्नेय शिलाओं का बाहुल्य है और आग्नेय शिलायें ही मुख्यतया खनिज पदार्थों की उत्पादक है। इस क्षेत्र में

सोना, ताँबा, क्रोमाइट यूरेनियम, लोहा, मैगनीज, एस्बेस्टस, टिन, हीरा, अभ्रक, मैग्नेसाइट, ग्रेफाइट, सीसा, जस्ता, चूना पत्थर, ग्रेनाइट, संगमरमर तथा अन्य इमारती पत्थर पाये जाते हैं। इस क्षेत्र का उत्तरी–पूर्वी भाग जो उडीसा, झारखण्ड प्रान्त के हिस्से हैं खनिजों की बहुलता के कारण भारत का खनिज भण्डार कहलाता है।

लगभग 6–7 करोड़ वर्ष पहले भारत प्रायद्वीप गोण्डवाना भूखण्ड से अलग होकर उत्तर–पूर्व की दिशा में बढ़ने लगा। इसी समय इस क्षेत्र के उत्तरी भाग में ज्वालामुखी से निकले लावे ने प्रायद्वीप के एक बड़े हिस्से को आच्छादित कर दिया। इन ज्वालामुखियों का विस्फोट एक–एक कर बहुत समय तक होता रहा। इस लावे से बनी शिलायें मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा कर्नाटक इत्यादि के प्रदेशों में पाई जाती है और इन्हीं से मध्य प्रदेश के पठार, सतपुडा की पहाडियाँ तथा पश्चिमी घाट को जन्म दिया। इन्हें हम डिक्कन लावा के नाम से जानते हैं। इन्हीं शिलाओं के अपक्षय से मध्य प्रदेश की काली मिट्टी अर्थात रेगुर तथा बाक्साइट जो एलुमिनियम धातु का प्रधान खनिज है, का निर्माण हुआ।

गोंडवाना–भूखण्ड तथा अंगारा भूखण्ड के मध्य के टेथिस सागर का तल अब धीरे–धीरे ऊपर उठने लगा, इसका कारण भारत प्रायद्वीप का गोंडवाना भूखण्ड से प्रथक होकर उत्तर पूर्व की दिशा में बढ़ना था। अंगारा भूखण्ड सम्भवतः दक्षिण की ओर बढ़ रहा था। इन दोनों क्षेत्रों के समीप आने के कारण टेथिस सागर के नर्म तल पर दबाव पड़ने लगा और इस कारण उस पर बड़ी–बड़ी सिमटने या सिलवटे पड़ने लगी। समुद्र तल के उत्थान के कारण जल शनैः–शनैः हटने लगा। दबाव के अधिक बढ़ने पर इन्हीं सिमटनों का आकार बढ़ गया और पर्वत माला का रूप लेने लगा। विभिन्न पर्वत खण्ड स्थानान्तरित हुये और अन्य परिवर्तन दिखने लगे। इस प्रकार अंत में हिमालय पर्वत श्रेणियों का जन्म हुआ। यह दबाव, हिमालय का उठना तथा भारत प्रायद्वीप का उत्तर–पूर्व में बढ़ना अब भी जारी है जिस कारण हिमालय व उसके आसपास के क्षेत्रों में भूकम्प आते रहते है।

जिस समय हिमालय ऊपर उठ रहा था उसके समीप दक्षिणी भाग कुछ नीचे की ओर फैल रहा था और एक बड़ी खाई का रूप ले रहा था। हिमालय के दक्षिण में बनी यह खाई कुछ समयोपरान्त पर्वतीय नदियों द्वारा लाई गयी मिट्टी से पट गयी जिसे हम गंगा जमुना का मैदान कहते हैं। इस मैदान में विभिन्न नदियों द्वारा लाई मिट्टी की गहराई उत्तर में 4000 मीटर तक हो सकती है तथा दक्षिण में यह गहराई बुन्देलखण्ड की तरफ घटती जाती है। इस मैदानी भाग में नीचे विन्ध्य तथा बुन्देलखण्ड की शिलायें मिलती हैं। अवसादी शिलाओं में साधारणतया खनिजों की न्यूनता होती है। भारत में मुख्यतया दो खनिज पाये जाते हैं एक पत्थर का कोयला और दूसरा पेट्रोलियम खनिज तेल। कोयला स्वच्छ जल की अवसादी शैलों में बहुतायत से मिलता है किन्तु समुद्री अवसादी शिलाओं में इसकी कमी रहती है और यह निम्न कोटि का होता है। हिमालय की समुद्री अवसादी शिलाओं में काश्मीर, नेपाल तथा असम में पत्थर का कोयला पाया जाता है।

पेट्रोलियम या खनिज तेल समुद्री अवसादी शिलाओं में मिलता है हिमालय के कुछ क्षेत्रों में ही खनिज तेल पर्याप्त भाग में एकत्रित रह गया है जिसका कारण है शिलाओ पर पड़ने वाला अत्यधिक तनाव। जिसके कारण वहां का खनिज तेल स्थानान्तरित हो गया होगा व कम दबाव वाले क्षेत्रों में एकत्रित हो गया होगा। असम और गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों, राजस्थान, हिमांचल, पश्चिमी बंगाल पर गंगा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी तथा पश्चिमी तट पर मुम्बई हाई से हमे खनिज तेल व प्राकृतिक गैस समुचित मात्रा में मिलती है।

गंगा जमुना के मैदानी क्षेत्रों में खनिज पदार्थों का अभाव है क्योकि खनिज अधिकतर आग्नेय तथा कायान्तरित शैलों में पाये जाते हैं। यहाँ पर रेत कंकड़, मौरंग आदि ही मिलते है। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के समीपवर्ती संकीर्ण तटीय मैदान समुद्री कटाव के कारण बन गये है इस कार्य में वहाँ की नदियों द्वारा लाई हुयी मिट्टी ने भी विशेष सहयोग दिया है। इन क्षेत्रों में खनिज पदार्थों का अभाव है। परन्तु ट्रावनकोर से कुमारी अंतरीप तक समुद्र की रेत में मोनेजाइट नामक खनिज प्रचुर मात्रा में मिलता है यह खनिज समीपवर्ती आग्नेय शिलाओं में अल्प मात्रा में मिलता है तथा वहाँ से नदियों और नालों द्वारा बहकर समुद्र तट पर एकत्रित हो जाता है। इस रेत में लोहे तथा टाइटेनियम के खनिज भी मिलते हैं। मोनेजाइट एक रेडियोएक्टिव खनिज है जिसमे थोरियम पाया जाता है इसका अणुशक्ति के उत्पादन में उपयोग होता है।

राजस्थान की मरूभूमि तथा कच्छ के रण भी भूवैज्ञानिक इतिहास में अल्प अवस्था वाले हैं। इनका निर्माण गंगा जमुना के मैदान के प्रादुर्भाव के पश्चात् हुआ है। इस रेगिस्तान की उत्पत्ति का मूलभूत कारण इस क्षेत्र में वर्षा की कमी तथा तेज वायु का अपने साथ बालू तथा लवण के कणों को अरब सागर तथा कच्छ के रण से उड़ाकर लाना है। मानसूनी हवाओं को रोकने में आरावली की पहाड़ियाँ असमर्थ हैं क्योंकि वे वायु के रूख के सामानान्तर है। वर्षा की कमी के कारण से रेत व नमक बह नही पाता है। इसके अलावा बालू, मिट्टी, गर्म व तेज हवाओ के कारण सूखी शिलाओं का अपक्षय अधिक होता है। राजस्थान में फुलेरा के पास साँभर झील में नमक की उत्पत्ति भी रेगिस्तान से आये नमक कणों से हुई है जो वर्षा तथा वायु के साथ यहाँ जल में एकत्रित हो जाते है। इस रेगिस्तान में रेत की गहराई कहीं कुछ मीटर तो कही अत्यधिक है। मरूभूमि में यहाँ वहाँ आरावली की आग्नेय तथा कायान्तरित शिलायें मिलती है जिसमे अभ्रक, संगमरमर, पन्ना, गारनेट आदि की खाने हैं। जहाँ पर अवसादी शिलायें हैं उनमें कोयला, लिग्नाइट, मुल्तानी मिट्टी, फास्फोराइट, जिप्सम आदि खनिज पाये जाते हैं।

कच्छ का रण समुद्र की सतह से शायद ही कुछ ऊँचा है। यह एक भीषण रेगिस्तान तथा दलदल है जो कुछ हजार वर्षों पूर्व अरब सागर का एक अंग था। आज भी वर्ष के कुछ महीनों में जब तेज पछुआ हवायें चलती है तो अरब सागर का जल यहाँ पर भर जाता है। यहाँ पर जीव–जंतुओं तथा वनस्पतियों की कमी है। सूर्य तप्त मिट्टी एवं नमक के कण दिन में चकाचौंध उत्पन्न करते हैं। खारे पानी की झीलें यहाँ की विशेषता है जो सूखने पर मृगमरीचिका दिखाती है। लूनी तथा बन्नास आदि नदियों की लाई मिट्टी ने अरब सागर की इस उथली खाड़ी को भर दिया है। कुछ समय उपरान्त यह समुद्र सतह से ऊँचा हो जायेगा और गुजरात के मैदान की तरह हो जायेगा।

संदर्भ

1. हेस, एच0 एच0 (1962) हिस्ट्री ऑफ ओशिन बेसिन्स इन पेट्रोलॉजिक स्टडीज : ए वाल्यूम इन ऑनर ऑफ ए0 एफ0 बडिंगटन (सम्पादक), जियोला0 सोसा0 अमे0, मु0 पृ0 599–620।
2. डेवी, जे0 एफ0 तथा बर्ड जे0 एम0 (1970) माउन्टेन बेल्ट्स एण्ड द न्यू ग्लोबल टेक्टानिक्स, ज0 जियोफिस0 रिस0, खण्ड 75, मु0 पृ0 2625–2647।
3. ले पिचन, एक्स (1968) सी फ्लोर स्प्रेडिंग एण्ड कांटिनेन्टल ड्रिफ्ट, ज0 जियोफिस0, खण्ड 73, मु0 पृ0 3661–3667।
4. मॉर्गन, डब्ल्यू0 जे0 (1971 ए) कंवेक्शन प्लूम इन द लोवर मेन्टल, नेचर, खण्ड 230, मु0 पृ0 42–43।
5. मॉर्गन, डब्ल्यू0 जे0 (1971 बी) राइजेज, ट्रेंचेज, ग्रेट फाल्ट्स एण्ड क्रस्टल ब्लॉक्स, ज0 जियोफिस0 रिस0, खण्ड 73, मु0 पृ0 1959–1982।
6. वल्दिया, के0 एस0 (2010) मेकिंग ऑफ इण्डिया, जियोडायनमिक इवोल्यूशन, मैकमिलन, पृ0 816।
7. वाइन, एफ0 जे0 तथा मैथ्यूज, डी0 एच0 (1963) मैग्नेटिक एनामोलीज ओवर ओशियानिक रिजेस, नेचर, खण्ड 199, मु0 पृ0 947–949।

हस्त विसंक्रम (हैण्ड सैनिटाइजर) : सत्य व मिथ

प्रेक्षा राजन
छात्रा, बी0टेक0–द्वितीय वर्ष
एस0आर0एम0 विश्वविद्यालय
मोदीनगर, गाजियाबाद(उ0 प्र0)–201204, भारत
prekrajan@rediffmail.com

हमारी जीवनशैली दिनों–दिन परिवर्तित होती जा रही है। आज से 10–15 वर्ष पहले हमारी दिनचर्या में 4–5 दैनिक देखरेख के उत्पाद सम्मिलित थे, परन्तु अब तो प्रत्येक माह इन उत्पादों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती जा रही है, इन उत्पादों में हमारी त्वचा, बाल, दाँत, स्वास्थ्य व हमारे आसपास के वातावरण को सुन्दर व सुरक्षित बनाने की बात इतने आकर्षक ढंग से की जाती है, कि यह उत्पाद अब हमारे दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग बनते जा रहे हैं।

इसी क्रम में हाथों को कीटाणुमुक्त रखने के लिए हस्त विसंक्रमण उत्पाद (हैण्ड सैनिटाइजर) बाजार में अनेकों नामों व विशेषताओं के साथ उपलब्ध हैं। यह उत्पाद प्लास्टिक की छोटी–बड़ी शीशियों में सुविधाजनक आकार में मिलता है, जिससे यात्रा, कार्यालय व स्कूल जाने वाले लोग इसका सुगमता से प्रयोग कर सकते हैं। इस उत्पाद की कुछ बूंदो को हथेली पर रगड़कर बिना पानी के हाथों को कीटाणु मुक्त किया जा सकता है। साबुन रहित यह घोल हाथों से 99.97% तक कीटाणु हटाने का दावा करता है। अतः आज के प्रदूषित व कीटाणुयुक्त वातावरण में यह उत्पाद एक वरदान प्रतीत होता है जो हमें सुरक्षा आवरण प्रदान करता है।

रासायनिक अवयवों के दृष्टिगत यह उत्पाद दो प्रकार के होते हैं–

1. **अल्कोहल मुक्त** – इसमें मुख्य अवयव बेन्जाल्कोनियम क्लोराइड तथा क्लोरीनेटेड ऐरोमैटिक यौगिक ट्राइक्लोरेन या पोवोडीन आयोडीन पाया जाता है। यह सूक्ष्म जीवियों की भित्ति में पायी जाने वाली प्रोटीन को विरूपित कर देता है। यह विसंक्रमक सूक्ष्मजीवियों की विस्तृत श्रृंखला पर प्रभावी सिद्ध हुए हैं।
2. **अल्कोहल युक्त** – इसमें 60–62% तक इथेनॉल अल्कोहल व पॉली इथायलीन ग्लायकॉल आदि पाया जाता है। अल्कोहल सूक्ष्म जीव की कोशिका भित्ति में लिपिड (वसा) को विरूपित कर कोशिका के अन्दर के पानी को खींचकर उसे मार देता है।

हस्त विसंक्रमक का प्रसार

इस उत्पाद का प्रचलन यूरोप में लगभग एक दशक पहले प्रारम्भ हुआ परन्तु स्वाइन फ्लू फैलने के दौरान इसके प्रसार में लगभग 245% तक की वृद्धि पायी गयी।

भारत में इसका प्रचलन गत 4–5 वर्षों में बढ़ा है तथा अब लगभग 20% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि पायी जा रही है। भारत में ज्यादातर उत्पाद अल्कोहल युक्त प्रकार के हैं क्योंकि अल्कोहल युक्त विसंक्रमक, अल्कोहल मुक्त विसंक्रमक की तुलना में काफी सस्ते होते हैं, परन्तु फिर भी यह साबुन या तरल साबुन घोल (हैण्डवॉश) की तुलना में काफी महंगे होते हैं।

भारत में पहला विसंक्रमक हिमालया कम्पनी ने 2004 में बाजार में उतारा था जो अल्कोहल बेसयुक्त एक हर्बल उत्पाद था, जिसमें धनिया, नींबू व खस का अर्क प्रयोग किया गया था। इस समय बाजार में हिन्दुस्तान लीवर का लाइफबॉय गोदरेज का प्रोटेक्ट, रेमिट बेन्क्सिर का डेटॉल आदि अनेकानेक ब्राण्ड नामों से यह उत्पाद उपलब्ध है।

हस्त विसंक्रमक का प्रभाव

यद्यपि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी हैण्ड हाइजीन गाइडलाइन (पृष्ठ 33) पर हैण्ड सैनिटाइजर प्रयोग को बढ़ाने की सिफारिश की है तथा हाथ साफ करने के अन्य विकल्पों यथा साबुन व हैण्डवॉश की तुलना में इसको अधिक क्षमतावान माना है।

परन्तु दैनिक जीवन में इसके बढ़ते प्रयोग ने वैज्ञानिकों व शोधार्थियों का ध्यान भी खींचा है, तथा इस उत्पाद के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को लेकर अध्ययन प्रारम्भ हो चुके हैं, तथा इन अध्ययनों के परिणाम इस सुरक्षामिथ को तोड़ने वाले हैं।

अमेरिका में एक पर्यावरण पर कार्य करने वाले दल के सदस्यों ने हाथ विसंक्रमक घोल प्रयोग करने वाले लोगों पर अध्ययन किया और पाया कि इसमें प्रयुक्त अल्कोहल त्वचा, आँख व फेफड़े में क्षोभक(जलन) उत्पन्न करता है, तथा बेन्जाल्क्लोनियम क्लोराइड द्वारा अस्थमा व त्वचा की बीमारी उत्पन्न हो रही है।

अमेरिका में ''सेन्टर फार डिसीज कन्ट्रोल संस्था'' के शोधकर्ताओं ने पाया कि न्यू हैम्पशायर व वरमाण्ट में नोटो विषाणु संक्रमण के मामले अचानक बढ़ गये। यह विषाणु (गैस्ट्रोइन्ट्राइटिस) पेट व आंत की बीमारी उत्पन्न करता है। सर्वेक्षण में यह पता लगा कि यह रोग उन लोगों को हो रहे हैं जो अपने दैनिक जीवन में सैनिटाइजर का प्रयोग किया करते थे। अतः स्पष्ट है कि यह नोटो विषाणु के ऊपर प्रभावी नहीं हो रहा था।

अमेरिका की ही ''अमेरिकन एसोशिएसन ऑफ पायजन कन्ट्रोल सेन्टर'', वर्जीनिया ने 2005–2009 तक आंकड़े एकत्र किये जिसमें हैण्ड सैनिटाइजर द्वारा विषाक्तता के 68712 मामले पाये गये, जिसमें 81% मामले 6 वर्ष से छोटे बच्चों में रिपोर्ट किये गये। अतः यह उत्पाद स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, ऐसा ज्ञात हुआ(1)।

भारत में ''भारतीय विज्ञान संस्थान बंगलूरू'' की डा0 दीपशिखा चक्रवर्ती ने हैण्ड सैनिटाइजर की सुरक्षा का अध्ययन किया तथा पाया कि यह बैक्टीरिया व विषाणु (वाइरस) को मारता तो है परन्तु उनकी आणविक संरचना को समाप्त नहीं करता है, जिसको ''पैथोजन एसोशिएटेड मालीकुलर पैटर्न'' कहा जाता है जिसमें लाइसोसोम, डी0एन0ए0 व आर0एन0ए0 शामिल है। जब भोजन किया जाता है तो यह पैटर्न आहारनाल में जाकर वहां के आन्तरिक सतह से जुड़कर अलग प्रकार की संरचनाए बनाते हैं। जिसके कारण पाचन व मलसम्बन्धी बीमारियां (बाउल डिसआर्डर) उत्पन्न होती है। इस दिशा में आगे कार्य जारी है(2)। इस प्रकार प्रारम्भिक अध्ययन इस उत्पाद को स्वास्थ्य के लिए पूर्णतः सुरक्षित व हानिरहित नहीं बताते है। अतः समझदारी यही है कि इस उत्पाद का प्रयोग कम से कम या हाथ साफ करने में अन्य विकल्पों के न होने पर आपातकाल में ही किया जाये।

सन्दर्भ

1. डाउन टू अर्थ, मई 16 से 31, 2011।
2. करेन्ट साइंस, मार्च 2012।

तम्बाकू सेवन की बढ़ती प्रवृत्ति एवं उसके दुष्परिणाम

राजेश सिंह[1], साधना चौरसिया[2] एवं राहुल द्विवेदी[2]
शोधार्थी[1] एवं विभागाध्यक्ष[2]
पर्यावरण विज्ञान विभाग, म.गा.चि.ग्रा.वि.वि. चित्रकूट, सतना (म.प्र.)–485001, भारत
[2]वैज्ञानिक, म.प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, सतना (म.प्र.)–485001, भारत
rajeshmsingh31@gmail.com

पृथ्वी पर जीवजगत में मनुष्य सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है। वह सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। समय–समय पर अपने आत्मबल से मानव ने अपनी सर्वश्रेष्ठता का परिचय दिया है। जिस प्रकार मानव अपने आत्मबल से अधिकतम उचाईयों को छूता है उसी प्रकार किसी भी देश को उचाईयों को पाने के लिए उसके सर्वश्रेष्ठ संसाधन होते हैं उसके जनमानस और युवा उस देश के कर्णधार होते हैं। युवाओं की वस्तुस्थिति से देश का भविष्य तय होता है। जितनी मजबूत युवाशक्ति जितने विकसित जागरूक युवा उतना ही विकसित वह राष्ट्र होगा। इतिहास साक्षी है कि महत्वपूर्ण परिर्वतन युवाओं ने ही किया है, दूसरी तरफ इस बात के भी अनेकों उदाहरण मौजूद है कि किन्ही कारणोवश युवाओं ने ऐसे भी काम किया है जिससे सम्पूर्ण दुनिया सहित पूरी मानवता लज्जित हुई है। महाभारत में अर्जुन ने सब कुछ हारते हुए अपनी पत्नी सहित स्वयं को हार गये व सबके सामने द्रोपदी के चीर हरण के माध्यम से इज्जत, मान, मर्यादा की धज्जियां उडाई गयी है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की गलत आदतें परम्परायें व तौर तरीके मौजूद हैं जो प्राचीन से लेकर आज भी सभ्य वैज्ञानिक दुनिया में उन्हें उचित नहीं कहा जा सकता है। विशेषकर जब विज्ञान के सत्य प्रयोगों के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया गया है अमुख कार्य से इस प्रकार की हानि निश्चित है।

आज सम्पूर्ण देश अपने युवाओं की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है कि वे न सिर्फ अपने घर परिवेश और अपने आस पास के पर्यावरण को स्वच्छ व सुव्यवस्थित रखेंगे बल्कि पूरे भारत को शीघ्र ही एक विकसित राष्ट्र के रूप में रूपांतरित कर देंगे। एक तरफ ऐसी आशा भरी दृष्टि एवं दूसरी तरफ देश के अधिकांश युवा और न सिर्फ युवा बल्कि बड़े, बूढ़े सिगरेट, पान गुटका के नशे में डूब कर न केवल अपने आप को बीमार, असुरक्षित व सामाजिक, आर्थिक रूप से गरीब बना रहा है बल्कि पूरे देश को खोखला कर रहा है। जो इस तम्बाकू के नशे से बचे हैं वे चाय, काफी, सुरा सुन्दरी, अल्कोहल से बनी चीजें, अफीम, गाँजा, चरस, भाँग, नशीली दवाईयाँ इंजेक्शन से लिये जाने वाले नशीले पदार्थों के चंगुल में अपने आप को समर्पित करके अपने अमूल्य जीवन को जानबूझ कर काल की भेंट चढ़ा रहे हैं।

किसी पदार्थ विशेष के सेवन द्वारा शरीर में रक्त संचार को अधिक बढ़ाकर शरीर को शिथिल तथा मन को उत्तेजित और मस्तिष्क को तंद्रावस्था में पहुचानें का नाम ही नशा है। उत्तेजना के उन क्षणों के सुखद होने के भ्रमित अहसास हो व्यक्ति पाले रहता है और इसीलिये बार–बार वह उस उत्तेजक पदार्थ को लेता है। बार–बार नशा करने का एक दूसरा कारण भी है नशे के समय अत्यन्त उत्तेजना और तीव्र रक्त संचार रहता है किन्तु नशा उतरने पर ठीक उसके विपरीत प्रक्रिया होती है जो उतनी ही पीड़ादायक होती है। जितनी उत्तेजना सुखद लगी थी। इसी पीड़ादायक स्थिति से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति बारबार नशा करता है और उसका इतना आदी या अधीन हो जाता है कि उसके लिए बस वही जीवन है यह मान लेता है। शरीर को ऐसी उत्तेजना पहुचाने वाले पदार्थ है तम्बाकू, गांजा, भांग, अफीम, चरस, कोकीन, मारफीन इत्यादि जिनकों धूम्रपान एवं चबाकर खाने से नशा प्राप्त होता है तथा चाय, काफी, कोकीन, शराब, बीयर, रम, विस्की, आदि पेय पदार्थ लिये जाते हैं। नशे की प्रारंम्भिक अवस्था यद्यपि सुखद होती नहीं है किन्तु सुखद होने का भ्रम उत्पन्न करती है और इसी भ्रम में व्यक्ति नसेड़ी बन जाता है। नसे के रूप में तम्बाकू सबसे अधिक उपयोग किये जाने वाला नशीला पदार्थ है।

तम्बाकू के विषय में सामान्य जानकारी

तम्बाकू का वनस्पतिक नाम *निकोटियाना टैबैकम* है। इसकी बुआई अगस्त–सितम्बर में की जाती है। इसकी कटाई फरवरी–मार्च में की जाती है। यह सामान्य फसलों की भाँति एक वर्षीय पौधा है। इसके पौधे के सभी भागों का उपयोग विभिन्न रूपों में किया जाता है। ग्रामीणजनों व आम जनमानस व युवाओं द्वारा साधारणतः तम्बाकू के पौधों को सूखाकर डण्ठलों सहित पत्तियों को बिल्कुल महीन काटकर चूने के साथ मिलाकर मसलकर मुँह में रखकर चबाते हैं। इसे बड़े पैमाने पर बीड़ी, सिगरेट, के रूप में धूम्रपान भी करते हैं। इसे पान के साथ भी चबाते हैं। इसमें निकोटीन नामक क्षाराम पाया जाता है। जो नशे के लिए उत्तरदायी होता है। ये क्षाराम मस्तिष्क पर थोड़ी देर के लिए प्रभाव डालते हैं जिससे थोड़ी देर के लिए व्यक्ति तनावमुक्त हो जाता है और आनन्द का अनुभव करता है लेकिन इन पदार्थों का अधिक सेवन करने से मस्तिष्क की संवेदन शीलता अस्थाई व कभी–कभी स्थाई रूप से समाप्त हो जाती है। और इसके सेवन से मृत्यु भी हो जाती है।

तम्बाकू सेवन की बढ़ती प्रवत्ति

नशे की प्रवृत्ति के रूप में प्राचीन काल से ही मनुष्य पेय पदार्थों के रूप में तथा धूम्रपान व चबाने वाले पदार्थों का प्रयोग करता रहा है। किन्तु आज के समय जो नशे की समस्या में विशेष बात है कि तम्बाकू एवं उसके विभिन्न रूपों के सेवन की प्रवृत्ति बढ़ रही है और इस प्रवृत्ति के बच्चे एवं युवा अधिक शिकार हो रहे है।

युवाओं में तम्बाकू सेवन की प्रवत्ति बढ़ने के कारण

1. यह खाने के कई सुविधाजनक रूपों में विद्यमान है, इसके सुविधा जनक उपलब्ध होने से भी इसकी सेवन की प्रवृत्ति बढ़ने का एक कारण है।
2. तम्बाकू सेवन की प्रवृत्ति युवाओं में देखी–देखी भी तेजी से बढ़ रही है, जब एक युवक दूसरे युवक को तम्बाकू सेवन करते देखता है तो वह जिज्ञासावश नकल करके एक बार तम्बाकू सेवन की कोशिश करता है और वह इसके गिरफ्त में फंसता चला जाता है।
3. शौकिया, मजे या आनन्द हेतु– कुछ युवक तम्बाकू खाना–पीना शौकियन शुरू करते हैं। इसका उपभोग मजाकिया लहजे में आनन्द लेने हेतु करते हैं।
4. सामाजिकता / स्वागत हेतु– तम्बाकू सर्व साधारण उपलब्ध नशीली वस्तु है अतः किसी मेहमान के घर आने पर स्वागत–सत्कार वश तम्बाकू खिलाकर बातचीत या दरबार शुरू करते हैं।
5. रीति–रिवाज के कारण तम्बाकू के उपयोग की उपयोगिता बनी हुई है जैसे कुछ हिन्दू समाजों में सभी उपहारों के साथ तम्बाकू भी प्रदान की जाती है।
6. अभावग्रस्त गृहस्थों में परेशानियों से मुक्ति पाने के लिए या थोडी सी संतुष्टि पाने के लिए तम्बाकू का सेवन करते हैं।
7. मीडिया द्वारा आकर्षक विज्ञापनों से भी प्रेरित होकर युवाओं द्वारा धूम्रपान करने की प्रवृत्ति देखी गयी है।
8. निरक्षरता व तम्बाकू से होने वाले गंभीर नुकसानों के बारे में उनको विशेष जानकारी नहीं रहती है इस प्रकार बिना भय के तम्बाकू का सेवन करते चले जाते हैं।
9. तम्बाकू नशे का सबसे सस्ता व सरल साधन है इस तक सभी की पहुँच आसानी से हो जाती है। इसीलिए भी युवाओं में तम्बाकू सेवन की प्रवृत्ति बढ़ रही है।
10. तम्बाकू का उत्पादन सस्ता व सरल है। इसके उत्पादन पर कोई शासकीय प्रतिबंध नहीं है, अतः ग्रामीण / किसान स्तर तक उपलब्ध होने के कारण इसकी प्रवृत्ति बढ़ रही है।
11. युवाओं द्वारा तम्बाकू का उपयोग टाईम पास साधन के रूप में किया जाता है। बढती जनसंख्या, गरीबी, मनोरंजन के साधनों का अभाव तम्बाकू सेवन की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही है।

इस प्रकार तम्बाकू सेवन की प्रवृत्ति बढ़ने के उपरोक्त कई कारण हैं। किन्तु प्रश्न है कि कब तक बढ़ेगी तम्बाकू सेवन की प्रवृत्ति ? इसके प्रतिउत्तर में यही कहा जा सकता है कि जब तक अज्ञानता, निरक्षरता, हताशा, निराशा, अवसाद की स्थिति, समस्याओं का अम्बार, रोजगार के अवसरों की कमी व घर परिवार में नैतिकता व अनुशासन का अभाव है तथा जब तक प्रत्येक जागरूक अभिभावक अपने बच्चों के सामने उत्कृष्ट उदाहरण बन के अपने आप को बच्चों व युवाओं के सामने पेश नही करते है। अन्य नशों सहित तम्बाकू सेवन की प्रवृत्ति बढ़ती रहेगी।

तम्बाकू सेवन के दुष्परिणाम

1. स्वास्थ्य को नुकसान– तम्बाकू के धुएं में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रसायन प्रमुखतः टार, कार्बन–मोनो आक्साईड, और निकोटीन है। टार में बहुयोगिक एरोमेटिक योगिक रहते है। जो की कैंसर जनक माने जाते है। जैसे– बेंजो (ए) पाईरीन, नाईट्रो सेमाईनस, और बीटामेथ्थिल एमाईन इत्यादि। इसके अतिरिक्त इस धुँए में कई क्षोमक वस्तुएं भी रहती है जिनमें एमोलीन, नाईट्रिक आक्साईड और नाईट्रोजन आक्साईड प्रमुख है। इसके अतिरिक्त इसमें क्रिसाल और फीनाल जैसे कैंसर जनक पदार्थ भी रहते हैं। (TRS 598 WHO, 1975, PP21) तम्बाकू सहित सिगरेट के धुएं का हानिप्रद प्रभाव तब और भी बढ़ जाता है जब इसकी अधिक पैदावार बढ़ाने के लिए कीटनाशकों व खरपतवार नाशी रसायनों का इस्तेमाल किया जाता है। तम्बाकू को विभिन्न प्रकार से संसाधित करके सिगरेट में उपयोग करने लायक व खाने के लिए सुगन्धित करते हैं इस प्रक्रिया में भी कई प्रकार के रसायनों का प्रयोग किया जाता है जिससे तम्बाकू की स्वास्थ्य हेतु भयावहता बढ़ जाती है।

सिगरेट के धुंए का हानिप्रद प्रभाव कार्बन फिल्टर से कम किया जा सकता है और कुछ देशों में सिगरेट के धुँए के टार और निकोटीन की मात्रा का परीक्षण कर समय–समय पर प्रकाशित किया जाता है ताकि लोग अल्पटार, निकोटीन वाली सिगरेट का चुनाव कर सके। पर देखा गया है कि जब लोग अल्पटार, निकोटीन वाली सिगरेट का उपयोग करते हैं तब सिगरेट की संख्या बढ़ा देने की प्रकृति रहती है। ऐसा लगता है कि व्यसनी सभी लोग अपनी निकोटीन की मात्रा पूरी करने का प्रयास करते हैं। विकास शील देशों जैसे चीन और भारत के बाजारों की सिगरेट में टार की मात्रा अधिक पायी गई है। (21–33 मिलीग्राम / सिगरेट) और पश्चिम देशों की तुलना में निकोटीन की मात्रा भी अधिक थी।

सूखी तम्बाकू में पर्याप्त मात्रा में तम्बाकू की घूल रहती है जो एलर्जी व श्वांस सम्बन्धी रोग पैदा करती है।
तम्बाकू के धुंए से उत्पन्न कार्बन मोनो ऑक्साइड रक्त के साथ मिलकर कार्बोम्सी हीमोग्लोविन का निर्माण करती है जिसकी भयावहता व नुकसान सारणी में दिखाये गये हैं।

सामाजिक दुष्परिणाम

नशा बुरा है चाहे वह किसी भी प्रकार का या किसी भी स्तर का हो। यह बात तम्बाकू के नशे पर भी लागू होती है इससे शारीरिक, मानसिक नुकसान तो होता है सामाजिक पतन भी होता है। वह समस्याओं से संघर्ष की अपेक्षा भागने लगता है। झगड़े, व्यभिचार, मान–सम्मान में कमी, आदर–सत्कार, स्नेह, अपनापन, मर्यादा, निष्ठा में कमी का प्रभाव न सिर्फ स्वयं पर पड़ता है, बल्कि परिवार भी दुखी व विखण्डित होता है। और इसका व्यापक असर

पूरे समाज सहित राष्ट्र में फिर विश्व में पडता है। इस प्रकार हम देखते हैं धूम्रपान पूरी मानवता को प्रभावित करता है।

सारणी – कार्बन मोनोऑक्साइड के कुप्रभाव

वायु मण्डल में कार्बन मोनो ऑक्साइड सान्द्रता। भाग/दशलक्ष (आयतन में)	रक्त में कार्बोक्सी हीमो ग्लोबिन की सन्तुलित सान्द्रता (प्रतिशत में)	प्रमुख लक्षण
50	7	अल्प सिर दर्द, सीने में दबाव
100	12	मध्यम सिरदर्द और चक्कर आना
250	25	तेज सिरदर्द और चक्कर आना
500	45	उत्क्लेश, वमन, निपात की संभावना
100	60	अचेतना, कोमा
1000	95	मृत्यु

नशे के कारण विशेषकर युवक–युवतियाँ समाज में अपमानित होकर गलत रास्तों मे चल पड़ते हैं, और समाज में अनेक बुराइयों का कारण बनते हैं, नशे ने ही चारित्रिक पतन को बढ़ावा दिया है। प्रतिवर्ष कुमारी माताओं की संख्या बढ़ती जा रही है इससे अवैध सन्तानों के लालन–पालन की समस्या भी उत्पन्न हो रही है। इस प्रकार तम्बाकू नशे की बढ़ती प्रवृत्ति से सम्पूर्ण मानव जाति को सुन्दर सामाजिक पर्यावरण में अवनयन के रूप में भारी कीमत चुकानी पड़ रही है।

आर्थिक दुष्परिणाम

नशे के रूप में तम्बाकू व उससे बने पदार्थो के सेवन से व्यक्ति पर काफी मात्रा में अनावश्यक रूप से आर्थिक बोझ पड़ता है, एक साधारण गरीब युवा दिन भर में एक बन्डल बीड़ी खत्म कर देते हैं जबकि एक मध्यम वर्गीय युवा दिन भर में दस सिगरेट व गुटखों का उपयोग कर लेता है। दस सिगरेट, गुटखों की कीमत बीस से चालिस रूपये की होती है जबकि वह कमाई एक पैसे की भी नही करता है। उच्च वर्ग के युवाओं/व्यक्तियों का व्यय निश्चित रूप से अधिक होगा। ये लक्ष्य अब किसी के छिपे नही है कि इस प्रकार की आर्थिक तंगी से युवा आत्महत्या कर रहे हैं। नशे की पूर्ति के लिए आर्थिक रूप से परिवार पर निर्भर रहकर परिवार की समस्याए बढ़ाते हैं व गृह कलह का कारण बनते हैं। इससे घर का सुन्दर परिवारिक वातावरण नष्ट हो जाता है व परिवार टूट व बिखर जाते हैं।

पर्यावरणीय दुष्परिणाम

धूम्रपान या तम्बाकू सेवन से पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचाता है। सम्पूर्ण पर्यावरण का व्यापक अर्थ है इससे हमारे चारो ओर उपस्थित जैव–अजैव समस्त घटक आते हैं। उदाहरण स्वरूप जब कोई एक व्यक्ति बस में सिगरेट पीता है तब वहां के सम्पूर्ण पर्यावरण अर्थात पूरी बस में बैठें लोग प्रभावित होते है सिगरेट पी रहे व्यक्ति के आस–पास कोई व्यक्ति बैठना पसंद नही करेगा। पास–पड़ोस की सीटों में बैठे व्यक्ति भी नाक मुँह सिकोडते है कि ये सिगरेट के धुऐ की दुर्गन्ध कहाँ से आ रही है। इस प्रकार सभी का ध्यान अपनी मूल सोच से प्रभावित होता है। इसी प्रकार धूम्र पान व तम्बाकू सेवन का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, स्वास्थ्य सम्बंधी, पारिवारिक, अर्थात सम्पूर्ण पर्यावरण को इसकी कीमत चुकानी पडती है।

तम्बाकू छोड़ने के लिए कुछ सुझाव

1. तम्बाकू युक्त सारी वस्तुएँ अपने पास से हटा दीजिये।
2. सप्ताह में तम्बाकू रहित एक दिन की शुरूआत करें और धीरे–धीरे छोडते जायें।
3. अपने रोजाना के कार्यक्रम में तब्दीली लायें और सुबह सैर के लिये जाये।
4. ऐसे लोगों से दोस्ती रखे जो आपकी आदत छुड़ाने मे मदद करें।
5. अपने पास सौफ, मिश्री, लौंग या इलायची रखे।
6. तलब लगने पर चार बातें ध्यान रखे–
   (क) तम्बाकू के उपयोग में देरी करें।
   (ख) लम्बी श्वास लें।
   (ग) धीरे–धीरे पानी पिये।
   (घ) अपना ध्यान किसी दूसरी ओर लगायें।
7. उन जगहों और लोगो से दूर रहे जो तम्बाकू की तलब की याद दिलायें।
8. जब तम्बाकू खाने की इच्छा हो तो सोचिये–
   (क) उस अपने से नीचे के गरीब से गरीब व्यक्ति के बारे में कि क्या, कैसे मैं उसकी मदद कर सकता हूँ?

(ख) सोचिये अपने माता–पिता के विषय में।
(ग) सोचिये अपने छोटे भाई–बहन, बच्चों के विषय में।

9. अपना इरादा एकदम पक्का रखें।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि तम्बाकू सेवन की प्रवृत्ति दिनों–दिन बढ़ रही है। यदि समय रहते इस पर न सिर्फ नियंत्रण बल्कि जड़ से खत्म नही करते हैं तो सबको अर्थात सम्पूर्ण राष्ट्र को इसकी कीमत चुकानी होगी।

संदर्भ

सक्सेना व्ही. वी. (1994) "इको–इनवायरोनमेंट एण्ड हेल्थ," हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, मु0 पृ0 78–88।
डब्लू0 एच0 ओ0 (1975) "स्मोकिंग एण्ड इट्स इफेक्ट ऑन हेल्थ" टी आर एस, पृ0 568, जिनेवा।
डब्लू0 एच0 ओ0 (1982) "स्मोकिंग एण्ड हेल्थ इन ऐशिया" डब्लू एच ओ क्रोनिकल।
डब्लू0 एच0 ओ0 (1983) "टोबेको थर्ड वर्ल्ड वार्निंग" वाई जेड विलियर्ड, डब्लू0 एच0 ओ0 क्रोनिकल, खण्ड 37, अंक 3, मु0 पृ0 86–90।
म.प्र. राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिसर भोपाल, सामाजिक विज्ञान।
सिंह, नरेन्द्र बहादुर (2004) जीव विज्ञान, युगबोध प्रकाशन, रायपुर।
"रोजगार निर्माण" सितम्बर 2006, माध्यम, भोपाल (मध्य प्रदेश)।

लुप्त-प्राय जन्तु : कछुआ

ऋचा शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग
नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ(उ0प्र0)–226004, भारत
sanjiveshukla@gmail.com

हमारा भारत देश अपनी जैव–विविधता के लिए विश्व में एक विशिष्ट स्थान रखता है। ऊँचे–ऊँचे पर्वत, दूर तक फैले हरे–भरे मैदान, लहराती गंगा, सतलज, यमुना, व्यास, सरयू आदि नदियां, विशाल सागर और रेतीले मरुस्थल, ये सब एक साथ, एक देश में दिखाई देते हैं तो वो है भारत देश। लेकिन वास्तविकता ये है कि आज की अपेक्षा हमारी जैव–विविधता पहले कहीं अधिक समृद्ध थी। यदि बीते कुछ वर्षों का आंकलन किया जाये तो स्पष्ट दिखाई देता है कि हमने बहुत कुछ खोया है। विकास की अंधी दौड़, बढ़ते वैश्विक तापमान, शहरीकरण एवं औद्योगीकरण आदि कुछ कारण हैं जिन्होंने हमारी अतुलनीय जैव–संपदा को अपूर्णनीय क्षति पहुंचाई है जिसमें मुख्य रूप से जीव–जन्तु एवं वनस्पतियां सम्मिलित हैं।



चित्रा इंडिका

कछुआ एक पारिस्थितिक मित्र के रूप में हमारी सेवा करता है तथा सड़े–गले जीवों व वनस्पतियों को खाकर, पारिस्थितिक तंत्र की सफाई व संतुलन स्थापित करने का कार्य करता है। परन्तु मानव की लालची प्रवृत्ति नें आज इन जानवरों के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है व इनकी कई प्रजातियां लुप्तप्राय की श्रेणी में आ गई हैं।

कछुआ सरीसृप वर्ग के कीलोनिया समूह का जन्तु है। प्रकृति से अत्यन्त ही सुस्त किन्तु विशेष प्रकार के कवच के कारण इनकी एक अलग ही पहचान है। कीलोनिया शब्द ग्रीक भाषा के शब्द "कीलोन" से लिया गया जिसका अर्थ होता है कवच या इंटरलॉकिंग शील्ड[1]। कछुए अपना सिर एवं पैर इस कवच से अंदर बाहर कर सकते हैं एवं यह कवच विशेष प्रकार की हड्डियों से बना होता है जो वास्तव में इनकी पसली से विकसित होती हैं। कछुए के कवच भी कई रंगों[1] में मिलते हैं जैसे काला, लाल, भूरा या ओलिव ग्रीन। किसी–किसी प्रजाति में कवच लाल, नारंगी भी होते हैं। थलीय कछुओं में यह कवच बहुत भारी होता है जबकि जलीय कछुओं में यही कवच कम भारी होता है ताकि ये सुविधापूर्वक तैर सकें। हल्के कवच में हड्डियों के बीच जगह होती हैं जिन्हें फौंटेनेल्स[1] कहते हैं। लैदरबैक सी टर्टल में कवच अत्यंत ही हल्का होता है क्योंकि इसमें काफी अधिक संख्या में फौंटेनेल्स होते हैं।

जीवाश्म अध्ययन के आधार पर कछुए आज से दो सौ बीस मिलियन वर्ष पूर्व भी मिलते थे जो इनके प्राचीनतम होने का प्रमाण है। यहाँ तक कि साँपों, छिपकली एवं घड़ियाल आदि सरीसृप वर्ग के अन्य जन्तुओं की अपेक्षा कछुए अधिक प्राचीन हैं पर आज इन्हीं प्राचीनतम जन्तुओं का अस्तित्व खतरे में है। वर्तमान में इनकी कई प्रजातियां पूर्ण रूप से लुप्त हो चुकी हैं और कुछ लुप्तप्राय हैं। इस समय कछुआ रेड लिस्ट व अन्य वन्य जीव संरक्षण अधिनियम[2] 1972 की सूची में शामिल है। विश्व में इनकी संख्या 263 है[1], एशिया में कुल 85 प्रजातियां हैं जबकि उत्तर प्रदेश में 15 प्रजातियां[2] हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं–



लिस्सेमिस पंक्टेटा

1. इंडियन रूफड टर्टल(*पुंगथुरा टैक्टम*)
2. इंडियन टेंट टर्टल(*पुंगथुरा टैरिटोरिया सरकमडाटा*)
3. इंडियन टेंट टर्टल(*पुंगथुरा टैरिटोरिया फ्लेविरैन्ट्रिस*)
4. ब्राउन रूफड टर्टल(*पुंगथुरा स्मिथाई*)
5. स्मौटेड पौन्ड टर्टल(*जियोक्लेमाइस हैमिलटोनाई*)
6. क्राउन्ड रिवर टर्टल(*हार्डेला थुरजाई*)
7. थ्री स्ट्राइप्ड रूफड टर्टल(*कछुगा ठौंगटा*)
8. पेटेंड रूफड टर्टल(*कछुगा कछुगा*)
9. इंडियन आइड टर्टल(*मौरिनिया पेटेरसाई*)
10. इंडियन ब्लैक टर्टल(*मिलैनोचेलिस त्रिजुगा*)
11. इंडियन सौफ्ट शैल टर्टल(*एस्पिडोरेटिस गैंगेटिकस*)
12. ट्राइकैरिनेट हिल टर्टल(*मिलैनोचेलिस ट्राईकैरिनेटा*)
13. इंडियन पीकॉक सौफ्ट शैल टर्टल(*एस्पिडोरेटिस हयूरम*)
14. इंडियन फ्लैप शैल टर्टल(लिस्सेमिस *पंक्टेटा*)
15. स्माल हेडेड सौफ्ट शैल टर्टल(चित्रा इंडिका)

वर्तमान समय में सबसे बड़ा जीवित कछुआ लैदरबैक सी टर्टल(*डर्मोचेलिस कैरियेसिया*)[1] है, जिसका कवच 200 सेंटीमीटर और वजन 900 किलोग्राम है जो एटलांटिक, पैसिफिक व हिंद महासागर में मिलता है, लुप्तप्राय है। *जियोचीलोन मिओलैनिया* जिसे जाइंट टॉरटॉइस भी कहते हैं, उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका में मिलते थे[1] पर अब विलुप्त हो चुके हैं। ऐसा माना जाता है कि मनुष्यों ने इनका शिकार भोजन के लिए किया होगा जिससे इनका अस्तित्व इन जगहों पर खत्म हो गया। एकमात्र जीवित *जाइन्ट टॉरटॉइस* की प्रजाति अब सिर्फ गैलपैगोस द्वीप पर मिलती है जो 130 सेंटीमीटर की लम्बाई और 300 किलोग्राम के वजन में मिलता है।

सबसे छोटा कछुआ *स्पेकल्ड पैडलोपर टॉरटॉइस* है जो दक्षिण अफ्रीका में है। यह 8 सेंटीमीटर लम्बाई और 140 ग्राम भार का है। आमतौर पर सभी कछुए असमतापी, दिनचर, प्रजनन द्वारा अंडे देते हैं, आँखों में रॉड की संख्या अधिक होने के कारण रात में भी देखने की क्षमता होती है, कोंन्स के कारण रंगभेद में सक्षम होते हैं[1]। सभी कछुओं के जबड़े काफी मजबूत होते हैं जो भोजन खाने एवं चबाने के लिए उपयुक्त होते हैं यद्यपि इनके जबड़े में दांतों के स्थान पर कंटीली धारियां होती हैं जो भोजन अथवा शिकार पकड़ने में सहायक होती हैं[3]। आकार, आवास एवं भोजन के आधार पर कछुओं को निम्न प्रकार में विभाजित किया गया है–

1. थलचर या टॉरटॉयस

जीवन पर्यन्त जमीन पर रहते हैं। ये कछुए शाकाहारी होते हैं और वनस्पति, घास या हरी पत्ती आदि खाते हैं। ये अपनी जीभ को भोजन निगलने में प्रयोग करते हैं[1] पर और सरीसर्पों की तरह अपनी जबान को भोजन चिपकाने के लिए बाहर नहीं निकाल पाते हैं। इनका आकार कुछ से0मी0 से लेकर दो मीटर तक होता है। इनके पैर छोटे एवं मजबूत होते हैं। मादा कछुआ एक से तीस की संख्या तक अंडे देती हैं जिसमें से 60–120 दिनों में बच्चे बाहर आ जाते हैं। थलचर कछुओं का जीवनकाल काफी लम्बा होता है, यहाँ तक कि डेढ़ सौ साल पुराने कछुए भी मिलते हैं। अत: चीन देश में इन कछुओं को दीर्घायु का प्रतीक माना जाता है।

2. जलचर(स्वच्छ पानी के) टेरापीन्स

जलचर कछुए स्वच्छ पानी जैसे नदी या तालाब में मिलते हैं। आहार के आधार पर ये कछुए शाकाहारी अथवा मांसाहारी होते हैं। शाकाहारी कछुए मुख्यत: जलीय वनस्पति खाते हैं जबकि मांसाहारी कछुए घोंघे, कीड़े–मकोड़े और मरे जानवरों का मांस खाते हैं। शाकाहारी कछुओं का आकार छोटा, कठोर कवच होता है और लोग उनको पालतू पशु की तरह मछली के एक्वेरियम में रखते हैं। मांसाहारी कछुओं का आकार थोड़ा बड़ा एवं कवच मुलायम होता है। यद्यपि दोनों ही तरह के कछुओं में मादा को अंडे देने के लिए जल से बाहर निकल कर आना पड़ता है।

3. जलचर(खारे पानी के) टर्टल

खारे पानी अर्थात समुद्र में मिलने वाले कछुए इस श्रेणी में आते हैं। ये मांसाहारी होते हैं और मुख्यत: जेली फिश, स्पंज और दूसरे छोटे जानवरों का भक्षण करते हैं। कुछ कछुए मरे जानवरों का मांस या शैवाल पर भी निर्भर रहते हैं। इनके पैरों के स्थान पर फ्लिपर्स होते हैं जो इनको समुद्री लहरों में तैरने में सहायता करते हैं। स्वच्छ पानी के कछुओं की तुलना में समुद्री कछुओं का थल पर आना बहुत कम होता है। मादा कछुआ ही केवल प्रजनन हेतु थल पर आती हैं और निषेचन के बाद अंडे में से निकले बच्चे, नर या मादा, थल से धीरे–धीरे, काफी मेहनत मशक्कत के बाद, समुद्र तक पहुँच पाते हैं। इसके अतिरिक्त नर कछुए कभी भी समुद्री जल से बाहर नहीं आते हैं। अंडे से निकले बच्चे जब तक अपने स्थान से समुद्र तक पहुंचते हैं, उस बीच में भी कुछ शिकारी पक्षी द्वारा मार दिये जाते हैं जो इनकी संख्या कम होने का एक कारण है।

उपरोक्त तीनों प्रकार के ही कछुओं की प्रजातियां शनैः शनैः कम होती जा रही हैं[5] और लुप्तप्राय की श्रेणी में किसी भी अन्य कशेरूकी जन्तु से इनका स्थान सबसे ऊपर है। स्वादिष्ट मांस के लिए इन कछुओं का निर्ममता से शिकार किया जाता है[1]। एशिया[1] के ही कुछ हिस्सों में कछुए का सूप प्रसिद्ध है तो कहीं कछुए की चर्बी सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री में प्रयोग होती है और "क्रेमा दि टैरटुगा" के नाम से बिकती है। चाइनीज भोजन में कछुओं के कवच का प्रयोग किया जाता है। आंकड़े यह बताते हैं कि ताइवान देश में टनों कवच प्रतिवर्ष आयात किया जाता है और इसके लिए कितने कछुए मारे जाते होंगे, इसका अनुमान स्वतः ही लगाया जा सकता है। उपरोक्त कारणों को देखने के बाद फरवरी 2011 में कछुआ विशेषज्ञों ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है[3] जिसमें लगभग 25 प्रजातियों को लुप्त एवं 40 प्रजातियों को लुप्तप्राय की श्रेणी में रखा है। इनमें भी एशिया की प्रजातियों के जीवन पर, अस्तित्व पर लुप्त होने का खतरा सर्वाधिक है जिनमें मुख्य कारण मानवजनित क्रियाएं हैं जैसे इनके प्राकृतिक आवास नष्ट होना एवं गैर कानूनी ढंग से व्यापार। लोगों की मांग को पूरा करने के लिए स्वच्छ पानी के कछुए भारत के उत्तरी राज्यों से पकड़कर उत्तर पूर्वी राज्यों में ले जाये जाते हैं। नर्म मांस एवं औषधीय गुणों के कारण सॉफ्ट शैल्ड कछुए जैसे *नोलेसोनिका गैन्गेटिका*[4] , *नोलसोनिया हयमरम* एवं *चित्रा इंडिका* जैसे कछुए बेचे जाते हैं। जल प्रदूषण एवं जल विकास परियोजनाओं के कारण भी कछुओं की प्रजाति पर अपना अस्तित्व बचाये रखने का संकट गहराता जा रहा है। वन्य जीव संरक्षण से जुड़े विशेषज्ञों ने इस कमी को ऐशियन टर्टल क्राइसिस[1] का नाम दिया है जिसमें मुख्यतः दक्षिण पूर्व एशिया के कई हिस्से कछुओं से रिक्त होते जा रहे हैं। एशियन प्रजातियों में 75 प्रतिशत टॉरटाइस एवं टेरापीन्स की प्रजातियां लुप्तप्राय की श्रेणी में हैं।

कछुए हमारे जलीय परितंत्र के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि जलीय वनस्पति, कमजोर, बीमार मछलियों या सड़े–गले मांस को खाकर जैविक प्रदूषण नियंत्रण में सहायता करते हैं। इसके साथ ही खाद्य–श्रृंखला में एक प्रमुख भूमिका के द्वारा पारिस्थितिकीय संतुलन बनाने में भी सहायता करते हैं। समुद्री तट पर पर्यटकों की बढ़ती संख्या, तट पर बढ़ती रेत जिससे अंडे या तो टूट जाते हैं या दिये गये स्थान पर ही दब जाते हैं तथा बढ़ता प्रदूषण लेदरबैक कछुए के लुप्तप्राय होने के लिए उत्तरदायी हैं। मलेशिया, श्रीलंका, भारत तथा थाईलैंड आदि जगहों पर इस कछुए की संख्या में निरंतर कमी आ रही है। यद्यपि सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों द्वारा इन कछुओं को बचाने के लिए काफी प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु जब तक हम आप सब मिलकर इस दिशा में प्रयास नहीं करेंगे तब तक इसी प्रकार कछुए लुप्तप्राय एवं इसके बाद विलुप्त हो जायेंगे। वर्तमान में कतरनिया घाट(उ0प्र0) पर कछुआ पुनर्वास योजना भी चल रही है जिसके चलते स्वच्छ पानी के कछुओं को, अंडे में से निकले बच्चों को सुरक्षित तरीके से इनके आवास पर पहुंचाया जाता है तथा विश्व स्तर पर टर्टिल सर्वाइवल एलान्स(टी0एस0ए0) नामक संस्था कार्यरत है। इसके साथ–साथ हम सभी को इसके गैर–कानूनी तरीके से व्यापार एवं इसके भक्षण पर रोक लगाकर कछुओं को लुप्तप्राय होने से बचाना होगा। कछुओं को लुप्त होने से बचाने के लिए निम्न कुछ उपाय सहायक हो सकते हैं–

1. कछुओं की तस्करी को रोकने हेतु प्रभावी नियम बनाना व उसको सख्ती से लागू करना।
2. कछुओं के आवास स्थलों व प्रजनन स्थलों का समुचित संरक्षण करना।
3. कछुओं की विभिन्न प्रजातियों की पहचान व उनकी संख्या हेतु आंकड़े इकट्ठा करना।
4. छात्र–छात्राओं व सामान्य जन में प्रेरणा व जागरुकता पैदा करना।
5. कृत्रिम संसाधनों से कछुओं का प्रजनन कराकर पुनर्वासित करना।

संदर्भ

1. टर्टल फ्रॉम विकीपीडिया, द फ्री एनसाइक्लोपीडिया, एच0 टी0 एम0, पृ0 सं0 17 ऑफ 28, 5 ऑफ 18।
2. कछुआः एक पर्यावर्णीय मित्र, पर्यावरण निदेशालय, उ0 प्र0, जन्तु विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय।
3. निगम, एच0 सी0(2002–2003) बायोलॉजी ऑफ कार्डेटा, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, मु0 पृ0 161–190।
4. टीकादार, बी0 के0(1983) थ्रैटेन्ड एनिमल्स ऑफ इण्डिया, जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, कोलकता, मु0 पृ0 227–235।
5. निगम, एच0 सी0(2011–2012) मॉडर्न ट्रेंड्स इन बायोलॉजी एण्ड इकोनॉमिक जूलॉजी, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, सेक्शन 7, पृ0 375–391।

स्मृति अह्रास के कारण व उपचार

मेंहदी हसन
एफ0ए0-10ए0
पूर्व प्रोफेसर, डिपार्टमेन्ट आफ एनाटमी
के0 जी0 मेडिकल विश्वविद्यालय, लखनऊ(उ0प्र0)-226003, भारत

स्मृति अह्रास के कारण जानने से पहले हमें स्मृति के बारे में जानना अतिआवश्यक है। स्मृति का मस्तिष्क से गहरा सम्बन्ध है। स्मृति को मस्तिष्क में लाने के लिए निम्न तीन मूल क्रियाओं से गुज़रना पड़ता है।

(1) पंजीकरण
(क) अभिप्रेरणा या उत्साहवर्धन
(ख) सम्यक बोध
(ग) सहचर्य
(घ) वर्गीकरण

(2) धारण
(क) तुकबन्दी या कवित्त
(ख) पुनरावृत्ति

(3) पुनः स्मरण

स्मृति को केवल स्मरण से ही नही परिभाषित किया जा सकता है तथा प्रायः बहुत लोग पुनः स्मरण को ही स्मृति समझते हैं। बल्कि स्मृति के लिए स्मरण का मस्तिष्क में पंजीकरण, यथास्थान उस स्मरण का धारण तथा उसका पुनः स्मरण करने पर उसको पूरा का पूरा स्मरित हो जाना ही वैज्ञानिक दृष्टि से सही मायने में स्मृति की परिभाषा है।

स्मरण को मस्तिष्क में पंजीकृत करने के लिए कुछ सुझाव यह है कि स्मरण करने वाले को उस वस्तु या विषय के बारे में उत्साहित किया जाये, जैसे बचपन में किसी बच्चे को किसी चीज के बारे में याद कराने या समझाने के लिए प्रलोभन के रूप में चाकलेट या किसी अन्य वस्तु का जो बच्चे को पसन्द हो, उसका लोभ दिखाया जाये तब उसमें उस विषय के बारे में उत्साह पैदा होता है और वह उस विषय को समझने के लिए आतुर हो जाता है। इसलिए किसी स्मरण के पंजीकरण में उत्साहवर्धन बहुत अहम भूमिका अदा करता है। मस्तिष्क में ही विभिन्न स्थान पर स्मरण का पंजीकरण जरूरी होता है। इसलिए मस्तिष्क के विभिन्न स्थानों पर पंजीकरण के लिए जिस वस्तु के बारे में बताया जा रहा है वह उस वस्तु या विषय की जानकारी उसके कानों से होकर मस्तिष्क के टेम्पोरल (कान के ऊपर) स्थान में संचित हो जाती है, इस सुनने की क्रिया में उसमें केवल कानों का ही प्रयोग किया। यदि सुनने के साथ–साथ अगर उस वस्तु का जिसके बारे में बता रहें हैं उस वस्तु या विषय को दिखा दिया जाये तो सुनने के साथ–साथ आँखों का भी उपयोग वह व्यक्ति करता है दृष्टि में आयी वस्तु को वह मस्तिष्क के आक्सीपिटल (मस्तिष्क का पृष्ठ भाग) स्थान में संचित करेगा। तो सुनने तथा देखने में क्रमशः टेम्पोरल तथा आक्सीपिटल स्थानों का उपयोग हुआ तथा वस्तु का पंजीकरण मस्तिष्क के दो विभिन्न स्थानों पर हो गया। दृष्टि और श्रव्य के अलावा स्वयं के द्वारा भी उस वस्तु का पंजीकरण मस्तिष्क के तीसरे स्थान पर किया जा सकता है वस्तु को हाथो से स्पर्श करने पर वह जान लेगा कि वस्तु ठंडी है या गरम, मुलायम है या कठोर उसमें किसी तरह की हलचल या तरंगित होने का भी एहसास होगा तो स्पर्श का अनुभव उस वस्तु के बारे में मस्तिष्क के तीसरे हिस्से पैराइटल (मस्तिष्क का ऊपरी भाग) में पंजीकृत करेगा। दृष्टि, श्रव्य, स्पर्श के साथ ही साथ उस वस्तु के बारे में लिख कर बोलने के लिए कहा जाये। इस क्रिया में मस्तिष्क का अग्र भाग जिसे फ्रन्टल लोब कहते हैं में स्मृति का पंजीकरण हो जाता है।

इसी स्मृति के पंजीकरण के कई उदाहरण हमारे सामने उपलब्ध है जैसे रेडियो के अविष्कार से हमें बहुत सी चीजों के बारे में जानकारी पहले सुनकर मिलती थी लेकिन बाद में वही जानकारियां जब दूरदर्शन के द्वारा टेलीविजन पर सुनाई के साथ दिखाई भी देने लगीं तो लोगों का उन वस्तुओं (या उस स्थान के बारे में जहाँ कोई घटना हुई हो) में जानकारी सही–सही सामने दिखने लगती तो सुनने के साथ–साथ दिखने से मस्तिष्क में उस जानकारी के बारे में स्मृति का पंजीकरण दो स्थानों पर पुख्ता हो गया। इसी प्रकार दृष्टि बाधित लोग जो केवल सुनकर ही किसी वस्तु के बारे में अन्दाजा लगाते थे ब्रेल पद्धति के आ जाने से उस विषय के बारे में ब्रेल से स्पर्श द्वारा जानकारी प्राप्त करने लगे। सुनने और स्पर्श से स्मृति का पंजीकरण मस्तिष्क में दो स्थानों पर हुआ। इस प्रकार स्मृति का दो गुनी मात्रा में संचय हुआ।

प्रयोगात्मक कार्य भी इसका एक अच्छा उदाहरण है जो पहले सुनकर स्पर्श द्वारा प्रयोग के रूप में क्रियान्वित किया जाता है। यह जल्दी मस्तिष्क से ह्रास नहीं होता इसलिए प्रयोगों पर काफी जोर दिया जाता है तथा उस विषय वस्तु की जानकारी के बारे में सम्यक बोध कराया जाये तथा उस वस्तु से उसका सही सहचर्य ढूंढ कर सामने पेश किया जाये या चित्र के द्वारा बताया जाये फिर उस वस्तु की पृष्ठभूमि के हिसाब से सही–सही वर्गीकृत किया जाये। वर्गीकरण में जैसे समाचार पत्र को तिथियों के हिसाब से श्रेणीबद्ध किया जाता है तथा किसी भी तारीख का समाचार पत्र माँगने पर तुरन्त निकाल कर दे देना। पुस्तकालय भी इसका एक बहुत ही अच्छा उदाहरण है जिसमें सूचीपत्र बनाये जाते हैं और यह सूचीपत्र लेखकों के नाम या विषय के अनुसार बनते हैं। और उसकी प्रथम नाम के अक्षर से श्रेणीबद्ध किये जाते हैं। तथा जहाँ पर पुस्तकालय के अन्दर रखे हुये होते है उस स्थान के संकेत होते हैं तो पुस्तकालय में उपरोक्त स्थान पर पहुँच कर देखें तो वह पुस्तक वहाँ पर रखी मिलेगी। इसी तरह और भी कई मानक मान कर वर्गीकृत किया जा सकता है। उस विषय या वस्तु की जानकारी के लिए तथा मस्तिष्क में धारण के लिए कई बार स्मरण की पुनरावृत्ति करायी जाये। पुनः स्मरण कराने कि लिए उस विषय या वस्तु को और रोचक बनाया जाये। तुकबन्दी या कवित्त जिससे वह जानकारी कवित या तुकबन्दी याद करने पर तुरंत नज़रों के सामने स्मृति के रूप में आ जाये तभी सही अर्थ में वह वस्तु या विषय स्मृति के दायरे में आ पायेगी। मस्तिष्क में तुलनात्मक विश्लेषण की भी काफी अहम भूमिका होती है यह मस्तिष्क के हिप्पोकैम्पल भाग में निहित रहती है जैसे कभी भी हमने बहुत कड़वी या कभी बहुत ही मीठी चीज खाई तो वह स्मृति के रूप में इसी हिप्पोकैम्पस स्थान पर पंजीकृत होती है तथा जब कभी भी हम कम कड़वी या कम मीठी कोई चीज खाते हैं तो

इसकी तुलना हम पुराने बहुत कड़वे या मीठे से करते हैं। इसी तरह कई और भी उदाहरण तुलनात्मक विश्लेषण में आते है।

मस्तिष्क में स्मरण के धारण में दो प्रकार की क्रियायें होती है।

1. रासायनिक क्रिया
2. आणविक शारीरिक परिवर्तन

रासायनिक क्रिया में कुछ विशेष प्रकार की प्रोटीन बनती है स्मृति के रूप में और इस तरह की प्रोटीन की उम्र बहुत लम्बी नहीं होती यह कुछ समय बाद मस्तिष्क से निकल जाती है। तो स्मृति की उम्र इस प्रोटीन पर आधारित होने के कारण स्मृति का आहास जल्द होता है। इसे हम "कम आयु स्मृति" के नाम से जानते है।

आणविक शारीरिक परिवर्तन, यह तंत्रिकाओं में होते है जिससे साइनैप्स में शूल बन जाते है तथा साइनैप्स का आकार भी बड़ा हो जाता है। इस रूप में स्मृति का मस्तिष्क में धारण लम्बी अवधि के लिए होता है जिसे "लम्बी आयु स्मृति" के नाम से जाना जाता है।

स्मति आहास

1. स्मृति का मस्तिष्क के विभिन्न भागों में सही तरह से पंजीकृत न होना।
2. कभी–कभी मस्तिष्क में अचानक कुछ परिवर्तन किसी स्तर पर पैदा होने लगे जैसे तनाव या किसी अन्य परिस्थिति के द्वारा, जिससे मनुष्य मनोवैज्ञानिक रूप से शिकार हो जायें। इस स्थिति में मनुष्य में स्मृति का अहास जल्दी होता है।
3. कुछ बीमारियाँ जैसे अल्जाइमर रोग, यह बीमारी 50–60 साल के आस–पास से शुरू होती है। जिससे ग्रसित मनुष्य अपने घनिष्ठ सम्बन्धियों तक को पहचान नहीं पाता तथा उसका अपने अंगो पर काबू भी नहीं होता है।
4. आयु लम्मित स्मृति का आहास, यह उम्र बढ़ने के साथ ही शुरू होता है। मस्तिष्क में 2 लाख तथ्यों तक ही स्मृति की सीमा मानी गयी है। इसके ऊपर के तथ्यों का मस्तिष्क में पंजीकरण संभव नहीं होता। यह सभी तथ्य उम्र के साथ–साथ बढ़ते है पर इनकी सीमा तय होने के बाद यह मस्तिष्क में सीमा से आगे नहीं बढ़ पाते जब तक कि कुछ पुरानी स्मृतियों को न भुलाया जाये। अधिक उम्र में नई स्मृतियों के पंजीकरण में दृष्टि (आखँ), श्रव्य (कान), स्पर्श (स्पंदन), सही तरह से अपनी क्रियाओं को संचालित नही कर पाते तो उनका मस्तिष्क में पंजीकरण भी ठीक तरह से नहीं हो पाता है जबकि मस्तिष्क भी एक तो उम्र के कारण दूसरा पुरानी स्मृतियों के कारण नई स्मृतियों का बोझ सही तरह से नही संभाल पाता है।

यहाँ पर चुनिन्दा स्मृति को काफी महत्वपूर्ण माना जा रहा है चुनिन्दा स्मरण को मस्तिष्क में धारण करने का एक सीधा उदाहरण यह है कि जैसे बचपन में किसी निकट सम्बधी की दुर्घटना, जिसमें उसको भी चोट आयी हो वह घटना उसे पूरी जिन्दगी याद रहेगी। ऐसी भावनात्मक रूप से जुड़ी स्मृतियां भी मस्तिष्क में काफी गहरी छाप छोड़ती हैं और स्मृतियों का आहास नहीं होता।

5. बढ़ती आयु के साथ मस्तिष्क में लाइपोफुस्सिन (वसा एवं प्रोटीन का मिश्रण) जमा होता रहता है यह मस्तिष्क में कई स्थानों पर अपना कब्जा जमाने लगता है जिससे मस्तिष्क में नई स्मृतियों को उचित स्थान नहीं मिल पाता है। यह लाइपोफुस्सिन मस्तिष्क के वसा में मुक्त तत्व को जनित करता है तथा यही मुक्त तत्व प्रदूषण या अपविष्ठ पदार्थ के रूप में मस्तिष्क में जमा होता रहता है। इसके प्रदूषण को दूर करने के लिए बहुत सी दवायें उपलब्ध है और यह दवायें कारगर भी सिद्ध हो रही है तथा कुछ योगिक क्रियायें भी इस प्रदूषण को दूर करने में समर्थ हो रही हैं।

वि ोष आभार

हमारा विशेष आमार प्रो0 (डा0) घनराज सिंह, पूर्व अध्यक्ष एनाटमी विभाग, के0जी0 मेडिकल कालेज, लखनऊ को जिन्होंने इस वैज्ञानिक लेख को प्रोत्साहित किया तथा डा0 एस0 सी0 शुक्ल जी जिन्होनें हमें हिन्दी कार्यशाला के माध्यम से यह सुअवसर प्रदान किया जिससे मैं इस विषय पर अपने विचार रख सका। प्रो0 (डा0) अशोक सहाय और डा0 संजीव शुक्ल को धन्यवाद जिन्होंने इस लेख को तैयार करने में मदद की ।

संदर्भ

1. वियर, मार्क एफ0; कोनोर्स, बेरी डब्ल्यू0 तथा पैराडिसो, माइकल ए0 (2001) न्यूरोसाइंस–एक्सप्लोरिंग ब्रेन, लिपनकोट विलियम्स एण्ड विल्किन्स, द्वितीय संस्करण, पृ0 739।
2. हिलगार्ड, ई0 आर0 एवं बावर जी0 एच0 थ्योरीज ऑफ लर्निंग, छठा संस्करण, प्रिंटिस हाल प्रकाशन।
3. ब्रिजमान, वी0 (1988) बायोलॉजी आफ बिहैवियर एण्ड माइन्ड, जॉन विली एण्ड सन्स, न्यूयॉर्क।
4. गुडइनफ, जे0; ग्यूरी, मैक बेटी एवं वैलेस, राबर्ट ए0 (2001) परस्पेक्टिस् ऑन एनीमल बिहैवियर, जॉन विली एण्ड सन्स, पृ0 101।

भावनायें व हृदघात की सम्भावनायें

एस0 सी0 शुक्ल
पूर्व अध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग तथा पूर्व प्राचार्य
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001,भारत
पता : ए–1104, इन्दिरा नगर, लखनऊ– 226016, भारत

भावनायें किसी भी जीव व उनके पर्यावरण के बीच निरन्तर होने वाली व हो रही अन्योन्य क्रियाओं द्वारा प्रदर्शित हुआ करती हैं। निम्न श्रेणी के जन्तुओं की अपेक्षा मानव जाति में ये जल्दी प्रदर्शित होती दिखाई पड़ती हैं। मानव जाति का अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक विकास हो जाने के कारण उसका पर्यावरण भी अधिक जटिल हो जाता है। साधारण जीवों की अपेक्षा भौतिक पर्यावरण के कारक मनुष्यों को यद्यपि कम प्रभावित करते हैं परन्तु उनके सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व जैविक पर्यावरण के कारकों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे मनो सामाजिक पर्यावरण की निरन्तर बढ़ रही जटिलता हमारे शरीर नियंत्रण तंत्र को विभिन्न प्रकार से अलग–अलग रूपों में अलग–अलग ढंग से प्रभावित किया करती है। यही नियंत्रण हमारे मस्तिष्क में स्थित अधिश्चेतक (हाइपोथैलमस) के माध्यम से हमारे शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं तथा अंगों की कार्यविधि के नियंत्रण के साथ–साथ हमारी भावनाओं का भी नियंत्रित करता है।

सामान्यतः किसी भी जीव का मनो शारीरिक तंत्र(साइको सोमेटिक सिस्टम) का निर्माण व उसकी कार्य प्रणाली का विकास इस ढंग से किया जाता है कि वह इसे सभी प्रकार प्रभावित करने वाले पर्यावरण कारकों के विशेष प्रभावों के अनुरूप दृष्टिगत ढंग से सुचारू रूप से कार्य करा सके। अतः पर्यावरण के किसी भी कारक में परिवर्तन (जो वांछित इष्टगत कार्य करने की प्रणाली से भिन्न हो) जीवों में व्यवधान पैदा कर सकता है। जीवों में इन व्यवधान उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों को 'तनाव' (स्ट्रेस) कहा जाता है तथा इस प्रकार की परिस्थिति की "तनावपूर्ण स्थिति" (स्ट्रेसफुल सिचुयेशन) के रूप में जाना जाता है।

भावनायें व हमारा शारीरिक स्वास्थ्य

मानव जाति का वर्तमान परिवेष व उससे सम्बद्ध समस्यायें लगातार तनावपूर्ण स्थितियां उत्पन्न करती रहती हैं। ऐसी परिस्थितियाँ वस्तुतः मानव रूपी तन्त्र की स्वतः अन्योन्य क्रियाओं (आटो इन्टरेक्शन), अन्तर पारस्परिक अन्योन्य क्रियाओं (इन्टरपर्सनल, इन्टरेक्शन) तथा समयाभाव के कारण लगाये गये अधिक मानसिक प्रभावों द्वारा जनित होती हैं। इस प्रकार उत्पन्न परिस्थितियों के ही कारण भावनाओं, व्यवसायिक, समाजिक या जैविक पर्यावरण तथा हृदय के सुचारू रूप में कार्य करने की समन्वयन की प्रक्रिया अनजाने में गड़बड़ा जाती है जिससे हृद कार्य प्रणाली का सुचारू रूप से संचालन नहीं हो पाता है। चिकित्सा क्षेत्र ने यह बात अब पूर्ण रूप से मान ली है कि मनुष्यों में भावनाओं की यह परिस्थिति ही हृद–रोगों के खतरों को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है तथा एक महत्वपूर्ण कारक का भी काम करती है।

हमारे शरीर तंत्र की क्रिया प्रणाली का नियंत्रण हमारे केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के द्वारा हमारे हृद–परिवहन तंत्र (कार्डियोवैस्कुलर सिस्टम) के माध्यम से किया जाता है। हमारा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र हमारे पर्यावरण की लगातार निगरानी करता रहता है तथा पर्यावरण में हो रहे परिवर्तनों के उद्दीपनों के अनुरूप शरीर की संवेदी क्रियाओं का वांछित स्तर लगातार क्रमबद्ध रूप में बनाये रखता है। इस प्रकार का केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र जनित परिवर्तन/मोडयूलेशन हमारे हृद तंत्र की क्रिया प्रणाली पर प्रभावी रूप से कार्य करता है। हृदय हमारे शरीर में एक पम्पिंग स्टेशन का कार्य करता है जिससे रक्त संचार द्वारा शरीर की सभी कोशिकाओं में आवश्यक पदार्थों की आपूर्ति एंव निष्कासन का नियंत्रण किया जाता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से हृदय से शरीर तंत्र की कार्यिकी से सम्बन्धित समस्त प्रक्रियाओं का नियंत्रण किया जाता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से हृदय शरीर तंत्र की कार्यिकी से सम्बन्धित समस्त प्रक्रियाओं का नियंत्रण करता है हृदय की कार्य प्रणाली को केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा परिवर्तित एव नियंत्रित किया जाता है जिसके फलस्वरूप शरीर तंत्र की कार्यिकी व बायोरिद्मों में आवश्यक परिवर्तन भी होते हैं जिनकी पिच की तीव्रता से ही शरीर की कार्यिकी व बायोरिदम नियंत्रित किये जाते हैं। बायोरिद्मों में होने वाले सतत् परिवर्तनों, जो शरीर की निर्धारित सहन सीमा के परे हो जाते हैं, के फलस्वरूप ही कार्यिकी में उत्पन्न व्यवधान ही शरीर की क्रिया प्रणाली के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार का कार्यिकी सम्बद्ध मनोवैज्ञानिक तनाव पर्यावरण के सामाजिक व जैविक कारकों द्वारा उत्पन्न होता है जो शरीर की विभिन्न क्रियाओं को ओजित कर देता है।

सामान्यतः भौतिक व मनोवैज्ञानिक पर्यावरण के कारकों के प्रभाव परस्पर एकीकृत अन्योन्यक्रिया द्वारा शरीर पर एक सम्मिलित प्रभाव उत्पन्न करते हैं जिससे व्यक्तिगत कारकों के प्रभाव पृथक रूप में सरलता से नहीं दिखाई देते। यद्यपि भावनाओं का मानव व्यवहार ढालने/संवारने तथा हृद–क्रिया प्रणाली में योगदान अब पूरी तरह से जाना जा चुका है परन्तु मनोवैज्ञानिक संबंध व हृदयाघात की संभावनाओं से जुड़ी जानकारी अभी पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो सकी है।

उच्च रक्तचाप तथा हृद–रोग

सामान्यतः उच्च रक्त–चाप तथा हृद पेशियों की रक्ताल्पता (मायो कार्डियल इस्की मिया) जैसे मुख्य रोगों का संबंध विभिन्न प्रकार के तनाव से बताया गया है। विभिन्न प्रकार के परीक्षणों ने निश्चित रूप से यह स्थापित कर दिया है कि विभिन्न प्रकार के कारकों तथा हृद रोगों में घनिष्ठ संबंध है। इसी कारण ऐसे व्यवसायों जैसे – इन्जीनियरों, तकनीशियनों, मशीन चालकों, प्रबन्धको, सम्पादकों, डाक्टरों, लेखाकारों आदि में (जिसमें प्रबन्धन की

समस्याओं से तंत्रिका तंत्र व उच्चतम मनोसामाजिक तनाव होता है) मनोस्थैतिक व्यवधान व हृद रोग अधिक दिखाई देते हैं। मनो–भावनात्मक तनाव के स्तर का प्रभाव इन व्यवसायों में हृद पेशीय रक्ताल्पता आई0एच0डी0 संबंधी रोगों के पाये जाने में सीधा परिलक्षित होता दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ आई0एच0डी0 की घटनायें शोधार्थियों में सबसे अधिक, इंजीनियरों में थोड़ा कम तथा शारीरिक श्रमिको में सबसे कम दिखाई देती है। इस प्रकार हृदयाघात की संभावनाओं व अवकाश के क्षणों में अधिक कार्य से उत्पन्न थकान का गहरा सबंध है।

कारण

कम समय सोने के साथ अधिक समय काम करना (उदाहरणार्थ 11 घंटे) हृदयाघात की संभावनाओं को अधिक बढ़ाता है। इन कारकों का प्रभाव ढलती आयु में अधिक दिखाई पड़ता है। प्राकृतिक आपदाये व घटनाये/दुर्घटनाये भी मानसिक तनाव उत्पन्न करते है तथा उच्च रक्तचाप की संभावना को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

भौतिक पर्यावरण के कारक जैसे ध्वनि व वायु प्रदूषण विशेषकर जटिल कारबन मोनोक्साइड का विषयन (इन्टोक्सीफिकेशन) प्राथमिक तौर पर हमारे तंत्रिका तत्र व हृद–परिवहन तंत्र को प्रभावित करते है। प्रदूषित वायु द्वारा सूर्य की किरणों के अवशोषण से जनित पृथ्वी पर पहुँचने वाली पराबैगनी विकिरणों की अधिक मात्रा मनुष्यों में भावनाओं के स्तर में न्यूनता उत्पन्न करती है तथा इससे उत्पन्न अवसाद में वृद्धि का प्रभाव हृद–परिवहन तंत्र की क्रिया प्रणाली पर पड़ता है। जीवन के हर क्षेत्र में बढ़ती स्पर्धा बढ़ता शहरीकरण, बढ़ता हुआ सूचना प्रकमण, एक दूसरे से अनैच्छिक सम्पर्क, समयाभाव, स्थानाभाव आदि शहरी लोगों में भावनात्मक तनाव को उत्पन्न करता है तथा उच्च रक्तचाप की परिस्थितियों को बढ़ाने के साथ–साथ हृदरोगों की घटनाओं में भी वृद्धि करता है।

मनोवैज्ञानिक कारक

हृद–परिवहन तंत्र में मनोवैज्ञानिक तनाव से उत्पन्न परिवर्तन शरीर के सभी तंत्रों की कार्यिकी में परिवर्तनों का आरंभ कर देते हैं। सामान्यतः हमारा शरीर नकारात्मक पर्यावरणीय की घातक परिस्थितियों के प्रभाव को सहन करने के लिये सक्षम होता है परन्तु इस प्रकार के परिवर्तनों का ठहराव यदि लम्बे समय का होता है तो हमारे शरीर की समैस्थैतिक चक्र/होमियो स्टैटिक साईकिल की निर्धारित सहन शक्ति की सीमा पार हो जाने से अधोश्चेतक पीयूष – अधिवृक्क से सम्बंधित उद्दीपनों में वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप अन्ततोगत्वा हमारा हृद–परिवर्तन तंत्र स्थायी रूप से गड़बड़ा जाता है।

किसी भी व्यक्ति में एक ही प्रकार के तनाव उत्पन्न करने वाले कारक के प्रति अलग–अलग व्यक्तियों की प्रतिक्रिया अनेक प्रकार की बातों जैसे लिंग, आयु, आनुवंशिक संघटन उसके गुणों, आहार आदि पर निर्भर करती है।

भावनात्मक रूप से स्थिर व्यक्ति भावनात्मक तनाव की दशा में भी इष्गत कार्य क्षमता से कार्य करने में सक्षम होता है यद्यपि यह बात सत्य है कि भावनात्मक उत्प्रेरण व्यक्ति को कार्य कराने हेतु प्रोत्साहित करने हेतु आवश्यक है परन्तु व्यक्तिगत सहन सीमा के परे इसकी अधिकता मानसिक क्रियाकलापों में व्यवधान उत्पन्न करती है। हर एक व्यक्ति के जीवन में प्रत्येक गतिविधि/क्रियाकलाप कर एक भावनात्मक स्तर व उसका प्रभाव भावनात्मक तनाव के रूप में परिलक्षित होते है व विभिन्न प्रकार के कारकों पर निर्भर करते हैं जो उसके व्यक्त्वि से जुड़े होते है। इन कारको में व्यक्ति की इच्छा शक्ति बुद्धि व्यवधान कारक परिस्थितियों के प्रति अवरोध क्षमता तथा उसका व्यक्तित्व निर्धारित करने वाले कारकों द्वारा तय किये जाते हैं। आनुवंशिक संरचना/संगठन तथा सम्बद्ध सामाजिक जीवन के प्रभाव से उत्पन्न होते है। सामान्यतः ऐसा देखा गया है जो व्यक्ति हड़बड़ाहट वाले स्वाभाव के होते है यथा जल्दी में खाते है तेजी से चलते हैं तथा प्रत्येक कार्य को शीघ्रातिशीघ्र निपटाने के इच्छुक होते है हृद रोगों के अधिक शिकार होते है, अपेक्षाकृत ऐसा न करने वालो के। कुछ ऐसे कार्य भी जो स्वस्थ स्पष्टवादी होने के साथ प्रभावी व तेज गति से कार्य करते है परन्तु भयावह व नकारात्मक सोच में उपरोक्त व्यवहार दर्शाते है तथा अपनी क्षमता से अधिक प्रयास लगाते हैं भी हृद रोगो के आसानी से शिकार होते दिखाई पड़ते हैं।

यदि मनुष्य के मन मे अपूर्ण भावना तथा वह अपने स्वतः में उसकी प्रकृति या तत्काल पूर्ण करने की स्थिति व उस तरीके को जिससे वह संतुष्टि प्राप्त करने की खोज पाने में असमर्थ होता है तब उसकी मनोस्थिति में उत्तेजना के स्थिर बिन्दु पैदा हो जाते है जो मुख्य रूप से उसके शरीर के अन्दर उच्च रक्त चाप पैदा करने के लिये आवश्यक विकृति जनक कारक सिद्ध होते हैं। हमारे शरीर की अपनी मनोस्थैतिक अव्यवस्थाओं के निवारण की स्वतः प्रणाली जो इस प्रकार उत्पन्न होती है तथा इस प्रकार की स्थिति का बना रहना ही उत्पन्न विरोधाभास को सही करने में सहायक सिद्ध होता है। किसी भी विरोधाभास के निराकरण की असंभावना हमारे अन्दर अनेको व्यावहारिक परिस्थितयों को जन्म देती है जो हमारे भीतर चल रहे तनाव से जुड़ी होती है। जैसा कि कहा जा चुका है कि हमारे मस्तिष्क में स्थित अधोश्चेतक शरीर में भावनाओं तथा अनैच्छिक समैस्क्षैतिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु होता है अतः इसे निरन्तर व दीर्घकालीन रूप में उत्तेजित किया जाना ही हमारे शरीर में हृद विकारों का आधारभूत कारण होता है। शोधार्थियों के अनुसार किसी दबी हुई इच्छा या असंतुष्ट भावना शरीर में उसके प्रति विरोध/वैमनस्य को जन्म देती है जिसका स्तर व्यक्ति के व्यक्तित्व के संगठन पर निर्भर करता है। साथ ही इसका गहरा संबंध उसके भीतर उत्पन्न होने वाले "घमनी काठिन्य (अथिरोस्केलोरोसिस) से होता है। हृद रोग की संभावनायें इस वैमनस्य के स्तर से सम्बद्ध नही होते है जो किसी भी बात, जो उन्हें पसन्द नही है के प्रति अपना रोष प्रकट कर लेते हैं।

समाधान

भावनात्मक तनाव को नियंत्रित करने तथा हमारे शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को कम करने के लिये हमे क्या करना चाहिये ? यह एक विकसित व

विकास शील समाजों में अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या बन चुकी है। यद्यपि हम अपने दिन प्रतिदिन के रहन–सहन में व्यक्तिगत सामाजिक तथा व्यवसायिक जीवन की आवश्यकताओं/समस्यायों को दूर तो नही कर सकते पर उनके द्वारा हमारे शरीर पर उत्पन्न घातक प्रभावों को कम करने का थोड़ा बहुत प्रयास तो कम से कम कर ही सकते हैं। हमारे व्यावसायिक जीवन में अपनी कार्यक्षमता से अधिक कार्य करके शिखर पर पहुँच जाने की लालसा की सनक की स्थिति से हमें दूर रहना चाहिये परन्तु यह कदापि न समझा जाय कि हम कम से कम ही कार्य करें। हमें अपने व्यक्तित्व की सीमाओं के भीतर ही कार्य करना चाहिये। हर व्यक्ति अपनी कार्य क्षमता से अधिक थोड़े समय तक अधिक कार्य कर सकता है परन्तु अपने व्यवसाय की आवश्यकतायें पूर्ति करने के अनुरूप अधिक लम्बे समय तक कार्य नहीं कर सकता। दूसरी बात यह भी है कि हम अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति सामाजिक व अन्य कारणों से नहीं कर पाते। जिससे नैराश्य व अवसाद की स्थितियाँ उत्पन्न होते है। यह कहना उचित होगा कि हम अपनी भावनायें स्पष्ट रूप से व्यक्त करें बजाय उन्हें छिपाकर/दबाकर अनावश्यक तनाव को झेलें। हमारे अधिकतम मानसिक तनावों की वजह है हमारी मौलिक उपलब्धियों के प्रति बढ़ती प्रतिस्पर्धा। हमें यह बात मन में ठीक से उतारनी होगी कि किसी एक ही प्रकार की उपलब्धियों को हमारे जीवन के मापदण्ड का साधन नहीं माना जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति में उसकी क्षमता के अनुसार उसके व्यक्तित्व के संरचना/संगठन के अनुसार विशेष कार्य योग्यता होती हैं। हमें समाज में यह बात भली भाँति विकसित करनी होगी कि भौतिक संसाधनों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी स्पर्धा की कमी नहीं है फिर हम एक ही क्षेत्र के पीछे क्यों अनावश्यक रूप से पड़े रहें। कहीं न कही संतोष व आत्मतुष्टि को लाना ही होगा। उपरोक्त कुछ सीमित सुझावों द्वारा हम तनाव को घटाने की दिशा में सकारात्मक प्रयास करके भावनाओं के दुष्प्रभाव को सीमित करके हृद रोग की संभावनाओं को घटाने की दिशा में यदि प्रयास करें तो शायद अच्छा होगा।

संदर्भ

शुक्ला, एस0 सी0 तथा गर्ग, पी0 के0 (1987) इमोशंस एण्ड कोरोनरी रिस्क, हेराल्ड ऑफ हेल्थ, खण्ड 64, अंक 2, मु0 पृ0 2–5/9।

द्विघातीय समीकरण – प्राचीन व समकालीन प्रणाली का विश्लेषण

प्रीति बाजपेई
डीन, स्टूडेंट वेलफेयर
बी0 आई0 टी0 पिलानी परिसर, दुबई, यू0 ए0 ई0
dr.priti.bajpai@gmail.com

प्राचीन भारत में द्विघातीय समीकरण सर्वप्रथम वेदों के निर्माण में उपयोग की गई। सुलभसूत्र जिसमें वेदों के निर्माण की विस्तृत जानकारी दी गई है, इस तथ्य को प्रमाणित करता है। इतिहास हमको बताता है कि विभिन्न प्रकार की वेदी अलग–अलग उद्देश्य से बनाई जाती थी। उनके आकार विभिन्न धार्मिक विचारों के आधार पर होते थे। इन्हीं आकारों के अलग–अलग माप के बनाने के लिए सम्भवतः गणित व समीकरणों की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् जब गणितज्ञों की रूचि व जिज्ञासा नक्षत्र विद्या की तरफ बढ़ी तब भी समीकरणों को हल किया गया।

बौध्यायन सुलभ सूत्र में द्विघातीय समीकरण का सरलतम रूप $ax^2 = c$ देखने को मिलता है। तद्उपरांत $ax^2+bx = c$ को बहुत से गणितज्ञों नें जैसे महावीर(850 बी0सी0), आर्यभट्ट(476 बी0सी0), ब्रहमगुप्त(598–668 ऐ0 डी0), श्री धराचार्य(870–930 ऐ0 डी0), श्रीपति(1019–1060 ऐ0 डी0) ने अपने–अपने तरीकों से हल किया। आश्चर्य की बात यह है कि जो विधि उस काल में भारतीय गणितज्ञों ने प्रयोग की, वह आज प्रयोग में आने वाली विधियों से बहुत भिन्न नहीं है। आज के युग में कम्प्यूटर व कैलकुलेटर का प्रयोग समीकरणों को हल करने में होता है। यह तो विदित है कि समीकरणों का हल बड़ी सरलता से हो जाता है, पर उसमें त्रुटियां रह जाती हैं। इनसे कम्प्यूटर व कैलकुलेटर की बनावट के कारण बचा नहीं जा सकता। वैसे तो बहुत सी विधियां आज प्रयोग में हैं जैसे बाइसेक्शन, न्यूटन और रेग्यूला फालसी, पर इन विधियों में श्रेष्ठ न्यूटन की विधि है। क्योंकि इस विधि से समीकरण का हल शीघ्र निकलता है। न्यूटन की विधि में पुनरावृत्ति कम होती है।

यह लेख द्विघातीय समीकरणों को हल करने की प्राचीन व समकालीन विधियों के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास है। यहाँ कुछ एक महत्वपूर्ण गणितज्ञों की विधियों को देखते हैं।

आर्यभट्ट ने समीकरण $ax^2+bx-cb = 0$ का हल इस प्रकार दिया–

आर्यभट्ट ने $ax^2+bx = c$ को हल कर x का मूल प्रदान किया

$$x = \frac{(\sqrt{abc+(\frac{b}{2})^2}-\frac{b}{2})}{a}$$

यहाँ 'x' अज्ञात राशि है, तथा a, b,c गुणांक हैं।

ब्रहमगुप्त ने दो विधियां दी हैं। उनके द्वारा पहली विधि में x का मूल प्रदान किया

$$x = \frac{\left\{\sqrt{4ac+b^2}-b\right\}}{2a}$$

तथा दूसरी विधि में x का मूल प्रदान किया गया

$$x = \frac{\left\{\sqrt{ac+\left(\frac{b}{2}\right)^2}-\frac{b}{2}\right\}}{a}$$

ब्रह्मगुप्त की विधि में गुणक का चिन्ह ± दोनों हो सकता था। यह विदित है कि श्रीधराचार्य ने द्विघातीय समीकरण $ax^2+bx=c$ को हल करने का सामान्य सूत्र दिया। 'x' का मान निकालने के लिए उन्होंने पहले समीकरण $ax^2+bx=c$ को 4a से गुणा किया फिर दोनों ओर b^2 को जोड़ा तद्उपरांत बायें हाथ के व्यंजक को पूर्ण वर्ग बनाया। उसके बाद बायें हाथ के व्यंजक का वर्गमूल लेकर

$$2ax+b=\sqrt{4ac+b^2}$$

प्राप्त हुआ। इससे उन्हें 'x' का मूल

$$x=\frac{\sqrt{4ac+b^2}-b}{2a}$$

प्राप्त हुआ। आज जो विधि हम इस्तेमाल करते हैं उसमें 'x' का मूल

$$x=\frac{-b\pm\sqrt{b^2-4ac}}{2a}$$

निकलता है। यदि इन दोनों हलों की आपस में तुलना की जाये तो पहला अंतर यह है कि श्रीधराचार्य जी की विधि में 'x' का सिर्फ एक मूल निकलता है। उसका अंतर विविक्तकर(discriminant) का है। परन्तु विविक्तकर का $(4ac+b^2)^{1/2}$ का कारण समीकरण $ax^2+bx=c$ है न की $ax^2+bx+c=0$

श्रीपति जी की भी दो विधियां हैं। पहली विधि श्रीधराचार्य जी की विधि की ही तरह है। दूसरी विधि में $ax^2+bx=c$ के दोनों ओर 'a' से गुणा करते हैं तद्उपरांत $(b/2)^2$ को समीकरण में दोनों ओर जोड़ते हैं, फिर बायें हाथ को पूर्ण वर्ग बनाकर

$$\left(ax+\frac{b^2}{2}\right)=ac+\left(\frac{b}{2}\right)^2$$

प्राप्त होता है और इससे 'x' मान निकलता है

$$x=\frac{\sqrt{ac+\left(\frac{b}{2}\right)^2}-\frac{b}{2}}{2}$$

भास्कराचार्य ने भी द्विघातीय समीकरणों को हल करने की चक्रवाती विधि दी। एक से अधिक अज्ञात राशि की द्विघातीय समीकरण का हल निकालने का श्रेय उन्हें ही जाता है।

आज पूरे विश्व का ध्यान प्राचीन भारतीय गणित की तरफ है। यह रूझान उन विधियों की सरलता की वजह से है। यह सर्वविदित है कि प्राचीन भारतीय प्राचीन विधियों से मन में गणना कर हल निकाला जा सकता है। आज मनुष्य कम्प्यूटर व कैलकुलेटर पर कुछ इस प्रकार निर्भर है कि उनके अभाव में हल निकालना कठिन लगता है। यही नहीं हल भी पूरी तरह से सही नहीं निकलता है क्योंकि कम्प्यूटर फ्लोटिंग पॉइंट अर्थमेटिक इस्तेमाल करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन गणितज्ञों द्वारा दिखाई गई विधियों को अगर आगे बढाया जाये तो कई जटिल समीकरणों के आसान हल और सर्वप्रथम समाधान निकाले जा सकते हैं। गणित में इस सरलता के आने से

संभवत: युवा विद्यार्थी गणित की तरफ आकर्षित हों जो हमारे देश के लिए बहुत लाभदायक होगा। यह इसलिए भी आवश्यक हो गया है क्योंकि युवकों का रुझान गणित की तरफ धीरे–धीरे कम होता जा रहा है।

संदर्भ

1. दत्ता, बी0 बी0 तथा सिंह, ए0 एन0(2004) हिस्ट्री ऑफ हिन्दू मैथमेटिक्स, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, भारत, खण्ड 1 व 2, संस्करण 2004।
2. शुक्ला, के0 एस0 तथा वर्मा, के0 वी0(1976) आर्यभटीय ऑफ आर्यभट्ट, ट्रांस0, नई दिल्ली, मु0 पृ0 38–45।
3. शुक्ला, के0 एस0, हिन्दू मैथमेटिक्स इन द सेवेंथ सेंचुरी एज फाउंड इन भास्कर प्रथम कौमेंट्री ऑन आर्यभटीय गणित, खण्ड 22(1971), पृ0 1, 115–130, 2, 61–78 और खण्ड 23(1972), पृ0 1, 57–79 और 2, 41–50।
4. हीफर, अल्ब्रेक्ट(1972) द रिसेप्शन ऑफ ऐंशियेंट इंडियन मैथमेटिक्स बाय वेस्टर्न हिस्टोरियन्स, पी एच0 डी0 डिजर्टेशन।

बायोमैट्रिक्स : मानव बना पासवर्ड

दीपक कोहली
5/104, विपुल खण्ड, गोमती नगर
लखनऊ(उ0 प्र0)–226010, भारत
deepakkohli64@yahoo.in

क्या मानव को पासवर्ड के रूप में प्रयुक्त करके उसका प्रमाणीकरण किया जा सकता है ? जी हाँ ! बायोमैट्रिक्स तकनीक द्वारा यह संभव हुआ है। बायोमैट्रिक्स शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों "बायोस" तथा "मेट्रोन" से मिलकर बना है, जिसमें "बायोस" का अर्थ है "जीवन" एवं मैट्रोन का अर्थ है "मापना"। दूसरे शब्दों में कहें तो बायोमैट्रिक्स जीवन को मापने की एक तकनीक है। वैज्ञानिक भाषा में बायोमैट्रिक्स एक ऐसी युक्ति है जिसमें किसी व्यक्ति विशेष के प्रमाणीकरण हेतु उसकी शरीर क्रियात्मक तथा व्यवहारात्मक विशेषताओं को मूल्यांकित किया जाता है। शारीरिक क्रियात्मक विशेषताओं में हाथ की अंगुलियों के निशान, हाथ का दबाव, आँख की रेटिना तथा आइरिस की बनावट, चेहरे की बनावट, स्वर उच्चारण पैटर्न आदि सम्मिलित हैं, जबकि व्यावहारिक विशेषताओं में हस्ताक्षर, टाइपिंग(टंकण) पैटर्न आदि समाहित रहते हैं।

इतिहासकारों के अनुसार, बायोमैट्रिक्स का सर्वप्रथम उपयोग चीन में 14वीं सदी के अंत में किया जाता था। इतिहासकार "जोजाओं दि बरोस" के अनुसार चीनी व्यापारी बच्चों की हथेली तथा पैरों की छाप कागज पर ले लिया करते थे, जिससे वे नवजात शिशुओं की पहचान सुनिश्चित कर सकें। पाश्चात्य देशों में बायोमैट्रिक्स का प्रयोग 18वीं सदी में "एंथ्रोपोमेट्रिक्स सिस्टम" के रूप में फ्रांस में आरंभ हुआ। यह प्रथम वैज्ञानिक सिद्धांत था, जिसका उपयोग अपराधियों को पकड़ने में किया जाता था जो कालांतर में बायोमैट्रिक्स के रूप में स्थापित हुआ।

आज बायोमैट्रिक्स का क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो चुका है, जो साधारण(अंगुली छाप) से आगे बढ़कर कई शारीरिक तथा व्यावहारिक मापनों के स्तर तक पहुँच चुका है। वर्तमान में बायोमैट्रिक्स का प्रयोग केवल अभिनिर्धारण(आइडेन्टिफिकेशन) तक सीमित न रहकर सुरक्षा पद्धति(सिक्योरिटी सिस्टम) तथा उससे कहीं अधिक भी किया जाता है। बायोमैट्रिक्स के अंतर्गत मानव को "पासवर्ड" के रूप में प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार किसी कम्प्यूटर में कार्य करने से पूर्व अपना पासवर्ड डालना पड़ता है, उसी प्रकार बायोमैट्रिक्स में मनुष्य की शारीरिक तथा व्यवहारिक विशेषताओं का प्रयोग प्रामाणिक पासवर्ड के रूप में किया जाता है ताकि उसकी किसी सामग्री का दुरुपयोग न होने पाए। विश्व के अनेक देशों यथा–ब्राजील, कनाडा, यूनाइटेड स्टेट्स, जापान आदि में कई सरकारी तथा निजी कंपनियों द्वारा बायोमैट्रिक्स का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इन देशों में बायोमैट्रिक्स का उपयोग बायोमैट्रिक राष्ट्रीय पहचान पत्र, फेशियल रिकॉग्निशन सिस्टम आदि के रूप में किया जाता है। बायोमैट्रिक्स की कार्यप्रणाली में बायोमैट्रिक निष्पादन को मुख्यत: फाल्स एक्सेप्ट रेट(एफ0 ए0 आर0), फाल्स नान मैच या रिजेक्ट रेट(एफ0 एन0 आर0) तथा फेल्योर टू इनरॉल रेट(एफ0 टी0 आई0) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

बायोमैट्रिक तकनीक के अंतर्गत "बायोमैट्रिक स्कैनर", और "बायोमैट्रिक हैंड रिकाग्नीशन सिस्टम" आदि उपकरण सम्मिलित होते हैं। बायोमैट्रिक्स तकनीक द्वारा कम्प्यूटरों की सुरक्षा और उनके प्रयोग का प्रमाणीकरण सुनिश्चित किया जाता है। बायोमैट्रिक्स तकनीक या कार्यविधि को एक उदाहरण से बेहतर समझा जा सकता है। यथा एक व्यक्ति घर पर सुबह अपने कम्प्यूटर पर ई–मेल एकाउंट की जांच करता है, तब वह अपने कम्प्यूटर में यूजर नेम या पासवर्ड डालने की बजाय की–बोर्ड पर "बायोमैट्रिक्स स्कैनर" के समक्ष अपने अंगूठे का दबाव डालता है। अंगूठे के दबाव को पहचान कर सिस्टम यह सुनिश्चित करता है कि उसका प्रयोग करने वाला इंसान वही व्यक्ति ही है। इस प्रकार वह कम्प्यूटर पर आगे अन्य कार्य कर पाता है। वह व्यक्ति विशेष जब घर से आफिस हेतु अपनी कार में बैठता है तो चाबी का प्रयोग करने की बजाय कार में लगा "बायोमैट्रिक स्कैनर" उस व्यक्ति विशेष के अंगूठे की छाप की जांच करके यह सुनिश्चित करता है कि कार में बैठने वाला व्यक्ति वह स्वयं ही है। इसके अतिरिक्त, व्यक्ति के कार्यालय में लगी "बायोमैट्रिक्स हैंड रिकाग्नीशन डिवाइस" द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है, कि सही एवं संबंधित व्यक्ति ही भवन में प्रवेश कर सके। उस व्यक्ति के ऑफिस कम्प्यूटर में "बायोमैट्रिक वॉयस रिकाग्नीशन सिस्टम" का प्रयोग किया जाता है जिसके समक्ष वह कुछ लाइनें बोलता है। तब कम्प्यूटर, आवाज को पहचान कर उसे अपने नेटवर्क पर कार्य करने की अनुमति प्रदान करता है।
दोपहर में लंच हेतु व्यक्ति जब निकट के रेस्तरां में प्रवेश करता है, जहाँ लगा "बायोमैट्रिक फेस रिकाग्नीशन कैमरा" उसे पहचानकर उसके लंच के खर्च का बिल स्वयमेव तैयार कर लेता है। आफिस से घर आते समय वह व्यक्ति एक पुस्तकालय से किताब लेता है किंतु पुस्तकालय में पुस्तकालय कार्ड की बजाए "बायोमैट्रिक रेटिना स्कैनर" की सहायता से वह किताब लेकर पुस्तकालय से बाहर आ जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपनी पहचान की पुष्टि करने के लिए हमें बहुधा जिन विधियों यथा–यूजर नेम, पासवर्ड, हस्ताक्षर, चाबियां, ए0टी0एम0 या क्रेडिट कार्ड आदि का प्रयोग करना पड़ता है, बायोमैट्रिक तकनीक हमें उक्त विधियों से मुक्ति दिलाने में सक्षम है। बायोमैट्रिक्स यह सुनिश्चित करती है कि हम अधिक आसानी से अपने अंगों के उपयोग यथा–हाथ, आँखें, मुँह की बनावट, फिंगर प्रिंट्स आदि की सहायता से अपनी पहचान को सत्यापित कर सकते हैं बायोमैट्रिक्स यह सुविधा प्रदान करने के अतिरिक्त अधिक प्रभावकारी भी है। हमारे कार्डों, चाबियों या हस्ताक्षर की तो नकल की जा सकती है और सामग्रियों का दुरुपयोग भी हो सकता है। किन्तु, बायोमैट्रिक तकनीक हमें इस दुरुपयोग से ऐसी सुरक्षा प्रदान करती है कि बायोमैट्रिक तकनीक के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाली शारीरिक तथा व्यवहारिक विशेषताओं की नकल संभव नहीं होती है।

विदेशों में तो बायोमैट्रिक्स तकनीक काफी प्रचलित हो चुकी है। किंतु भारतवर्ष में मात्र कुछ ही जगहों पर इस तकनीक को अपनाया गया है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र(बार्क), मुंबई, में इस प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जा रहा है। इसके अंतर्गत हाथ को जैविक पहचान के

रूप में इस्तेमाल किया गया है। तकनीक में हथेली को अंगूठे की ओर से एक प्लेट पर रखा जाता है और सीसीडी कैमरा नाखूनों की ओर से हाथ की तस्वीर लेता है। "इमेज प्रोसेसिंग तकनीक" के माध्यम से नाखूनों की ओर से ली गयी हाथों की दो आयामी तस्वीरों को कुछ ज्यामितीय स्थितियों से मिलाया जाता है। मूल रूप से यह "वन–टू–वन" नामक ऐसी पद्धति पर आधारित है जिससे जांच किए जाने वाले व्यक्ति के हाथ के वर्तमान नमूने का मिलान पहले से किए गये नमूने से किया जाता है। इस के दो चरण हैं– पहला पंजीयन ओर दूसरा सत्यापन। पंजीयन चरण में नाखूनों की ओर से हाथ की अंगुलियों के कई दो आयामी चित्र लिए जाते हैं। इन दो आयामी तस्वीरों की अन्य जानकारियों के साथ नमूने के तौर पर रखा जाता है। इन्हीं तस्वीरों के माध्यम से उस व्यक्ति का किसी जीवित नमूने से मिलान किया जाता है। पंजीयन के समय हर व्यक्ति को एक व्यक्तिगत पहचान संख्या "पिन" आवंटित की जाती है। सत्यापन के समय व्यक्ति को अपना पिन टाइप करना पड़ता है, जिससे उसका रिकॉर्ड सामने आ जाता है। इसके अतिरिक्त, आजकल बन रहे "आधार" कार्ड में भी बायोमैट्रिक पहचान चिन्ह जैसे–आँख की पुतली, उंगलियों के निशान, अंगूठे के निशान आदि लिए जाते हैं एवं कार्ड पर अंकित किए जाते हैं।

सारांश

बायोमैट्रिक तकनीक मनुष्य के शारीरिक अंगों की बनावट तथा उसके व्यवहार का उपयोग करके उसे बायो–पासवर्ड के रूप में प्रयुक्त करती है तथा कम्प्यूटरों पर कार्य करने वालों को सुरक्षा प्रदान करती है ताकि उसके सिस्टम पर सुरक्षित डाटा का कोई दुरुपयोग न कर सके। इस प्रकार "साइबर–क्राइम" को रोका जा सकता है। सामरिक महत्व व सुरक्षा से जुड़ी जानकारियों को सुरक्षित रखने तथा फोरेन्सिक डीएनए टेक्नोलॉजी की सहायता से अपराधियों को पकड़ने में भी इस पद्धति का प्रयोग किया जा रहा है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय हे कि बायोमैट्रिक्स तकनीक जहाँ एक ओर हमारे लिए उपयोगी है, वहीं दूसरी ओर इस पद्धति से हमारी वैयक्तिक गोपनीयता पर प्रश्न–चिह्न भी लग सकती है। इसलिए इसका उपयोग करने में सावधानी अपेक्षित है।

संदर्भ

1. रेक्सहेपी, एग्रोन एम0 तथा ब्रेस्टोव्की, बेहलुल(2012) इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बायोमैट्रिक्स, खण्ड 5, मु0 पृ0 126–136।
2. बायोमैट्रिक टेक्नोलॉजी टुडे, संपादक: ट्रेसी काल्डवेल।
3. इंटरनेट पर उपलब्ध अन्य स्त्रोत।

वन एवं आदिवासी

महेन्द्र प्रताप सिंह
वन अधिकारी, वन विभाग,
17, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
mahendrapratapsingh_60@yahoo.com

इस लेख में भारत की प्रमुख जनजातियों एवं आदिम जातियों के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी दी गयी है। आदिवासियों का वनों से सम्बन्ध एवं वन क्षेत्रों के साथ आदिवासियों के विकास के सम्बन्ध में विचार किया गया है। वर्तमान समय में वन विकास की वही अवधारणा ग्राह्य हो सकती है जिसमें आदिवासियों का हित सुरक्षित रहे। राष्ट्रीय वन नीति–1894 एवं 1952 द्वारा आदिवासियों को वनों का विरोधी मानते हुये उनके अधिकारों में कटौती की गयी। इससे आदिवासियों का हित प्रभावित हुआ तथा वे भावनात्मक रूप से वनों एवं वन कर्मियों के विरुद्ध हो गये। वनवासियों एवं अन्य अनुसूचित जनजाति की समस्याओं के दृष्टिगत भारत सरकार द्वारा 'अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम–2006 पारित किया गया है। इसमें वनवासियों के अधिकारों को व्यापक मान्यता प्रदान की गई है। इस अधिनियम द्वारा वनों एवं आदिवासियों के बीच पारम्परिक सम्बन्ध विकसित करने की दिशा में पुनः प्रभावी कदम उठाया गया है।

आदिवासियों एवं वनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारी संस्कृति मूलतः अरण्य संस्कृति रही है। वन एवं वन्य जीवों को वहाँ के स्थानीय वनवासियों द्वारा अपने परिवार का अंग माना गया। वनवासी समाज द्वारा वनों में स्वतन्त्रतापूर्वक रहकर वहीं से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुये सदैव वनों को संरक्षित करने का कार्य किया है। विगत कुछ दशकों में आदिवासियों एवं वनों के बीच दूरी बढ़ी है। वे वनवासी जो वनों एवं वन्यजीवों के स्वाभाविक मित्र थे, उन्हें वन का विरोधी मानते हुए उनके परम्परागत अधिकारों में कटौती की गई। हाल ही में भारत सरकार द्वारा 'अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम–2006 के माध्यम से पुनः आदिवासियों को उनका पारम्परिक अधिकार दिलाने की दिशा में ठोस कदम उठाया गया।

आदिवासी एवं वनों के बीच प्रगाढ़ सम्बन्धों का ध्यान रखते हुये वन विकास निगमों सहित वन प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी सभी अभिकरणों का प्रधान कार्य वनों में तथा उसके चारों ओर रहने वाले आदिवासियों को लाभदायक रोजगार उपलब्ध कराने के अतिरिक्त वनों की सुरक्षा, पुनरुद्धार एवं विकास के लिये आदिवासियों के लिये सहायता दिया जाना चाहिये। आदिवासियों के परम्परागत अधिकारों एवं हितों की रक्षा करते समय वानिकी कार्यक्रमों पर ध्यान देना चाहिये। वनों में ठेकेदारों के स्थान पर आदिवासी सहकारी समितियों, श्रमिक सहकारी समितियों अथवा राजकीय निगम जैसे संस्थान से कार्य कराया जाना चाहिये।

वनों पर आधारित उद्योग

वनों पर आधारित उद्योगों की स्थापना और उनको कच्चे माल की आपूर्ति का निर्धारण निम्न बातों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए–

- जहाँ तक सम्भव हो, वन आधारित उद्योग को उस फैक्टरी और व्यक्तियों के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करके ऋण, निरन्तर तकनीकी सलाह और अन्तिम रूप से कटाई और परिवहन सेवाओं सहित निवेशों के साथ, जो व्यक्तियों की सहायता के लिये कच्चे माल पैदा कर सकते हैं, अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिये कच्चा माल पैदा करना चाहिये।

- गांव अथवा कुटीर उद्योग स्तर के अलावा, किसी भी वन आधारित उपक्रम को भविष्य में तब तक अनुमति न दी जाये जब तक कि कच्चे माल की आश्वासित उपलब्धता के सम्बन्ध में सावधानीपूर्वक जांच पड़ताल से इन्हें स्पष्ट न किया गया हो। इस प्रयोजन के लिये किसी भी हालत में स्थानीय जनता की ईंधन, चारे और इमारती लकड़ी की जरूरतों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिये।

- वन आधारित उद्योग न केवल स्थानीय लोगों को प्राथमिकता के रूप से रोजगार प्रदान करें अपितु उनको पेड़ उगाने और कच्चा माल पैदा करने में भी शामिल करें।

- प्राकृतिक वन, जीन पूल संसाधन के रूप मे कार्य करते हैं तथा पारिस्थितिकीय सन्तुलन बनाए रखने में सहायक होते हैं। अतः उद्योगों को इस प्रकार के वनों को पौधारोपण और किन्हीं अन्य गतिविधियों के लिये उपलब्ध नहीं कराया जाना चाहिये।

- विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों को उनके पास उपलब्ध सीमान्त/अवक्रमित भूमि पर उद्योगों के लिये अपेक्षित काष्ठ प्रजातियां उगाने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। इन्हें ईंधन और चारा प्रजातियों के साथ सामुदायिक भूमि, जिनको चारागाह प्रयोजनों के लिये आवश्यकता नही हैं, तथा वन विभाग/निगमों द्वारा अवक्रमित वन जो प्राकृतिक पुनर्जनन के लिये निर्धारित नहीं हैं, में भी उगाया जाये।

- उद्योगों को रियायती दरों पर वन उत्पादों की आपूर्ति की परम्परा को बन्द किया जाना चाहिये। उद्योगों को वैकल्पिक कच्चे माल का उपयोग करने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। लकड़ी और लकड़ी उत्पादों के आयात को उदार बनाया जाये।

वन विस्तार

वन संरक्षण के कार्यक्रम लोगों की स्वेच्छा, समर्थन एवं सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकते। अतः यह आवश्यक है कि लोगों के मन में वनों, उसके विकास एवं संरक्षण के प्रति पर्याप्त रूचि उत्पन्न की जाये एवं वृक्षों, वन्यजीवों एवं प्रकृति के महत्व के प्रति उन्हें जागरूक किया जाए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में शैक्षिक संस्थाओं का उपयोग किया जाना आवश्यक है। किसानों को शिक्षित करने हेतु अल्प अवधि के पाठ्यक्रम एवं कृषि विकास केन्द्रों/प्रशिक्षण केन्द्रों को विकसित किया जाना चाहिये। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु जनसंचार माध्यम, श्रव्य–दृश्य उपकरणों और विस्तार मशीनरी की सहायता से अच्छे कार्यक्रम तैयार कर उसे प्रचारित करना आवश्यक है।

वानिकी शिक्षा

वानिकी को एक वैज्ञानिक विषय के तौर पर और पेशे के तौर पर मान्यता दी जानी चाहिये। देश को मानवीय शक्ति में रखते हुये जो कृषि विश्वविद्यालय व संस्थान वानिकी शिक्षा के विकास के प्रति समर्पित हैं, उन्हें शैक्षणिक शिक्षा प्रदान करने और स्नातकोत्तर अनुसंधान तथा व्यावसायिक कौशल को प्रोत्साहित करने के लिये शैक्षिक एवं व्यावसायिक योग्यताओं को ध्यान में रखकर सेवाकालीन प्रशिक्षण द्वारा बेहतर प्रबन्ध कौशलों के विकास के लिये विशिष्ट और अनुकूल पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है।

वानिकी अनुसंधान

पर्यावरणीय स्वास्थ्य, ऊर्जा और रोजगार के लिये वनों के महत्व की बढ़ती हुयी मान्यता के साथ अनुसंधान आधार तथा कार्यवाही के लिये नई प्राथमिकताओं के उपयुक्त सुदृढ़ीकरण को आवश्यक मानते हुये वैज्ञानिक अनुसंधान पर जोर दिया जाना चाहिये। अनुसंधान और विकास के लिये विस्तृत प्राथमिकता वाले क्षेत्र जिन पर विशेष ध्यान दिये जाने की जरूरत है, ये इस प्रकार हैं–

1. आधुनिक वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी तरीकों का उपयोग करके लकड़ी तथा अन्य उत्पादों की उत्पादकता में क्षेत्र की प्रति इकाई/समय की प्रति इकाई वृद्धि करना।
2. बंजर/सीमांत/परती/खनिज भूमि और जल भराव वाले क्षेत्रों का पुनर्वनस्पतिकरण।
3. वर्तमान वन संसाधनों का प्रभावी संरक्षण और प्रबन्ध।
4. ग्रामीण/आदिवासी विकास के लिये सामाजिक वानिकी से सम्बन्धित अनुसंधान।

कार्मिक प्रबन्ध

- व्यावसायिक वन अधिकारियों तथा वन वैज्ञानिकों के लिये कार्मिक प्रबन्ध में सरकार की नीतियों का उद्देश्य विशेषकर दूरस्थ तथा दुर्गम स्थानों में उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के विकट स्वरूप को ध्यान में रखते हुये उनकी व्यावसायिक क्षमता और स्तर को उन्नत करना और योग्यता प्राप्त अभिप्रेरित कार्मिकों को आकर्षित करना तथा सेवा में रखना चाहिये।

- वन संसाधनों के बारे में आंकड़ों की अपर्याप्तता एक चिन्ता का विषय है, क्योंकि इससे आत्मसंतोष की एक भ्रान्ति जनक धारणा पैदा होती है। देश में वैज्ञानिक आधारों पर वन संसाधनों के सर्वेक्षण को पूरा करने की जानकारी को अद्यतन बनाने को प्राथमिकता दी जाये। इस प्रयोजन के लिये वन प्रबन्ध के संगत पहलुओं के सम्बन्ध में विश्वसनीय आंकड़ों के अविधिक संग्रहण, मिलान और प्रकाशन में आधुनिक प्रौद्योगिकी और उपकरणों में सुधार लाने की जरूरत है।

भारत की प्रमुख जनजातियों का संक्षेप में विवरण निम्न प्रकार है–

1. भील

1981 में इनकी जनसंख्या 55.27 लाख थी, जो 1991 में 97.30 लाख हो गई। ये मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान एवं त्रिपुरा राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। भील योद्धा वंशज के हैं। राजस्थान के डूंगरपुर, भीलवाड़ा आदि में भीलों द्वारा स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की गई। ये सामान्यतया 'भीली' बोली बोलते हैं जिसकी कोई लिपि नहीं है। भीलों के जीवन यापन का प्रमुख स्रोत कृषि है। देश के अन्य समुदायों की तुलना में उनका खेती करने का ढंग अभी भी पुराना है। कृषि व्यवसाय अपनाने से पूर्व भील वन, वन्य उपजों एवं वन्य पशुओं के आखेट पर निर्भर थे। अभी भी कुछ भील वनों पर निर्भर हैं।

2. गोंड

1981 में इनकी जनसंख्या 74.48 लाख थी, जो 1991 में 93.19 लाख हो गई। ये मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, उड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जन जाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। 1947 के पूर्व महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ़ के कई राज्यों पर गोंड राजाओं का शासन था। गोंड मुख्यतः खेती एवं वनों पर आश्रित हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार 64 प्रतिशत गोंड किसान एवं 32 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे। कुछ क्षेत्रों में गोंडों के समूह अभी भी परिवर्तनीय खेती करते हैं। कुछ गोंड वन उपजों के संग्रहण, मछली मारना एवं शिकार आदि पर निर्भर हैं। दक्षिण बस्तर के डोड़िया एवं माडिया आदि गोंडों का मुख्य व्यवसाय

पशुपालन है। स्थायी रूप से खेती करने वाले लगभग सभी गोंडों को भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त है, परन्तु बस्तर के पहाड़ी माड़िया जैसे गोंड अभी भी परिवर्तनीय खेती करते हैं तथा इनमें सामूहिक भू स्वामित्व की परम्परा विद्यमान है। सामान्यतः चल और अचल सम्पत्ति का अधिकार पुरुषों के मध्य ही हस्तान्तरित होता है।

3. संथाल

1981 में इनकी जनसंख्या 42.60 लाख थी, जो 1991 में 47.79 लाख हो गई। ये बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल एवं त्रिपुरा राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। संथाल लोग संथाली भाषा बोलते हैं जिसकी 'ओल्चिकी' नामक अपनी लिपि है। बिहार में इनकी जनसंख्या 36.52 प्रतिशत, उड़ीसा में 8.93 प्रतिशत एवं त्रिपुरा में 0.49 प्रतिशत है। प्रारम्भ में संथाल अपने जीवन यापन के लिए वनोपज के संग्रहण, शिकार, मछली मारने तथा तराई में परिवर्तनीय खेती करते थे किन्तु अब ये मुख्यतः खेती में संलग्न हैं। कृषि इनका मुख्य व्यवसाय है। इनमें से अधिकांश भूमिहीन श्रमिक हैं तथा इनके सामाजिक–आर्थिक जीवन में मौसमीय प्रवजन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

4. उरांव

1981 में इनकी जनसंख्या 18.60 लाख थी, जो 1991 में 26.50 लाख हो गई। ये बिहार एवं मध्यप्रदेश राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। उरांव लोग मुख्यतः कृषि पर निर्भर हैं। ऐसा माना जाता है कि छोटा नागपुर के पठार में हल चलाकर खेती का कार्य सर्वप्रथम उरांवों द्वारा ही प्रारम्भ किया गया। इधर उरांव कृषकों के प्रतिशत में गिरावट आई है। ऐसा देखा गया है कि उरांवों को उनकी कृषि भूमि से वंचित किया जाने लगा है जिससे वे मजदूर बनने के लिए बाध्य हो रहे हैं। सुरक्षात्मक भूमि कानून के होते हुए भी उन्हें उनकी भूमि से बेदखल करके रांची के आस–पास बड़ी और मध्यम औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना के लिए भू–अर्जन किया गया है। जनजातियों को बिना वैकल्पिक आधार दिए भूमि से बेदखली उन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। ये सामान्यतः शुद्ध शाकाहारी होते हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने इन्हें इनकी भूमि से बेदखल कर दिया। इनमें से कुछ गांधी जी के प्रबल अनुयायी बन गए और 'असहयोग आन्दोलन' में भाग लिया।

5. मीना

राजस्थान में 1981 में इनकी जनसंख्या 20.87 लाख थी, जो 1991 में 28.01 लाख हो गई, जो देश के कुल मीना जाति का 99.99 प्रतिशत है। मध्यप्रदेश राज्य में 1991 की जनगणना के अनुसार 2,000 मीना पाए गए। ये अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। राजस्थान के मीनाओं का गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। पहले राजस्थान के कई भागों पर इनका शासन था। अंग्रेजों द्वारा इन्हें अपराधिक जनजाति घोषित किया गया। मीनाओं का मुख्य व्यवसाय कृषि है। उनकी खेती के अधीन क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ से लेकर वीरान मरुस्थली तक फैले हैं। यहाँ सिंचाई साधन सन्तोषप्रद नहीं है।

6. मुंडा

1981 में इनकी जनसंख्या 14.24 लाख थी, जो 1991 में 16.18 लाख हो गई। ये बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, त्रिपुरा एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जन जाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। इनकी मुख्य भाषा मुंडारी है। मुंडा लोग मुख्यतः कृषक वर्ग से हैं। प्रारम्भ में भूमि का स्वामित्व सामुदायिक आधार पर था। उन्होंने निर्जन वनों को खेती के लिए साफ किया तथा यह भूमि उनकी 'खूँटकट्टी' बन गई। इस प्रकार की भूमि लगान रहित थी। बाद में 'उतकार', 'छतीसा' आदि विभिन्न भूमि काश्तकारी प्रणालियां अस्तित्व में आयीं, जिनमें केवल उसी वर्ष का लगान लिया जाता था, जिस वर्ष खेती की जाती थी। सन् 1981 में 71 प्रतिशत मुंडा कृषि कार्य करते थे जो 1991 में घटकर 57 प्रतिशत रह गया। इससे स्पष्ट है कि मुंडा कृषि संसाधनों से वंचित हुए हैं।

7. खोंड

1981 में इनकी जनसंख्या 9.91 लाख थी, जो 1991 में 11.46 लाख हो गई। ये मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। इनमें से लगभग 93 प्रतिशत उड़ीसा में, 6 प्रतिशत आंध्र प्रदेश में एवं शेष अन्य राज्यों में पाए जाते हैं। खोंड बहुत सीधे होते हैं। ये 'कोंधी' बोली बोलते हैं। पूर्व में खोंड यायावर का जीवन जीते थे और कन्दमूल तथा फलों पर जीवन निर्वाह करते थे। परन्तु अब ये मुख्यतः कृषक वर्ग के हैं। 'कुटिया' और 'डोगरिया' खोंड परिवर्तित खेती करते हैं, जो 'पोडचा' कहलाती है। वें खोंड जिनके पास अपनी जमीन नहीं है, मजदूर के रूप में कार्य करते हैं। इनकी कृषि तकनीक बहुत ही पुरानी है। इनकी अर्थ व्यवस्था मुख्यतः कृषि एवं वनों पर आधारित है। इनकी मुख्य फसल हल्दी, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि है। खोंड क्षेत्रों में वस्तु विनिमय प्रणाली अभी भी विद्यमान है। साप्ताहिक हाट इनके लिए अदला– बदली के केन्द्र का कार्य करते हैं जहाँ ये कृषि एवं वनोपज से अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

आदिम जातियां

आदिवासियों की दशा की समीक्षा के लिए 1969 में योजना आयोग द्वारा गठित 'शीलु आव समिति' ने पाया कि जनजातीय समुदाय के अधिकांश लोग बहुत पिछड़े हुए हैं और इनमें से कुछ तो अभी भी आदिकालीन अन्न संचय युग में जी रहे हैं। इन समुदायों पर विशेष ध्यान

देने की आवश्यकता पर बल दिया गया। राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में 47 जनजातीय समूहों की लगभग 23 लाख जनसंख्या को 'जन जातीय उप– योजना नीति' के एक अंश के रूप में आदिम जन जाति समूह के रूप में माना गया।

आदिम जनजातियों का राज्य वार विवरण निम्न प्रकार है–

राज्य/संघ शासित क्षेत्र	आदिम जनजाति	1991 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या	मुख्य व्यवसाय
आंध्र प्रदेश	बोडो गडबा, गुडोब गडबा, चेन्चू, पूर्जा, कोलम, कोंडा रेड्डी, डोंगरिया खोंड	3,11,543	खाद्य संग्रहण, कृषि, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
बिहार	असेर, बिरहोर, बिरजा, हिल खड़िया, कोरवा, माल पहाड़िया, सौरिया, सवर	2,41,136	खाद्य संग्रहण, कृषि एवं परिवर्तनीय खेती
गुजरात	काथोडी, कोटवालिया, पाढर, सिडोइ, कोटघा	79,255	कृषि, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
कर्नाटक	जेमू कुरुवा, कोरामा	45,693	विविध व्यवसाय
केरल	चोलानायकयन, कादर, कट्टाउनायकन, कुरुम्बा, कोरगा	16,278	खाद्य संग्रहण
मध्य प्रदेश	अबूझमाड़िया, बैगा, भाड़िया, हिल कोरबा, कमार, साहरिया, बिरोहार	7,13,370	खाद्य संग्रहण, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
महाराष्ट्र	कट्कड़िया, कोलम, माड़िया गोंड	4,41,046	खाद्य संग्रहण, कृषि एवं विविध व्यवसाय
मणिपुर	मर्रम नागा	9,592	कृषि
उड़ीसा	बिरहोर, बोंडा पोराजा, दीदाई, डोंगरिया खोंड, जुआंग खाड़िया, कुटिया खोंड, लांजिया सौंरत, लोढा, मानकी दियास, पौड़ी भुयन, सौरा	70,725	खाद्य संग्रहण, कृषि, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
राजस्थान	सहरिया	59,510	विविध व्यवसाय
तमिलनाडु	कट्टूनायकन, कोटा, कुरुम्बा, इरुला, पणियन, टोडा	1,95,332	खाद्य संग्रहण, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
त्रिपुरा	रियांग	1,11,606	परिवर्तनीय खेती
उत्तर प्रदेश	बुक्सा, रजिया	36,349	खाद्य संग्रहण, कृषि
पश्चिम बंगाल	बिरहोर, लोढा, टोटो	68,950	खाद्य संग्रहण
अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह	ग्रेट अण्डमानी, जरवा, ओंगे, सेंटनेली, शोम्पेन	23,36,286	खाद्य संग्रहण

आदिवासी सदा से ही वनों में रहते आए हैं इसलिए आदिवासियों एवं वनों के बीच अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। ईंधन, पशुओं के लिए चारा, फल–फूल, जड़ी–बूटी, कृषि औजार, लकड़ी आदि के लिए वे वनों पर ही आश्रित हैं। वन से ही उन्हें भोजन प्राप्त होता है एवं उनकी जीविका चलती है। उनकी संस्कृति मूलतः अरण्य संस्कृति है। वे अनेक पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं की पूजा करते हैं।

प्राचीन काल में आदिवासी लोग वनों के संसाधनों का स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग करते थे तथा अपने को वनों का मालिक समझते थे। 19 वीं शताब्दी के अन्त में वनों का प्रबन्ध सरकार द्वारा देखा जाना प्रारम्भ होने से उनके अधिकारों में कटौती हुई। 1894 की वन नीति में लोक हित में वनों पर राज्य सरकार का नियन्त्रण प्रस्तुत किया गया जिससे आदिवासियों के अधिकारों में कटौती हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त 1952 में नई राष्ट्रीय वन नीति घोषित की गई। इससे जनजातियों पर निम्न प्रभाव पड़ा–

1. खेती के लिए वन भूमि देने सम्बन्धी छूट वापस लिये जाने से आदिवासी प्रभावित हुए।
2. ग्रामवासियों की वन–आधारित आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु ग्राम–वनों की स्थापना की गई।
3. निजी वनों को राज्य सरकार के अधीन लाया गया।
4. वनों में निःशुल्क चराई की सुविधा समाप्त की गई।
5. आदिवासियों को परिवर्ती खेती की पारम्परिक प्रथा से छुड़ाने का प्रयास किया गया।

गौण वन उपज

गौण वन उपज आदिवासियों को महत्वपूर्ण आहार एवं जीविका के साधन प्रदान करती है। पहले यह आदिवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करती थी। बाद में कुछ गौण वन उपजों की कीमत बढ़ जाने से ये व्यापारिक महत्व की हो गईं, जिससे आदिवासियों को कुछ

आय होने लगी। बाद में व्यापार का नियन्त्रण वन विभाग को सौंपा गया। इससे व्यापारियों को एकमुश्त राशि के भुगतान पर लघु वनोपज को संग्रह करने अथवा संग्रहीत मात्रा पर रॉयल्टी देने की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। व्यापारीगण सामान्यतः आदिवासियों से वनोपज संग्रह कार्य कराते हैं। इस प्रक्रिया में विसंगतियों को देखते हुए विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा कतिपय गौण वन उपज को राष्ट्रीयकृत कर दिया गया है। राष्ट्रीयकृत वन उपजों के खरीदने का एकाधिकार राज्य सरकारों में निहित है। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा इनकी कीमतें भी निर्धारित कर दी गई हैं।

आदिवासी क्षेत्रों में लघु वन उपज विपणन की समस्या के निराकरण हेतु भारत सरकार द्वारा 1987 में राष्ट्र स्तरीय सर्वोच्च सहकारी विपणन संगठन के रूप में 'भारतीय आदिवासी सहकारी विपणन विकास फेडरेशन' स्थापित किया गया। यह राज्य आदिवासी सहकारी विपणन विकास फेडरेशनों और राज्य विकास निगमों को गौण वन उपजों तथा अन्य जनजातीय उत्पादों के अन्तर–राज्यीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में सहायता प्रदान करता है।

देश में लगभग 5,000 वनग्राम है जिनमें लगभग दो लाख जनजातीय परिवार रहते हैं। ये पूर्ण रूप से वनों पर निर्भर हैं।

वनवासियों एवं अन्य अनुसूचित जनजाति की समस्याओं के दृष्टिगत भारत सरकार द्वारा 'अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वनवासी(वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम–2006 पारित किया गया है। वन में निवास करने वाली ऐसी अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परम्परागत वन निवासियों के जो ऐसे वनों में पीढ़ियों में निवास कर रहे है किन्तु उनके अधिकारों को अभिलिखित नहीं किया जा सका है, को वन अधिकारों और वन भूमि के अधिभोग को मान्यता देने एवं वन भूमि में इस प्रकार निहित वन अधिकारों को अभिलिखित करने के लिये इस अधिनियम का निर्माण किया गया। इस अधिनियम के अध्याय–2 के अन्तर्गत प्रदत्त मुख्य अधिकार निम्नवत हैं–

1. इस अधिनियम के प्रयोजनो के लिए, वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परम्परागत वन निवासियों के सभी वन भूमि पर निम्नलिखित वन अधिकार होंगे, जो व्यक्तिगत व सामुदायिक भूधृति या दोनों को सुरक्षित करते हैं अर्थात्–

   - वन में निवास करने वाले अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासियों के किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों द्वारा निवास के लिये या जीविका के लिये स्वयं खेती करने के लिये व्यक्तिगत या सामुदायिक अधिभोग के अधीन वन भूमि को धारित करने और उसमें रहने का अधिकार।
   - निस्तार के रूप में सामुदायिक अधिकार, चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हों, जिनके अन्तर्गत तत्कालीन् राजाओं के राज्यों, जमींदारी या ऐसे अन्य मध्यवर्ती शासनों में प्रयुक्त अधिकार भी सम्मिलित है।
   - गौण वन उत्पादों के, जिनका गांव की सीमा के भीतर या बाहर पारंपरिक रूप से संग्रह किया जाता रहा है स्वामित्व संग्रह करने के लिये पहुँच, उनका उपयोग और व्ययन का अधिकार रहा है।
   - यायावरी या चारागाहों समुदायों की मत्स्य और जलाशयों के अन्य उत्पाद, चरागाह (स्थापित और घुमक्कड़ दोनों) के उपयोग या उन पर हकदारी और पारम्परिक मौसमी संसाधनों तक पहुँच के अन्य सामुदायिक अधिकार।
   - वे अधिकार जिनके अन्तर्गत आदिम जनजाति समूहों और कृषि पूर्व समुदायों के लिये गृह और आवास की सामुदायिक भू–धृतियां भी है।
   - किसी ऐसे राज्य में, जहाँ दावे विवादग्रस्त हैं, किसी नाम पद्धति के अधीन विवादित भूमि में या उस पर के अधिकार।
   - वन भूमि पर हक के लिये किसी स्थानीय प्राधिकरण या किसी राज्य सरकार द्वारा जारी पट्टी या धृतियों या अनुदानों के संपरिवर्तन के अधिकार।
   - वनों के सभी वन ग्रामों, पुराने आवासों, असर्वेक्षित ग्रामों और अन्य ग्रामों के बसने और संपरिवर्तन के अधिकार चाहे वे राजस्व ग्रामों में लेखाबद्ध हों, अधिसूचित हों अथवा नहीं।
   - ऐसे किसी सामुदायिक वन संसाधन का संरक्षण, पुनरुज्जीवित या संरक्षित या प्रबंध करने का अधिकार, जिसकी वे सतत् उपयोग के लिये परंपरागत रूप से संरक्षा और संरक्षण कर रहे हैं
   - ऐसे अधिकार जिनको किसी राज्य की विधि या किसी स्वशासी जिला परिषद् या स्वशासी क्षेत्रीय परिषद की विधियों के अधीन मान्यता दी गयी है या जिन्हें किसी राज्य की सम्बन्धित जनजाति की किसी पारंपरिक या रूढ़िगत विधि के अधीन जनजातियों के अधिकारों के रूप में स्वीकार किया गया है।

   - जैव विविधता तक पहुँच का अधिकार और जैव विविधता तथा सांस्कृतिक विविधता से सम्बन्धित बौद्धिक संपदा और पारंपरिक ज्ञान का सामुदायिक अधिकार।
   - कोई ऐसा अन्य पारंपरिक अधिकार जिसका, यथास्थिति, वन में निवास करने वाली, उन अनुसूचित जनजातियों या अन्य परंपरागत वन निवासियों द्वारा रुढ़िगत रूप से उपभोग किया जा रहा है, जो खंड (क) से खंड (ट) में वर्णित है, किन्तु उनमें किसी प्रजाति के वन्य जीव का शिकार करने या उन्हें फंसाने या उनके शरीर का कोई भाग निकालने का परंपरागत अधिकार नहीं है।
   - यथावत पुनर्वास का अधिकार, जिसके अन्तर्गत उन मामलों में आनुकल्पिक भूमि भी है जहाँ अनुसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत वन निवासियों को 13 दिसम्बर, 2005 के पूर्व किसी भी प्रकार की वनभूमि से पुनर्वास के उनके वैध हक प्राप्त किये बिना अवैध रूप से बेदखल या विस्थापित किया गया हो।

2. वन संरक्षण अधिनियम–1980 में किसी बात के होते हुये भी केन्द्रीय सरकार, सरकार द्वारा 1980 का 69 व्यवस्थित निम्नलिखित सुविधाओं के लिये वन भूमि के परिवर्तन का उपबंध करेगी जिसके अन्तर्गत प्रति हेक्टेयर पचहत्तर से अनधिक पेड़ों का गिराया जाना भी है, अर्थात्– विद्यालय, औषधालय या अस्पताल, ऑगनबाड़ी, उचित कीमत की दुकानें, विद्युत और दूरसंचार लाइनें, टंकिया और अन्य लघु जलाशय, पेय जल की आपूर्ति और जल पाईपलाइनें, जल या वर्षा जल संचयन संरचनायें, लघु सिंचाई नहरें, अपारंपारिक ऊर्जा स्रोत, कौशल उन्नयन या व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र, सड़कें तथा सामुदायिक केन्द्र।

इस प्रकार इस अधिनियम में वनवासियों के अधिकारों को व्यापक मान्यता प्रदान की गई है। गरीब एवं अविकसित आदिवासियों एवं वनवासियों को राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने की दिशा में यह अधिनियम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आदिवासियों एवं वनवासियों के सहयोग से वनों की प्रभावी सुरक्षा होगी तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य होगा।

संदर्भ

1. पाण्डेय, गया(2007) भारतीय जनजातीय संस्कृति, कंसैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, भारत।
2. तिवारी, डी0 एन0(1989) वन आदिवासी एवं पर्यावरण, शांति पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, उ0प्र0, भारत।
3. शुक्ला, आर0 एस0(2000) फॉरेस्ट्री फॉर ट्राइबल डेवेलपमेंट, व्हीलर्स पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, भारत।

नैनो – मैटीरियल आधारित संवेदक

मुहम्मद अयुब अंसारी[1] तथा रमेश कुमार प्रजापति[2]
[1]रीडर, रसायन विज्ञान विभाग
बिपिन बिहारी पी0 जी0 कॉलेज, झांसी(उ0 प्र0)–284001, भारत
ayub67@rediffmail.com
[2]वरिष्ठ प्रवक्ता, रसायन विज्ञान विभाग
दिगम्बर जैन पी0 जी0 कॉलेज, बड़ौत, बागपत(उ0 प्र0)–250611, भारत
rameshkrpr@yahoo.com

विगत तीन दशकों से संवेदक के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। इनके निम्न गुणों जैसे कि इनका आसानी से प्रयोग, शीघ्रता से पता करना व कम लागत आदि के कारण संवेदक परम्परागत विश्लेषणात्मक तकनीकी से हटकर बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

आधुनिक युग में अति सूक्ष्म प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण प्रगति के कारण नैनो–मैटीरियल पर आधारित संवेदक का विश्लेषण करने में उपयोग हो रहा है। संवेदक ऐसा उपकरण है जो कि भौतिक गुणों की पहचान करते हुए उसका मापन करता है। संवेदक के व्यापक प्रभाव को पर्यावरण निगरानी, चिकित्सा, खाद्य सुरक्षा तथा मानव सुरक्षा में देखा जा सकता है। इसलिए ऐसे संवेदक के खोज एवं विकास की आवश्यकता महसूस हुई जिनका आयाम नैनोमीटर के पैमाने में हो सके क्योंकि जब पदार्थ का आयाम अतिसूक्ष्म होता है तो इनका पृष्ठ से आयतन अनुपात ज्यादा होता है। इस अनुपात के बढने से पदार्थ का पृष्ठगुण सम्पूर्ण पदार्थ से ज्यादा होता है।

संवेदक के कार्य प्रणाली को तीन प्रकार से विभाजित करके आसानी से समझा जा सकता है–

1. रिकग्निशन के सिद्धांत पर(जैसे कि इंजाइम, डी0एन0ए0 या मॉलिक्युलर रिकग्निशन)
2. ट्रांसड्यूजर विधि(इलेक्ट्रिकल, ऑप्टिकल, थर्मल आदि)
3. प्रयोग के आधार पर(पर्यावरण, अंतरिक्ष, खाद्य, औषधि आदि)

सामान्यत: रासायनिक या जैव संवेदक रिसेप्टर और ट्रांसड्यूजर से मिलकर बने हुए होते हैं। रासायनिक संवेदक में रिसेप्टर पॉलिमर धातु या ऑक्साइड या सेल्फ असेम्बल्ड मोनोलेयर जैसे पदार्थों से तथा जैविक संवेदक में रिसेप्टर एंटीबॉडी, इंजाइम, प्रोटीन या न्युक्लिक एसिड होते हैं। जब ये एनालाइट के सम्पर्क में आते हैं तो रासायनिक या भौतिक क्रिया करके सिग्नल देते हैं और ट्रांसड्यूजर इन सिग्नल को मापने का कार्य तथा मात्रा का निर्धारण करता है[1,2]।

सिग्नल को ट्रान्सड्यूस करने के लिए निम्न महत्वपूर्ण विधियों का प्रयोग करते है।

1. आप्टीकल मापन (ल्यूमिनिसेन्स, सर्फेस प्लाज्मा, रिजोनेन्स, ध्रुवीकरण, फ्लोरोसेन्स)
2. इलैक्ट्राकेमिकल मापन (कन्डक्टोमेट्रिक, एम्पीयरोमेट्रिक, पोटेन्शियोमेट्रिक आदि) ।
3. भार संवेदी मापन।
4. ताप–सूचक जैव संवेदक।

नैनो–मैटीरियल पर आधारित संवेदकों का मापन के दो वर्गों में प्रयोग करके उन्हें आसानी से समझा जा सकता है।

1. आयनिक अवयवों के मापन में–

   टॉन और उनके सहयोगियों[3] ने सर्वप्रथम नैनोकण पर आधारित ऑप्टिकल संवेदक का खोज एवं विकास किया। इसके उपरांत कई अन्य ऑप्टिकल रासायनिक संवेदकों का निर्माण किया गया जिसमें पीएच, आयन की सान्द्रता तथा अन्य गुणों का अध्ययन किया गया[4]।

   इस कार्य के लिए 100–1000nm व्यास वाला आप्टीकल फाइबर का प्रयोग किया गया। इसके ऊपर (200nm) एल्युमिनीयम जमा किया गया और पी0एच0 संवेदी फ्लोरोसेन्स डाई के द्वारा 10^{-18} से लेकर 10^{-21} मोल तक एनालाइट की मात्रा का पता लगाया। कैल्सियम आयन के मापन में भी आप्टीकल नैनो जैव संदवेक का उपयोग किय गया है।

2. उदासीन अवयवों के मापन में–

   नैनोफाइबर का सर्वप्रथम उपयोग जैव–संवेदक के क्षेत्र में कैंसर जैसी घातक बीमारी के पता लगाने में किया गया। इस नैनो जैव संवेदक के द्वारा 10^{-21} मोल की सीमा तक फ्लोरोसेन्ट स्पेक्ट्रोस्कोपी द्वारा बेंजो(एल्फा)फाइरीन टेट्रॉल(बी0पी0टी0) का पता लगाया गया।

यह नैनो जैव संवेदक एन्टीबाडी/एन्टीजेन का उदाहरण है। इस प्रमाणी में नैनोफाइबर का प्रयोग चांदी के कोटिंग(200 नैनोमीटर) करके बनाया जाता है इसके द्वारा मापन का कार्य शीघ्र(5 मिनट) तथा आसानी से होता है। इस जैव संवेदक के विकास के उपरान्त अन्य लोगों ने भी इस तकनीकी का प्रयोग विभिन्न जैविक पदार्थ के मापन में किया गया। नाइट्रिक ऑक्साइड को पता लगाने में नैनो जैव संवेदक का प्रयोग किया गया है। इसमें फ्लोरोसेन्स के द्वारा साइट्रोक्रोम–सी0 के कनफर्मेशन में हुए बदलाव का मापन कर नाइट्रिक ऑक्साइड 1 माइक्रोमोल/लीटर की सीमा तक का पता लगाया गया तथा संवेदक का रिस्पान्स(एक सेकण्ड से भी कम समय में) बहुत ही तेज होता है। [5, 6]

संदर्भ

1. टर्नर, एन्थनी; विल्सन, जॉर्ज और कॉबे(1987) बायोसेंसर, पृ0 770।
2. कवाल्केन्टी, ए0 एवं अन्य(2008) सेंसर, खण्ड 8, अंक 5, मु0 पृ0 2932–2958।
3. टॉन, बी0; शी, जेड0 वाई तथा अन्य(1992) ऐनालिटिकल केमिस्ट्री, खण्ड 64, पृ0 2985।
4. बरकर, एस0 एल0 आर0 तथा अन्य(1998) , खण्ड 8, ऐनालिटिकल केमिस्ट्री, खण्ड 70, पृ0 971।
5. पालीसाइकिलीक एरो कम्पाउन्ड्स, खण्ड 8, 1996, पृ0 5।
6. एनालिटिकल कैमेस्ट्री, खण्ड 71, 1999, पृ0 1529।

टाँगों में वेरीकोस वेन्स होने पर क्या करें?

के0 के0 पाण्डेय
वरिष्ठ वैस्क्युलर एवं कार्डियोथोरेसिक सर्जन
इन्द्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल,
सरिता विहार, नई दिल्ली–110076, भारत
drpandeykk@gmail.com

आजकल जैसे जैसे लोग जागरुक हो रहे हैं, वैसे–वैसे लोगों में टाँगों में उभरनें वाली नीले रंग की मकड़ीनुमा नसों को लेकर चिन्ता बढ़ रही है। जिस गति से हम लोग आरामतलब व विलासितापूर्ण जीवन शैली को अपना रहे हैं, उसी गति से हमारी टाँगे वेरीकोस वेन्स की शिकार हो रही हैं। प्रारम्भिक दिनों में हम लोग स्वभावतन इसको नकारते हैं, पर जब तकलीफ ज्यादा बढ़ जाती है तो इधर–उधर बगैर सोंचे समझे परामर्श लेना शुरु कर देते हैं । इस तरह के नीम हकीमी इलाज का अन्ततः परिणाम टाँगो में काला रंग व लाइलाज घाव के रुप में होता हैं ।

वैरिकोस वेन्स के शिकार कौन लोग होते हैं ?

सबसे ज्यादा इसके शिकार दुकानदार व महिलायें होती हैं। कम्प्यूटर के सामने व आफिस में घंटो बैठने वाले लोग,पाँच सितारा होटलों के स्वागत कक्ष, बड़े बड़े शोरुम में लम्बे समय तक लगातार खड़े रहने वाले लोग, वेरीकोस वेन्स के प्रकोप से बच नहीं पाते हैं। अगर आप पुलिस विभाग को लें तो ट्रैफिक पुलिस मैन, व थाने में एफ. आई. आर. दर्ज करने वाले पुलिस कर्मी, पुलिस आफिस में फाइलों से जूझने वाले पुलिस वाले और तकनीकी प्रयोगशालाओं में कार्यरत वैज्ञानिक वेरीकोस वेन्स को निमन्त्रण देते हुये दिखेंगे। अपनी न्याय पालिका के सदस्य व वकील भी वेरीकोस वेन्स से अछूते नही हैं । आजकल यह समस्या शिक्षक समुदाय में तेजी से व्याप्त हो रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि नियमित चलने की आदत को जिसने अलविदा कहा और ज्यादा देर तक लगातार बैठने की आदत को जाने अनजानें या मजबूरी में गले लगाया, उसकी टांगों में वेरीकोस वेन्स का देर सबेर प्रकट होना निश्चित है।

कैसे पहचाने वैरिकोस वेन्स को ?

अपनी टाँगो व पैर का ध्यानपूर्वक अवलोकन कीजिये। अगर आपको केचुयेनुमा या मकड़ीनुमा उभरी हुयी नीले रंग की नसें टाँगो की त्वचा पर दिख रही है या काले रंग के निशान व काले रंग के चकत्ते या बिन्दियाँ दिखायी पड़ रही है, तो आप निश्चित रूप से वैरिकोस वेन्स से ग्रसित हो चुके हैं। अगर थोड़ा चलने के बाद आपके पैरों में सूजन या थकान या हल्का दर्द महसूस होने लगे तो आप समझ जाइये कि आप वैरिकोस वेन्स के शिकार होने लगे हैं। अगर चलने के बाद टाँगो में थोड़ा लाली व उभरी हुई नीले रंग की नसें दिखने लगे तो यकीनन वैरिकोस वेन्स से आपका नाता जुड़ चुका है।

वैरिकोस वेन्स क्यों हो जाती हैं ?

अगर आप आरामतलब व बैठकी पसन्द व्यक्ति हैं तो आपकी टाँगें वैरिकोस वेन्स से दूर नहीं हैं। आप कुछ इस तरह सें समझ लें कि अगर आप गुसलखाने में स्नान करने जायें जहाँ शुद्ध जल सप्लाई करने वाला पानी का नल व स्नानघर से निकलने वाली नाली दोनों सुचारु रुप से काम कर रहे हैं तो नहाने वाले को कोई परेशानी नहीं होगी क्योकि नल से निकलने वाले शुद्ध पानी से आप स्नान करेंगे और गंदा पानी नाली द्वारा बाहर निकलता रहेगा। अगर कहीं नाली सँकरी हो जाये या ठीक से अपना काम न करे या किसी वजह से उसमें रुकावट आ जाए, तो जाहिर है कि वह साबुन मिश्रित गन्दा पानी आपके नहाने के बाद बाथरूम में इक्ट्ठा बना रहेगा और निकलने का दूसरा रास्ता ढूढ़नें लगेगा जैसे बाथरूम की दीवारों से रिसना या दरवाजे की दरार से निकलना, या ऊपर तक भर जाने पर खिड़की से रिसना ।

ठीक उसी तरह से आप बाथरुम की जगह आप अपनी टाँग को समझ लीजिये, जिसमें धमनियों यानी पैरों की आरटरी से शुद्ध खून निरन्तर प्रवाहित हो रहा है, जिसकी वजह से चलने के लिये जरुरी आक्सीजन की हमेशा आवश्यकता रहती है। टाँगों की माँसपेशियों को आक्सीजन सप्लाई करने के बाद, खून आक्सीजन रहित व गन्दा हो जाता है । यह खून अब तभी लाभदायक और फिर सें इस्तेमाल यानी पैरों को दुबारा से सप्लाई करने लायक तभी बनेगा जब पुनः इसमें आक्सीजन डाली जाये इसके लिये यह जरुरी है कि पैर में इक्ट्ठा हुआ यह गन्दा खून ऊपर चढ़ कर दिल के जरिये फेफड़े तक पहुँचे । फेफड़े में फिर से आक्सीजन प्राप्त करके दुबारा फिर सरकुलेशन में आये और आरटरी के जरिये फिर से पैरों को शुद्ध रक्त पहुँचे । अगर किसी भी कारण से अशुद्ध खून ऊपर नहीं चढ़ेगा तो उसके पैर व टाँगों में इकठ्ठा होने की क्रिया बढ़ती जायेगी और टाँगों में सामान्तयः सोयी हुई वेन्स, गन्दे खून से भरना शुरु हो जायेगी और फूलने के कारण खाल के नीचे उभरी हुयी मकड़ी के जाले की तरह दिखने लगेगी। यहीं से वैरिकोस वेन्स की शुरुआत हो जाती है ।

अगर वैरिकोस वेन्स है तो कहाँ जाये ?

अगर आपको लगता है आपकी टाँगों में वैरिकोस वेन्स की शुरुआत हो चुकी है तो हाथ पर हाथ धर कर मत बैठिये तुरन्त किसी वैस्क्युलर सर्जन से परामर्श लें। अपने देश में अक्सर देखा गया है कि वैरिकोस वेन्स से पीड़ित मरीज कभी चर्म रोग विशेषज्ञ या कभी हड्डी रोग विशेषज्ञ के पास परामर्श लेने पहुँच जाते हैं। कभी कभी ऐसे मरीज नीम हकीम या मालिश वालों के पास पहुँच कर समस्या का निदान ढूंढनें लगते हैं। होश उन्हें तब आता है जब अल्सर जैसी समस्या से ग्रसित होने लगते हैं। इसलिये याद रखें वैरिकोस वेन्स का सही इलाज, एक अनुभवी वैस्क्युलर सर्जन ही बता सकता है ।

वैरिकोस वेन्स का सही इलाज क्या है ?

वैरिकोस वेन्स की शुरुआत होने पर, तुरन्त सर्जरी या लेसर की जरुरत नहीं पड़ती है। बल्कि अपनी आरामतलब दिनचर्या में फेर बदल करना पड़ता है। रोज सुबह व शाम को एक एक घंटे यानी कुल दो घंटे पार्क में टहलना पड़ता है। पैरों को कुर्सी से एक घंटे से ज्यादा लटका कर नहीं बैठना होता है और न ही एक घंटे से ज्यादा लगातार खड़े रहना पड़ता है। अपने बढ़े हुये वजन को घटाना पड़ता है। दिन में चलते वक्त एक विशेष किस्म की क्रमित दबाव वाली जुराबों को टाँगों पर पहनना पड़ता है। इसके साथ–साथ हर दो महीने में वैस्क्युलर सर्जन से परामर्श करते रहना पड़ता है।

अगर वैरिकोस वेन्स पूरी तरह से विकसित हो जाती है या पैरों पर काले निशान व चकत्ते उभर आते हैं या सूजन व लाली बनी रहती है या फिर घाव उभरनें लगे हों, तो ऐसी परिस्थितियों में सर्जरी या लेसर या आर0 एफ0 ए0 तकनीक का सहारा लेना पड़ता है। इसके लिये किसी ऐसे अस्पताल में जायें जहाँ वैस्क्युलर सर्जरी का विभाग हो और इन सब इलाजों की सुविधा हो।

सर्जरी व लेसर तकनीक में फर्क क्या है ?

दोनों का उद्देश्य एक ही है, वैरिकोस वेन्स से टाँगों को छुटकारा दिलाना यानी किसी से पीछा छुड़ाने के दो रास्ते हैं या तो उसको अपने इलाके से बाहर निकलवा दो या फिर उसको अपने इलाके में ही खत्म कर दो। ठीक उसी तरह से वैरिकोस वेन्स को टाँग से बाहर निकालने का काम सर्जरी का है और टाँग के अन्दर ही अन्दर खत्म कर देने का काम लेसर तकनीक का है। इसलिये इलाज के रास्ते वैरिकोस वेन्स के अलग अलग हैं पर मंजिल एक ही है, दोनों तकनीकों के अपने–अपने फायदे हैं।

लेसर से इलाज के फायदे

इस तकनीक में मरीज को बेहोश नहीं करना पड़ता है। खाल में कट नहीं लगाने पड़ते हैं इसलिये टाँके लगवाने और न ही टाँके कटवाने की जरुरत पड़ती है। अस्पताल में ज्यादा दिन तक रुकना नहीं पड़ता है। एक दिन में ही मरीज घर जा सकता है। न ब्लीडिंग(रक्त स्राव), न ड्रेसिंग का चक्कर इस तकनीक में होता है। अगले दिन से ही मरीज अपने आफिस काम पर लौट सकता है। लेसर सर्जरी के लम्बे अनुभव के बाद मैं यह कह सकता हूँ, फिलहाल मरीज के लिहाज से व उपचार के लिहाज से भी यह लेसर तकनीक अत्यन्त सुगम व लाभदायक है।

आर0 एफ0 ए0 एक और नई उपचार की तकनीक

यह आधुनिकतम तकनीक आजकल बड़ी लोकप्रिय हो रही है। इसमें कोई सर्जरी नहीं करनी होती हैं और न ही टाँगों की खाल में कोई काटा–पीटी करनी पड़ती हैं। मात्र चौबीस घंटे में अस्पताल से छुट्टी मिल जाती है। इस आर0एफ0ए0 उपचार के बाद, मरीज अगले दिन से अपने आफिस या काम पर जाना शुरु कर देता हैं। कहीं कोई ड्रेसिंग कराने का झंझट नहीं और न ही उपचार के बाद घर पर आराम करने की जरुरत। इस सफल उपचार के बाद साल भर में ही विशेष जुराबों से हमेशा के लिये छुट्टी मिल जाने की संभावना नब्बे प्रतिशत हो जाती है। यह तकनीक लेसर की तुलना में, थोड़ा बेहतर साबित हो रही है ।

नोट:– प्रस्तुत लेख लेखक के अपने व्यक्तिगत विषय ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित है तथा किसी भी अतिरिक्त अध्ययन सामग्री का प्रयोग नहीं किया गया है।



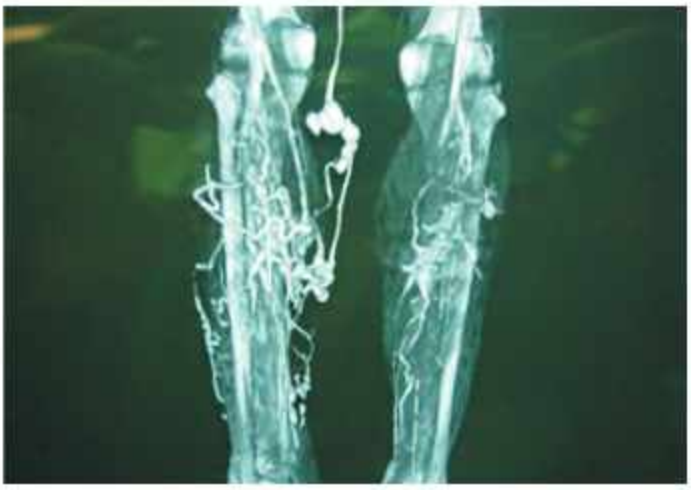
वैरिकोस वेन्स की प्रारम्भिक अवस्था



वैरिकोस वेन्स की विकसित अवस्था



वैरिकोस वेन्स की शुरुआत में हिफ़ाजत न करने का नतीजाः पैर की दुर्दशा



वेरिकोस वेन्स को दर्शाती पैर की एन्जियोग्राफी यानी वेनोग्राफी



लेसर तकनीक वैरिकोस वेन्स में एक कारगर इलाज़



आर.एफ.ए. तकनीक एक लोकप्रिय व सबसे आधुनिक इलाज़ की विधा

विज्ञान शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया

सुरेश कुमार सोनी
सेवानिवृत्त–उपनिदेशक, शिक्षा
पताः 6/681, विकास नगर, लखनऊ–226022, भारत
sksoni.ssquality@gmail.com

विद्यार्थी, जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं। वे अपने परिवेश की वस्तुओं और घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये सदैव उत्सुक रहते हैं प्रत्येक घटना के पीछे कारण और प्रभाव जानने की इच्छा होती है। विज्ञान–शिक्षण में विद्यार्थियों की जिज्ञासु प्रवृत्ति का उपयोग किया जाता है। आधुनिक शिक्षण उपागमों में विद्यार्थी को केन्द्र पर रखकर विषयवस्तु को सहज–सरल ढंग से विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थियों को प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने, भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तनों का अवलोकन करने, विश्लेषण करने तथा निष्कर्ष की ओर बढ़ने के साथ ही उनके कारणों को स्वयं जानने, समझने और आत्मसात् करने के लिये प्रेरित किया जाता है। इसी प्रकार उनके ज्ञान का सुदृढ़ीकरण करने के साथ उन्हें विज्ञान के कुछ विशिष्ट सम्बोधों को सीखने के लिये प्रेरित किया जाता है। विद्यार्थियों को जटिल एवं विशिष्ट सम्बोधों की अवधारणा एवं संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों को प्रयोग और प्रेक्षण(एक्सपेरिमेंटेशन एण्ड ऑब्जर्वेशन) करके निष्कर्ष निकालने के अधिकाधिक अवसर प्रदान किए जायें। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर से प्रयोगों और प्रेक्षणों के माध्यम से विज्ञान के शिक्षण–अधिगम का उद्देश्य है कि बच्चों में प्रारम्भ से क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित ढंग से कार्य करने की आदत का विकास हो जिससे वे अपने जीवन में कार्य कुशल हो सकें।

वैज्ञानिक प्रक्रिया के प्रमुख चरण हैं–

1. समस्या की पहचान
2. प्रयोगीकरण/क्रियाकलाप
3. प्रेक्षण/निरीक्षण
4. आँकड़े एकत्र करना
5. वर्गीकरण करना
6. सूचनाओं एवं तथ्यों का विश्लेषण
7. तथ्यों के आधार पर–निष्कर्ष

प्राथमिक/उच्च प्राथमिक के विद्यार्थियों में अत्याधिक संवेदनशीलता होती हैं उनके संवेगों को सुदृढ़ करने के लिये वैज्ञानिक प्रक्रिया आधारित कार्य करने की आदत डालना आवश्यक होता है। बच्चों को प्रोत्साहित करने में शिक्षक/शिक्षिकाओं को पहल करना अत्यन्त आवश्यक होता है। प्रारम्भिक स्तर पर विद्यार्थी प्रायः झिझक और भय के कारण प्रश्न नहीं करते। यदा–कदा आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को कक्षा और स्कूल से बाहर ले जाकर, प्रत्यक्ष अनुभव करने के अवसर देने चाहिए क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में जिन आदतों का विकास हो जाता है वे जीवन पर्यन्त बनी रहती हैं।

विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, प्रतिभाओं, कौशलों और सृजनात्मक अभिरुचियों के विकास के लिये पाठ्यपुस्तकों के साथ–साथ शिक्षकगण विद्यार्थियों की झिझक और भय दूर करने के लिये उन्हे कक्षाओं में और स्कूल परिवेश में स्वतंत्र अभिव्यक्ति, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता, चुनौती, समस्या–समाधान के अवसर उपलब्ध करायें और उन्हें प्रोत्साहित करें।

विज्ञान शिक्षण–अधिगम के उद्देश्य

विज्ञान शिक्षण के निम्नांकित प्रमुख उद्देश्य होते हैं–

1. अन्धविश्वास और रुढ़िवादी विचारों से मुक्त कराना।
2. वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाकर, दैनिक जीवन से सम्बंधित समस्याओं को हल करने एवं निर्णय लेने की क्षमता विकसित करना।
3. भौतिक घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करके व्याख्या करना।
4. प्रेक्षणों पर आधारित(तर्क संगत) निष्कर्ष निकालना।
5. स्वयं करके सीखने का कौशल विकसित करना।
6. धारणाओं और तथ्यों के अन्तर को बोध करना।
7. समानताओं और विभेदों के आधार पर वर्गीकरण करना।
8. पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाना।
9. वैज्ञानिक उपकरणों के प्रति रुचि उत्पन्न करना उनका अनुरक्षण (रख–रखाव) करना।

10. मानवीय मूल्यों–ईमानदारी, लगन, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, स्वतंत्र अभिव्यक्ति के गुणों का विकास करना।
11. 21वीं शताब्दी की वैज्ञानिक चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होना।

विज्ञान शिक्षण अन्य विषयों के शिक्षण से भिन्न?

"विज्ञान" का अध्ययन वास्तव में परिवेश का अध्ययन है सुव्यवस्थित तौर–तरीके से प्रयोगों/प्रेक्षणों द्वारा सिद्ध किये गये तथ्यों को तर्क पर आधारित होने पर उन्हें स्वीकार करने और सामान्यीकरण करने की क्रिया है। विज्ञान के पाठ/संदर्भ अपने आस–पास के ही होते हैं। अतः विज्ञान शिक्षण के दौरान पाठ्यपुस्तक से हटकर बहुत कुछ कराने और विद्यार्थियों को स्वयं करके सीखने का अवसर दिये जाने से खोजी प्रवृत्ति विकसित होती है तथा विज्ञान विषय का अध्ययन रुचिकर हो जाता है।

विज्ञान शिक्षण के समय वस्तुओं, पदार्थों, उनके स्वरूपों, पारस्परिक क्रियाओं तथा प्रभावों और इन पर आधारित अनुमानों, तथ्यों, परिकल्पनाओं, नियमों/सिद्धान्तों तक पहुँचना होता है अतः अन्य विषयों के सापेक्ष विज्ञान–शिक्षण काफी भिन्न होता है। विज्ञान शिक्षक जितना ही अपने शिक्षण में क्रियायें, अवलोकन, प्रेक्षणों में विद्यार्थियों की सहभागिता करेंगे उनका शिक्षण उतना ही रोचक और आसान हो जायेगा।

विज्ञान शिक्षक के लिये जरूरी क्या?

एक विज्ञान शिक्षक के लिये निम्नांकित बातें बहुत जरूरी होती हैं।

1. कक्षा में उत्साह पूर्वक पढ़ायें और उत्साहपूर्ण वातावरण बनायें।
2. विद्यार्थियों को पुस्तक में दिये गये संदर्भों को दैनिक जीवन की घटनाओं का उदाहरण देकर, विषय को रुचिकर एवं सरल बनाने का प्रयास करें।
3. विद्यार्थियों को स्वयं करके "सत्यापन" करने का मौका दें, विद्यार्थी को स्वयं निष्कर्ष निकालने के लिये प्रोत्साहित करें।
4. विद्यार्थियों में जिज्ञासा प्रवृत्ति होती है उनके प्रश्नों के उत्तर देकर उन्हे संतुष्ट करने का प्रयास करें।
5. शिक्षण अधिगम सामग्री निर्माण अथवा प्रयोगों को व्यवस्थित करने में विद्यार्थियों का सहयोग जरूर लें।
6. स्वयं श्यामपट्ट का उपयोग करें और विद्यार्थियों को भी श्यामपट्ट पर बुलाकर उत्तर लिखने का अवसर दें।
7. विद्यार्थियों को "कुछ नया" करने या खोज करने के लिये उनके स्तर के "प्रोजेक्ट कार्य" करने के लिये प्रोत्साहित करें।
8. विद्यार्थियों को विश्वास दिलायें कि जो कुछ भी आप की पाठ्य–पुस्तक में दिया गया है वह हमारे चारों ओर भी है।
9. विज्ञान के प्रयोगों को करते समय छोटे–छोटे प्रश्न करते रहें, विद्यार्थियों को क्रमबद्ध तरीके से प्रेक्षणों के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकालने का अवसर दें।
10. कक्षा के बाहर तथा स्कूल परिसर से बाहर के क्रिया–कलापों जैसे– संग्रह, अवलोकन, निरीक्षण, भ्रमण, प्रोजेक्ट कार्य आदि को इस प्रकार नियोजित करें कि विद्यार्थियों में पढ़ाई के रुचि तथा उत्साह का संचार हो।
11. निर्धारित वाद में पाठ्यांश को पूरा करने का अभ्यास करें।
12. जहाँ तक सम्भव हो अंधविश्वास, रूढ़ियों के बारे सच्चाई उजागर, करें, नई विचारधारा, तथ्यों के आधार पर सकारात्मक रुख बनें।
13. गृहकार्य की मात्रा कम से कम होनी चाहिये जिसमें अधिकांश अवलोकन, प्रेक्षण अन्तर, तुलना समूहीकरण तथा सारणीकरण से सम्बधित हों।
14. पूर्व वर्ष की क्रियायें–प्रोग्राम कैलेण्डर बना लें, ऋतुओं/मौसम का ध्यान रखकर भ्रमण कार्यक्रम निर्धारित कर लें तथा पाठों का एक क्रम निर्धारित कर लें।
15. विद्यार्थियों में निहित जिज्ञासु प्रवृत्ति को ध्यान रखकर प्रश्नों को पूछने का साहस और पहल करने की क्षमता का विकास करें।
16. शिक्षक की भूमिका, ज्ञान के स्रोत के बजाय सीखने के लिये प्रेरक और सहायक के रूप में होनी चाहिये।

विज्ञान–शिक्षण सम्बन्धी विशेष क्रियाकलाप

विज्ञान शिक्षण को प्रभावी बनानें के लिये क्रियाकलापों को मुख्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. समयबद्ध क्रियाकलाप
2. प्रतियोगात्मक क्रियाकलाप

1.समयबद्ध क्रियाकलाप

समयबद्ध क्रियाकलापों के अन्तर्गत–संग्रह और वर्गीकरण, केस अध्ययन, शैक्षिक भ्रमण, विज्ञान मेला, विज्ञान गोष्ठी तथा समयबद्ध स्तरानुकूल प्रोजेक्ट कार्यो को सम्मलित किया जाता है। संग्रह एवं वर्गीकरण में बीज, सूखी पत्तियाँ, फल, मृत कीड़े चिड़ियों के

पंख, प्राकृतिक एवं मानव निर्मित वस्तुओं का संग्रह किया जा सकता है। इसी प्रकार समयबद्ध प्रोजेक्ट व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक प्रोजेक्ट जिसमें दो या दो से अधिक विद्यार्थियों के लिए निर्धारित कार्य कर सकते हैं।

(क)**प्रतियोगात्मक क्रियाकलाप**

निकटवर्ती विद्यालयों में शैक्षिक भ्रमण करके उन स्कूलों के शैक्षिक परिवेश, प्रयोगशालाओं, शिक्षण सामग्री और कक्षाओं की साज–सज्जा का अवलोकन कर उन्हें नोट करें, अपने विद्यालय में क्या किया जा सकता है? इस बिन्दु पर विद्यालय की आंतरिक बैठकों में विचार किया जा सकता है।

पड़ोसी विद्यालयों में भ्रमण के दौरान, विज्ञान शिक्षक एक सम्मिलित कक्षा में कक्षा शिक्षण कर आदर्श पाठ प्रस्तुत करें, अगली बार, किसी अन्य विद्यालय में आदर्श पाठ प्रस्तुत करें। यद्यपि यह प्रत्यक्ष प्रतियोगिता नहीं है, किन्तु इस स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का सार्थक प्रभाव पड़ेगा।

(ख)**विज्ञान "प्रश्न बॉक्स"**

विद्यालय में विज्ञान के शिक्षण–अधिगम की गति बढ़ाने के लिये प्रत्येक विद्यालय में एक विज्ञान प्रश्न बाक्स रखा जाता है, जिसमें प्रत्येक सप्ताह के सोमवार को प्रार्थना स्थल पर शिक्षक बच्चों के प्रश्नों के उत्तर देते हैं। विद्यार्थी विज्ञान से सम्बन्धी जिज्ञासापूर्ण प्रश्न संक्षेप में लिखकर कभी "प्रश्न बॉक्स" में भी डाल सकते हैं। विज्ञान शिक्षकों की तीन सदस्यीय समिति प्रश्नों की समीक्षा करके सोमवार के दिन प्रार्थना स्थल पर देने की व्यवस्था की जाती है। इस प्रयोग को अपना कर अनेक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण में सुधार हुआ है। विद्यार्थियों में उत्साह का संचार हुआ है।

विज्ञान सीखने की युक्तियाँ

यदि हमें अपना घर बनाना है तो एक अकेले हथौड़े से घर नहीं बनाया जा सकता है, हमें अन्य औजारों की आवश्यकता होगी। औजारों के साथ–साथ उन्हें प्रयोग करने का कौशल भी जानना होगा कि कब और कहाँ कैसे? इन औजारों का प्रयोग करेंगे, विज्ञान सीखने में इन युक्तियों का उपयोग करना, अत्यन्त उपयोगी होता है।

विज्ञान सीखने की कुछ कारगर युक्तियाँ निम्नांकित है। विज्ञान के विद्यार्थी इन्हें अपना कर देखें?

मस्तिष्क मंथन– किसी वैज्ञानिक संदर्भ में पहले चिन्तन करना शुरू करें जो भी विचार आये, लिखते जायें बिना संशोधन किये विचारों को सूचीबद्ध करिये। आप देखेंगे अनेक अच्छे–अच्छे बिन्दु स्वतः आते जायेंगे। आप उनकी छँटनी करके कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

i) **परस्पर प्रश्नोत्तर**– एक ही कक्षा के दो सहपाठी परस्पर एक दूसरे से प्रश्न करें और उनके उत्तर दें एक दूसरें के उत्तरों में वे मिलकर सुधार करें। इसका अभ्यास करने से सीखने की गति बढ़ती है और परस्पर मित्रता में प्रगाढ़ता आती है।

ii) **सक्रिय–पठन**–एक प्रभावशालीयुक्त है किसी लिखित सामग्री को पढ़ते समय ध्यान दें–

1. क्या आप समझ रहे हैं?
2. क्या आप प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं?
3. जो अंश ठीक से नहीं समझ सके तो उन्हें फिर से पढ़ें?
4. पढ़ते समय, लेख में प्रयुक्त चित्रों, ग्राफों, तालिकाओं, विशिष्ट शब्दों, पंक्तियों को ध्यान देकर पढ़ें, किसी निष्कर्ष पर पहुँचे।

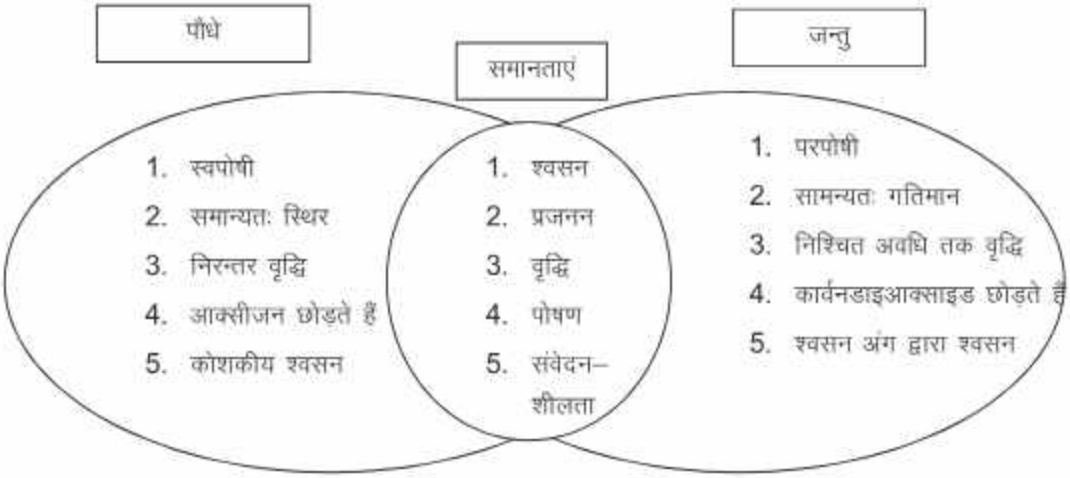
III) **के० डब्ल्यू० एल० युक्ति**– (K=Knowledge, W=Want to Learn, L=Learned) किसी वैज्ञानिक संदर्भ में आप कितनी जानकारी रखते हैं? साथ ही आप कितनी जानकारी और चाहते हैं और अंत में आपने कितना सीखा? या और कितनी जानकारी मिल गई।

IV) **ग्राफिक संगठन**

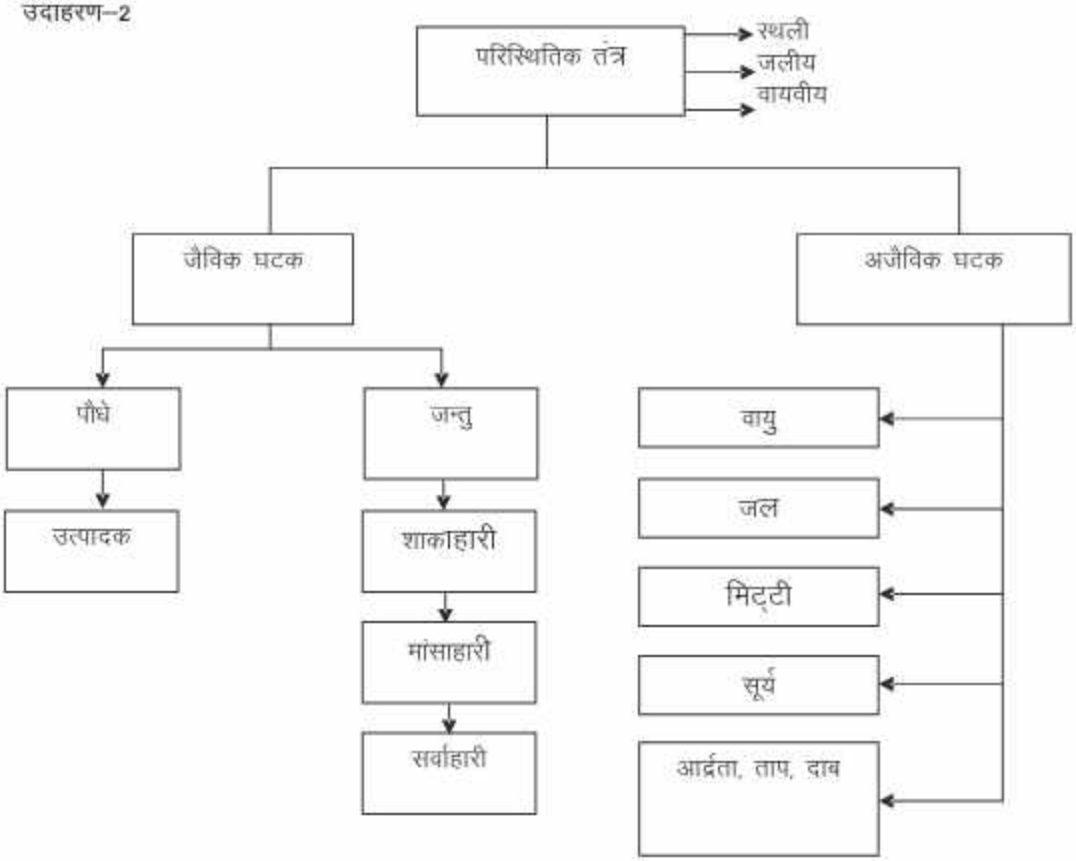
सूचनाओं, तथ्यों, प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित ढंग से समझने के लिये मानसिक–चित्रण करना या ग्राफिक संगठन बनाना एक अत्यन्त उपयोगी युक्ति है जिससे सीखने की प्रक्रिया प्रभावशाली ढंग से होती है। तथ्यों और सूचनाओं के भूलने की सम्भावना नगण्य होती है।

उदाहरण–1

जन्तुओं और पौधों में मौलिक समानताओं और अन्तर को विस्तार पूर्वक वर्णन के बिना निम्नांकित ग्राफिक–संगठन द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके पूर्व विद्यार्थी को इस प्रकार मानसिक चित्रण करना होता है कि इस पूरे संदर्भ को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाये?



उदाहरण–2



संदर्भ

1. बाल मनोवैज्ञानिक कक्षा 6–8 'एकलव्य' प्रकाशन श्रंखला वर्ष 2012–2013, भोपाल, मध्यप्रदेश।
2. ज्ञान–विज्ञान शोध प्रकाशन वर्ष–2013, राज्य विज्ञानं शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश।
3. बेसिक शिक्षा परिषद, उ0 प्र0 इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित उच्च प्राथमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकें, संशोधित संस्करण वर्ष, 2013।
4. विज्ञानं प्रशिक्षण संदर्शिका सर्व–शिक्षा अभियान, उ0 प्र0, प्रकाशन वर्ष–1999।
5. 'अपने हाथ विज्ञानं' एकलव्य प्रकाशन श्रंखला, भोपाल, मध्यप्रदेश।

तनाव से कैसे उबरें ?

कृष्ण दत्त
चिकित्सा मनोवैज्ञानिक, मानसिक चिकित्सा विभाग
के0 जी0 एम0 यू0 लखनऊ, लखनऊ(उ0 प्र0)226003, भारत
पताः "अस्मिता" 18/444, इंदिरा नगर, लखनऊ–226016
asmita_slc@yahoo.com

आज आम आदमी जीवन के हर कदम पर मानसिक तनाव का अनुभव करता है। "तनाव" की सम्पूर्ण परिभाषा तो जटिल है, किन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति को मानसिक दबाव, परेशानी या उलझन का अनुभव हो तो ऐसी दशा को "तनाव" कहते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि चोटचपेट के कारण होने वाली शारीरिक पीड़ा या किसी बीमारी के कारण उठी वेदना या शूल से सम्बद्ध अस्थाई मानसिक बेचैनी को "तनाव" की श्रेणी में नहीं माना जायेगा। स्पष्टतः किसी व्यक्ति के वैचारिक द्वन्द्व, असंगति या असंतुलन तथा मानसिक भ्रांति, विभ्रम या अनिर्णय के परिणामस्वरूप उसकी मनोदशा में अथवा उसके स्वस्थ चिंतन में जो व्यवधान या विकृति आती है, उसे "तनाव" कहते हैं। हम सभी जानते हैं कि जीवन में यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है। अतः जीवन में तनाव कम करने हेतु भी पहले शरीर को तनाव मुक्त करें फिर मन की ओर बढ़ें। वैसे तो मन की प्रवृत्ति ही तनाव का मुख्य कारण है। अर्थात् तनाव हमारे प्रत्यक्षीकरण(देखने का ढंग) का परिणाम है। हमें कोई व्यक्ति, परिस्थिति या वस्तु तनाव नहीं देती वरन् उन सब के बारे में हमारा चिन्तन ही हमें तनाव देता है।

"तनाव" का प्रभाव व्यक्ति विशेष पर दो तरह से परिलक्षित होता है

1. तनाव ग्रस्त व्यक्ति के शरीर की मांस पेशियां कड़ी हो जाती हैं।

2. तनाव की स्थिति में व्यक्ति की श्वांस–प्रश्वांस की प्रक्रिया असामान्य हो जाती है।

स्पष्ट है कि तनाव ग्रस्तता की दशा में मनुष्य को मुक्त कराने के लिए उसकी माँस पेशियों का कड़ापन समाप्त करना होगा एवं श्वांस लेने व छोड़ने की प्रक्रिया में संतुलन स्थापित करना होगा। मनोव्यवहार चिकित्सा में एक ऐसी विधि है जिसके आधार पर उक्त दोनों लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। इस चिकित्सा पद्धति को "शिथिलीकरण" की विधि कहते हैं। प्रस्तुत विधि योग शास्त्राधारित है। यदि तनाव मुक्ति के उपरांत भी शिथिलीकरण की युक्ति निरंतर अभ्यास में लायी जाए तो "तनाव" के मूल कारण यथावत रहने पर भी, अभ्यासी को न केवल वर्तमान "तनाव" से मुक्ति मिलती है वरन् किसी आगामी मानसिक विषमता से भी जूझने की अजेय शक्ति प्राप्त होती है। प्रस्तुत विधि मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति की वैचारिक उत्कृष्टता, आंतरिक सामर्थ्य व आत्म शक्ति का समुचित विकास सुनिश्चित करती है।

िथिलीकरण प्र िया के विभिन्न चरण

1. सर्वप्रथम तनाव ग्रस्त व्यक्ति को समतल बिस्तर पर पीठ के बल लिटा दें। मुख ऊपर की ओर रहे। दोनों पैरों के बीच सहज व सुविधाजनक पर्याप्त दूरी हो। हाथ शरीर से चिपके न हों, बल्कि आरामदेह दूरी पर हों और हथेली आकाश की ओर रहे। शरीर ढीला, व आंखें बंद रहें। इस मुद्रा को "शवासन" कहते हैं।

2. कुछ समय तक शांत लेटे रहने के पश्चात् मन को शरीर की ओर केन्द्रित करने को कहें। पैरों पर ध्यान करके पंजों को नीचे की ओर झुकाएं, तनाव उत्पन्न करें तथा कुछ क्षण रुक कर धीरे–धीरे ढीला छोड़ना होगा। इसी अवस्था में शिथिलता का अनुभव कुछ अधिक देर तक करते रहें। अब पंजों को विपरीत दिशा में अर्थात ऊपर की ओर मोड़ें, तान कर रुकें, धीरे–धीरे ढीला करें, शिथिलता का अनुभव करें। थकान तानने से उत्पन्न होती है, कस कर तानें। एक बार उक्त क्रिया पुन दोहराएं। एड़ी जमीन से छूती रहेगी।

3. उक्त की ही भांति क्रमशः ऊपर के अंगों की ओर बढ़ें। पिंडली, घुटना, रानें, पेड़ू, पेट, सीना, गर्दन, कंधे, आदि सम्पूर्ण शरीर जिसमें चेहरा भी है के साथ भी उक्त क्रिया दो–दो बार एक के बाद एक करें। गर्दन दायें–बायें भी करनी है, अत यह क्रिया गर्दन के साथ एक बार ही करें।

4. अब पूरे शरीर को तानिये। रुकिये, शिथिलता शमन तक शांत रहिए। दोहराइये।

5. सबसे अंत में कुछ समय तक शांत तन, शांत मन के साथ लेटे रहें। सारे शरीर में शिथिलता का अनुभव करते हुए तन के साथ मन भी शांत करें।

उदर स्वांस प्र िया के विभिन्न चरण

शरीर या अंगों को तानने से जो थकान आती है, उसी अनुपात में शरीर शिथिल होकर, शांत हो जाता है। मनोविकार की स्थिति में मन शांत होने में निम्न क्रिया सहयोगी होगी। इस क्रिया को "डायफ्राम ब्रीदिंग" कहते हैं। आँखें बंद कर चित लेटे हुए

1. दोनों हथेलियाँ पेट पर आराम से रख लें। धीमी गहरी श्वांस भरें। ध्यान रहे, पेट फूलता जाय। प्रश्वांस छोड़तें समय पेट नीचे की ओर दबे अर्थात् पिचके।

2. मन को पेट के फूलने व पिचकने पर केन्द्रित करें। मन को इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का मूक दृष्टा बनायें। कम से कम पांच से दस मिनट तक अभ्यास करें।

3. उक्त क्रिया, पांच मिनट बायीं करवट और पांच मिनट दाहिनी करवट दोहरानी है। जिधर करवट लें, उसी हाथ को कोहनी से मोड़कर सर के नीचे तकिये बनायें। अकेले बचे दूसरे हाथ को पेट पर रखें।

4. अब सुखासन से पालथी लगायें, बैठ कर दोनों हाथ पेट पर रख उक्त क्रिया पांच से दस मिनट तक दोहराएं। मेरुदण्ड, गर्दन व सिर एक सीध में रखें। पद्मासन में बैठना अधिक उपयुक्त होगा।

सारी प्रक्रिया में आँखें बंद रही हैं। अंत में आँखों को हथेली से ढक कर कुछ समय रुकते हैं। फिर हथेली आँखों के सामने रखकर धीरेधीरे आँखें खोलते हैं। इस प्रक्रिया में मुख्य भाव ईश्वर के प्रति श्रद्धा, समर्पण व विश्वास का रखना चाहिए अर्थात् ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से आँखें खोलनी हैं।

शिथिलीकरण के बाद, उदर से श्वांस–प्रश्वांस की क्रिया कम से कम दिन में दो बार करनी होती है। प्रातः नित्यकर्म से निवृत्त होकर तथा सोने से पूर्व रात्रि को अवश्य करना है। प्रातः दोपहर, सायं, रात्रि को मिलाकर चार बार भी कर सकते हैं। वस्तुतः व्यक्ति विशेष को उक्त क्रियाएं कितनी बार करनी हैं, इसका निर्धारण उसकी दिनचर्या एवं उसके तनाव की प्रकृति के आधार पर तय होता है। साधारणतया उक्त अभ्यास एक दो सप्ताह तक नियमित करने पर लाभ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगता है।

नोटः– प्रस्तुत लेख, लेखक के अपने व्यक्तिगत विषय ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित है तथा किसी भी अतिरिक्त अध्ययन सामग्री का प्रयोग नहीं किया गया है।

समाजशास्त्र और इसकी वैज्ञानिक प्रकृति

विजय कुमार
वरिष्ठ प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0 प्र0)-226001, भारत
kvijay297@gmail.com

समाजशास्त्र के उद्भव से पहले भी समाज के बारे में अध्ययन हुये थे जैसे कौटिल्य का अर्थशास्त्र और अरस्तु के पॉलिटिक्स में राजनीतिक व्यवस्था के बारे में विश्लेषण किया गया है जो आज भी समाजविज्ञानियों के लिए महत्वपूर्ण है परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में समाज का एक नया विज्ञान पैदा हुआ। समाजशास्त्र के उदय की जो परिस्थितियां थीं, वह थी– बौद्धिक और सामाजिक। समाजशास्त्र को जानने के चार स्रोत हैं – राजनीतिक दर्शन, इतिहास दर्शन, जीवदर्शन का विकास सिद्धान्त और सामाजिक–राजनीतिक सुधारों के आन्दोलन, जिनके लिए सामाजिक स्थितियों का सर्वेक्षण जरूरी हो गया था।[1] उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हीगल और सेंट साइमन के लेखन के कारण इतिहास दर्शन एक प्रमुख बौद्धिक प्रभाव बन गया। इन दो चिन्तकों का प्रभाव मार्क्स और कॉत के लेखन पर और फिर आधुनिक समाजशास्त्र की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों पर पड़ा।[2]

आधुनिक समाजशास्त्र का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व सामाजिक सर्वेक्षण है। समाजशास्त्र में प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियाँ मानव समाज के अध्ययन में लागू की जा सकती हैं और दूसरी सामाजिक समस्या गरीबी है। औद्योगिक समाजों में गरीबी कोई प्राकृतिक परिघटना नहीं बल्कि मानवीय अज्ञान या शोषण का परिणाम है। सामाजिक विकास में परिवर्तन भौगोलिक खोजों, ग्रहीय व्यवस्था के बारे में जानकारी तथा एक जगह से दूसरे जगह आने जाने के कारण सांस्कृतिक मिलन विभिन्नता ने अध्ययन को बढ़ाया। इतिहास दर्शन केवल चिन्तन की उपज नहीं था, यह दो क्रान्तियों, इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति (1760), तथा फ्रान्स की राजनीतिक क्रान्ति (1789) का भी परिणाम था।[3] अट्ठारहवीं शताब्दी में सामाजिक विज्ञानों को प्रायः भौतिक विज्ञान के ढांचे पर समझा जाता था। उन्नीसवीं सदी में इसे जीवविज्ञान की तर्ज पर ढाला गया, जिससे साफ हो जाता है कि आमतौर पर समाज की धारणा किसी जीव की तरह की जाती है और सामाजिक विकास के सामान्य नियम सूत्रबद्ध करने की कोशिश की जाती है। आगस्त कोंत ने अनुभव किया कि मानव का उद्विकास 19वीं शताब्दी में 'प्रत्यक्षवादी स्तर' में पहुंच गया और सामाजिक दुनिया को अच्छा समाज बनाने और समझने के लिए आनुभाविक ज्ञान का प्रयोग किया जा सकता है।[4] कोंत ने इस नये विज्ञान का नाम सोशियोलॉजी रखा था, यह शब्द लैटिन शब्द सोशियस और ग्रीक शब्द लोगस से निकला था, इसलिए एक बार उन्होंने इस शब्द के 'दोगले चरित्र को लेकर पछतावा' जाहिर किया, लेकिन बाद में कहा कि 'इस व्यूत्पत्तिमूलक गड़बड़ी के बावजूद..... इसका एक लाभ है, क्योंकि इससे उन दो ऐतिहासिक स्रोतों–एक बौद्धिक, दूसरा सामाजिक का पता चलता है जिससे आधुनिक सभ्यता पैदा हुई।[5] समाजशास्त्र की नींव (जड़) सामाजिक दर्शन में है, जो निश्चित रूप से विज्ञान नहीं है। समाजशास्त्र के उद्भव के समय इसको विज्ञान बनाने का विचार आया। कोंत हमेशा कहते थे कि समाजशास्त्र विज्ञान जैसा ही है, उन्होंने एक स्थान पर समाजशास्त्र को 'विज्ञानों की रानी' भी कहा है।[6] राबर्ट वीरस्टीड ने 1960 के इस्टर्न सोशियोलॉजिकल सोसाइटी के अध्यक्षीय भाषण में कहा कि," समाजशास्त्र ने न केवल विज्ञानों के बीच में अपनी उचित जगह बनायी बल्कि कलाओं के बीच में भी, जो मानव मस्तिष्क को उदार बनाता है।[7]

समाजशास्त्र की प्रकृति कैसी है– इस सम्बन्ध में दो विचार प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मानना है कि समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है तथा कुछ का मानना है कि यह विज्ञान नहीं है। जिन विचारकों का यह मानना है कि समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है वह लोग विज्ञान को संकुचित रूप में देखने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान क्या है। वस्तुतः विज्ञान एक दृष्टिकोण है किसी समस्या, परिस्थिति या तथ्य को सुव्यवस्थित ढंग से समझने के प्रयास को हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण कह सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि विज्ञान अपने आप में एक विषय वस्तु नहीं है, बल्कि विश्लेषण की एक विधि का नाम है। स्टूअर्ट चेस ने स्पष्ट रूप से कहा है कि विज्ञान का सम्बन्ध पद्धति से है, न कि विषय वस्तु से।[8] प्रत्येक विज्ञान का प्रारम्भ जिज्ञासा से होता है और इसका समाधान ढूंढा जाता है। प्रत्येक कार्य का कारण, कार्य–कारण सम्बन्ध, श्रृंखला तथा अन्तर्सम्बन्धों की छानबीन करते–करते सिद्धान्त की पृष्ठभूमि तैयार होती है। समाजशास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्धान्त एवं अवधारणाओं की स्थापना हो चुकी है। वैज्ञानिक अनुसंधानों और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त निर्माण में हम भाषा एवं प्रतीकों का प्रयोग करते हैं।[9] संकल्पनाओं से सिद्धान्तों का निर्माण होता है। परिभाषाओं से संकल्पनाएं बनती है। परिभाषा पदों की व्यवस्था होती है जैसे– भाषा का वाक्य, तर्क के प्रतीक, गणित की गणना जो अनुसंधानकर्ता को संकल्पना द्वारा निर्दिष्ट किये जा रहे घटनाओं के बारे में सूचित करता है।[10] किसी वास्तविक घटना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति अवधारणा कहलाती है। समाजशास्त्र में सामाजिक घटनाओं के व्यवस्थित अध्ययन एवं अन्वेषण के पश्चात् जिन वास्तविकताओं का उद्घाटन किया जाता है उन्हें समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कहा जाता है। फेयरचाइल्ड के अनुसार, अनुभवात्मक तथ्यों पर आधारित वह सामान्यीकरण जो विश्वसनीय हो तथा जिसमें सामाजिक घटनाओं की व्याख्या की जा सके, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कहलाता है।[11]

ज्ञान रेक्स ने समाजशास्त्री सिद्धान्तों के स्वरूप की तीन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं–[12]

1. तथ्यात्मक स्वरूप – इस स्वरूप की विशेषता यह है कि इसमें आगमन अथवा जीवशास्त्रीय विधि का अनुसरण करते हुये प्रत्यक्ष अवलोकन पर प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण एवं तुलना करके सिद्धान्त निर्माण किया जाता है।
2. वैज्ञानिक स्वरूप – नियमों की खोज को वैज्ञानिकता का लक्षण माना जाता है। कोंत ने प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित नियमों की खोज पर बल दिया है।
3. कार्य–कारण सम्बन्ध – दुर्खीम और मैक्स वेबर ने सामाजिक घटनाओं के कार्य–कारण सम्बन्ध की व्याख्या की है।

दूसरी शताब्दी ई0 पूर्व टालेमी का ब्रह्माण्ड सम्बन्धी विचार अरस्तु के उस विचार कि, पृथ्वी एक गोलाम आकृति की है और वह ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित है और सभी आकाशीय पिण्ड उसके चारों ओर गोलाकार कक्षा में चक्कर लगाते हैं, से मेल खाता है। यह सिद्धान्त सत्रहवीं शताब्दी के समय तक मान्य रहा।[2] 'खोज के महान युग' के पश्चात् सूर्य केन्द्रीय विचारधारा पोलैण्ड निवासी निकोलस कोपरनिकस जिसने 1497 ई0 और 1597 ई0 के बीच ग्रहों, चन्द्रमा और तारों के अनेक प्रेक्षण किये और यह स्थापित किया कि सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। केपलर ने 1618 ई0 में यह सिद्ध किया था कि ग्रहों का संचरण गोलाकार न होकर दीर्घवृत्ताकार मार्ग में संचरण करते हैं। गैलिलियों ने सन् 1623 ई0 में यह प्रमाण प्रस्तुत किया कि कोपरनिकस का ब्रह्माण्ड सम्बन्धी सूर्य केन्द्रीय सिद्धान्त सही था। न्यूटन ने 1686 ई0 में अपना गुरूत्वाकर्षण के नियम प्रस्तुत किये। इन विकासों ने वैज्ञानिक क्रान्ति को प्रोत्साहित किया और एक विशिष्टीकरण का युग आरम्भ हुआ जिसनें भौतिक, जैविक और सामाजिक विज्ञानों के विभाजन के वर्गीकरण को जन्म दिया।[3] ज्ञान हमेशा संचित होकर आगे के दौर में पहुंचता है। इसको थामस कुहन 'प्रतिमान परिवर्तन' (पैराडाइम शिफ्ट) कहते हैं। उनका मानना है कि विज्ञान के भीतर विकास एक क्रमिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह एकाएक घटित हो जाती है। एकाएक परिवर्तनों को ही प्रतिमान परिवर्तन कहते हैं। जब रूपावली में बदलाव होता है तो वह स्थिति होती है, जब पिछले सिद्धान्त निरर्थक नजर आने लगते हैं। हर अगला सिद्धान्त ज्ञान का संचय करके आगे बढ़ता है। समाजशास्त्र के उद्भव में इन सिद्धान्तों का योगदान अधिक रहा।

एक पृथक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का उदय उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। यूरोप उस समय फ्रांसीसी तथा औद्योगिक क्रान्तियों के कारण अन्ततः परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। इन दोनों क्रान्तियों से पूर्व यूरोप में चौहदवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी के बीच हुई वाणिज्यिक क्रान्ति एवं वैज्ञानिक क्रान्ति से जूझ रहा था। इन दो क्रान्तियों के काल को पुर्नजागरण युग कहा गया।[3] पुनर्जागरण काल में अनेक आविष्कार हुए जिससे समाज को समझने में आसानी हुई, जिन चीजों को रहस्य की दृष्टि से देखा–समझा जाता था, उसको वैज्ञानिक आविष्कार ने उस रहस्य पर से पर्दा ही उठा दिया जैसे चित्रकला, चिकित्सा, रासायनिकी, समुद्री यात्राओं और खगोल विद्या के क्षेत्र में। पुर्नजागरण काल के बाद भौतिकी, गणित और जीवविज्ञान के क्षेत्र में आये परिवर्तनों ने समाज के अध्ययन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। धार्मिक कारणों से शरीर के चीड़–फाड़ की इजाजत नहीं थी, परन्तु इन आविष्कारों से शरीर की रचना और क्रियाओं को अच्छे ढंग से समझने में सहायता मिलने लगी। विलियम हार्वे ने रक्त प्रवाह की खोज की। इन सबसे नये चिंतन को बल मिला। अब मनुष्य के शरीर को विभिन्न कोशिकाओं और परस्पर सम्बद्ध प्रणालियों से देखा जाने लगा। डार्विन ने अपनी पुस्तक 'डिसेंट आफ मैन' के माध्यम से कहा कि मनुष्य का पूर्वज बन्दर जैसा प्राणी था, जिसका अनेक शताब्दियों में मनुष्य के रूप में विकास हुआ। इस पुस्तक ने समाज को उत्तेजित कर दिया तथा विकासवादी विचारकों ने इनके सिद्धान्त को सामाजिक जगत में लागू किया।

डार्विन ने अपनी पुस्तक ''ओरिजिन आफ स्पेशीज बाई मीन्स ऑफ नेचुरल सेलेक्शन'' में यह बताया कि अस्तित्व के लिए संघर्ष होता है और जो जीवित बचते हैं वे अपने पर्यावरण से, अपने प्रतियोगी की अपेक्षा अधिक अनुकूलित होते हैं। स्टोडार्ट ने 1966 में यह सुझाव दिया था कि डार्विन के कार्यों में निम्नलिखित विषय खोजे जा सकते हैं[4]–

1. समय के द्वारा परिवर्तन अथवा विकास, क्रमिक की एक सामान्य धारणा अथवा निम्न से उच्च में परिवर्तन अथवा अधिक जटिल आकार में परिवर्तन।
2. समाज और संगठन।
3. संघर्ष और प्राकृतिक चयन।
4. प्रकृति में परिवर्तन के अवसर के लक्षण।

कोंत ने माना कि मनुष्य का दिमाग और सामाजिक विकास तीन चरणों में होता है – हर घटना एक दूसरे से जुड़ी होती है जैसे–

1. सहअस्तित्व का नियम (ग्रहीय व्यवस्था, जैवकीय व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था इत्यादि)।
2. अनुक्रम का नियम– क) स्थैतिक (आकार, संरचना)
   ख) गतिक (परिवर्तन, विकास)

कोंत ने 'त्रिस्तरीय नियम' का प्रतिपादन किया।

1. धार्मिक स्तर
2. तात्विक स्तर
3. प्रत्यक्षवादी या वैज्ञानिक स्तर।

कोंत ने विज्ञानों का एक संस्तरण दिया जिसमें पहला विज्ञान स्वतन्त्र और किसी पर आश्रित नहीं है, परन्तु जैसे–जैसे विज्ञान क्रमशः आगे बढ़ता जाता है पराश्रयिता बढ़ती जाती है जैसे–गणित, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र और समाजशास्त्र। कोंत को प्रत्यक्षवाद का जन्मदाता कहा जाता है। प्रत्यक्षवाद का अर्थ है 'वैज्ञानिक'। कोंत का विचार है कि समग्र ब्रह्माण्ड 'अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों' द्वारा व्यवस्थित तथा निर्देशित होता है और यदि इन नियमों को समझना है तो धार्मिक या तात्विक आधारों पर नहीं अपितु विज्ञान की विधियों द्वारा ही समझा जा सकता है। वैज्ञानिक विधियों में कल्पना का कोई स्थान नहीं, ये तो निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्य प्रणाली होती है। इस प्रकार निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण पर आधारित वैज्ञानिक विधियों के द्वारा सब कुछ समझना और उससे ज्ञान प्राप्त करना ही प्रत्यक्षवाद है।[5]

समाजशास्त्र का अंग्रेज पिता हरबर्ट स्पेंसर ने भौतिकी के नियमों के आधार पर समाज की व्याख्या की, उन्होंने कहा कि सभी चीजों में बदलाव की प्रक्रिया प्रकृति के हृदय में मौजूद है जिसको स्पेंसर 'उद्विकास' नाम दिया। यह कहना पूरी तरह से निराधार है कि उद्विकास का विचार डार्विन के जैविकीय उद्विकास से उधार लिया गया है। स्पेंसर ने उद्विकासीय सिद्धान्त देने से पहले भौतिकी के कुछ प्रमेय को बताया है। ये प्रमेय निम्नलिखित हैं–[16]

1. शक्ति के स्थायित्व का नियम
2. पदार्थ की अविनाशिता का नियम
3. गति के सातत्य का नियम
4. शक्तियों के बीच सम्बन्धों के स्थायित्व का नियम
5. शक्तियों के रूपान्तरण और सामंजस्य का नियम
6. न्यूनतम प्रतिरोध और महत्तम आकर्षण का नियम
7. गति के आवर्तन या परिवर्तन का नियम

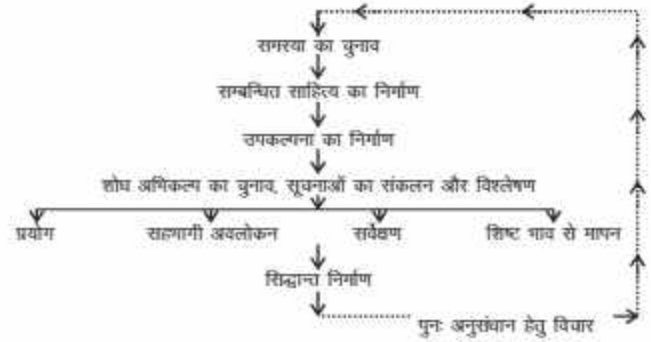
स्पेंसर का मानना है कि प्रकृति की सभी घटनाएं–तारें, ग्रहीय व्यवस्था, ग्रह एवं उपग्रह की व्यवस्थाएं, जैविकीय अवयव, प्रजातियों का विकास और सभी परिवर्तित मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय मनुष्यों के प्रयोग और व्यवहार की प्रक्रियाएं एक निश्चित प्रतिमान में परिवर्तित होती हैं। परिवर्तन की सभी प्रक्रियाएं सरल से जटिल, जटिल से जटिलतर होती जाती हैं। इस गति के दौरान संरचना और प्रकार्य में जटिल विभेदीकरण और विशेषीकरण बढ़ता जाता है।[17] उद्विकासीय प्रक्रिया में कोई भी व्यवस्था समरूपता से विषमरूपता में परिवर्तित होती है। समरूपता अस्थिर होती है। इसमें गुणात्मक वृद्धि होती है और व्यवस्था अलग–अलग पड़ जाती है तथा पुनः इसमें सामंजस्य स्थापित हो जाता है। किसी भी समाज की अवस्था पहले बहुत सरल होती है, फिर यौगिक समान बनता है, द्विगुण यौगिक समाज, त्रिगुण यौगिक समाज तथा अन्त में सभ्यता का स्तर आता है।

रेमण्ड एरन ने अपनी पुस्तक 'मेन करेन्ट्स इन सोशियोलॉजिकल थाट' में दुर्खीम के समाजशास्त्रीय योगदान में दार्शनिक व्याख्या की अपेक्षा वैज्ञानिक विश्लेषण को अधिक महत्वपूर्ण बताया है। समाजशास्त्र में तथ्यों की व्याख्या करने के पश्चात् उसने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग पर बल दिया है। समाजशास्त्र को एक व्यवस्थित और वास्तविक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए दुर्खीम ने प्राकृतिक विज्ञानों की अध्ययन पद्धति को अपनाना आवश्यक समझा है।[20] दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में अवलोकन हेतु तीन नियमों की चर्चा की है।[21]

1. पूर्वमान्यताओं का निराकरण
2. विषयवस्तु की व्याख्या
3. वैयक्तिक तथ्यों तथा सामाजिक तथ्यों की प्रथकता।

इन सब आधारों पर समाजशास्त्र की नींव रखने वाले समाजशास्त्रियों ने अपने इस नवीन विषय को वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों के आधार पर अध्ययन के लिए जोर देने का प्रयास किये। विज्ञान, पद्धति पर आधारित है, विषय पर नहीं। दुर्खीम ने सामाजिक घटनाओं के लिए उस पद्धति के प्रयोग पर बल दिया जिसका प्रयोग करके भौतिक विज्ञानों का विकास हुआ है। बोगार्ड्स लिखते हैं कि, "दुर्खीम आंशिक रूप से एक प्रत्यक्षवादी और सामाजिक क्रिया के अध्ययन के लिए भौतिक विज्ञान की पद्धति के उपयोग में विश्वास करने वाला था।[22] एलेक्स इंकेल्स लिखते हैं कि, "समाजशास्त्र एक व्यवहारिक विज्ञान है"[23] क्योंकि यह संवेग, आवेग, भावनाएं इत्यादि का अध्ययन भी करता है जबकि प्राकृतिक विज्ञान मूल्यरहित विज्ञान है। वेबर ने अपनी पुस्तक 'प्रोटस्टेण्ट इथिक एण्ड स्पिरिट आफ द कैपिटेलिज्म' में मूल्यों और विचारों के आधार पर पूंजीवाद के उदय को वैज्ञानिक आधार पर व्याख्यायित किया है। कार्ल पियर्सन ने विज्ञान का सम्बन्ध किसी विशेष अध्ययन वस्तु से न मानकर वैज्ञानिक पद्धति से माना है।

समाजशास्त्र मानव समाजों और मानव व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है जो विभिन्न समूहों से समाज का निर्माण करते हैं।[24] विज्ञान और गणित की अद्वितीय प्रगति के साथ–साथ उसी के समानान्तर मानव विकास के सिद्धान्त ने 'मानवता के विज्ञान' के लिए राह सुगम बनाई, जो भौतिक विज्ञानों के साथ–साथ खड़ा हो सका। इंग्लैण्ड में फ्रांसिस बेकन, फ्रांस में रेने डेस्कार्टे, ब्लेस पास्कल, जर्मनी में लेबनीज ऐसे दर्शनिक हैं, जिसने सत्रहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों के सामाजिक महत्व को पहचाना।[25] शिफर ने समाजशास्त्र की परिभाषा देते हुए कहा कि, समाजशास्त्र सामाजिक व्यवहारों और मानव समूहों का व्यवस्थित अध्ययन है। सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु शिफर ने निम्नलिखित आरेख के माध्यम से विधि को बताया है–



(स्रोत : शिफर : 1989:39)[20]

सामाजिक विज्ञानों में शोध हेतु डब्लू0 सी0 स्क्लूटर ने निम्नलिखित चरणों के द्वारा प्रस्तुत किया है।[21]

1. शोध के क्षेत्र अथवा विषय का चुनाव।
2. शोध की समस्या को समझने के लिए क्षेत्र का सर्वेक्षण।
3. एक पुस्तक सूची का निर्माण।
4. समस्या को परिभाषित करना।
5. समस्या के तत्वों का विभाजन तथा रूपरेखा का निर्माण।
6. समस्या के तत्वों का, आंकड़ों अथवा प्रमाणों के साथ उनके सम्बन्धों (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) के आधार पर वर्गीकरण करना।
7. समस्या के तत्वों के आधार पर उन आंकड़ों तथा प्रमाणों का निर्धारण, जिनकी आवश्यकता होगी।
8. आवश्यक आंकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धि का अनुमान लगाना।
9. समस्या के हल होने की सम्भावना की जांच।
10. आंकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन।
11. विश्लेषण के लिए आंकड़ों को नियमित व व्यवस्थित करना।
12. आंकड़ों व प्रमाणों का विश्लेषण व निर्वचन।
13. प्रस्तुतीकरण हेतु आंकड़ों को व्यवस्थित करना।
14. विशिष्ट कथनों, सन्दर्भों तथा पादटिप्पणियों का चुनाव व उपयोग करना।
15. शोध विवरण प्रस्तुत करने हेतु स्वरूप व शैली को विकसित करना।

समाजशास्त्र के संस्थापक सदस्यों ने समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने का प्रयास किया। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया। बाद के समाजशास्त्रियों ने विभिन्न समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य (उपागम) विकसित किये जिसको टर्नर ने पांच भागों में बांटा है।[22]

1. प्रकार्यात्मक सिद्धान्त
2. द्वन्द्व सिद्धान्त
3. विनिमय सिद्धान्त
4. अन्तःक्रियावाद सिद्धान्त
5. संरचनात्मक सिद्धान्त

वर्तमान समय में अधिकांश समाजशास्त्री वैज्ञानिक समाजशास्त्र की पद्धतियों को परिष्कृत करने में लगे हुये हैं। समाजशास्त्र में विज्ञानवाद के कारण अनेक प्रकार के असंतोष उभरे हैं। एक ओर विज्ञान व तकनीकी विकास के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक व व्यक्तिगत जीवन में असमानता व असामंजस्य उभरी है दूसरी ओर समाजशास्त्रियों ने विज्ञानवाद के कारण समाजशास्त्रीय अध्ययनों की सीमाओं को भी समझा है। मनुष्य व समाज का यथार्थ इतना जटिल व परिवर्तनशील है कि मात्र वैज्ञानिक पद्धतियों से ही उसको पूर्णरूपेण समझना व परखना सम्भव नहीं हो सकता।[23] एक छठा उपागम नृजाति पद्धतिशास्त्र का विकास इन्हीं आधारों व पृष्ठभूमि के अन्तर्गत हुआ है, जिसके प्रणेता गारफिंकल हैं।

निष्कर्ष

अतः हम यह पाते हैं कि समाजशास्त्र एक व्यवहारिक विज्ञान है जिसकी अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक है।

संदर्भ

1. बाटमोर, टी0 बी0(2004) अनुवादक प्रधान गोपाल, समाजशास्त्र, ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली, पृ0 12।
2. तदैव, पृ0 12।
3. तदैव, पृ0 13।
4. टर्नर, जे0 एच0(1995) द स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0 39।
5. बाटमोर, टी0 बी0(2004) पृ0 22।
6. इंकेल्स एलेक्स(2003) ह्वाट इज सोशियोलॉजी ? प्रिन्टिस हाल ऑफ इण्डिया, प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृ0 93।
7. तदैव, पृ0 93।
8. सिंह, जे0 पी0(2010) समाजशास्त्र, अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पी0 एच0 आई0 लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृ0 31।
9. सिंह, डॉ0 सुरेन्द्र, समाजशास्त्र की मूल अवधारणाएं, वाराणसी प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, 1993 पेज 03
10. टर्नर, जे0 एच0(1995) पृ0 05।
11. सिंह, सुरेन्द्र(1993) पृ0 08।

12. तदैव, पृ0 11।
13. हुसैन, माजिद(2004) मौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0 48।
14. तदैव, पृ0 113।
15. इग्नू, ई0 एस0 ओ0–13, पृ0 16।
16. हुसैन, माजिद(2004) पृ0 156।
17. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ(1973) सरस्वती सदन जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 46।
18. फिचर, रोनाल्ड(2000) द मेंकिग ऑफ सोशियोलोजी, ए स्टडी ऑफ सोशियोलॉजिकल थ्योरी, खण्ड 1, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर और नई दिल्ली, पृ0 257।
19. तदैव, पृ0 259।
20. वर्मा, ओमप्रकाश(1995) दुर्खेम–एक अध्ययन, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 22।
21. तदैव, पृ0 26–28।
22. तदैव, 1995 पृ0 378–379।
23. इंकेल्स, एलेक्स(2003) पृ0 19।
24. कोर्नब्लस, बिलियम(1988) सोशियोलॉजी इन ए चेंजिंग वर्ल्ड, हाल्ट, रिनेहार्ट एण्ड विन्स्टन, इन्क, न्यूयार्क, द ड्राईडेन प्रेस, सौन्डर्स कॉलेज पब्लिशिंग, पृ0 04।
25. तदैव, पृ0 07।
26. शिफर, रिचर्ड टी0(1989) सोशियोलॉजी, मैक्ग्रा–हिल्स, इंक, न्यूयार्क, पृ0 39।
27. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ(1996) सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 19–20।
28. टर्नर, जे0 एच0(1995) पृ0 32।
29. सिन्धी, नरेन्द्र कुमार(1998) समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 90।

वैज्ञानिक फसलोत्पादन में मटका खाद की उपयोगिता एवं महत्व

महीपत सिंह एवं प्रवीन कुमार सिंह
बीज प्रौद्योगिकी विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी(उ0 प्र0)–284128, भारत
maahiseeds@gmail.com

भारत वर्ष एक कृषि प्रधान देश है। प्रथम हरित–क्रान्ति के पश्चात् फसलों के उत्पादन में जो महत्वपूर्ण वृद्धि देखने को मिली है, इसमें प्रमाणीकृत बीजों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अच्छी गुणवत्ता का बीज किसी भी फसलोत्पादन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। खराब गुणवत्ता के बीज का प्रयोग करने के पश्चात् उत्पादन के कारकों जैसे खाद, पानी, कीटनाशी रसायनों कृत्य क्रियायें आदि का कितना भी प्रयोग क्यों न किया जाय परन्तु उत्पादन कम ही प्राप्त होता है। वर्तमान में वैज्ञानिक बीज उत्पादन मे रासायनिक उर्वरक के अंधाधुन्ध प्रयोग एवं जैविक खादों को कम प्रयोग करने से हमारी मिट्टी की उर्वरा शक्ति क्षीण हो गयी है। वैज्ञानिक प्रयोगों एवं अनुसंधानों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि हमारी मिट्टी में दिन–प्रतिदिन उर्वरा शक्ति का ह्रास हो रहा है, जिसका प्रमुख कारण अधिक एवं असंतुलित मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग है। मृदा के रासायनिक गुणों में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनसे फसलों का उत्पादन कम हो रहा है। इसकी पूर्ति के लिए किसानों द्वारा फसलों में अधिक मात्रा में यूरिया का प्रयोग किया जा रहा है। खाद उत्पादन की बढ़ती हुई मांग, उत्पादन में होने वाली कमी, मृदा के रासायनिक गुणों में होने वाले परिवर्तन, हमें खाद उत्पादन में पीछे धकेल रहे हैं। वर्तमान समय में वैज्ञानिकों द्वारा परम्परागत खेती पर विशेष जोर दिया जा रहा है। साथ ही जैविक खादों के अधिक से अधिक प्रयोग की संस्तुति की जा रही है। इनमें मटका खाद एक सर्वोत्तम जैविक खाद एवं कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

मटका खाद क्या है?

कृषि में प्रयोग की जाने वाली यह खाद, गाय के मूत्र, गाये के ताजे गोबर, नीम की पत्तियों तथा गुड़ डालकर तैयार की जाती है। जिसमें बहुत से लाभदायक सूक्ष्म जीवाणु स्वतः ही पैदा हो जाते हैं। एक 100 लीटर क्षमता की टंकी में 15 लीटर गाय का मूत्र, 15 लीटर पानी, 15 किग्रा0 गाय का ताजा गोबर, 15 किग्रा0 नीम की पिसी हुई पत्तियाँ तथा 2 किग्रा0 गुड़ डालकर अच्छी तरह घोलते हैं, फिर उस घोल को मटकों में भर देते हैं तथा धूप में रख देते हैं, गर्मियों में कम से कम 7 दिन तथा सर्दियों में कम से कम 15 दिन रखने से मटकों के अन्दर भरा तरल सड़कर खाद बन जाता है। इसमें बहुत से लाभदायक सूक्ष्म जीवाणु स्वतः ही पैदा हो जाते हैं।

औषधीय महत्व

गाय के मूत्र में समस्त सूक्ष्म तत्व पाये जाते हैं तथा नीम की पत्तियाँ कीटों के अंडे तथा लार्वा बढ़ने नहीं देता, अप्रिय कीटों के विकास को रोकता है। यह प्रभावी कीटनाशक है इसलिए कई अन्य मृदा में रहने वाले जीवों को भी नष्ट करता है तथा कीटों को अंडे देने से भी रोकता है। इन्हीं सब गुणों के कारण नीम बहुत से कीटों पर अंकुश लगाता है, एफिड्स ब्राऊन राईस जांट होपर, कटवार्म, कोलोराडो बीटल, मैक्सिकन बीज बीटल, डोर्जर लोक्स्ट लीफ मिनर, ग्रीन राइस लीफ होपर, पोटैटो जासिड, फ्रूटफ्लाई डायमंड बैकमोथफ गुड़ सूक्ष्म जीवाणुओं का भोजन है तथा उन्हें बढ़ाता है। गाय का गोबर खाद का कार्य करता है। अतः मटका खाद का प्रयोग खाद के रूप में, कीट नियंत्रण के रूप में, व्याधि नियंत्रण के रूप में तथा हारमोन्स के रूप में किया जा सकता है। 60 लीटर खाद एक एकड़ फसल में प्रयोग की जाती है।

प्रयोग विधि

मटका खाद को निम्नलिखित रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(अ) खाद्य के रुप में
(ब) कीट/व्याधि नियंत्रण के लिए
(स) खड़ी फसल के हारमोन्स के रूप में

(अ) खाद के रूप में

खाद के रूप में अंतिम जुताई से पहले एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए 62 किग्रा0 खाद में चार गुना लगभग 250 लीटर पानी मिलाकर कूंची या डिब्बे से छिड़क दें, तत्पश्चात् 24 घण्टे उपरान्त बुवाई की जा सकती है।

लाभ

खाद में उपस्थित नीम के कीटनाशी/मृदा जन्म रोग नाशी गुणों के कारण यह अंडे तथा लार्वा बढ़ने नहीं देता इन्हें नष्ट कर देता है। उदाहरणार्थ– कटवर्म मैक्सिकन बीज बीतल, माईट, कैबेज वर्म आदि।

(ब) कीट/बयाधि नियंत्रण के लिए

कीट अथवा व्याधि नियंत्रण के रूप में इसका प्रयोग कीट/व्याधि लगने से पूर्व किया जाना अत्यन्त आवश्यक है, एक एकड़ फसल पर प्रयोग हेतु 62 किग्रा0 मटका खाद में 250 लीटर पानी मिलाकर मिश्रण को भली प्रकार से मिश्रित करके बारीक कपड़े से छानकर 25 से 50 ग्राम साबुन या पाऊडर मिलाकर स्प्रे मशीन द्वारा पश्चात् जो अपशिष्ट पदार्थ बचता है। उसे खड़ी फसल में छिड़क देना चाहिए।

लाभ

यह अपने औषिधीय गुणों के कारण फसल पर लगने वाले एवं कीटों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करता है। इसका प्रयोग प्रथम स्प्रे के बाद अगले 15 दिन से 20 दिन बाद पुनः प्रयोग करें तो अधिक लाभ प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ– राईस प्लांट होर, ग्रीन राइस लीफ होपर, व्हाइट फ्लाई, मेडिटेरेनियन, फ्रूट फ्लाई, डायमंड बैकमोथ इत्यादि।

(स) खड़ी फसल पर हारमोन्स के रुप में

सामान्य परिस्थितियों में एक एकड़ फसल पर प्रयोग हेतु 62 किग्रा0 खाद में 250 लीटर पानी मिलाकर बारीक कपड़े से छानकर 2 प्रतिशत यूरिया के घोल के साथ छिड़काव करने पर पत्तियों एवं पौधे के विकास में अत्यधिक लाभप्रद होता है।

लाभ

यदि मटका खाद्य के घोल में 2 प्रतिशत यूरिया घोल को मिलाकर प्रयोग करने पर पौधों में होने वाले झुलसा एवं आर्द्रपतन रोगों पर अत्यधिक लाभ प्राप्त होता है। यदि इस मिश्रण को प्रथम प्रयोग के उपरान्त 15 से 20 दिनों बाद पुनः प्रयोग करने पर झुलसा एवं आर्द्रपतन आदि रोगों का प्रभावी ढंग से नियंत्रण हो जाता है।

महत्व

मटका खाद वैज्ञानिक उत्पादन में एक फसलोत्पादन प्रभावी खाद, कीट नियंत्रक, रोग नियंत्रक एवं हारमोन्स के रूप में प्रयोग किये जाने वाली एक सम्पूर्ण औषधि है। अतः वैज्ञानिकों द्वारा मटका खाद की उपयोगिता तथा प्रयोग पर विशेष बल दिया जा रहा है। तथा साथ ही यह सबसे सस्ती एवं आसानी से तैयार किये जाने वाली खाद है। जिसमें किसानों को अधिक प्रशिक्षण एवं तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। साथ की अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है एवं मृदा की घटती एवं असंतुलित उर्वरक क्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भ

1. चड्ढा, संजय; अश्लेशा, रामेश्वर; सैनी, जे0 पी0 तथा पॉल, वाई0 एस0(2012) वेदिक केशी: सस्टेनेबल लाइवलीहुड ऑप्शन फॉर स्मॉल एण्ड मार्जिनल फॉर्मर्स, इंडियन ज0 ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज, खण्ड 11, अंक 3, मु0 पृ0 480–486।

2. एग्रोनिमस, इकोनॉमिक सर्वे ऑफ हिमाचल प्रदेश(डिपार्टमेंट ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड स्टेटिसटिक्स, हिमाचल प्रदेश सरकार, शिमला), वर्ष 2011।

3. चौधरी, पी0 एस0(2005) वर्मीकल्चर एण्ड वर्मीकंपोस्टिंग एज बायोटेक्नोलॉजी फॉर कंजर्वेशन ऑफ आर्गेनिक वेस्ट इन टू एनिमल प्रोटीनस एण्ड ऑर्गेनिक फर्टिलाइजर, एशियन ज0 माइक्रोबायो0, बायोटेक्नोला0 इनवायरन0 साइं0, खण्ड 7, मु0 पृ0 359–370।

4. नटराजन, के0(2002) पांचगाव्या–अ मैनयुअल, अदर इंडिया प्रेस, मपूसा, गोआ, भारत, पृ0 33।

5. चडढा, संजय(2011) ऑर्गेनिक नर्सरी प्रोडक्शन ऑफ वेजीटेबल क्रॉप्स, डेवलेपमेंट ऑफ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर, सीओए सीएसकेएचपीकेवी, पालमपुर।

इंटरनेट – सूचना, प्रौद्योगिकी की एक अद्वितीय भेंट

अपर्णा टण्डन
प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
aparnashrish@gmail.com

पूर्व प्रधानमंत्री माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी के अनुसार "सूचना प्रौद्योगिकी का विकास कम्प्यूटर शिक्षा पर निर्भर है।" आज सर्वत्र सूचना प्रौद्योगिकी की ही चर्चा हो रही है। पिछले तीन–चार दशकों में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति और विकास के कारण सूचना क्रान्ति की अवधारणा दृष्टिगोचर हुई है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद जो समाज उत्तर प्रौद्योगिक समाज कहा जाता था, उसे अब सूचना समाज के नाम से जाना जाता है। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी तथा जापान आदि विकसित देश सूचना समाज के पर्याय बन गये हैं। सूचना प्रौद्योगिकी इन देशों की उन्नति और विकास का मापदण्ड बन गई है। हमारे जीवन में भी निरन्तर परिवर्तन आ रहा है। इस परिवर्तन में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की महती भूमिका है। सूचना प्रौद्योगिकी भी अनेक वैज्ञानिक विषयों में से एक है जिसका मुख्य लक्ष्य सूचना का उपयोग वैज्ञानिक तरीके से करना है। इस कार्य में कम्प्यूटर का महत्वपूर्ण योगदान है। कम्प्यूटर की सहायता से न केवल विशाल सूचनाओं के भण्डार को संचित तथा व्यवस्थित किया जा सकता है बल्कि अत्यधिक कठिन एवं श्रम साध्य गणनाओं और कार्यों को अत्यधिक अल्प समय में त्रुटिरहित तरीके से निस्तारित भी किया जा सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र जैसे शिक्षा, औद्योगिकी, कृषि, चिकित्सा, रेलवे, सांख्यिकीय, प्रशासन, अंतरिक्ष संस्थान, बैंकिंग, बीमा तथा लेखा शास्त्र आदि में कम्प्यूटर ने एक बड़ी क्रान्ति को जन्म दिया है। आज कम्प्यूटर ने व्यावसायिक क्षेत्रों के साथ–साथ घर–घर में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

आज से लगभग दो दशक पूर्व तक अनेक प्रकार की सूचनाओं को प्राप्त करना सुविधाजनक नहीं था। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इंटरनेट का आविष्कार मानव के लिए एक अद्वितीय भेंट है। कम्प्यूटर की इंटरनेट, ईमेल व वार्तालाप सुविधा ने समस्त विश्व को आपस में बहुत ही सुगमता से जोड़ दिया है। इस कारण आज हर प्रकार की सूचना का संचार सम्भव है। कण–कण में व्याप्त ईश्वर की सत्ता की भाँति इंटरनेट भी आज सर्वव्यापी है क्योंकि सम्पूर्ण विश्व इंटरनेट पर उपलब्ध सूचनाओं के असीम भण्डार पर निर्भर होता चला जा रहा है। सूचनाओं के इस अनन्त असीम आकाश में ब्रह्माण्ड की समस्त जानकारी समाहित है। इंटरनेट से जुड़ते ही हम विभिन्न प्रकार की सूचनाओं तथा आंकड़ों के विशाल सागर में डूबने उतराने लगते हैं और विश्व में कहीं भी उपलब्ध समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, व्यक्ति विशेष, सिनेमा, खेल, संग्रहालय, पुस्तकालय, उद्योग, संस्था, होटल, विश्वविद्यालय, कॉलेज आदि से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। कहीं भी किसी के साथ पत्र व्यवहार कर सकते हैं, हजारों किलोमीटर दूर बैठे लोगों से वार्तालाप (चैटिंग) कर सकते हैं। यहाँ तक कि कैमरे के द्वारा उन्हें अपनी कम्प्यूटर स्क्रीन पर देख भी सकते हैं। इस कारण आज इंटरनेट विचारों की अभिव्यक्ति का एक प्रभावी माध्यम बन घर–घर में घर कर गया है तथा 'वसुधैव कुटुंबकम' की कल्पना को साकार करते हुए एक विस्तृत नेटवर्क इंटरनेट के रूप में विश्व स्तर पर स्थापित हो गया है।

नेट का शाब्दिक अर्थ है– जाल। इंटरनेट वास्तव में विश्व भर के कम्प्यूटरों का जाल है, जो विश्व में अलग–अलग स्थानों पर स्थित कम्प्यूटरों को नेटवर्क के माध्यम से जोड़कर सूचना के संप्रेषण के लिए बनायी गयी एक विशिष्ट प्रणाली है। कम्प्यूटरों का आपस में जुड़ा हुआ समूह नेटवर्क कहलाता है, जिसके द्वारा वे एक दूसरे से सूचना का आदान–प्रदान करते हैं। भौगोलिक स्थिति के आधार पर नेटवर्क तीन प्रकार के हो सकते हैं। यदि नेटवर्क एक अकेले स्थान में ही सीमित है जैसे किसी भी कार्यालय में टेलीफोन लाइन से जुड़े मात्र दो कम्प्यूटर लोकल एरिया नेटवर्क कहे जा सकते हैं। एक ही शहर में स्थापित विभिन्न कार्यालयों के कम्प्यूटर टेलीफोन से जुड़कर मेट्रोपोलियन एरिया नेटवर्क कहलाते हैं तथा जब एक नेटवर्क शहरों, राज्यों, देशों या महाद्वीपों के बड़े क्षेत्रों में स्थित होता है तब वह वाइड एरिया नेटवर्क कहलाता है। इंटरनेट वस्तुतः नेटवर्कों का भी नेटवर्क है जो बिना किसी भेदभाव के हमें सम्पूर्ण विश्व से एक समान रूप से जोड़ता है। इंटरनेट विभिन्न प्रकार की सेवाएं भी उपलब्ध करवाता है जिसकी सहायता से इंटरनेट पर उपलब्ध डाटा, ग्राफिक्स, गाने आदि को सरलता से ऐक्सैस किया जा सकता है तथा सूचनाओं का आदान–प्रदान भी किया जा सकता है। इंटरनेट द्वारा प्रदत्त कुछ सेवाएँ निम्नवत् हैं–

इलैक्ट्रॉनिक मेल(ईमेल)

ईमेल एक इलैक्ट्रॉनिक डाक प्रणाली है जिसके द्वारा कोई कम्प्यूटर उपयोगकर्ता अन्य किसी कम्प्यूटर उपयोगकर्ता तक अपने सन्देशों का आदान–प्रदान कर सकता है। एक ही सूचना अनेक व्यक्तियों के पास एक साथ भेजी जा सकती है। जहाँ भी ईमेल भेजनी है उसके ईमेल ऐड्रेस की जानकारी होना नितान्त आवश्यक है। ईमेल भेजने के लिए हम पूर्व निर्धारित स्थानों में पता, विषय, पाठ आदि कम्प्यूटर से टंकित करते हैं और आवश्यक कमाण्ड देकर ईमेल भेज देते हैं। यह मेल उपयोगकर्ता के मेल बाक्स में पहुंच जाता है तथा भेजने वाले के सेन्ड मेल में संग्रहित हो जाता है। भेजी गई ईमेल को केवल प्राप्तकर्ता ही देख सकता है क्योंकि उस ईमेल को उपयोग करने के पहले उसे अपना पासवर्ड बताना आवश्यक है। इस प्रकार पासवर्ड के माध्यम से व्यक्तिगत मेल बॉक्स की सुरक्षा की जाती है। ईमेल संचार का अत्यन्त तीव्र एवं सस्ता माध्यम है। यह समय सीमा, भौगोलिक दूरी की समस्याओं से भी मुक्त है।

विश्वव्यापी वेब(डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू–वर्ल्ड वाइड वेब)

डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू का आविष्कार इंजीनियर टिम बर्नर ली ने 1989 में किया था। यह इंटरनेट की सर्वाधिक उपयुक्त सेवा है। अतः डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू इंटरनेट का पर्याय बन गया है। यह सूचनाओं से भरा एक विश्वव्यापी डाटा बेस है। इंटरनेट को इतनी ख्याति इस विश्वव्यापी वेब ने ही दिलायी है। इंटरनेट विश्व भर की समस्त जानकारियों से भरपूर एक पुस्तक है और वेबसाइट को हम इसका एक अध्याय मान सकते हैं। इंटरनेट पर होस्टेड सभी वैबसाइट्स भी डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू का ही भाग हैं। डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू सूचना के भण्डारण के लिए डाक्यूमेंट उपयोग में लाता है जिन्हें वेब पेज भी कहते हैं। यह वेब पेज हाइपर टेक्सट मार्क अप लैंग्वेज(एचटीएमएल) भाषा में लिखे जाते हैं। किसी भी एचटीएमएल डाक्यूमेंट को आप किसी दूसरे एचटीएमएल डाक्यूमेंट से लिंक कर सकते हैं। इसके लिए हाइपर लिंक उपयोग में लाते हैं। इसके द्वारा हम ग्राफिक्स, टेक्सट, साउण्ड, वीडियो आदि को प्राप्त कर सकते हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध अन्य सर्विसेज की तरह डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू भी क्लाइंट सर्वर सिद्धान्त पर आधारित है।

सर्च इंजन

अन्य वेबसाइटों की तरह ही सर्च इंजन भी विशिष्ट कार्य के लिए तैयार की गई वेबसाइटें ही हैं। इनका कार्य वर्ल्ड वाइड वेब में रखी सामग्री के भण्डार में से लोगों को उनकी आवश्यकता की सामग्री प्राप्त कराने में सहयोग प्रदान करना है। यदि किसी व्यक्ति को यह ज्ञात नहीं है कि जो जानकारी उसे चाहिए वह कहाँ मिलेगी तो किसी भी सर्च इंजन की सहायता से वह मनचाही जानकारी प्राप्त कर सकता है।

फाइल ट्रांसफर प्रोटोकाल(एफटीपी)

सन्देश प्रसारण के साथ–साथ इंटरनेट द्वारा बड़ी–बड़ी फाइल का आदान–प्रदान भी किया जा सकता है। इस कार्य के लिए एफटीपी सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जाता है। इस सॉफ्टवेयर के माध्यम से किसी भी कम्प्यूटर से सम्पर्क स्थापित कर उसमें उपलब्ध फाइलों से आवश्यकतापूर्ण सामग्री को अपने कम्प्यूटर में स्थानान्तरित किया जा सकता है। इसी प्रकार अपने कम्प्यूटर में संग्रहित किसी फाइल को इंटरनेट से जुड़े किसी भी कम्प्यूटर पर भेजा जा सकता है। यह सम्पर्क उसी प्रकार का होता है जैसे दो टेलीफोनों का सम्बन्ध होकर वार्ता होती है।

टेलनेट

सुदूर कम्प्यूटर पर कार्य से सम्बन्धित सॉफ्टवेयर का नाम टेलनेट है। इस सॉफ्टवेयर के माध्यम से सुदूर कम्प्यूटर पर उसी प्रकार कार्य किया जा सकता है जैसे कि आप अपने कम्प्यूटर पर कार्य कर रहे हैं। इसमें सुदूर कम्प्यूटर पर कार्य व्यवस्था एक बहुउपयोगी कम्प्यूटर सिस्टम की भाँति ही होती है। जिस सुदूर कम्प्यूटर पर कार्य करना होता है वह सर्वर तथा आप जिस कम्प्यूटर पर कार्य कर रहे होते हैं वह क्लाइंट कहलाता है।

वार्तालाप

इंटरनेट के माध्यम से दो व्यक्तियों के मध्य होने वाली बातचीत को चैट कहा जाता है। आजकल चैटिंग के लिए विभिन्न साइटें मुफ्त सॉफ्टवेयर उपलब्ध करा रही हैं जिसकी सहायता से आप सुदूर व्यक्तियों से कम्प्यूटर के माध्यम से सन्देशों का आदान–प्रदान कर सकते हैं। चैटिंग दो प्रकार से की जाती है–

(1) कीबोर्ड चैटिंग– इसमें लोगों को जो कहना होता है वह कीबोर्ड की सहायता से टाइप करते जाते हैं।

(2) वायस चैटिंग– इसके लिए वायस चैटिंग के सॉफ्टवेयर तथा उपकरण की आवश्यकता होती है जिसके माध्यम से ध्वनि रूप में भी वार्तालाप कर सकते हैं।

इंट्रानेट

बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ अपने मुख्यालय तथा शाखाओं के मध्य सम्पर्क बनाये रखने के लिए इस सुविधा का उपयोग करती हैं। केवल कम्पनी के कर्मचारी और सदस्य ही इस सुविधा का उपयोग कर सकते हैं। इससे स्टेशनरी एवं धन की बचत होती है और जानकारी के तीव्र आदान–प्रदान से कम्पनी की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

ई–वाणिज्य

ई–वाणिज्य का शाब्दिक अर्थ है– इंटरनेट पर व्यावसायिक गतिविधियाँ सम्पन्न करना। ई–वाणिज्य ने सम्पूर्ण विश्व को एक विशाल बाजार में परिवर्तित कर दिया है। इस बाजार में आप छोटी या बड़ी कोई भी वस्तु खरीद और बेच सकते हैं। ई–वाणिज्य की किसी भी

वेबसाइट पर आर्डर देकर घर बैठे अपनी मन–पसन्द कोई भी वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। इंटरनेट पर भुगतान करने का सबसे सुलभ माध्यम क्रेडिट कार्ड है।

ई–बैंकिंग

इसके माध्यम से आप घर बैठे ही बैंक से सम्पर्क कर सकते हैं। देश के किसी भी स्थान में भ्रमण करते हुए आवश्यकता होने पर धन अपने बैंक की किसी भी शाखा से निकाल सकते हैं।

ई–प्रशासन

ई–प्रशासन पंचायत, जिला एवं राज्य तीनों स्तरों पर सरकार और जनता के मध्य संवाद का सरल एवं प्रभावशाली माध्यम है। इसका उपयोग कर आप विभिन्न प्रकार के प्रपत्रों को अपने कम्प्यूटर पर उतार कर और भर कर सरकारी कार्यालयों को ईमेल के माध्यम से भेज सकते हैं तथा जन्म–मृत्यु की सूचना, पुलिस को शिकायत, सरकार के किसी अधिकारी के पास सुझाव आदि कार्य घर बैठे ही सम्पन्न कर सकते हैं।

निष्कर्ष

अतः यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि अब "हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता" की तरह ब्रह्माण्ड से जुड़ा यह इलेक्ट्रॉनिक पिण्ड सूचनाओं का अथाह सागर है। इसके माध्यम से ई–बैंकिंग, ई–वाणिज्य, ई–प्रशासन, मनोरंजन, चैटिंग, खेल, ई–कांफ्रेन्स, योगासन, पाक–कला, अध्यात्म, बागवानी, शिक्षा आदि में से जिसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी हो, उससे सम्बन्धित सूचनाओं एवं सुविधाओं का लाभ उठाया जा सकता है। इन सूचनाओं के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इनको विश्वभाषा के साथ–साथ हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्राप्त किया जा सकता है। यह एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि ही है कि भाषा विवाद के बिना, राष्ट्रीय सीमा के उल्लंघन के बिना, किसी सेंसर के बन्धन के बिना हम किसी भी सूचना को कहीं से भी प्राप्त कर सकते हैं तथा कहीं भी संप्रेषित कर सकते हैं। वास्तव में 'इंटरनेट' सूचनाओं का व्यापार ही है।

संदर्भ

1. गोयल, रितेन्द्र(2007) सूचना प्रौद्योगिकी, न्यू ऐज इंटरनेशनल प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
2. चिरानिया, बी0 पी0 एवं खंडाला, मानचंद(2009) प्रारंभिक कम्प्यूटर विज्ञान, रमेश बुक डिपो, जयपुर।
3. उपाध्याय, आलोक एवं सिंह, नीरज(2009) कम्प्यूटर शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. http://www.wikipedia.org/

सबसे पुरानी घड़ी बनाम शरीर घड़ी

इरफाना बेगम
विज्ञान प्रसार
सी–24 कुतुब संस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली–110016, भारत
begum.irfana@gmail.com

अगर हमसे पूछा जाये कि दुनिया की सबसे पुरानी घड़ी कौन सी है तो हमारे दिमाग में अनेकों वैज्ञानिकों के नाम घूम जायेंगे जिन्होंने अलग– अलग तरीके की घडियों का निर्माण किया। लेकिन हकीकत में दुनिया की सबसे पुरानी घडी हमारे शरीर के भीतर है जो कि हमारी अलग–अलग गतिविधियों के साथ तालमेल बनाती है। जो कि जन्म के साथ ही सभी सजीवों में पाई जाती है। सवाल यह उठता है कि आखिर यह शरीर के भीतर की घड़ी है क्या और कैसे काम करती है।

हर किसी के जागने, सोने, भूख लगने का खास समय होता है जो कि एक नियत तरीका होता है, जिसे "सर्केडियन रिदम" कहते हैं। यह लैटिन के सर्क और डियन से मिल कर बना है सर्क का अर्थ है चारों ओर और डियन का दिन। सामान्य रूप से इसे शरीर घड़ी या जैविक घड़ी भी कहते हैं। *सर्केडियन रिदम* एक जैविक चक्र है जो कि हर 24 घण्टे के लिये नियत होता है। खास बात यह है कि इस चक्र में केवल हमारे भीतर के ही नहीं बाहर के भी कारक प्रभाव डालते हैं। जैसे कि हमारा खान–पान, रहन सहन यहां तक कि प्रकाश का प्रभाव।

यह रिदम शरीर के भीतरी क्रिया कलापों के आधार पर नियत लय के साथ चलती रहती है। इसका मजेदार उदाहरण है कि शाम को 4 बजे के आसपास शरीर का तापमान सबसे कम और सुबह 7 बजे के करीब सबसे अधिक होता है और अधिकांश विश्व रिकार्ड सुबह की अपेक्षा शाम को बने हैं। शोध के अनुसार अधिकांश धावक शाम के समय में अथवा दोपहर के समय में एथलीट अधिक बेहतर तरीके से प्रस्तुतीकरण करते हैं। लेकिन इसका कारण स्पष्ट नहीं है क्या सर्केडियन रिदम इसके लिये जिम्मेदार है या फिर कुछ अन्य।

शरीर का घड़ी के साथ तालमेल बनाना जैविक प्रक्रिया है यह सभी सजीवों में पाई जाती है। जैसे फूलों का निश्चित समय पर खिलना और फिर बन्द हो जाना इसी प्रकार यह प्रत्येक व्यक्ति में विशेष प्रक्रिया है। पोलो सासेवन कोर्सी के अनुसार ऐसा माना जा सकता है कि सर्केडियन तंत्र सम्भावित रूप से सबसे पुराना जैविक तंत्र में से एक है। उसने साथ ही यह भी कहा कि सम्भवतः यह पृथ्वी पर जीवन रहने तक रहेगा।

सासेवन कोर्सी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्यरत थे। वहाँ उन्होने अध्ययन किया कि सर्केडियन रिदम शरीर में होने वाली रासायनिक क्रियाओं से जुड़ कर किस प्रकार से जीवन की प्रत्येक कोशिका से तारतम्य बनाती है। सामूहिक रूप से इसे शरीर की उपापचय क्रिया माना जा सकता है यह शरीर में 24 घण्टे काम करती रहती है। लेकिन हर दिन का कार्यक्रम किसी दूसरे दिन से थोड़ा अलग होता है। इससे साबित होता है कि हमारे दैनिक जीवन की सामान्य क्रिया–कलाप किसी घड़ी से सम्बन्धित होते हैं।

वह आश्चर्य चकित हो गये कि सर्केडियन रिदम पृथ्वी के चक्रण के लगभग समान होती है। जीवन को पृथ्वी के 24 घण्टे के रात और दिन के चक्र के अनुकूल ढाला गया है। जीवन का उद्भव 24 घण्टे के दिन और रात के चक्र के अनुसार तो हुआ है किन्तु यह अलग–अलग रात और दिन के चक्र के आधार पर है। इसी लिये यह सभी के लिये अलग–अलग है। सभी सजीवों के भीतर एवं जैव घड़ी है जो दिमाग के बीच में स्थित होती है जिसे सुप्राकियासमेटिक न्यूकलियस कहते हैं। यह चावल के एक छोटे से दाने के आकार की होती है फिर भी पूरे शरीर की गतिविधियों को नियन्त्रित करती है।

अलग–अलग व्यक्तियों में इसकी चाल अलग होती है किसी में यह थोड़ा तेज भी होती है लेकिन इसका समय एकदम नियत नहीं होता है क्योकि कुछ लोगों में यह कुछ धीमी भी होती है। इसलिये इसे विभिन्न तरीकों से बदला भी जा सकता है खास सूर्य के प्रकाश से। जब रोज सुबह हम उठते हैं तो सूरज की रोशनी आपको दुबारा नये दिन के लिये फिर से समायोजित करती है। मोलिक्यूलर बायोलॉजिस्ट सारा फोर्बस राबर्टसन जो कि वेल्स के स्वानेस विश्वविद्यालय में सर्केडियन रिदम पर कार्य कर रहे हैं के अनुसार यह सिंक्रोनाइजेशन हमारे बस में नहीं होती क्योंकि अगर हम एक गुफा में फंस जाये जहां पर सूर्य का प्रकाश न पहुंचे तो यह इस प्रकार से समायोजित न होगा और कई बार हम रात भर जागते और दिन भर सोते रहते।

उदाहरण के तौर पर यदि किसी व्यक्ति को लॉस एन्जेलिस से न्यूयार्क की यात्रा करनी है और वहां के समय में लगभग 3 घण्टे का अन्तर आता है तो व्यक्ति सुबह जल्दी उठ कर और रात में जल्दी सोकर प्रकाश के साथ अपना तालमेल बैठाकर अपनी सर्केडियन रिदम को व्यवस्थित कर सकता है। इसके लिये शाम के समय में तेज रोशनी से बचने के लिये वह रंगीन चश्मों का भी प्रयोग कर सकता है। या फिर मेलाटोनिन, मस्तिष्क द्वारा स्रावित हार्मोन है जो कृत्रिम रूप से गोलियों के रूप मे उपलब्ध है, का समय से पूर्व सोने के लिये किया जाता है।

रेटिना की विशेष कोशिकाओं के द्वारा प्रकाश मास्टर घडी तक पहुचता है। प्रकाश संवेदी कोशिकाओं की पर्त हमारी आखों के पीछे की

ओर होता है। जब प्रकाश इन कोशिकाओं पर पडता है तो यह कोशिकाएं दिमाग में स्थित प्रधान घडी को सन्देश देती है जहां वह लगभग 20000 न्यूरॉन्स या तंत्रिका कोशिकाओं पर प्रतिक्रिया करता है जो कि पूरे शरीर में सन्देश देती है। न्यूरान शरीर को हार्मोन स्रावित करने के सन्देष देती है और फिर न्यूरॉन पूरे शरीर में इन रसायनों के लिये सन्देश देता है यह रसायन निश्चत समय में विशेष कोशिकाओं को सन्देश देती हैं जैसे कि अब खाने का समय है या फिर अब उठना है या फिर अब जल्दी से सावधान हो जायें।

श्वान यंगस्टेडट एक क्रोनोबायोलॉजिस्ट कोलम्बिया के दक्षिणी कैरोलिना विश्वविद्यालय में अपने विद्यार्थी के साथ सर्कडियन रिदम का अध्ययन किया । उन्हाने विद्यालय के 25 अति प्रशिक्षित तैराकों को अलग प्रकार का कार्यक्रम दिया। दो घंटे के लिये इन तैराकों को हल्की रोशनी में रखा गया और इन्हें निर्देश दिया गया कि यह जागते रहें। उसके बाद सारी लाइटें बन्द करके इन तैराकों को एक घंटे के लिये सोने को कहा गया। और यह तरीका दो दिन से भी ज्यादा बार बार दोहराया गया। सभी को 200 मीटर की तेज तैराकी करने को कहा गया। यह क्रम छः अलग–अलग समय में हुआ जिसमें मध्य रात्रि भी शामिल थी। तैराकों ने शाम के समय में बेहतर परिणाम दिये जो कि 8 और 11 बजे रात्रि से 6 सेकेण्ड कम समय में पूरा किया।

यंगस्टेडट नें देखा प्रतियोगिता की दृष्टि से 6 सेकेण्ड अति महत्वपूर्ण होते हैं। अपने इस परीक्षण में सभी प्रतिभागियों कें खान–पान एवं रोशनी का समान वितरण था। इस प्रकार के परिणामों ने दर्शाया कि सर्केडियन रिदम रात्रि में तेज होती है । शोधकर्ता ने कहा कि सम्भावित रूप से शाम को हदय गति रक्त कोशिकाओं के बेहतर लचीलेपन के कारण यह रिदम अधिक होती है दोनों ही दशा में रक्त का प्रवाह बेहतर होता है और अधिक रक्त प्रवाह के कारण अधिक आक्सीजन पेशियों में पहुचती है। विशिष्ट एथलीट प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिये अलग–अलग जगहों पर भ्रमण करते हैं तो विशेषज्ञों की मदद से अपनी जैव घडी को समायोजित करते हैं। शोध ने शरीर के भीतर की घड़ी की जटिलता को समझाया कि यह नियन्त्रण चक्र सिंक्रोनाइज न होने पर कितने खतरनाक परिणाम हो सकते हैं।

एक से अधिक घडी

पहले वैज्ञानिकों का मत था कि दिमाग के भीतर की प्रधान घडी ही सर्केडियन रिदम के लिये जिम्मेदार है लेकिन पिछले पन्द्रह वर्षों से इस पर कार्य कर रहे शोधकर्ताओं ने पाया कि वास्तव में यह एक जटिल समस्या है । फोर्ब रार्बटसन के अनुसार शरीर की प्रत्येक कोशिका की अपनी एक घडी होती है। उन्होने कहा कि सम्भावित रूप से दिमाग की अपनी कई घडियां होती हैं जो कि आपस में तालमेल बनाये रखती हैं। लेकिन अभी भी वैज्ञानिकों के सामने स्पष्ट तस्वीर नहीं है कि यह घडियां आपस में तालमेल कैसे बनाती हैं।

फोर्बस रार्बटसन, सर्केडियन रिदम रसायनिक स्तर पर कोशिकाओं के स्तर पर यहां तक की छोटी कोशिकाओं के स्तर पर कैसे काम करती है। उनका मुख्य काम रात में जागने वाले व्यक्तियों और दिन में जागने वालों की तुलना में क्या अन्तर होता है। इस रिदम के अनुसार उन्होंने पाया कि आरएनएज नाम के अणुओं को पहचाना जो कि इनकी उपस्थिति की आवश्यक जीन्स को सूचना देती है और उसी के आधार पर यह बन्द और चालू हो जाते हैं।

जीन्स डीएनए की एक पट्टी के समान है जो कि माता पिता की जननिक सूचना अपने बच्चों को देती है। यह बच्चों में अपने माता पिता से आते हैं जो कि गुणों की पहचान करने की क्षमता रखते हैं। जैसे कि बालों का रंग या फिर किसी विशेष बीमारी से लड़ने की क्षमता। इन गतिविधियों को संचालित करने के लिये जीन भी प्रोटीन बनाने का कार्य सीधे इन कोशिकाओं में करते हैं।

फोर्बस रार्बटसन ने स्पष्ट किया कि डीएनए जैविक गतिविधियों की रूपरेखा तैयार करते हैं जो प्रत्येक कोशिका को जाती है जबकि आरएनए एक फैक्स के समान कार्य करता है। यह डीएनए के सन्देश ले जाते हैं जैसे कि कि किस विशेष समय में प्रोटीन तैयार करना है लेकिन सम्भावित रूप से शरीर के किसी विशेष भाग में । तब आरएनए एक बिगुल के समान कार्य करता है और यह निर्देश की तरह काम करता है। इसके बाद यह काम करना बन्द करता है जिससे कि कुछ गतिविधियां बन्द हो जाती हैं। फोर्बस रार्बटसन के अनुसार बहुत ही कम समय के लिये आरएनए के अणु बन्द और चालू होते हैं।

इससे साबित होता है कि क्यों कोई व्यक्ति रात में जाग सकता है जबकि दूसरा नहीं। कुछ जीन सर्केडियन सिस्टम से जुडे होते हैं, जिन्हें घडी जीन्स या पर जीन कहते हैं जो दिन और रात के आधार पर चलते और बन्द होते हैं। जैसे कि एक जीन जिसे पर 2 कहते हैं जिनके संकेत बहुत ही तीव्र होते हैं जो कि अलग–अलग लोगो में अलग–अलग समय पर विशेष प्रोटीन बनाने के निर्देश देता है। किसी में यह प्रातः चार बजे चरम पर होता है तो किसी में 2 बजे सुबह। फोर्बस रार्बटसन ने नोट किया कि जब यह अपने चरम पर होता है तो लोग अच्छा नहीं महसूस करते हैं। इसी कारण से रात में जागने वाले लोग आधी रात को बेहतर महसूस करते हैं जबकि दिन में जागने वाले लोग उठने के तुरन्त बाद अच्छा नहीं महसूस करते हैं।

तुल्यात्मकता के बाहर

शोधों से पता चलता है कि जिन लोगों का सर्केडियन रिदम लगातार अस्त–व्यस्त रहता है उन्हें बीमारियों का खतरा ज्यादा होता है। जो लोग रात की शिफ्ट में काम करते हैं उन्हें मोटापा, मधुमेह, निद्रा रोग, विशाद यहाँ तक कि कैंसर होने की संम्भावनायें अधिक होती हैं। हार्मोन से सम्बन्धित समस्याएं जैसे कि मोटापा या मधुमेह के रोगियों की संख्या निरन्तर बढ रही हैं। शोधों के आधार पर सम्भावनायें जताई जा रही हैं कि इनका मुख्य कारण रात में प्रकाश में रहना है। सैसोन कोर्सी ने बताया कि देर रात तक पढ़ना या कम्प्यूटर पर

काम करना भी सर्केडियन रिदम को अव्यवस्थित करता है।

लेकिन उन्होंने और उनके सहकर्मियों ने पाया कि सम्भावित रूप से शरीर घड़ी के ऐसे अवरोध समय के साथ कम हो जायें। 2013 मे प्रकाशित एक शोध में उनकी टीम ने चूहे के इस घडी से सम्बन्धित प्रोटीन को परिवर्तित करके चूहे की उपापचय को समायोजित करने का प्रयास किया। सोसेन कोर्सी समूह के लोगों ने देखा कि चूहे में एक अलग सा जीन दिखाई दिया जिसे "सिर्टी प्रोटीन" कहा गया, जिसकी मदद से घडी से सम्बन्धित किसी विशेष जीन को चालू या बन्द किया जा सकता है।

सोसेन कोर्सी के अनुसार इस शोध से पता चलता है कि सम्भवतः पहली बार शरीर घड़ी को व्यवस्थित करने पर समस्याओं का सामना करना पडता हो किन्तु सम्भव है कि आने वाले समय में इन घडियों को व्यवस्थित करके मोटापा और मधुमेह जैसी बीमारियों का इलाज किया जा सके।

जबरदस्ती घडी को व्यवस्थित करना

शोधकर्ताओं का सुझाव के अनुसार युवाओं तथा अन्य लोग अपने शरीर की घडी को सिन्क्रोनाइज करें और अनावश्यक रूप से देर रात तक न जागें क्योंकि रात का प्रकाश हमारे शरीर को सन्देश देता है कि अभी जागने का समय है।

संदर्भ

डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू डॉट साइंसडेली डॉट कॉम
एचटीटीपी://डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू डॉट साइंसन्यूजफॉरकिड्स डॉट ऑर्ग

जल–भण्डारण, संरक्षण तथा प्रबन्धन

ए0 के0 चतुर्वेदी
26, कावेरी एन्क्लेव, फेज-2, निकट स्वर्ण जयन्ती नगर,
रामघाट रोड, अलीगढ़(उ0प्र0)-202001, भारत

जल, सृष्टि के पंच तत्वों में से एक है। ऐसी मान्यता है कि पृथ्वी पर जीवन का प्रार्दुभाव जल के द्वारा ही हुआ है। सभी जैविक क्रियाओं के लिए जल आवश्यक है। अतः जीवन के लिए जल एक आवश्यक घटक है। इसीलिए जल और जीवन का अटूट सम्बन्ध है। जल मानवीय मूलभूत आवश्यकता है। दैनिक जीवन में जल का विशेष महत्व है। जल की उपयोगिता असीमित है। जल, प्रकृति का अनूठा वरदान है। विश्व में पृथ्वी चारों ओर जल से घिरी हुयी है। पृथ्वी पर अथाह, असीमित जल उपस्थित है। विश्व में जल ही ऐसा पदार्थ है जो तीनों अवस्थाओं (ठोस, द्रव–जल, गैस–भाप) में पाया जाता है। यह एक विलक्षण घटना है। पृथ्वी पर प्रकृति द्वारा प्रदत्त जल अद्भुत वरदान है। जल विभिन्न स्थानों पर भिन्न मात्रा में पाया जाता है। महासागरों में 96.5% तथा महाद्वीपों पर 3.5% जल पाया जाता है। महाद्वीपों पर भूमिगत जल 0.97%, हिमखण्डों व शिखरों पर 1.74%, धरातलीय जल 0.783%, वायुमण्डलीय जल 0.003%, मिट्टी में नमी 0.002% दलदल 0.001%, जैविक जल 0.001% पाया जाता है। जल का उपयोग गृहकार्य, औद्योगिक, तापविद्युत उत्पादन, जल विद्युत उत्पादन, सिंचाई, पशुपालन आदि में किया जाता है। पीने योग्य शुद्ध जल हिमखण्डों, हिमशिखरों, धरातल जल, भूमिगत जल से प्राप्त किया जाता है। जल हमारे जीवन में बहुत ही उपयोगी है। जल के बिना जीवन असम्भव है। जल के अत्यधिक दोहन से, अनुचित भण्डारण, संरक्षण एवं प्रबन्धन की कमी के कारण जल संकट उत्पन्न हो रहा है। इस कुप्रबन्धन, जनसंख्या विस्फोट तथा अत्यधिक अनसुयोजित औद्योगीकरण के कारण भी जल संकट को बढ़ावा मिल रहा है।

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि भूमिगत व धरातल जल तथा वर्षा जल पर निर्भर है। पर्यावरण के प्रदूषित होने से मौसम में परिवर्तन हो रहा है। इस कारण वर्षा की मात्रा कम और असमय हो रही है। इससे समस्या और जटिल होती जा रही है। इसलिए उचित भण्डारण, संरक्षण, प्रबन्धन की आवश्यकता है। जिन तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए, उन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। विकास और धन को अधिक महत्व देने से समस्या और गम्भीर हो गई है। केवल धन अर्जित करने पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है। कुछ जगह तो सतही तथा भूमिगत जल भी प्रदूषित हो गया है। इससे जल समस्या और गहरा गई है। जल भण्डारण, संरक्षण, प्रबन्धन के लिए कार्य करने की आवश्यकता है। सामूहिक भागेदारी आवश्यक है। तभी जल बच पायेगा। जीवन समृद्ध बन पायेगा। अन्यथा जीवन समाप्त हो जायेगा। प्राकृतिक सम्पदा जल की मात्रा सीमित है। जल की मांग के अनुरूप पूर्ति करने के लिए हैन्ड पम्प, ट्यूबवेल, सबमर्सेबिल पम्प का उपयोग किया जा रहा है। इनकी संख्या में भी अपार वृद्धि की गई है। भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन और दुरूपयोग से जल की कमी हो रही है। इस कारण नलकूपों की असफलता दृष्टिगोचर हो रही है। भूमिगत जल की गुणवत्ता भी प्रभावित हो रही है। भूमिगत जल भी प्रदूषण से ग्रसित है। पर्यावरण असंतुलन भी समस्या को बढ़ा रहा है।

प्रदूषण भी जल संकट को बढ़ावा दे रहा है। नदियों के जल में औद्योगिक कचरा, शहरों का मल–मूत्र जल और कचरा मिलाया जा रहा है। नदियों के उपरान्त जल स्रोतों में तालाबों का महत्वपूर्ण स्थान है। तालाब जल को संग्रहित करते हैं। पूर्वज जल संरक्षण तथा प्रबन्धन के प्रति सजग थे। परन्तु शहरीकरण और विकास की आंधी में तालाब, बावड़ी, कुएं अर्न्तध्यान हो गये। जिससे जल संकट बढ़ता जा रहा है। विकास का लाभ तभी मिलेगा। जब जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होगा। इसके लिए जल भण्डारण, संरक्षण, प्रबन्धन उचित दिशा में आवश्यक है। पुरातन लोग आज की तुलना में कहीं अधिक समझदार थे। वे भविष्य तथा सबका ध्यान रखते थे। परन्तु आजकल के लोग पैसे को अधिक महत्व देते हैं। विकास के नाम पर गल्तियों को छिपा देते हैं। भविष्य व सबकी नहीं सोचते। केवल अपनी सोचते हैं। जल भण्डारण, संरक्षण, प्रबन्धन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। केवल विकास के नाम पर कंकरीट–सीमेन्ट के जंगल उगाये जा रहे हैं। वाहनों की संख्या बढ़ गई है। अत्यधिक अनियोजित औद्योगिक क्रान्ति ने भी जल संकट बढ़ाया है। जल भण्डारण न होने पर भविष्य में जल नहीं होगा तब जीवन नहीं होगा। भूमिगत जल प्रदूषित हो रहा है। इसके कई कारण हैं। प्रथम, सफाई व्यवस्था समुचित नहीं है। दूसरे, कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरक(खाद), कीटनाशक का उपयोग किया जाता है। उर्वरक और कीटनाशक पृथ्वी में रिसकर भूमिगत जल में मिल जाते हैं। इसके प्रमाण भूमिगत जल में पोटेशियम और नाइट्रेट अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। तीसरा, औद्योगिक कचरा है जो भूमि पर पड़ा रहता है। उपयोगी अवयव रिस कर भूमिगत जल में मिल जाते हैं। प्रदूषित जल भूमिगत जीवन के लिए संकट उत्पन्न करता है। मिट्टी की सतह अपने भौतिक और रासायनिक गुणों के अनुसार ही वर्षा जल को ग्रहण करती है। धीरे बहते या रूके हुए जल का एक बड़ा भाग धीरे–धीरे रिसकर भूमिगत जल में मिल जाता है। भूमि के गुणों के अनुसार 20% वर्षा जल का प्राकृतिक रूप में भूमिगत जल पुर्नभरण करता है। सदियों से वर्षा जल का संचय होता रहा है। परन्तु आजकल जल भण्डारण, संरक्षण और प्रबन्धन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा। केवल उपयोग और दोहन किया जा रहा है।

पुरातन काल में भूमि कच्ची हुआ करती थी। फलस्वरूप वर्षा जल रिस–रिस कर पृथ्वी के अन्दर संग्रहीत होता रहता है। आजकल जनसंख्या विस्फोट के कारण पृथ्वी का कंक्रीटकरण हो गया है। शहर तो शहर गांव में भी आधुनिक सुविधाएं पहुंच गई है। अधिकतर भूमि की सतह पक्की होने के कारण वर्षा जल रिसकर अन्दर नहीं जा पाता। भूमिगत जल का रिचार्ज होना लगभग असम्भव हो रहा है। जो एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। जल भण्डारण, संरक्षण और प्रबन्धन के लिए सरकारी तंत्र पर आश्रित न होकर सामूहिक साझेदारी का योगदान होना चाहिए। सदियों से चली आ रही वर्षा जल का भण्डारण व संरक्षण की परम्परा समाप्त हो गई है। जल भण्डारण में तालाब, बावड़ी, स्टेप वेल, घिरी लेक, टैंक का उपयोग किया जाता है। ये सब जल संगह निकाय है। इनका घरेलू और सिंचाई की आवश्यकताओं को पूरा करने में उपयोग होता है। प्राचीन काल में मानव समाज जल स्रोतों के रखरखाव का ध्यान स्वयं करते थे। सरकारी तंत्र पर निर्भर नहीं करते थे। कालान्तर में ऐसा नहीं रहा। मानव के गैर उत्तरदायी व स्वार्थी व्यवहार ने जल स्रोतों को समाप्त कर दिया है। जल संकट गहराता जा रहा है। मानव का अस्तित्व ही खतरे में हो गया है। जनसंख्या विस्फोट, उद्योगीकरण,

शहरीकरण, वाहनों की अधिक संख्या भी जल स्रोतों को समाप्त कर रही है। जल स्रोतों के अभाव में जल संकट का उत्पन्न होना और गहरा होना स्वाभाविक है। समस्या अति गम्भीर है। इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

जल संकट के भयावह रूप से बचने के लिए आवश्यक है कि पुरानी परम्परागत प्रणाली को पुनः जीवित किया जाये। साथ ही जल प्रबन्धन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। इसके लिए सबका सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। पोखरों, तालाबों, कुओं, सूखी नदियों को पुनः जीवित करने की आवश्यकता है। नये तालाब बनाए जाय। पुराने तालाबों की मरम्मत करानी चाहिए। तली की सफाई भी करनी चाहिए। शहर के नाले साफ कर चैक डेम बनाए जाय। इससे पानी को पृथ्वी में रिसने का समय मिल जायेगा। वर्षा जल को संग्रहित करने के लिए भूमिगत टैंक बनाया जाय। इस वर्षा जल को सूखे ट्यूब वेल या नये बोरवेल में डाला जाये। इससे भूमिगत जल का स्तर बढ़ेगा। टैंकों में एकत्रित जल को बागों में, पार्कों में सिंचाई के रूप में प्रयोग में ला सकते हैं। इसके अतिरिक्त कपड़े धोने, सफाई के काम में ला सकते है। रेगिस्तान में बड़े कुंडों को बना कर जल संचय करते हैं। राजस्थान में बावड़ी भी जल का संग्रह केन्द्र है। आधुनिक दौर के विकास में औद्योगीकरण, शहरीकरण के कारण पृथ्वी का अधिकाश भाग कंक्रीट का हो गया है। इससे वर्षा जल स्वतः रिस कर पृथ्वी के अन्दर नहीं जा पाता। साथ ही जल का दोहन बढ़ गया है। रिचार्ज न होने की स्थिति में भूमिगत जल का स्तर कम हो रहा है। भूमिगत जल स्तर बढ़ाने की आवश्यकता है।

वर्षा जल को संचय कर घरेलू आवश्यकताओं और सिंचाई के काम में ला सकते हैं। यह प्रक्रिया रेन वाटर हार्वेस्टिंग (वर्षा जल भण्डारण) कहलाती है। वर्षा जल का भण्डारण दो प्रकार से होता है। (1) सरफेस रन ऑफ हार्वेटिस्टंग–इस विधि में पृथ्वी की सतह पर वर्षा जल को संग्रहीत किया जाता है। जो धीरे–धीरे रिसकर भूमिगत जल में रहता है इसके लिए भूमि पर गड्ढे बनाये जाते है, जिनमें वर्षा जल भरता रहता है बड़े रूप में तालाब बनाये जाते हैं जो वर्षा जल का संचय करते है। (2) रूफ वाटर हार्वेस्टिंग–इस प्रणाली में पहले छत को साफ कर लेते हैं फिर छत के पानी को पाइपों के द्वारा पृथ्वी में बने टैंकों में एकत्रित करते हैं। पाइप के प्रवेश द्वार पर पतली तार की जाली लगा देते हैं। टैंक से इस जल को फिल्टर के माध्यम से गुजारते है। इस साफ जल को फिर एकत्रित कर बगीचों में सिंचाई, कपड़े, फर्श धोने के काम लाते हैं। कुछ जल को खोदे गये गड्ढे में मिलाते हैं। जिसमें बालू, कोयला की पर्त होती है। इस प्रकार शुद्ध जल भूमिगत जल में मिल जाता है और भूमिगत जल का स्तर बढ़ जाता है।

पोखरों, तालाबों, बावड़ियों की संख्या को बढ़ाना होगा। इनके रख रखाव पर ध्यान देना होगा। तब जल का भण्डारण होगा। साथ ही संरक्षण भी होगा। उनके उपयोग पर उचित प्रतिबन्ध होना चाहिए। इसके प्रबन्धन सही रूप में कार्य कर सके। जल की कमी नहीं होगी। अकाल नहीं पड़ेगा। मानव जीवन सुचारू रूप से चलता रहेगा। जल संकट की भीषण भयावहता से बचने के लिए तालाबों का निर्माण करायें, पुराने तालाबों का जीर्णोद्धार करें। इन तालाबों की उचित देखभाल भी आवश्यक है। यह सबके सहयोग से ही हो पायेगा। तभी जल भण्डारण, संरक्षण और प्रबन्धन का उचित योगदान होगा। जल संग्रहण, जल संरक्षण के प्रमुख स्रोत, वन हैं। वन, जल और मृदा को संरक्षित करते हैं। वनों के विकास पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

नोटः– प्रस्तुत लेख, लेखक के अपने व्यक्तिगत विषय ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित है तथा किसी भी अतिरिक्त अध्ययन सामग्री का प्रयोग नहीं किया गया है।

सब्जियाँ और मसाले - सेहत का भंडार

आनंद अखिला
पूर्व प्रमुख वरिष्ठ वैज्ञानिक,
सी0 आई0 एम0 ए0 पी0, भारत सरकार, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
पता– टॉवर 10, छठा तल, फलैट 2–सी, मैट्रो सिटी, पेपरमिल कॉलोनी,
निशातगंज, लखनऊ(उ0प्र0)–226006, भारत
akhiladr@hotmail.com

विटामिन सी से भरपूर आंवला

शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसने आंवला न देखा हो या कभी न कभी किसी रूप में इसका सेवन न किया हो। प्रायः से लोग आंवले का सेवन विटामिन–सी की भरपूर मात्रा प्राप्त करने के लिए करते हैं पर शायद वह नहीं जानते कि आंवला उन्हें अधिकाधिक बीमारियों से किस प्रकार सुरक्षा प्राप्त करवाता है। साधारण सर्दी–जुकाम, मूत्र–तंत्र की चुस्ती, लैक्सेटिव,(पेट साफ करना), लीवर टानिक, पेट दर्द, शरीर में कहीं भी सूजन ओर प्रमुखतः बालों की चमक आदि में इसका विशेष योगदान है। आंवले का वानस्पतिक नाम *एम्बलिका आफिसिनैलिस* है व यह 2–3 मीटर तक का वृक्ष होता है। अंग्रेजी में इसे इंडियन गूजबेरी भी कहते हैं। आंवले का नियमित सेवन दीर्घायु बनाने के साथ–साथ बुढ़ापे से जुड़ी बीमारियों की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, मसलन त्वचा में झुर्रियां पड़ना व लटकना, बालों का सफेद होना, डायबेटीज, दांतों का कमजोर होना, स्मरण शक्ति का ह्रास होना और कैंसर आदि बीमारियाँ होने की संभावनाएं आदि। यह एक सशक्त ऐन्टीआक्सीडेंट भी है जो शरीर को हानिकारक फ्री–रैडिकल्स से बचाता है। इन्हीं सब गुणों के कारण बहुत लोग इसे 'अमृतफल' कहते हैं।

सन् 2011 में 'यूरोपियन जरनल आफ कैंसर प्रिवेन्शन' में दिये गये एक शोध पत्र में बताया गया कि आंवले में मौजूद मैलिक एसिड, इगैलिक एसिड, पाइरेगैलोल, कोरिलाजिन, जिरानिन, इलाकारपोसिन नामक रसायन कैंसर कोशिकाओं के बनने और रोकने में कारगर हो सकते हैं आंवले के भरपूर लाभ उठाने के लिए निम्न विधियों से आंवले का सेवन किया जा सकता है :

1. जाड़ों में आंवले का ताजा फल उपलब्ध होता है। सीधे ही धोकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर स्वाद अनुसार नमक या चीनी डालकर खा सकते हैं। ब्लडप्रेशर या डायबेटीज के मरीज यथानुसार नमक और चीनी का परहेज करें।
2. अन्य सभी मौसमों में आंवले का सूखा पाउडर गर्म दूध में पिया जा सकता है, आंवले का मुरब्बा व जैम भी फायदेमंद है परन्तु उसमें इसके लाभकारी गुणों में कुछ कमी आ सकती है।
3. आंवले का रस सीधा ही बालों में लगाकर जड़ों में मालिश कर सकते हैं। अन्यथा सूखे आंवले को तिल / नारियल के तेल में धीमी आंच पर पका कर तेल का प्रयोग सिर में करने से जड़ें मजबूत होती हैं व बालों में कालापन भी आ सकता है।
4. ताजे फलों को मिक्सी में पीसकर रस निकाल कर फ्रिज में रख सकते हैं व दो–तीन दिन में ही प्रयोग कर लें। एक कप पानी में 4 चम्मच रस मिलाकर पीने से पेट तो साफ रहेगा ही साथ ही अन्य सभी बीमारियों में एक रक्षा कवच बनेगा।

बेजोड़ बेल

बेल जिसका वानस्पतिक नाम *एगल मारमेलोस* है मध्य व दक्षिण भारत में सर्वाधिक पाया जाता है। क्रिकेट या हाकी की गेंद जैसा सख्त व लगभग इसी आकार का दिखने वाला बेल अन्दर से अभूतपूर्व गुणों से भरपूर है। बेल के गूदे में लगभग 60% पानी, 2% प्रोटीन, 1.8% खनिज, 30% कार्बोहाइड्रेट, 3% फाइबर व नाम मात्र को ही वसा पाई जाती है। इमसें कैलशियम, फास्फोरस, आयरन, कैरोटीन, थायमीन, राइबोफ्लैबीन, नियासिन और विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। बेल के फल का प्रयोग सीधे तौर पर किया जाता है जो पेट के लिए अमृत समान है। इसके अतिरिक्त इसकी पत्तियां, छाल और जड़ें भी औषधीय गुणों से भरपूर हैं और इनका प्रयोग आयुर्वेदिक दवाइयों में किया जाता है। फल के गूदे में मारमोरेसिन नामक रसायन पाया जाता है जो इम्पेराटोरिन नामक रसायन से मिलता जुलता है। इम्पेराटोरिन में कैंसर निरोधक गुण पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त बेल में लाभकारी अल्कलायड व स्टीरायड भी पाए जाते हैं। बेल का सबसे ज्यादा प्रयोग लैक्सेटिव अर्थात् पेट साफ रखने के लिए किया जाता है। पके हुए फल का पानी में घोल (शर्बत) बनाकर एक–दो महीने सेवन करने से आंतों को मजबूती प्रदान होती है व पेट की सफाई के साथ–साथ कुछ कीड़ों का भी सफाया होता है। बेल के अत्यधिक प्रयोग से भी बचना चाहिए अर्थात् पेट में भारीपन या गैस बनने की शिकायत हो सकती है।

पेट के अतिरिक्त कान के दर्द व श्वास की समस्याओं में भी बेल की पत्तियों से लाभ होता है। एक चम्मच पत्तियों के सूखे पाउडर को एक कप पानी में उबालकर दो बार लेने से पेट के अल्सर में फायदा देखा गया है। इसी प्रकार बेल की जड़ को नीम के तेल में सोखकर तेल की चन्द बूंदें कान में डालने से कान दर्द व संक्रमण में लाभ होता है। बेल की पत्तियों का, गर्म तेल में सत्व के साथ काला जीरा व शीशम तेल मिलाकर सिर में मालिश करने से खांसी, जुकाम व सीने में जकड़न में लाभ होने के संकेत मिले हैं। इस प्रकार की समस्याओं में अपने आयुर्वेद चिकित्सक से सम्पर्क करके बेल से बने उत्पादों की सम्पूर्ण जानकारी लेने के बाद ही उनका प्रयोग करें। नेशनल युनिवर्सिटी जोधपुर, राजस्थान में हाल में प्रकाशित एक शोध पत्र में बताया गया है कि बेल में पाए जाने वाले पदार्थ मारमेलोसिन के कुछ यौगिक प्रायोगिक चूहों में ब्लड शुगर को भली–भांति नीचे ले आते हैं और भविष्य में डायबेटीज कन्ट्रोल के लिए एक अच्छा माध्यम बन सकते हैं। अंततः साल में एक दो महीनें बेल के गूदे का संयमपूर्ण सेवन पूरे वर्ष पेट व पेट के रोगियों को स्वस्थ रख सकता है।

गुणी गाजर

कौन नहीं जानता गाजर को या शायद ही कोई हो जिसनें गाजर न खाई हो। पर आइए जरा देखें कि ऐसा क्या है गाजर में जो आपको स्वास्थ्यप्रद व खासकर त्वचा को चमकदार बनाकर कान्तिमय बनाता है। गाजर भी आलू, मूली और शकरकन्द की भाँति जमीन के नीचे पाई जाती है व इसको अंग्रेजी में कैरट और विज्ञान की भाषा में *डाकस कैरोटा* कहते हैं। विश्व के लगभग सभी देशों में पाई जाने वाली गाजर उत्तर भारत में जाड़ों के मौसम अर्थात् दिसम्बर से मार्च तक भरपूर मात्रा में उगाई व खाई जाती है। आंखों की रोशनी से बढ़कर कुछ भी नहीं। गाज़र में पाया जाने वाला बीटा–कैरोटीन नामक पदार्थ शरीर में रेटीनाल नामक रसायन में बदल जाता है जो आंखों की रोशनी के लिए आवश्यक है। 100ग्राम गाज़र से शरीर को विटामिन–ए की जितनी आवश्यकता होती है वह पूरी हो जाती है। बीटा–कैरोटीन एक बहुत ही सशक्त एन्टी–आक्सीडेंट है व शरीर को अनेकों बीमारियों से बचाता है। गाज़र में मौजूद क्षारीय तत्व खून को साफ रखते हैं व रक्त में पी0एच0(अम्ल–क्षार) का संतुलन बनाते हैं। इसमें मौलिक पोटेशियम शरीर से फालतू सोडियम को बाहर निकालता है जिससे ब्लड प्रेशर में फायदा होता है। इसमें मौजूद फाइबर शरीर के "बैड" कोलेस्ट्राल (एल0डी0एल0) को अपने साथ बांधकर शरीर से बाहर निकालता है। गाज़र का नियमित सेवन आंतों में अल्सर बनने की प्रक्रिया को रोकता है व पाचन क्रिया सुदृढ़ रहती है। बीटा–कैरोटिन शुगर नियंत्रण में भी कारगर है। महिलाओं के लिए गाज़र, कुछ विशेष तौर पर लाभकारी है। मसलन गाज़र का नियमित सेवन शिशुओं को स्तनपान करने वाली महिलाओं में दुग्ध की समुचित मात्रा देती है व मासिक धर्म को भी नियंत्रित करती है।

100 ग्राम गाज़र में निम्नलिखित महत्वपूर्ण तत्व, विटामिन व खनिज पाए जाते हैं–कार्बोहाइड्रेट 9 ग्राम, शर्करा 5 ग्राम, फाइबर 3 ग्राम, विटामिन–ए 8. 35 माइक्रोग्राम, बीटाकैरोटीन 8.25, माइक्रोग्राम, विटामिन बी 1–0.04 मिलीग्राम, विटामिन बी 2 (बी2) 0.05 मिलीग्राम, विटामिन बी 3.–0.9 मिलीग्राम, विटामिन बी 6–0.1 मिलीग्राम, फॉलिक एसिक–19 माइक्रोग्राम, विटामिन सी 1.9 मिलीग्राम, कैल्शियम–33 मिलीग्राम, आइरन 0.3 मिलीग्राम, मैगनीशियम 12 मिलीग्राम, फास्फोरस 35 मिलीग्राम, पोटैशियम 320 मिलीग्राम, सोडियम 69 मिलीग्राम।

करेले का कटु सत्य

प्रकृति द्वारा सीधे उपयोग के लिए जो भी फल या सब्जियां उपलब्ध कराई है उनमें सबसे कड़वी जुबान और व्यक्तित्व को मुहावरे में बयान भी किया जाता है "एक तो नीम और उस पर चढ़ा करेला।" करेला भारतीय मूल की बेल है जिसकी खेती चाइना आदि देशों में भी की जाती है। करेले का वानस्पतिक नाम *मोमोरडिका चरैंशिया* है और उत्तर भारत में यह गर्मियां प्रारम्भ होते ही उपलब्ध हो जाता है। यह लम्बाई में एक फुट तक लम्बा हो सकता है। एक 100ग्राम करेले के फल में लगभग 90ग्राम पानी व बाकी 10ग्राम में लगभग 5 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 2 ग्राम प्राकृतिक शर्करा, व शरीर के लिए आवश्यक सभी विटामिन व खनिज पाए जाते हैं। विटामिन–ए, बी1, बी2, बी3,बी5,बी6सी,ई के अतिरिक्त प्रचुर मात्रा में कैल्शियम, मैग्नीशियम, आइरन, मैंगनीज, फास्फोरस पोटैशियम, जिंक जैसे खनिज पाए जाते है।

हल्दी, धनिया, हरी मिर्च और जीरे के साथ करेले का सेवन सोने में सुहागे का काम करता है। करेले में कैंसर निरोधी, मलेरिया या वाइरल बुखार व हृदय रोगों से बचाने की क्षमता के अतिरिक्त इसका विशेष योगदान डायबेटीज की रोकथाम के लिए माना जाता है। करेले में मोमोराडिसीन, क्यूकराबिटीसीन, चरैंटीन, नामक रसायनिक यौगिक पाए जाते हैं जो अनुंसधान के द्वारा शर्करा के नियंत्रण में कारगर बताए गए हैं। बताया गया है कि इसके द्वारा इंसुलिन की कार्यक्षमता को बढ़ावा मिलता है। करेले में लेक्टिन नामक पदार्थ भी पाया जाता है जो शर्करा से जुड़कर रक्त में शर्करा की मात्रा को नीचे ले जाता है। संभवतः करेले का उपयोग साधारण (गैरन्डायबेटक) व्यक्तियों में शर्करा को नियंत्रित रखने में सक्षम हो परन्तु डायबेटीज के रोगियों को मात्र करेला खाने से लाभ होने के वैज्ञानिक प्रभाव उपलब्ध नहीं है। अतः डायबेटीज के रोगियों को मात्र करेले पर भरोसा करना उचित नहीं है। मरीजों के डायबेटीज के स्तर को ठीक से समझकर 200 ग्राम करेले को पतला काट कर 3 ग्लास पानी में उबाल कर उसे 1 गिलास भर कर लें व नियमित सेवन करें व साथ ही शर्करा की मात्रा टेस्ट कराते रहें। इससे सुनिश्चित हो जाएगा कि करेले का रस मरीज को फायदा कर रहा है या नहीं। डायबेटीज की दवा के साथ करेले का सेवन करने पर ध्यान रखना आवश्यक है अन्यथा शुगर की मात्रा बहुत नीचे आने की संभावना हो सकती है। छोटे बच्चों को व गर्भवती महिलाओं को भी करेले के सेवन से परहेज करना चाहिए। प्रतिदिन 100–200 ग्राम करेले से अधिक मात्रा में भी करेले का उपयोग शुगर मात्रा में उतार–चढाव ला सकता है अतः शर्करा रोगी करेले का सेवन डाक्टर की देखरेख में ही करें।

हारमोन कमियों को दूर करती है–मेथी

स्वादिष्ट साग बनाने वाली मेथी की पत्तियों का प्रयोग सदियों से भारतीय रसोईघरों में होता आ रहा है परन्तु मेथी के बीज में जो अद्भुत औषधीय गुण हैं उससे कम ही लोग परिचित हैं। फेनूग्रीक और वानस्पतिक नाम *टाईगोनेला* के नाम से जाने वाली मेथी में डायोसजेनिन, मामोजेनिन, टिगेजिफिन इत्यादि कुछ ऐसे रसायन है जो शरीर में जाकर इस्ट्रोजेन नामक महत्वपूर्ण हारमोन की पूर्ति करने में सहायक होते हैं। इस्ट्रोजेन हारमोन महिलाओं में प्रजनन तंत्र, गर्भाशय व संतानोत्पत्ति के उपरान्त शिशुओं को स्तन पान से पहुंचने वाले महत्वपूर्ण तत्वों के रख रखाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। महिलाओं में 45 से 50 वर्ष की आयु पहुंचने तक इस्ट्रोजेन हारमोन की कमी आने लगती है व रजोनिवृति की स्थित आ जाती है। इसलिए मेथी के नियमित रूप के सेवन से महिलाओं में अधिक आयु तक इस प्रमुख हारमोन की पूर्ति होती रहती है। इस्ट्रोजेन हारमोन पुरूषों में भी महिलाओं की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में पाया जाता है और प्रमुखतः शुक्राणुओं के बनने में सहायक है। प्रजनन तंत्रों को पुष्ट रखने के अतिरिक्त मेथी का नियमित सेवन ब्लड शुगर व कोलेस्ट्राल को 25 से 30% कम करता है। एक चम्मच मेथी के बीजों को एक कप पानी में उबालकर खाने से आधा घंटा पहले ले लेने से एसिडिटी की समस्या से उसी प्रकार छुटकारा मिल सकता है जैसे किसी भी एलोपैथिक एंट एसिड दवा से। बीजों को पानी में उबालकर त्वचा पर प्रयोग करने से कुछ त्वचा रोगों में भी फायदा होने के प्रमाण मिले हैं। डायबेटीज, कोलेस्ट्राल व अन्य बीमारियों में सार्थक रूप से प्रभावी होने के कारण इसका प्रयोग यदि अन्य ऐलोपैथिक दवाओं के साथ करना हो तो अपने चिकित्सक से परामर्श करने के बाद ही इसका सेवन प्रारम्भ करें अन्यथा हानि

होने की सम्भावना हो सकती है। इसी वर्ष लंदन के इंस्टीटयूट ऑफ हेल्थ रिसर्च एंड पालिसी में अनुसंधान द्वारा मेथी के बीजों में एक विशेष एमीनो एसिड, 4–हाइड्रोक्सील्यूसीन का पता लगाया गया जो प्राकृतिक रूप से शुगर लेवल बढ़ने पर जरूरी इंसुलिन को श्रावित करने में कारगर है। संभवतः डायबेटीज में फायदा करने वाले मेथी में पाए जाने वाले तत्व का पता कर लिया गया है। अभी यह अनुंसधान प्रायोगिक चूहों पर किए गए हैं।

।करकन्द – चीनी कम फायदे ज्यादा

शकरकन्द अर्थात् मीठी जड़। दक्षिण अमरीका में पाई जाने वाली शकरकन्द अब दुनियां के अनेकों देशों में उगाई व प्रयोग में लाई जाती है। शकरकन्द का वानस्पतिक नाम *आइपोमिया बटाटा* है व यह भी आलू, गाजर या मूली की तरह जमीन के नींचे उगाई जाती है। बहुत कम लोग जानते हैं कि यह मीठी कन्द त्वचा की चमक व यौवन बनाए रखने के लिए आवश्यक बीटा–कैरोटीन व विटामिन–ए से प्राकृतिक रूप से भरपूर है। इसके साथ ही विटामिन–सी की भरपूर मात्रा होने से 'कोलेजन' नामक प्रोटीन को संरचना में सहायता मिलती जो त्वचा से झुर्रियां हटाने व यौवनावस्था वाली चमक लाने में कारगर है। बीटा कैरोटीन, विटामिन–ए व सी एन्टी आक्सीडेंट की तरह काम करते हुए नुक्सानदेह फ्री रैडिकल्स को शरीर से हटाते हैं। विदित हो कि फ्री रैडिकल्स शरीर में कई तरह की बीमारियों के जन्मदाता हैं। शकरकन्द हड्डियों की बीमारियाँ जैसे– रयूमेटायड आर्थ्राइटिस व आस्टियो आर्थ्राइटिस में भी लामकारी है। इसमें लाभदायक खनिज जैसे मेगनीज, कापर, पोटैशियम, आयरन भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। विटामिन–ए की प्रचुर मात्रा होने से मुंह पर पिम्पल्स होने की संभावना घट जाती है व चेहरे पर पुरानी त्वचा हट कर नई त्वचा आने में सहायता मिलती है। शकरकन्द को एक गर्म पदार्थ के रूप में देखा जाता है व सर्दियों में ब्रोंकाइटिस व खांसी आदि में इसको चूसने से लाभ होता है। स्टार्च व फाइबर से भरपूर होने के कारण यह पेट के लिए आवश्यक चिकनाई प्रदान करता है। सर्दियों में पानी का संतुलन बनाए रखने की क्षमता के कारण धमनियों व शिराओं में लचीलापन बनाने में सक्षम है। शकरकन्द डायबेटीज के रोगियों के लिए भी लाभप्रद है। इन्सुलिन की कार्य क्षमता को सुचारू रूप से चलाने में इसका महत्वपूर्ण योगदान अनुसंधान द्वारा पता चलता है।

संदर्भ

1. भट्टाचार्य, ए0; चैटर्जी, ए0; घोषाल, एस0 एवं भट्टाचार्य, एस0 के0(1999) एण्टीऑक्सिडेन्ट एक्टिविटि ऑफ एक्टिव टेनॉयड प्रिंसिपल्स ऑफ *एम्बलिका ऑफिसिनलिस* (आंवला) इंडियन जर्नल ऑफ एक्सपेरिमेंटल बायोलॉजी, खण्ड 37, अंक 7, मु0 पृ0 676–680।
2. जेकब, ए0; पाण्डेय, एम0; कपूर, एस0 एवं सरोजा, आर0(1988) इफेक्ट ऑफ द इंडियन गूजबेरी (आंवला) ऑन सीरम कोलेस्ट्रॉल लेवेल्स इन मैन एजेड 35–55 इयर्स, यूरोपियन जर्नल क्लिन0 न्यूट्र0, खण्ड 42, अंक 11, मु0 पृ0 939–944।
3. बृजेश, एस0; दासवानी, पी0; तेतली, पी0; अंतिया, एन0 एवं बिर्डी, टी0(2009) स्टडीज ऑन द एण्टीडायरियल एक्टिविटी ऑफ एजल मर्मेलोज अनराइप फ्रूट: वैलिडेटिंग इट्स ट्रेडिशनल यूजेज, बी0 एस0 सी0 कॉम्पलिमेंट्री एण्ड आल्टरनेटिव मेडिसिन, खण्ड 9, अंक 47, पृ0 47।
4. हास, एल्सन एवं लेविन, बक(2012) स्टेअिंग हेल्दी विद न्यूट्रीशन: द कम्प्लीट गाइड टू डाइट एण्ड न्यूट्रीशनल मेडिसिन।
5. बिर्डी, जे0; सिवकामी, एस0; शहानी, एस0; सूथर, ए0 सी0; बनावलिकर, एम0 एम0 एवं बियानी, एम0 के0(2003) एण्टीहाइपरग्लाइसेमिक इफेक्टस ऑफ थ्री एक्सट्रेक्टस फ्रॉम मोमोर्डिका करेंटिया, जे0 एथनोफार्मकोल, खण्ड 88, अंक 1, मु0 पृ0 107–111।
6. गुप्ता, ए0; गुप्ता, आर0 एवं लाल, बी0(2001) इफेक्ट ऑफ *ट्रिगोनेला फोएनम–ग्रे ाम* (फेनुग्रीक) सीड्स ऑन ग्लाइसेमिक कंट्रोल एण्ड इंसुलिन रेजिस्टेंस इन टाइपर डायबिटीज मेलिटस : ए डबल ब्लाइंड प्लसेबो कंट्रोल्ड स्टडी, जे0 एसोश0 फिजिशियंस इण्डिया, खण्ड 49, मु0 पृ0 1057–1061।
7. जेनिफर, ए0 वोल्फ(1992) स्वीट पोटैटो : एन अनटैप्ड फूड रिसोर्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 307।

विज्ञान संचार में स्वास्थ्य सेवा प्रदाता की भूमिका

सचिन नरवडीया
वैज्ञानिक "बी", विज्ञान प्रसार,
सी–24 कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नयी दिल्ली–110016
sachin@vigyanprasar.gov.in

विज्ञान संचार का मतलब है, वह जन संचार जिसमें विज्ञान संबंधित विषयों को आसान और आम भाषा में उन लोगों तक पहुंचाना जो विषय–विशेषज्ञ न हों। वर्तमान समय में ये क्षेत्र एक व्यावसायिक क्षेत्र के रूप में उभर रहा है, जिसमें विज्ञान प्रदर्शनी, पत्रकारिता, दृश्य–श्रव्य कार्यक्रमों का निर्माण, नाटकों का मंचन आदि शामिल है। विज्ञान संचार का उद्देश्य किसी वैज्ञानिक खोज के लिए आधार बनाना, या लोगों में किसी विषय को लेकर दुविधा हो तो उसे दूर करना साथ–साथ योजना बनाने वालों को प्रेरित करना कि वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोच समझ तथा उसे ध्यान में रखकर सही योजनाओं को बनायें एवं कार्यान्वित करें। आज भारतीय समाज में गैर–वैज्ञानिक बातों को जल्दी बढ़ावा मिल जाता है, इसका प्रमुख कारण हम गैर–वैज्ञानिक सोच में, या बातों में ज्यादा रूचि रखते हैं, जिसे बढ़ाने में हमारे टेलीविजन, समाचार–पत्र बड़ी भूमिका निभाते हैं। इसलिए आज के समय की ये जरूरत है, कि हम हर बात को तर्कपूर्ण ढंग से समझे, जानें और परखें, फिर विश्वास करें। मूर्ति का दूध पीना या फिर फलों और सब्जियों में कोई विशेष अक्षर दिखाई देना जल्दी से जल्दी लोगों तक पहुंच जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ विज्ञान की बातें लोगों तक पहुंचने में सयम लग जाता है। लोगों को सामान्य सी बात जैसे कि खाद्य पदार्थ की एक्सपायरी दिनांक की जांच करना नहीं पता रहता है, जिससे वे अपने स्वास्थ्य को खतरे में डालते हैं। इसी प्रकार स्वास्थ्य एक ऐसा पहलू है जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता है फिर चाहे वह सामान्य सा लगने वाला सर्दी जुकाम हो या फिर कोई अन्य बीमारी, जिसके निदान और उपचार हेतु व्यक्ति को स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के संपर्क में आना होता है।

स्वास्थ्य सेवाओं में समस्याओं और बीमारियों को लेकर समाज में बहुत सारी गलत बातें और मान्यताएं व्याप्त हैं। इन सबके निवारण के लिए स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं पर दोहरी जिम्मेदारी बनती है, कि वे अपने व्यवसायिक कार्यों के निर्वहन के साथ–साथ विज्ञान के संचार में भी मदद करें और जन–जन में व्याप्त गलत धारणाओं को दूर करने में सहायक की भूमिका निभाएं। हमारे समाज में आज वैज्ञानिक साक्षरता की जरूरत है। जिसका मतलब ये नहीं कि विज्ञान की किताबों को पढ़ कर व रट कर वैज्ञानिक बनें बल्कि तथ्यों को वैज्ञानिक तरीके से समझें और फिर उनकर अमल करें। विज्ञान, विश्लेषण पर आधारित है, अतः हर बात का हम वैज्ञानिक विश्लेषण कर सकते हैं और समझ सकते हैं।

स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं में डॉक्टर, प्रयोगशाला तंत्रज्ञ, औषधी प्रदाता, नर्स आदि का समावेश है। हर किसी के लिए नियमावली है, जिसके अनुरूप वे अपने व्यवसायिक कार्यों का निर्वहन करते हैं। इन सबमें सबसे अग्रणी भूमिका डाक्टर की होती है, जिससे ये उम्मीद की जाती है कि वो रोगी या उसके रिश्तेदारों को सही जानकारी प्रदान करें तथा उनके प्रश्नों का समाधान करें। डाक्टरों को पारदर्शिता रखनी चाहिए, जिससे समाज में व्याप्त गैर–वैज्ञानिक धारणाओं को विराम मिल पायें। प्रयोगशाला तंत्रज्ञ वो है, जो प्रयोगशाला में प्रयोग विधि द्वारा ये बता सकता है कि बीमारियों का कारण क्या होगा तथा डॉक्टर को वह सही निदान में मदद करता है। उसकी थोड़ी सी भी गलती उपचार की दशा और दिशा को गलत और मोड़ सकती है। अतः उसका कार्य काफी महत्वपूर्ण है। प्रयोगशाला में अपने कार्य को सही ढंग से करने के साथ–साथ उसे जन संचार के माध्यम से समय–समय पर प्रयोग द्वारा किस प्रकार समस्या के बारे में पता चलेगा, उसमें कितना समय अपेक्षित है आदि, रोगी के रिश्तेदारों को पारदर्शिता के साथ बताना चाहिए।

इंसानों में बीमारियों को हम इस प्रकार से परिभाषित करते हैं कि सामान्य स्वास्थ्य से अलग की स्थिति होना। पिछले कुछ दशकों में बीमारियों के निदान के तरीकों में बहुत प्रगति पाई गयी है, जबकि उपचार के तरीकों में उतनी आधुनिकता का अभाव है।

ऐसे तत्व जो स्वास्थ्य सेवाओं में विज्ञान संचार करने में बाधा पहुंचाते हैं–

1. रूखा व्यवहार, मिलनसारिता का अभाव, भुलाने की आदत होना, थकावट रहना, कार्य करने के बीच में रूकावट आना, कार्य का समय बदलते रहना।
2. लिंग आधारित, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक असमानता।
3. अधिकारियों का अन्य क्रमिकों से सम्पर्क न करना।
4. एक ही कर्मचारी को कई कार्यों में व्यस्त कर देना।
5. संस्था का उद्देश्य स्पष्ट न रहना।

स्वास्थ्य सेवाओं में विज्ञान संचार को बढ़ाने के उद्देश्य से किये जाने वाले कार्य–

स्वास्थ्य सेवाओं में विज्ञान संचार को बढ़ाने के उद्देश्य से तीन स्तरों पर साथ–साथ प्रयत्न किया जा सकता है, ताकि आशानुरूप स्वास्थ्य सेवाओं में विज्ञान संचार को बढ़ावा दिया जा सके।

1. व्यक्तिगत 2. सामूहिक 3. संस्थागत

1. व्यक्तिगत कारक

स्वास्थ्य सेवा सम्बन्धी प्रदाता के रूप में जरूरी है कि व्यक्तिगत तौर पर संचार कुशल हो जो कि लोगों को इस सेवा के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक बता सके, थकान और तनाव का स्तर उसमें नहीं होना चाहिए, उसे व्यवहार कुशल होना चाहिए, व्यक्तियों में दृढ़ता, सुनने में सक्रियता आदि स्वास्थ्य सेवा संचार में सुधार लाने के साथ एक साधन के रूप में विकसित कर सकते हैं।

2. सामूहिक कारक

कई कारक अक्सर रोगी की देखभाल के प्रबंधन और वितरण में शामिल होते हैं। स्वास्थ्य सेवा प्रदाता स्वाभाविक तौर पर अच्छे संचारक होते हैं, लेकिन उन्हें इस क्षेत्र में औपचारिक प्रशिक्षण और मूल्यांकन की जरूरत होती है। स्पष्ट आख्या है कि सामूहिक कार्यों को प्रभावशाली बनाया जाए, रोगी को जल्द से जल्द सेवाएं दी जाएं, कर्मचारियों का मनोबल समय–समय पर बेहतर किया जाए, नौकरी में संतुष्टि रहे, दक्षता में वृद्धि होती रहे और कर्मचारियों के बीच तनाव के स्तर को कम किया जाए तब स्वास्थ्य सेवाओं में विज्ञान संचार सही रूप में किया जा सकेगा।

3. संस्थागत

इंगित किया गया है कि संस्था की संस्कृति स्वास्थ्य सेवाओं में विज्ञान संचार को बढ़ावा देती है और संस्था के अन्दर एक प्रभावशाली संचार का आधार होती है। संचार के माध्यम हमेशा संस्था में खुले होने चाहिए। पारदर्शिता और आपसी विश्वास होना चाहिए। निर्णय लेने के क्षमता के साथ मजबूत नेतृत्व होना चाहिए। इन सब बातों पर ध्याने देते हुए हम समाज में स्वास्थ्य सेवाओं को और विकसित कर सकते हैं, और निरन्तर सुधार हेतु प्रयासरत हो सकते हैं।

संदर्भ

1. स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं में प्रभावशाली संचार को प्रोत्साहित करना तथा रोगी की सुरक्षा और गुणवत्ता, देखभाल, विक्टोरियन क्वालिटी कांउसिल, जुलाई 2010।
2. http://www.health.vic.gov.au/qualitycouncil

एक्वेरियम ब्रायोफाइट्स

उदय शंकर अवस्थी
वनस्पति विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत

ऐक्वेरियम में लगाये जाने वाले हरे पौधे आक्सीजन देने के अलावा मछलियों के छुपने तथा अण्डे देने का स्थान प्रदान करते हैं। एक्वेटिक मॉसेज यह कार्य बखूबी करते हैं और एक्वेरियम की सुन्दरता को भी बढ़ाते हैं(बेन्ल, 1958)। इसे और खूबसूरत बनाने के लिये पानी में कई दिन की भीगी लकड़ी बिना छाल की अच्छे से धूप दिखाने के बाद एक्वेरियम में डालते हैं और उस पर मॉस को धागे या नेट के सहारे बांध देते हैं। एक्वेरियम की दुकानो पर यह ड्रिफ्ट वुड के नाम से मिलती है। एक्वेरियम ब्रायोफाइट्स को पत्थर पर या एक्वेरियम के खिलौनो पर भी उगाया जा सकता हैं। मॉस की समय–समय पर छंटाई आवश्यक होती है। अन्य एक्वेटिक मॉस की तुलना मे वास्तविक जावा मॉस *टैक्सीफिलम बारबियरी* अधिक अच्छे से और आसानी से उगता है। परन्तु अक्सर इस मॉस की गलत पहचान *वेसीकुलेरिया डूबियाना* नाम से की जाती है (तान तथा अन्य, 2004)। जावा मॉस को किसी विशेष देख भाल की जरूरत नही होती । मृदुजल के अलावा हल्के खारे पानी में और हर प्रकार की रौशनी में भी ये आसानी से बढते रहते हैं। 21–24 डि0 से0 अनुकूल तापमान है जिस पर यह अच्छे से बढते हैं वैसे यह 32 डि0 से0 तक तापमान सह लेते हैं ।इनके लिये 5.5–8 पीएच(pH) की अनुकूल रेन्ज है। जावा मॉस से मॉस की दीवाल भी बनाई जा सकती है इसके लिये जाल पर इसे बराबर से फैलाते हैं जिससे फिर वह आसानी से चिपक कर बढता है। इस जाल को "सक्शन कप्स" की मदद से एक्वेरियम की दीवाल पर लगा देते हैं। जावा मॉस "इनफ्यूसोरिया" की ग्रोथ मे सहायक होता है जो नये जन्मे मछली के बच्चों का पहला प्रिय भोजन है । इसकी पत्तियां मछली के छोटे बच्चों के लिये भोजन का कार्य करती हैं।

इन पौधों में गंदगी एकत्रित होती रहती है अतः इन्हें एक्वेरियम से निकाल कर साफ कर लेना चाहिए। आवश्यकता होती है इन्हें काई से बचाने की क्योंकि काई को अलग करना नामुमकिन होता है और पौधे को फेंकने के अलावा फिर कोई और रास्ता नहीं बचता।

वेसीकुलेरिया मॉनटेगनी या क्रिसमस मॉस "क्रीपिंग नेचर" की वजह से पत्थर पर अच्छे से बढते हुये एक्वेरियम की शोभा बढ़ाते हैं। आवश्यकता होती है इनकी लगातार छंटाई की और अधिक रोशनी की।

फिसीडेन्स फॉनटेनिस मन्द गति से बढने वाला मॉस है इस वजह से जल्दी काट छांट की आवश्यकता नहीं होती।



एक्वेरियम कल्चर के लिये उपयोगी मॉसेज (कुक तथा अन्य 1974 बेन्ल 1958; टकाकी तथा अन्य 1982; तान तथा अन्य 2004)

ग्लासएडेल्फस जालिगेराइ

टैक्सीफाइलम आल्टरनेन्स

टैक्सीफाइलम बारबियेराइ

प्लेटीहिप्नीडियम राइपैरिऑइडिस

फिसीडेन्स फानटैनस

फॉन्टीनेलिस एन्टीपायरेटिका

ब्रायम स्यूडोट्राइक्वेट्रम

मेनोसिलेनियम टेनेरम

रिक्सिया फ्ल्यूटेन्स

रिक्सियोकार्पस नैटेन्स

लेप्टोडिक्टियम राइपेरियम

वेसीकुलेरिया डूबियाना

वेसीकुलेरिया रेटीकुलेटा

वेसीकुलेरिया मॉनटेगनी

संदर्भ

कुक, सी.डी.के., गट, बी.जे.,रिक्सा, इ.एम.,श्नेलर,जे. और सीट्ज,एम. 1974. वाटर प्लांटस ऑफ द वर्ड. ए मैनुअल फॉर द आइडेन्टीफिकेशन ऑफ द जेनरा ऑफ फ्रेश वाटर मैक्रोफाइट्स. द हैग, पृ. 561 ।

बेन्ल,जी. 1958. जावा मॉस फार डेकोरेशन एण्ड एस ए स्पानिंग मीडियम – ए यूसफुल एक्वेटिक प्लांट विच हैस यट टु बी सीन इन ब्रीटेन.फिश कीपिंग, नवम्ब. : 655.

टकाकी, एन.,वाटानबे, आर.,और इवात्सुकी, जेड. 1982. ब्रायोफाइट्स इन एक्वेरियमस फॉर ट्रापिकल फिश. प्राक. ब्रॉयाल. सो. जैप. 3:65–68.

तान, बी.सी., लीआंग, एल.के., और वीइ,जी.सी. 2004. ए केस ऑफ मिसटेकेन आइडेन्टिटी ? व्हाट इस द ट्रू आइडेन्टिटी ऑफ जावा मॉस एण्ड अदर एक्वेरियम मॉसेज सोल्ड इन सिंगापुर शॉप्स ? सिंगापुर साइंटिस्ट 102 : 8–11।

सुनहरी चमत्कारी संख्या

एन0 के0 शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग
लखनऊ क्रिश्चियन डिग्री कॉलेज
गोलागंज, लखनऊ(उ0 प्र0), भारत
drnk.sharma9@gmail.com

मानव जीवन संख्याओं से जुड़ा है जन्म लेते ही जन्मतिथि, जन्म का समय, भार, तापमान न जाने कितनी और बातें जितनी मानव से जुड़ जाती हैं उतनी संख्याओं से भी। लगता है संख्याएं और मानव एक दूसरे के लिए बने हैं। मानव के लिए संख्याएं शुभ भी है और अशुभ भी। क्या कोई अशुभ संख्याओं से जुड़ना चाहता है, कदापि नहीं। परीक्षार्थी भी परीक्षा के अनुक्रमांक के अंकों को जोड़कर देखते हैं कि संख्या दो से विभाजित होती है अथवा नहीं। यदि हां तो निश्चित सफलता वरना असफलता। आजकल मानव के लिए अपने दूरभाष, वाहन इत्यादि के लिए भी विशेष शुभकारी नम्बरों के लिए अधिक धन व्यय करना आम बात है। विशिष्ट नम्बरों के लिए अतिरिक्त धन के साथ–साथ प्रतीक्षा भी करनी पड़ती है। आजकल मानव के नाम से कम, उसके वाहन, मोबाइल फोन के नम्बरों से अधिक जाना और पहचाना जाता है।

मानव इन नम्बरों का गुलाम हो चला है। उसे अपने विवाह, व्यवसाय को प्रारम्भ करने के लिए भी शुभ मुहूर्त के लिए विशेषज्ञों की सेवाओं का गुलाम बनना होता है। वह किसी भी दशा में संख्याओं से मुक्त नहीं हो सकता है। क्या आपने अपने चेहरे को गौर से कभी देखा है? ऐसा क्या है मानव आकृति में, जो आपको अपनी ओर देखने को मजबूर कर देती है, आँखें खुली की खुली क्यूं रह जाती हैं। प्रकृति के अनूठे रंग और दृश्य आपको दांतों तले उंगली दबाने को क्यों मजबूर कर देते हैं। ताजमहल में प्यार की निशानी के अतिरिक्त ऐसा क्या है जो आपको बरबस अपनी ओर खींच लेता है। तारे में ऐसी कौन सी विशेषता है जिससे इसे विभिन्न धर्मों में विशेष स्थान मिला है। ट्यूनिश के ज्यूपिटर मंदिर, जेरूशलम मंदिर, रोम के सेंट पीटर कैथेड्रिल, इजिप्ट के पिरामिड्स आज भी अपनी किन विशेषताओं के कारण संसार में प्रसिद्ध हैं। उक्त सभी प्रश्नों के उत्तर में आप इसे ईश्वरीय हस्तक्षेप का नाम देंगे। ईश्वरीय सत्ता को ही इन सब के लिए उत्तरदायी मानेंगे।

ईश्वर ने ही मानव को संख्याओं से जोड़ा। कहा गया है कि पूर्णांक ईश्वर द्वारा निर्मित है शेष संख्याएं मानव द्वारा निर्मित हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या कोई ऐसी संख्या है जिसे ईश्वरीय संख्या, चमत्कारी संख्या या सुनहरी संख्या कहा जा सके? ऐसी अद्भुत संख्या जो ईश्वर की उपस्थिति को दर्शाती हो। ऐसी ही एक अद्भुत संख्या है। इस संख्या को फाई से प्रदर्शित किया जाता है।

$$\text{फाई} = \frac{\sqrt{5}+1}{2} = 1.6180339887\,49894848.....$$

1;फाई को सुनहरा अनुपात या ईश्वरीय अनुपात कहा जाता है। सुनहरा अनुपात एक ऐसा अनुपात है जिसमें एक रेखा इस प्रकार विभाजित की जाती है कि बड़े अनुभाग की लम्बाई और पूरी रेखा की लम्बाई का अनुपात छोटे अनुभाग की लम्बाई और बड़े अनुभाग की लम्बाई के अनुपात के बराबर हो। सुनहरे अनुपात में बने आयत को सुनहरा आयत कहते हैं। सुनहरे अनुपात में बने निर्माण, पेंटिंग्स में विशेष आकर्षण होता है। दुनियाँ की महत्वपूर्ण पेंटिंग्स सुनहरे आयतों में ही बनायी गई हैं।

आइये इस सुनहरी संख्या फाई की कुछ और विशेषताएं जानें।

1. फाई ही ऐसी संख्या है जो अपने व्युत्क्रम अर्थात् 1/फाई से 1 अधिक है। अर्थात् फाई =(1/फाई) + 1
2. फाई में 1 जोड़ने से फाई का वर्ग प्राप्त होता है।
3. फाई में 1 घटाने से फाई का व्युत्क्रम प्राप्त होता है।
4. 1, फाई, फाई^2, फाई^3, फाई^4, ... को सुनहरी श्रेणी कहते हैं। यह एक फैबोनाची श्रेणी है जिसमें प्रत्येक पद अपने दो पूर्ववर्ती पदों के योग के बराबर है।
5. 1,1,2,3,5,8,13,21,34,55..... एक फैबोनाची श्रेणी है। जैसे–जैसे पदों की संख्या बढ़ती जाती है आप देखेंगे कि क्रम से अगले और पिछले पद का अनुपात फाई की ओर अग्रसर होता जाता है।

कहा जाता है कि लेनार्डो द विन्सी ने सर्वप्रथम मानव आकृति में विभिन्न स्थानों पर इस सुनहरे अनुपात, सुनहरे आयत की उपस्थिति का अध्ययन किया था। आप अपने दांतों को देखें तो आप पायेंगे कि सामने के ऊपर के दो दांत एक सुनहरे आयत में ही व्यवस्थित होते हैं। आपके शरीर में नाभि से पैर तक और सिर से पैर तक की लम्बाई में सुनहरा अनुपात होता है। आँखों के ऊपर स्थित भौंवों की बीच की दूरी दोनों आँखों के मध्य की दूरी में सुनहरा अनुपात होता है। आपके पैर के घुटने से जमीन की दूरी और कूल्हे से जमीन तक की दूरी में भी सुनहरा अनुपात है। यह तो एक उदाहरण है, आपके शरीर में ईश्वर ने इस विशेष अनुपात की व्यवस्था की है और आपको सुन्दर एवं स्वस्थ शरीर प्रदत्व किया है।

ईश्वर ने जीव जगत एवं प्रकृति में भी इस विशेष अनुपात का अनूठा प्रयोग किया है। मधुमक्खियों के समूह में नर मधुमक्खियां और रानी मधुमक्खियों की संख्या में सुनहरा अनुपात पाया जाता है। मछलियों, चिड़ियों और कीटों में भी इस अनुपात को पाया जाता है। पेनगुइन की सुन्दरता भी इसी अनुपात की देन है। शेर के चेहरे में लम्बाई और चौड़ाई में भी इस सुनहरे अनुपात का हाथ है। चींटी के शरीर में विभिन्न

अंगों में यही अनुपात विद्यमान है। फूल आपको अच्छे लगते हैं। पौधों के पत्रक, पत्तियों एवं बीजों की संख्या के निर्धारण में फैबोनाची श्रेणी के पदों का उपयोग होता है। कई फूल स्पाइरल के रूप में होते हैं। स्पाइरल के निर्माण, फैबोनाची संख्याओं के बिना संभव नहीं है। फलों में भी आप केले के फल को काटें तो आप उसके तीन अनुभाग पायेंगे। इसी प्रकार सेब के फल को काटने पर पाँच अनुभाग पायेंगे। सूर्यमुखी के पुष्प को तो ईश्वर के हाथ की छाप माना जाता है।

ईश्वर ने अपनी सत्ता के निर्माण में इस गणितीय संख्या फाई का भरपूर उपयोग किया है। कहा जाता है सुन्दरता वस्तु में नहीं देखने वाले की आँख में होती है। मेरा मानना है कि सुन्दरता वस्तु में इसी सुनहरे अनुपात के कारण होती है। इस सुनहरे अनुपात का कारण यह सुनहरी संख्या ही है।

संदर्भ

1. लिवियो, मारियो(2002) द गोल्डेन रेशियो: द स्टोरी ऑफ फाई, द वर्ल्डस् मोस्ट एस्टोनिशिंग नम्बर, न्यूयॉर्क ब्रॉडवे बुक्स।
2. ''गोल्डेन रेशियो''–विकीपेडिया.ऑर्ग।

हल्दी और स्वास्थ्य

ए0 के0 चतुर्वेदी
26, कावेरी एन्क्लेव, फेज-2, निकट स्वर्ण जयन्ती नगर,
रामघाट रोड, अलीगढ़(उ0प्र0)-202001, भारत

प्रकृति में अपार सम्पदाएं विद्यमान हैं। विकास के साथ इन सम्पदाओं के गुणों का आभास हुआ। कुछ सम्पदाओं के गुण इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनका उपयोग करना आवश्यक है। कुछ सम्पदाओं का उपयोग दैनिक जीवन में किया जाता है। इनका उपयोग भोजन में करते हैं। हल्दी ऐसी ही सम्पदा है। हल्दी में औषधीय गुण होते हैं। अतः हल्दी की उपयोगिता बहुत है। हल्दी का सेवन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। हल्दी का वनस्पति नाम *कुरकुमा लोगाएल* है। इसकी बनावट अदरक जैसे होती है। इस कारण अनुवांशिक नाम *जिन्जीबेरासियर* है। हल्दी पीले रंग की गाँठ होती है। ये जड़े हैं जो पृथ्वी के अन्दर पायी जाती हैं। हल्दी का पौधा तीन फीट लम्बा होता है। इसका फूल भी पीले रंग का होता हे। भारत में हल्दी का उपयोग वैदिक काल से होता आ रहा है। प्रत्येक मांगलिक कार्य में हल्दी का उपयोग होता हे। हल्दी के औषधीय गुणों के कारण ही दैनिक जीवन में उपयोग में लायी जाती है। हल्दी के उत्पादन के लिए गर्म एवं आद्रतापूर्ण वातावरण की आवश्यकता होती है। हल्दी का उत्पादन असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, सिक्किम, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु में मुख्य रूप से होता है।

हल्दी के विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि हल्दी में आद्रता 80%, कार्बोहाइड्रेट 12%, प्रोटीन 2%, वसा 0.9%, रेशा 2.5%, लवण 1%, फास्फोरस 0.4%, कैल्शियम 0.1%, लौह 0.1%, कुकरमिन 1%, 100 ग्राम हल्दी, 384 कैलोरी ऊर्जा देती है। कुकरमिन की उपस्थिति के कारण हल्दी में औषधीय गुण पाये जाते हैं। इसीलिए हल्दी का दैनिक जीवन में उपयोग किया जाता है। उपचार से सावधानी अधिक उपयोगी होती है। हल्दी का उपयोग साग–सब्जियों में किया जाता है। हल्दी मुख्य मसाले के रूप में उपयोग में लायी जाती है। हल्दी अति सुरक्षित, सगुन्धित मसाला है। सदियों से हल्दी का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुओं में किया जा रहा है। औषधीय गुणों के कारण हल्दी आयुर्वेद और यूनानी पद्धति में उपयोग में लायी जाती है। हल्दी में एन्टी–बैक्टीरियल, एन्टी फंगल, एन्टी इन्फ्लेमेंटरी गुण पाये जाते हैं। अन्दरूनी चोट, गुम चोट लगने पर हल्दी पाउडर के एक चम्मच को एक कप दूध में मिलाकर पीने से लाभ मिलता हे। सर्दी होने पर गर्म दूध में काली मिर्च, शक्कर के साथ एक छोटा चम्मच हल्दी पाउडर मिलाकर लेने से लाभ पहुंचता है। जुकाम में, नाक में जलन रोकने के लिए जलती हुयी हल्दी के धुंए को सांस के साथ अन्दर लेने से नथुने खुल जाते हैं। कफ द्रवित हो जाता है। श्लेष्मा बाहर आ जाता है। इससे आराम मिलता है। मसूड़े फूलने एवं छाले होने पर हल्दी को नमक के साथ मिलाकर लगाने से लाभ मिलता है।

पेट में कीड़े होने पर दर्द होने से कच्ची हल्दी का रस का सेवन करने से दर्द ठीक हो जाता है। अजीर्ण, मंदाग्नि रोग में हल्दी के सत्व का सेवन सुबह, शाम लेने से लाभ मिलता है। हल्दी उपापचय क्रिया को सुचारू रूप से चलाता है। मधुमेह रोग होने पर रोगी की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। हल्दी चूर्ण को आंवला चूर्ण के साथ मिलाकर खाली पेट लेने से प्रतिरोध क्षमता बढ़ जाती है। हल्दी का सेवन ह्रदय रोगों में भी लाभकारी है। हल्दी में उपस्थित कुकरमिन रक्त को जमने नहीं देता जिससे ह्रदयघात उत्पन्न नहीं हो पाते। करक्यूमिन में एन्टी इन्फ्लेमेंटरी प्रभाव भी पाया जाता है। हल्दी पाउडर मोटापे को दूर करने में सहायक है। सुबह एक गिलास गर्म पानी में छोटा एक चम्मच हल्दी पाउडर लेने से कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम हो जाती है। त्रिचूर के एमाला कैंसर अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने पाया कि कुरक्यूमिन के कारण कोलेस्ट्रोल का स्तर कम हो जाता है।

शराब के लगातार सेवन से यकृत के खराब होने की सम्भावना बढ़ जाती है। हल्दी पाउडर को घी के साथ लेने से यकृत की कोशिकाओं को जीवन मिल जाता है। वे सुचारू रूप से कार्य करने लगती हैं। हल्दी का उपयोग कैंसर रोग में भी लाभप्रद है। हल्दी शक्तिशाली एन्टी ऑक्सीडेन्ट है। हल्दी की उपस्थिति कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को कम करती है। शिकागो स्थित लोयला विश्वविद्यालय के मेडिकल सेन्टर के अनुसंधान कर्त्ताओं के अनुसार हल्दी ल्यूकेमिया(रक्त कैंसर) में भी लाभकारी है। हल्दी प्राकृतिक एन्टीबायोटिक है। हल्दी पाचन क्रिया को सुदृढ़ बनाती है। साथ ही आंतों को भी नियंत्रित रखती हे। कुरक्यूमिन माइक्रो आरगेन्जिम के विरूद्ध कार्य करती है। प्रोफेसर मुल्की नाग भूषण के अनुसार हल्दी सिगरेट के धुंए के दुष्प्रभाव से रक्षा करती है। हल्दी एलजेहमिर नामक रोग को होने नहीं देती है। इस रोग में मस्तिष्क काम करना बन्द कर देता है। सोचने की शक्ति, याददास्त में कमी आ जाती है। केलीफोर्निया विश्वविद्यायल के वैज्ञानिकों के अनुसार हल्दी की उपस्थिति बीटा एमायलायड को समाप्त कर देता है। जिससे एलजेहीमर रोग नहीं हो पाता है। हल्दी का अणुभार कम होता है। इसकी रचना पोलर होती है। इस कारण ब्लड ब्रेन बैरियर को तोड़कर प्रवेश कर जाता है। जिससे मस्तिष्क स्वस्थ रहता है।

हल्दी के एन्टीऑक्सीडेंट गुण के कारण ही शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने से रोग नहीं हो पाते। स्वास्थ्य ठीक रहता हे। मोच आने पर हल्दी–चूना का लेप लगाने से लाभ मिलता है। खांसी में भी हल्दी का सेवन लाभकारी होता हे। हल्दी के बहुयामी गुणों के कारण ही पुराने लोगों ने उचित समझा कि हल्दी पाउडर की मात्रा प्रतिदिन लेकर रोगों से दूर रहें। यदि ऐसा हो भी जाय तो शीघ्र ठीक हो जाय। अतः अच्छे स्वास्थ्य के लिए हल्दी उपयोगी है। त्वचा को साफ करने, चमक, आकर्षण उत्पन्न करने, मुलायम करने के लिए सदियों से उबटन का उपयोग किया जाता है। जो आज भी प्रचलित है। त्वचा को सौन्दर्य प्रदान करने के कारण ही शादी में हल्दी लगाने की रस्म की जाती हे। फोड़े–फुन्सी, खुजली होने पर हल्दी को गाय के मूत्र के साथ लेने से लाभ मिलता है। हल्दी को पटुआ की पत्तियों, प्याज, गर्म सरसों या तिल के तेल में मिलाकर लगाने से लाभ पहुंचता है। दाद, खाज, खुजली होने पर हल्दी के नीम के गूदे के साथ पेस्ट बनाकर लगाने से लाभ मिलता है। हल्दी पाउडर को नींबू के रस एवं नमक में मिलाकर गर्म कर लें। इस मिश्रण को घाव, कटे निशान, मोच एवं जोड़ों के दर्द में लगाने से लाभ पहुंचता है। मच्छरों को भगाने के लिए हल्दी के तेल का उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि हल्दी में बहुत ही उपयोगी अनेकों गुण विद्यमान हैं। इन गुणों का लाभ पाने के लिए दैनिक जीवन में दाल, साग, सब्जी, अचार में हल्दी का उपयोग किया जाता हे। हल्दी प्रतिरोधक क्षमता तो बढ़ाता है। साथ ही एन्टीऑक्सीडेंट, एन्टीबायोटिक, एन्टीएलर्जिक, एन्टीबैक्टीरियल गुण हल्दी में विद्यमान हैं। त्वचा का सौन्दर्य प्रदान करने का अनोखा गुण विद्यमान है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हल्दी घरेलू डाक्टर है जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है। अच्छा स्वास्थ्य जीवन में उमंग, उत्साह, स्फूर्ति देता है। अन्यथा जीवन नीरस हो जाता है।

नोटः– प्रस्तुत लेख, लेखक के अपने व्यक्तिगत विषय ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित है तथा किसी भी अतिरिक्त अध्ययन सामग्री का प्रयोग नहीं किया गया है।

जीरा : भारतीय मसाला, औषधि या दोनों

जितेन्द्र कुमार मिश्र
पूर्व उपाचार्य, वनस्पति विज्ञान विभाग
जे0 एन0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, भारत
पता: 16 / 1287, इंदिरा नगर, लखनऊ–226016, भारत

भारतीयों के बीच जीरा का परिचय देना कोई विशेष बात नहीं होगी क्योंकि यह प्रत्येक भारतीय की रसोई के मसालों का एक अभिन्न अंग है। इसका उपयोग बहुत समय से होता आ रहा है। अंग्रेजी में इसे *क्यूनिन सीड* कहते हैं। वानस्पतिक भाषा में इसे *क्यूनिन साइमीनम* कहते हैं। यह *एपियेसी(अम्बेलीफेरी,* पुराना नाम) कुल का पौधा है। इसकी ऊँचाई 30–50 से0मी0 होती है। तना कमजोर, गोल तथा शाखित होते हैं। फूल सफेद या गुलाबी रंग के 20–30 से0मी0 ऊँचाई के होते है। इनके सभी फूल एक ऊँचाई पर आकर "अम्बेल" बनाते हैं। जीरा एक बीज का फल है जो 4–5 मि0मी0 का लम्बा, पीला–भूरा और लम्बाई में इस पर ऊँची धारियाँ(रिजेस) होती है। इस पौधों को 3–4 माह की गर्मी–युक्त जलवायु, कम पानी व उपजाऊ जमीन की आवश्यकता होती है।

जीरा मुख्यतः पूर्वी मेडीटेरेनियन से लेकर भारत तक की जलवायु में होता है। यही इसका मुख्य घर माना जाता है, परन्तु अब यह चीन, उजबेकिस्तान, ताजीकिस्तान, ईरान, टर्की, मोरक्को, मिश्र, साइरिया, मेक्सिको एवं चिली में उगाया जाता है। इसी कारण से यह इन देशों में भी काफी उपयोग में आता है।

हम सब इसे मसाले के रूप में प्रयोग में लाते हैं और जहाँ यह पैदा किया जाता है उसके अलावा भी तमाम विश्व के देश इसका उपयोग विभिन्न तरीकों से इसके स्वाद ओर खुशबू के कारण खाने में करते हैं। दक्षिणी एशिया, उत्तरी अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के देश इसे खूब और कई तरीकों से प्रयोग में लाते हैं। फ्रांस में तो इसका उपयोग वहाँ की प्रचलित डबलरोटी में किया जाता है। इतना ही नहीं इसका उपयोग "चीज" बनाते समय भी किया जाता है क्योंकि इसमें तमाम ऐसे सुगंधित रसायन पाये जाते हैं जिससे "चीज" में अच्छी महक आ जाती है।

इतना ही नहीं कि केवल इसमें खुशबू है इसलिए ही इसका प्रयोग मसालों में होता है बल्कि इसमें तमाम औषधीय गुण भी हैं। इसमें लोहा, कैल्शियम, फास्फोरस, थायमीन, सोडियम, राइबोफ्लेविन, नियासिन तथा विटामिन "सी" व "ए" पाये जाते हैं। इतने गुण रखने वाले फल–बीज का प्रयोग मसालों में क्यों न हो। इसके एक चाय के चम्मच में 22 कैलोरी ऊर्जा, 1.34 ग्राम वसा, 2.63 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 0. 6 ग्राम रेशा, और 1.07 ग्राम प्रोटीन पाई जाती है। इस तरह इसकी पौष्टिकता भी काफी अच्छी है। भारत में तो प्राचीन काल से इसका उपयोग तमाम रोगों में किया जाता रहा है। यह पाचन–शक्ति बढ़ाने और वायु को शमन करने में बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ है इसीलिए ग्रामीण व शहरी भारतीय भुने–जीरे को पीस कर अपने घर में अवश्य रखते हैं और दही, मट्ठा आदि के सेवन के समय इसको उसमें डाल कर खाते हैं। जीरा के पानी का प्रयोग अनिद्रा में भी लाभप्रद माना गया है। इसको उबाल कर उस पानी को पीने से सर्दी, जुखाम आदि भी ठीक होते हैं। इसका उपयोग यदि प्रसूता करती है तो उसके बच्चे की वृद्धि में भी यह अच्छा काम करता है। इसके चूर्ण को शहद से चाटने पर स्मरण शक्ति अच्छी होती है और आलस्य कम होता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि जीरा केवल तड़के हेतु ही नहीं है बल्कि एक औषधीय बीज है जिससे स्वाद, सुगंध और आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है और इसी कारण ही भारतीय मनीषियों ने ऐसी उपयोगी वनस्पतियों को रसोई घर से लेकर आरोग्य होने तक के लिए प्रयोग करें, जोर देकर समझाया है और उपयोग करने की संस्तुति भी की है।

संदर्भ

1. संबामूर्ती, ऐ0 बी0 एस0 एस0(2005) एस्ट्रोनॉमी ऑफ एंजियोस्पर्मस, आई0 के0 इंटरनेशनल प्राइवेट लि0, मु0 पृ0 908।
2. पाण्डेय, बी0 पी0(2011) ए टेक्स्ट बुक ऑफ बॉटनी: एंजियोस्पर्मस, एस0 चांद ग्रुप ऑफ प0 लि0, नई दिल्ली, मु0 पृ0 990।
3. मेडिसिनल प्लांट्स ऑफ एशिया, विकिपेडिया।

नगरीय व राजमार्गो के लिए उपयोगी वृक्ष

मोहित तिवारी[1], प्रतिमा गुप्ता[2] तथा आईजेक विलियम[2]
[1]जीव विज्ञान विभाग, लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ–226018, भारत
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार, सी0 एन0 एच0 भवन,
वनस्पति उद्यान, हावड़ा(पश्चिम बंगाल)–711103, भारत
drmohit2010@gmail.com

मार्गों पर वृक्ष लगाने की परम्परा भारत में प्राचीन काल से ही चली आ रही है। भारतीय जन–मानस ने वनों व वृक्षों का महत्व हजारों वर्ष पूर्व ही समझ लिया था। सम्पूर्ण विश्व में आज वृक्षों और वनों के संरक्षण की बात हो रही है परन्तु हम भारतीय तो प्राचीन काल से ही इनके महत्व को समझते थे। वृक्षों के महत्व को प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप से सामान्य जन को समझाने के लिए या तो उन्हें देवी–देवताओं से सम्बन्धित बताया गया था फिर उन्हें किन्हीं अन्य कारणों से पूजनीय बताकर उनके काटने व हानि पहुँचाने को प्रतिबन्धित कर दिया गया। इस प्रकार वृक्षों का संरक्षण आसान हो गया। यहाँ तक कि भारतीय वास्तुशास्त्र भी कौन सा पेड़ कहाँ और किस दिशा में लगाया जाये, इस विषय में विस्तृत विवरण देता है, जो अंधविश्वास पर नहीं, वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित होता है। मार्गों में कौन से वृक्ष कहाँ और कैसे लगाये जायें, इसका निर्णय भी हमारे प्राचीन ग्रन्थ सन्दर्भों से लेकर आज के वैज्ञानिक शोधों तक वृक्षों के आकार, प्रकार, मजबूती, सघनता, जीवनकाल एवं उपयोगिता को आधार बनाकर ही किया जाता है।

आज बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण के कारण वनों का तीव्रता से क्षय हुआ है। हम जहाँ एक ओर वनों की पुर्नस्थापना के प्रयास कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर हम नगरों, महानगरों, राजमार्गों पर हरित–पट्टियाँ लगाकर प्राकृतिक वन सम्पदा व जैव विविधता संरक्षण के प्रयास भी कर रहे हैं। भारत तीव्र गति से प्रगति करता हुआ राष्ट्र है जहाँ पुराने राजमार्गों के पुनरुद्धार के साथ–साथ नये बसते हुए क्षेत्रों में हजारों किलोमीटर राजमार्ग बनाये जा रहे हैं। नवीन नगरीय व औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना के साथ सम्पर्क मार्गों, नगरीय मार्गों व राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण हेतु हजारों वृक्षों और कृषि उपयोगी भूमि को नष्ट करके कंक्रीट के जंगलों में बदला जा रहा है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि योजनाबद्ध विधि से कम से कम राष्ट्रीय राजमार्गों के किनारे वृक्ष लगाकर कुछ सीमा तक प्राकृतिक वृक्ष/वन असंतुलन को कम किया जा सके।

वर्तमान में भारत में 33.40 लाख किमी0 सड़कों का जाल फैला हुआ है। इसमें से 65,569 किमी0 राष्ट्रीय राजमार्ग है। इस वृहद् सड़क जाल में, भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। वनस्पति विविधता के दृष्टिकोण से भी भारत बहुत सम्पन्न देश है। सड़कों के किनारे लगे वृक्षों का भी वनस्पति विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान हैं। राजमार्गों के किनारे के ये वृक्ष जहाँ एक ओर राजमार्गों को सुरक्षा प्रदान करते हैं वहीं दूसरी ओर ये वृक्ष मार्गों पर चलने वालों को छायाँ व सुखद अनुभूति देते हैं एवं वाहनों से निकले प्रदूषण को भी नष्ट करता है।

राजमार्गों पर वृक्ष लगाने की परम्परा अति प्राचीन है। वेदों में भी वृक्षों के महत्व का विस्तृत विवरण है। सम्राट अशोक भी उन सम्राटों में एक थे, जिन्होंने राजमार्गों पर वृक्ष लगाये व आश्रय बनवाये थे। मुगलकाल में अकबर ने राजमार्गों पर वृक्ष लगवाये, आज भी दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में मार्गों पर प्राचीन वृक्ष बहुतायत में मिल जाते हैं। प्राचीन भारत के लोग मार्गों पर वृक्ष लगाने के महत्व को अच्छी तरह समझते थे और योजनाबद्ध तरीके से मार्गों पर वृक्षों को लगाते थे। कश्मीर, हिमालयी क्षेत्र, उपहिमालयी क्षेत्र, आसाम, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, दक्षिण भारतीय प्रदेशों में राजमार्गों पर बहुत ही सुनियोजित ढंग से लगे वृक्षों की कतारें अभी भी देखने को मिल जाती हैं। झेलम नदी के किनारे चिनार के वृक्षों की कतारें बहुत सुन्दर रूप से लगी हैं। दिल्ली से आगरा जाने वाले राजमार्ग, लाहौर से कलकत्ता तक जाने वाली ग्रैण्ड ट्रंक रोड, दक्षिण भारत के अधिकांश राजमार्गों पर कहीं–कहीं क्रमबद्ध तरीके से लगी समान वृक्षों की सुन्दर पंक्तियाँ दिखायी पड़ जाती हैं। अवध के नवाबों ने लखनऊ और आस–पास के क्षेत्रों में बहुत ही नियोजित ढंग से वृक्षारोपण कराया था। लखनऊ से कानपुर, शाहजहाँपुर, सीतापुर, अयोध्या, सुल्तानपुर और इलाहाबाद जाने वाले आठों दिशाओं में फैले राजमार्गों पर इमली, पीपल, आम, जामुन, बरगद, गूलर आदि वृक्षों की समान सुन्दर कतारें लगी हुई थीं। अभी हाल के कुछ वर्षों के सुन्दरीकरण और सड़कें चौड़ी करने हेतु हजारों सुन्दर सघन सैकड़ों साल पुराने वृक्षों की बलि दे दी गयी।

राष्ट्रीय राजमार्गों पर सुनियोजित रूप से लगे वृक्ष जहाँ एक ओर लम्बी यात्रा को सुखद बनाते हैं वहीं दूसरी ओर यह वृक्ष वन–सम्पदा, जैव विविधता एवं पर्यावरण का संरक्षण करते हैं तथा वातावरण को भी शुद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त वृक्ष का प्रत्येक भाग उपयोगी होने के कारण आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक होते हैं। आज के परिदृश्य में जहाँ चारों ओर मानव आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हो रहा है और वन, वृक्षों, पेड़–पौधों व कृषि योग्य भूमि को उजाड़ कर उद्योगों, आवासीय क्षेत्रों व मार्गों का निर्माण किया जा रहा है। इस कारण यह तत्काल और प्राथमिक स्तर की आवश्यकता है कि एक योजनाबद्ध विधि से पुनः वृक्षारोपण किया जाय और नये बसते नगरीय क्षेत्रों में यह केवल मार्गों पर ही सम्भव है। हम नये बने राजमार्गों के किनारे पर तेजी से वृद्धि करने वाले घने छायादार वृक्षों का सुनियोजित रोपण कर सकते हैं। इस योजना को कार्यरूप देने के लिए जलवायु, तापमान, वर्षा आदि के आधार पर उचित वृक्षों का चुनाव कर उनका रोपण करें। भारत एक अत्यधिक भौगोलिक विविधता वाला देश है अतएव वृक्षारोपण

करते समय हमें स्थानीय वातावरण के अनुरूप ही वृक्षों का चयन करना पड़ेगा, क्योंकि हर क्षेत्र में अलग–अलग प्रकार के वृक्ष लगाये जाते हैं।

सन् 1937 में श्री मनोहर लाल चतुर्वेदी ने सड़कों पर छायादार वृक्ष लगाने का सुझाव दिया था। राष्ट्रीय राजमार्गों और नगरीय मार्गों पर अलग–अलग प्रकार के वृक्ष लगाये जाते हैं। राष्ट्रीय राजमार्ग अपेक्षाकृत चौड़े होते हैं अतः यहाँ पर ऐसे वृक्ष लगाये जायें जो आकार में बड़े हों और सघन तथा छायादार हों, साथ ही साथ आर्थिक दृष्टिकोण से भी उपयोगी हों। राजमार्गों पर वृक्ष लगाते समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। जैसे एक कतार में लगे पेड़ एक ही प्रकार के हों जो सड़क के किनारे एक ही आकार व सघनता से वृद्धि करें, उनमें लम्बे और नाटे, सघन या विरल, वृक्ष एक साथ न लगे हों। जबकि नगरीय मार्गों पर लगाये जाने वाले वृक्ष को आकार में छोटा होना चाहिए जिससे कि वृक्ष बढ़ने पर बिजली के तारों से न टकराये और अगर ये पौधे एक ही प्रजाति के फूल वाले वृक्ष हों तो पुष्पन के मौसम में रंगीन फूलों से लदी वृक्षों की कतारें अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होंगी। नगर के जिन चौड़े मार्गों पर वृक्षों की दो कतारें लगाना सम्भव हो वहाँ अन्दर वाली कतार में छोटे वृक्ष, जैसे गुलमोहर, अमलताश तथा बाहरी कतार में मझोले पौधे, जैसे–जामुन, नीम, महुआ, पाकर, नीम चमेली इत्यादि लगाये जा सकते हैं।

राष्ट्रीय राजमार्गों पर जहाँ तिराहे चौराहे हो या मार्ग विभाजक कटाव हो, वहाँ छोटे रंगीन फूलों वाले वृक्ष लगाये जा सकते हैं। इससे इन मार्गों पर चलने वाले वाहन चालकों को बड़े वृक्षों की क्रम–बद्धता को विखण्डित करते आकस्मिक रूप से छोटे वृक्ष दिखाई पड़ने से सहज ही तिराहे, चौराहे या मार्ग विभाजक के खुले होने का अनुमान हो जायेगा। इससे दुर्घटनाओं से भी बचा जा सकेगा।

नये बने राष्ट्रीय राजमार्गों और नगरीय मार्गों के मध्य के मार्ग विभाजकों पर छोटे आकार के वृक्ष/पौधे लगाये जा सकते हैं। सड़क के दोनों ओर लगाये गये वृक्षों का मुख्य उद्देश्य छाया प्रदान करना होता है। इसलिए वृक्षारोपण करते समय ऐसे वृक्षों का चुनाव करना चाहिए जो शीघ्रता से वृद्धि करने वाले हो तथा लम्बे, चौड़े, छत्र आकार वाले वृक्ष हों, जिनकी छाया सड़कों पर भी पड़ती हो। इस दृष्टि से नीम, महुआ, आम, इमली जैसे–वृक्ष अधिक उपयोगी होते हैं। इन वृक्षों को 12–15 मीटर की दूरी के अन्तर पर लगाना चाहिए जिससे उनका छत्र भली–भाँति फैल सके।

राष्ट्रीय राजमार्गों व नगरीय मार्गों पर लगाने हेतु निम्न वृक्षों का चयन किया जा सकता है:–

राष्ट्रीय राजमार्गों पर लगाये जाने वाले वृक्ष

क्र0सं0	प्रचलित नाम	वैज्ञानिक नाम
1.	नीम	*एजाडाईरेक्टा इंडिका*
2.	महुआ	*बेसिया लैटीफोलिया*
3.	इमली	*टमरिन्डस इंडिका*
4.	बरगद	*फाइकस बेगालैंसिस*
5.	पीपल	*फाइकस रेलिजिओसा*
6.	शीशम	*डल्बर्जिया सिसू*
7.	आम	*मैंगीफेरा इंडिका*
8.	सफेद सिरिस	*एल्बीजिया प्रोसेरा*
9.	गूलर	*स्टरक्यूलिया यूरेन्स*
10.	सेमल	*बोमबैक्स सिबा*
11.	पाकर	*फाइक्स इन्फेक्टोरिया*
12.	अशोकन	*पोलिएल्थिया लांगीफोलिया*
13.	सिरिस	*एल्बिजिया लैबेक*
14.	देवदार (पहाड़ी राजमार्ग हेतु)	*सिड्रस देवदार*
15.	रामफल (चल्टा) पहाड़ी क्षेत्रों हेतु	*डिलीनिया इंडिका*
16.	चीड़ (पहाड़ों हेतु)	*पाइनस रोक्सबर्गाई*
17.	साल	*शोरिया रोबस्टा*
18.	चिलानी (निडलवुड)	*शाइमा वलिश्याई कोर्थ*
19.	धामन	*ग्रीविया टिलाईफोलिया*
20.	जामुन	*यूजेनिया जम्बोलाना*
21.	चिनार	*प्लेटेनस ओरियण्टेलिस*

नगरीय मार्गों पर लगाये जाने वाले वृक्ष एवं पौधे

क्र0सं0	प्रचलित नाम	वैज्ञानिक नाम
1.	कचनार	*बाउहिनिया वैरीगेटा*
2.	अमलताश (गुलाबी)	*कैशिया नोडोसा*
3.	अमलताश (पीला)	*कैशिया फिस्टुला*
4.	पलास, ढाक	*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*
5.	गुलमोहर (लाल, नारंगी)	*डेलोनिक्स रीजिया*
6.	गुलमोहर (नीला)	*जैकेरेंडा माइमोसीफोलिया*
7.	कमरख	*एवरहोआ कैरमबोला*
8.	बोतल ब्रश	*कैलिस्टिमोन लेंस्योलेटस*
9.	कदम्ब	*एंथोसेफेल कदम्बा*
10.	जामुन	*यूजीनिया ओपरक्यूलेटा*
11.	बकणन, बकायन	*मेलिया एजेडेरेक*
12.	तेण्डू	*डायोस्पाइरोस मिलनोजाइलोन*
13.	सैन्जन (सहजन)	*मोरिन्जा ओलीफीरा*
14.	शहतूत	*मोरिस अल्बा*
15.	अशोक	*सराका अशोका*
16.	भोजपत्र	*बिदूला एलनोइडिस*
17.	देवदार	*सिडरस देओदारा*
18.	चीड़	*पाइनस रोक्सबर्गाई*
19.	टीक	*टिकटोना ग्रेनडिस*
20.	नीमचमेली	*मिलिंगटोनिया होर्टसिस*
21.	मौलश्री	*माइमोसोप्स एलेंजी*
22.	पुत्रजीवा	*पुत्रजीवा रोक्सबर्गाई*

कुछ वृक्ष, जैसे–यूकेलिप्टस, नीमचमेली, जामुन आदि के वृक्षों की लकड़ी कमजोर होती है अतः इन्हें राजमार्गों के किनारे नहीं लगाना चाहिए, साथ ही साथ कंटीले वृक्ष, जैसे बेर, बबूल को भी मार्गों के निकट नहीं लगाना चाहिए क्योंकि कमजोर पौधे आंधी–पानी में टूट कर मार्ग पर गिर जाते हैं जिससे राजमार्ग अवरुद्ध होंगे, साथ ही साथ वाहन व यात्रियों को भी गम्भीर हानि पहुँच सकती है जबकि कटीले पौधों में छाया का भी अभाव होगा और इनसे यात्रियों को भी नुकसान पहुँच सकता है।

मार्ग पर लगाये जा सकने योग्य कुछ महत्वपूर्ण पौधों का विवरण व आर्थिक महत्व निम्नवत् है:–

इमली (*टमरिन्डस इंडिका*)

यह एक सुन्दर तथा बड़ा छायादार वृक्ष है जो शुष्क जलवायु में भी आसानी से उग आता है। यह सड़क की धूल, मिट्टी को भी आसानी से सहन कर लेता है। इसकी लकड़ी और फल दोनों ही उपयोगी हैं। लकड़ी का प्रयोग फर्नीचर बनाने में तथा फलों का प्रयोग, मसाले, अचार, चटनी तथा कई प्रकार की भोज्य सामग्री बनाने में होता है।

आम (*मैंगीफेरा इंडिका*)

यह बहुउपयोगी वृक्ष है। इसका प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप में उपयोग किया जाता है। इसका फल खाने योग्य है जो पौष्टिक तत्त्वों से भरपूर होता है और आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक है। इसकी छाया भी सघन होती है। इसकी लकड़ी का उपयोग विभिन्न कार्यों व हवन इत्यादि में किया जाता है। इस वृक्ष का औषधीय महत्व है तथा ऋग्वेद व यजुर्वेद में इसकी विशेषताओं का उल्लेख है।

नीम (*एजेडिरेक्टा इंडिका*)

यह एक दधीची वृक्ष है जिसका प्रत्येक भाग उपयोगी है। इसकी लकड़ी, छाल, पत्तियाँ, फल, फलों से निकला तेल, प्रत्येक भाग का औषधि, कीटनाशी, प्रतिरक्षी व कीट सुरक्षित काष्ठ सामग्री निर्माण में उपयोग होता है। इसके बीजों से निकली खली का भी जैविक खाद के रूप में प्रयोग होता है। यह पेड़ भी आसानी से उगता है।

शीशम (*डल्बर्जिया शीशू*)

यह एक घना छायादार वृक्ष है। इस वृक्ष की लकड़ी बहुत मजबूत होती है जिसका उपयोग इमारती लकड़ी के रूप में फर्नीचर तथा लकड़ी के पुल बनाने में किया जाता है।

सफेद सीरिस (*एल्बीजिया प्रोसेरा*)

यह शीघ्रता से उगने वाला छायादार वृक्ष है। इसका तना पीला होता है। यह वृक्ष साधारण सूखा सह सकता है। इसकी लकड़ी का काष्ठीय सामग्री बनाने व जलावन में उपयोग होता है।

महुआ (*बेसिया लैटीफोलिया*)

यह एक घना छायादार शोभाकारी वृक्ष है। इसके फल खाये जाते हैं। इसके तेल का चिकित्सकीय व प्रसाधन सामग्री में उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त साबुन, मोमबत्ती बनाने में तथा स्नेहक व ग्रीस के रूप में इसके तेल का प्रयोग होता है। इसके फलों से शराब भी बनती है।

गूलर (*स्टरक्यूलिया यूरेन्स*)

यह एक मजबूत घना छायादार वृक्ष है। इससे गोंद, छाल से रेशा व लकड़ी प्राप्त होती है। इसकी छाल से पूरे साल गोंद निकलता रहता है जिसका व्यापारिक व औषधीय महत्व है। इसकी लकड़ी खिलौने, गिटार, पैकिंग के डिब्बे बनाने के काम आती है।

अमलताश (*कैसिया फिस्टुला*)

इसका प्रत्येक भाग उपयोगी है। इसके छाल और पत्तियों का औषधीय प्रयोग, फल का गूदा खाने व मुरब्बा बनाने में, लकड़ी का उपयोग कुल्हाड़ी, मुगरी, हथौड़ी के हत्थे बनाने में होता है।

प्रत्येक प्रकार के वृक्षों का अपना एक आर्थिक महत्व होता है। यदि किसी क्षेत्र में सड़कों के किनारे नीम व महुआ के वृक्षों की कतारें लगी हों तो उन क्षेत्रों में नीम और महुआ के तेल तथा अन्य उत्पादों, जैसे नीम की खली, दातुन, गोंद इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है। नीम के तेल का औषधीय प्रयोग और महुआ के तेल का प्रयोग औषधीय एवं प्रसाधन सामग्री के निर्माण में किया जाता है। इमली, आम का भी अपना एक उपयोग पूरे भारत में है। इसी प्रकार हिमालय के निकटवर्ती क्षेत्रों में जहाँ शीशम, साल, टीक, चीड़, सागौन आदि के अनुकूल वातावरण होने के कारण इन वृक्षों को लगाया जाता है। वहाँ लकड़ी की बनी चीजों और उच्चकोटि की लकड़ी का उत्पादन होता है। साथ ही साथ स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर व आर्थिक सम्पन्नता भी मिलती है।

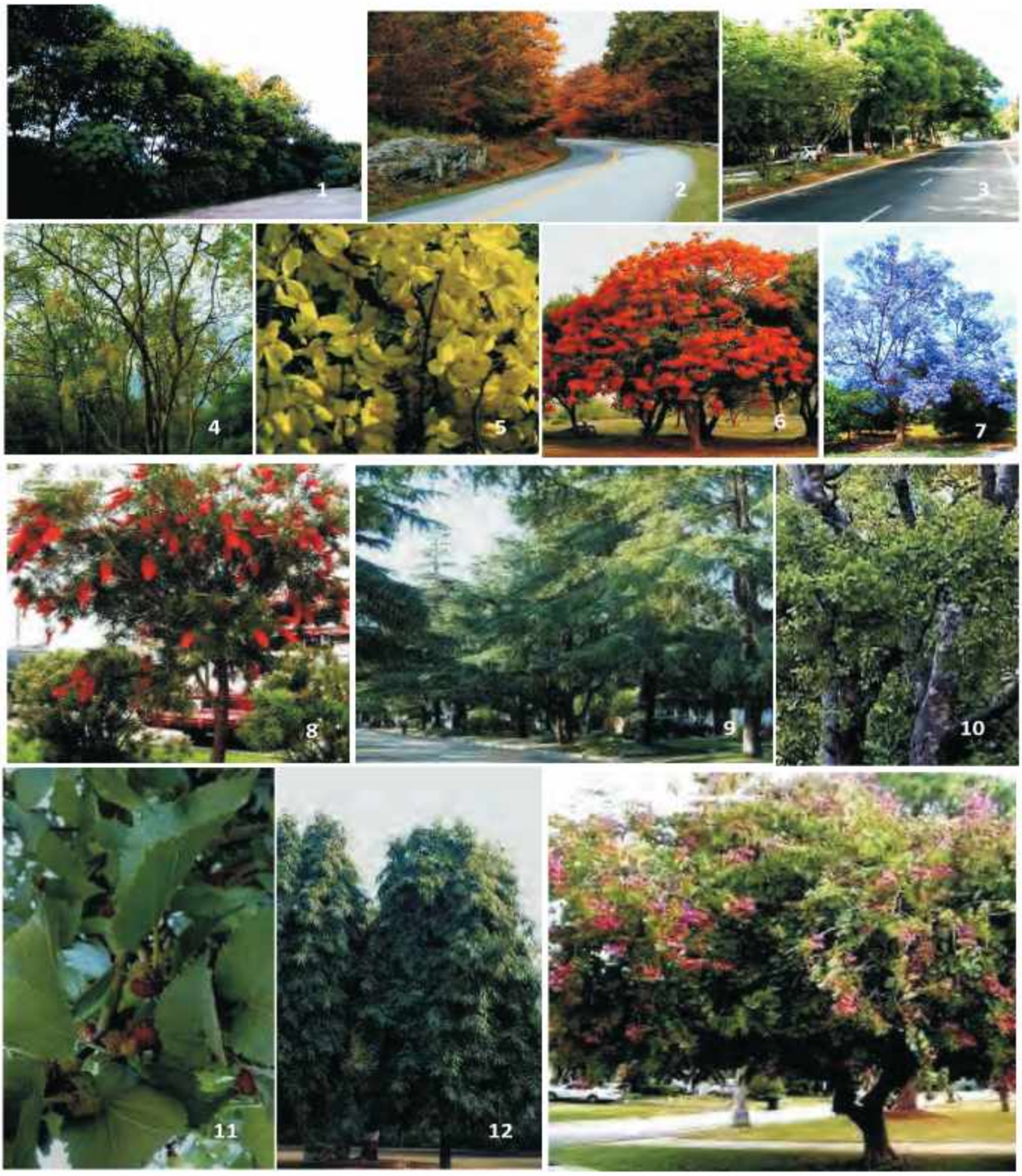
मार्गों पर वृक्षारोपण से प्रदूषण से भी मुक्ति मिलती है क्योंकि मार्गों पर लगे वृक्ष वाहनों से निकली दूषित गैसों व प्रदूषकों का अवशोषण कर इन मार्गों के वातावरण को एक सीमा तक शुद्ध करते हैं तथा दूर तक फैली हरितिमा जहाँ एक ओर यात्रा को सुखद बनाकर मन–मस्तिष्क को स्फूर्ति प्रदान करती है वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक असंतुलन भी कम करेंगे।

परन्तु यह चिन्ता का विषय है कि विकास व औद्योगिकीकरण के नाम पर राजमार्गों पर लगे दसियों हजार वृक्षों को निर्ममता से काट डाला गया और उनके स्थान पर लगाये गये वृक्ष लापरवाही व सामाजिक जागरुकता के अभाव में केवल कुछ प्रतिशत ही लग पाये, परिणाम स्वरूप हमें अनेक मार्गों पर जहाँ कुछ वर्ष पूर्व घने छायादार सुन्दर वृक्षों की कतारें दिखाई पड़ती थीं वहाँ अब कई–कई किलोमीटर तक छितरे हुए कुछ मरणासन्न नवजात वृक्ष ही दिखते हैं। आज आवश्यकता है कि इस देश का प्रत्येक नागरिक अपनी जिम्मेदारी मानकर वृक्षों को लगाये और उनके रख–रखाव में सहयोग करे।

संदर्भ

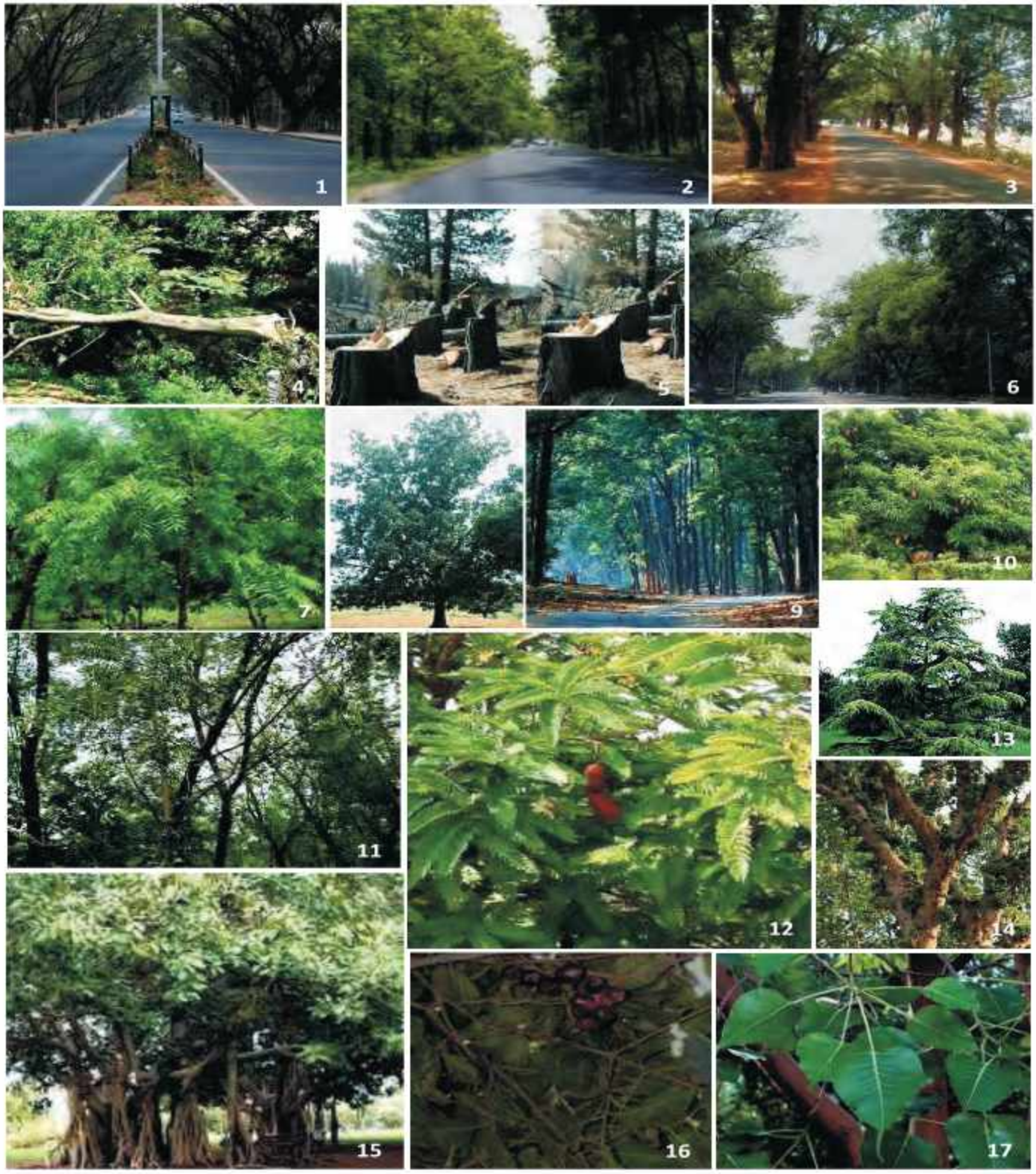
1. चौधरी, एच0 जे0 एवं पाण्डेय, डी0 एस0(2007) प्लान्ट्स ऑफ इंडियन बोटेनिक गार्डेन, बी0 एस0 आई0 पब्लि0, देहरादून।
2. चक्रवर्ती, आर0 के0, पाण्डेय, डी0 एस0 एवं मुखोपाध्याय, डी0 पी0(2010) डायरेक्ट्री ऑफ प्लान्टस इन बोटेनिक गार्डेन ऑफ इंडिया, फ्लोरा ऑफ इंडियन सिरीज, 4।

3. कार्तिकेयन, एस0; संजप्पा, एस0; एवं मूर्थी, एस0(2009) फ्लावरिंग प्लान्टस ऑफ इंडिया, खण्ड 1, सेन्ट जोसेफ प्रेस तिरूवनन्तपुरम।
4. हजरा, पी0 के0(1995) प्लान्ट वैल्थ ऑफ नन्दा देवी बायो0 रिजर्व, दीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली।
5. नायर, एम0 पी0; राममूर्ति, के0 एवं अग्रवाल, वी0 एस0(1994) इकनोमिक प्लान्टस ऑफ इंडिया, प्रर्बतक प्रिटिंग, कलकत्ता।



नगरीय मार्गों पर लगाये जाने वाले कुछ वृक्ष

1, 2, 3 व 9 नगरीय मार्गों पर क्रम से लगे वृक्ष, 4 व 5 अमलताश, 6 गुलमोहर,
7 नीला गुलमोहर, 8 बोतल ब्रश, 10 कदम्ब, 11 शहतूत, 12 अशोक, 13 कचनार



राष्ट्रीय राजमार्गों पर लगाये जाने वाले कुछ वृक्ष

1, 2, 3 व 6 राष्ट्रीय राजमार्गों पर क्रम से लगे वृक्ष, 4 व 5 सड़क को चौड़ी करने हेतु काटे गये कुछ वृक्ष, 7 नीम, 8 महुआ, 9 साल, 10 आम, 11 शीशम, 12 इमली, 13 देवदार, 14 गूलर, 15 बरगद, 16 जामुन, 17 पीपल

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन व संसाधन विकास : संगोष्ठी आख्या

अनंत पांडुरंग देशपांडे
सचिव, मराठी विज्ञान परिषद तथा
अध्यक्ष, नेशनल सेंटर फॉर साइंस कम्युनिकेटर्स
विज्ञान भवन, वि0 ना0 पुरव मार्ग, शीव–चुनाभट्टी
मुंबई(महाराष्ट्र)–400022, भारत
apd1942@gmail.com



भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन व संसाधन विकास इस विषय पर एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन मुंबई स्थित भाभा अणु अनुसंधान केन्द(बार्क), मुंबई, में दिनांक 9–11 मई, 2013 किया गया। इस संगोष्ठी का आयोजन **हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, मुंबई** और **वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली**, इन दो संस्थाओं के माध्यम से हुआ। हिन्दी साहित्य विज्ञान परिषद, बी0 ए0 आर0 सी0(बार्क), मुंबई में 1968 में स्थापित हुआ था। परिषद की स्थापना के समय से ही इस संस्था की त्रैमासिक पत्रिका का छपना शुरू हो गया था। इस संस्था के माध्यम से संगोष्ठियों का आयोजन, पत्रिका का प्रकाशन, मोनोग्राम आदि का कार्य सतत् व अबाध रूप से किया जा रहा है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली, इस विषय पर देश भर में जागरूकता फैलाने का काम कर रही है। इस संस्था के जरिये विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर शब्दावली ग्रन्थ बनाये जाते हैं। उसके लिए देशभर से जाने–माने विद्वानों की सहायता ली जाती है। इन दिनों प्रत्येक वर्ष शब्दावली की एक लाख किताबें बिक जाती हैं जिनके मूल्य रू0 10 से प्रारम्भ होते हैं। इस आयोग ने अभी तक भारत के 22 भाषाओं में 30 हजार पाठ्य पुस्तकें छापी हैं। सभी भाषाओं की शब्दावली संगणक(कम्प्यूटर) में आनी चाहिए, इसका प्रयास आयोग द्वारा किया जा रहा है। कोई भी शब्द जब तक नया होता है, तभी तक कठिन प्रतीत होता है परन्तु जैसे–जैसे उसका प्रयोग बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे उसकी कठिनाइयां दूर होती चली जाती हैं। **श्री शिव शरण लाल शर्मा** जी ने कहा कि आयोग ने अभी तक प्रत्येक विषय की शब्दावली हिन्दी में तैयार की है तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी उनका निर्माण प्रगति पर है। उन्होंने कई शब्दों के उदाहरण दिये, जैसे कि पिग आयरन को कच्चा लोहा, इंटरडिसिप्लिनरी को अंतरविभागीय बोला जाता है। कई शब्द ऐसे भी होते हैं जिनके अर्थ विज्ञान की प्रत्येक शाखा में बदलने पड़ते हैं, जैसे कि अंग्रेजी के कंडेंसर शब्द को मेकैनिकल इंजीनियरिंग में द्रवरित्र कहेंगे तथा इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में संग्राहक या संगारीत बोलेंगे, अंग्रेजी के मोल्ड शब्द को मेकैनिकल इंजीनियरिंग में सांचा कहेंगे तथा बायोलॉजिकल साइंस में फफुंडी बोलेंगे, अंग्रेजी के बीम शब्द को सिविल इंजीनियरिंग में धरन कहेंगे तथा भौतिक विज्ञान में किरणपुंज बोलेंगे और इलेक्ट्रॉनिक्स में उसको कणपुंज या इलेक्ट्रॉनपुंज कहेंगे, अंग्रेजी के कॉस्टॉलेशन को खगोल शास्त्र में तारा समूह बोलेंगे तथा एयरोनॉटिक्स में उसको विशिष्ट अवयव समूह कहेंगे।

अंग्रेजी में जिसको क्रिटिकल कहते हैं उसको न्यूक्लियर साइंस में क्रांतिक कहते हैं लेकिन मेडिकल साइंस में उसे गंभीर बोलेंगे, अंग्रेजी में जिसको कंव्हेयंस कहते हैं उसको कार्यालयीन भाषा में वाहनभत्ता कहते है तथा मकान के बारे में उसको हस्तांतरण बोलेंगे, अंग्रेजी के कम्पाउंड को रसायन शास्त्र में यौगिक कहते हैं तथा अगर कम्पाउंड इंजिन है तो वह बहुपद इंजिन हुआ और कम्पाउंड बीम को बहुपद धरन बोलेंगे। पेट्रोल के लिए कोई शब्द नहीं निकाला गया अतएव उसे पेट्रोल ही कहेंगे।

महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी के कार्याध्यक्ष **डॉ0 दामोदर खडसे** जी ने कहा कि भाषा तीन तरीके से इस्तेमाल होती है–"चाहिए" के लिए मुंबई में "मंगता है" कहते हैं, यह वहाँ की बोलचाल की भाषा है तथा साहित्य में "चाहिए" ऐसा ही लिखेंगे। साहित्य में एक ही अर्थ के लिए जितने अधिक शब्द उपयोग करेंगे उतना ही साहित्यकार महान कहलायेगा। परन्तु तकनीकी में एक शब्द को दो या तीन अर्थ दिये तब भी कुछ दिनों के बाद एक ही अर्थ स्थिर हो जायेगा। शब्दकोश में अर्थ आत्माहीन होता है, लेकिन व्यवहार में हम लोगों को उस को आत्मा देना होता है। शब्द दो तरह के होते हैं–तकनीकी और दृष्टबंधक या अडमान। तकनीकी की सभी खोज अंग्रेजी में हुई। न्यूटन अंग्रेज था लेकिन लॉ ऑफ ग्रेविटी के शब्द अंग्रेजी में नहीं थे तब उसने वह सब फ्रेंच में लिखे थे। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह सब अंग्रेजी में लिखा गया। अपने देश भारत में यह सब कठिन है क्योंकि यहाँ 22 भाषाएं एवं 80 उपभाषाएं हैं और हजारों से ज्यादा क्षेत्रीय स्तर पर बोली जाने वाली भाषाएं हैं। ग्यारहवीं

शताब्दी में फ्रांसीसी नॉर्मन लोगों ने इंग्लैंड पर कब्जा किया था। तभी से 200 वर्षों तक इंग्लैंड में फ्रेंच भाषा का बोल–बाला रहा। अमीर व रईस लोग फ्रेंच में बोलते व लिखते थे तथा अपने बच्चों को फ्रेंच भाषा पढ़ने के लिए पेरिस भेजते थे। बाद में इंग्लैंड के पार्लियामेंट में इस पर चर्चा हुई तभी से इंग्लैंड की भाषा अंग्रेजी हुई। उस समय अंग्रेजी में सिर्फ दस हजार शब्द थे। वर्तमान में इनसाइक्लोपेडिया ब्रिटानिका में 20 लाख शब्द हैं। किसी भी देश में उसकी भाषा आम आदमी बढ़ाता है, विद्वान लोग ऐतिहासिक भाषा का प्रयोग करते हैं, पत्रकार भाषा बनाते हैं। शब्द अर्थ के अनुसार बदलते जायेंगे। "इंटरेस्ट" का अर्थ "रुचि" है और "ब्याज" भी है। "चार्ज का मतलब", "भार" है और "आरोप" भी है। "रिटर्न" का अर्थ "लौटना" या "लौटाना" है और इनकम टैक्स के लिए "आय विवरण" भी है।

डॉ0 मंगल प्रसाद शुक्ल जी ने "शब्दों का उदगम एवं विकास" इस शीर्षक पर चर्चा की। उनके अनुसार, "बोली" वह है जो लोग बोलते हैं, जिसे "ओरल" भी कह सकते हैं, उस भाषा की जनता जो बोलती है वह "मौखिक" है। भाषा बुद्धिजीवी लोग वापरते हैं और वही लिखते हैं। भाषा का अपना व्याकरण एवं वर्गीकरण होता है, जैसे कि भारतीय कुल, द्रविड कुल और आर्य कुल। आर्य कुल भाषिक 74 प्रतिशत है, द्रविड कुल 24 प्रतिशत है तथा 2 प्रतिशत का कुछ भी पता नहीं चलता है। भारत में घोषित मातृभाषा कुल 1662 है। मुंबई विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग प्रमुख **डॉ0 करुणाशंकर उपाध्याय** जी ने बताया कि हिन्दी में इन दिनों 385 पत्रिकाएं छापी जाती हैं जिसमें ग्रह पत्रिकाएं भी हैं। सन् 1819 में कलकत्ता में "दिगदर्शन" नाम की पत्रिका छपनी शुरु हुई, जिसमें हिन्दी, बंगाली और अंग्रेजी भाषा में लेख छापे जाते थे। आज भारत वर्ष में 28,000 कॉलेज और 268 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ायी जाती है।

मुंबई स्थित मराठी विज्ञान परिषद के मानद सचिव **श्री अनंत देशपांडे** जी ने मराठी शब्दावली में क्या काम चल रहा है इस बारे में जानकारी दी। उन्होंने बताया कि महाराष्ट्र सरकार ने वर्ष 1968 में भाषा संचालनालय की स्थापना की। जिसके उपरांत भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीव शास्त्र, औषध शास्त्र, वैदयक शास्त्र, अभियांत्रिकी, सूतिका शास्त्र, भूगोल, गणित, अर्थ शास्त्र, समाज शास्त्र, राज्य शास्त्र, सौंदर्य शास्त्र आदि 25 विषयों पर काम शुरु हुआ। महाराष्ट्र के प्रत्येक विश्वविद्यालय का एक–एक प्राध्यापक उस समिति का सभासद था। उसमें मराठी विज्ञान परिषद का भी एक प्रतिनिधि होता था। इन सभी विषयों के शब्द कोश बन गये। इन सभी शब्दकोशों की शब्दावली पाठशाला के किताबों में प्रयोग की जाती है। परन्तु जो 108 मूल धातु हैं उनको वैसे का वैसा ही रखा गया। उनके लिए कोई शब्दावली नहीं बनायी गई। जैसे कि ऑक्सीजन को प्राणवायू नहीं कहेंगे लेकिन उसको ऑक्सीजन ही कहेंगे, कार्बन डाय ऑक्साइड को कर्ब दवि प्राणिल वायू नहीं कहेंगे लेकिन उसे कार्बन डाय ऑक्साइड ही बोलेंगे, कॉपर को कॉपर ही बोलेंगे, तांबा नहीं इत्यादि। यह भाषा अखबार में इस्तेमाल नहीं होती है क्योंकि उसमें संस्कृत के शब्द ज्यादा आये हैं और देहाती आदमी इसको इस्तेमाल नहीं कर सकता। मराठी विज्ञान परिषद, हर महीने अपनी एक पत्रिका छपवाती है, उसमें भी यह शब्दावली पूरी तादाद में इस्तेमाल नहीं होती है।

पूर्व उपनिदेशक, तकनीकी शब्दावली आयोग, लई दिल्ली, **श्री सतीश चन्द्र सक्सेना** जी ने "वैज्ञानिक लेखन में शब्दावली की भूमिका" पर बोलते हुए बताया कि कथन की भाषा एक माध्यम है जो लोगों को आपस में जोड़ती है। वह संप्रेषण का माध्यम है। शब्दावली लेखन को बोधित करती है। शब्दावली के बिना लेखन कार्य नहीं किया जा सकता है। तकनीकी शब्द निश्चित और अल्पाक्षरी हैं। मनोविज्ञान में मेडिकल की शब्दावली आती है। शब्दावली लेखन की अनिवार्यता है। शब्दावली का निर्माण पुराने दिनों से चल रहा है शब्द निर्माण की क्षमता संस्कृत में जितनी है, उतनी अन्य किसी भी भाषा में नहीं है। शब्द कठिन नहीं हैं, शब्दों से परिचय बना लो, उनसे दोस्ती करो। उन्होंने अंग्रेजी के कई शब्दों को हिन्दी के पर्याप्त शब्दों के साथ उच्चारण किया। जैसे कि पहले एंवायरन्मेंट और ऐटमॉसफियर एक ही थे, अब एंवायरन्मेंट को पर्यावरण और ऐटमॉसफियर को परिवेष कहने लगे, टेक्नोलॉजी को प्रौद्योगिकी कहते हैं, एक्टिविटी को कार्यकलाप या सक्रियता, फ्लुइडिटी को तरलता, फलक्स को वाह, फ्लो को प्रवाह, अलॉय को मिश्र धातु या मिश्रातू, आइसोटोप को वृद्धांश, डेवलेपमेंट को विकास या परिवर्तन, एफिलिटी को बंधुता , युयुक्षा अथवा साहचर्य, एयर को हवा, गैस को वायू, हैवी वाटर को भारी पानी अथवा गुरु पानी, प्योरीफिकेशन को शोधन, रिफायनिंग को परिशोधन वगैरह।

"हिन्दी में विज्ञान लेखन–क्या तकनीकी शब्दावली एक व्यवधान" विषय पर चर्चा करते हुए **डॉ0 गोविंद प्रसाद कोठियाल** जी, पूर्व अध्यक्ष, कांच एवं सिरेमिक प्रभाग, भाभा अणु संशोधन केंद्र, मुंबई, ने बताया कि विज्ञान लेखन का इतिहास 100 से 150 वर्ष पुराना है। उन्होंने काँच का इतिहास बताया और तकनीकी विषय हिन्दी के माध्यम से कैसे बताया व समझाया जा सकता है उसका एक नमूना ही पेश किया। काँच का उपयोग कितने प्रकार से बढ़ रहा है, ये बताते हुए उन्होंने जानकारी दी, जैसे–पहले दांत में होने वाले गड्ढे को सोने या चांदी से भरते थे परन्तु अब काँच सिरैमिकी का प्रयोग होता है। काँच की दीवारें, काचें की ईंटें, काँच की जमीन, काँच की छत, काँच की वस्तुएं आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जहाँ काँच ने अपनी जगह बनाई है।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षण केन्द्र, बार्क, मुंबई, के प्राध्यापक **डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र** जी ने ई–लर्निंग का इस्तेमाल कैसे होता है, यह इंटरनेट के माध्यम से बताया।

डॉ0 जगदीश चन्द्र व्यास जी ने "हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर साहित्य लेखन–आवश्यकता एवं उपयोगिता" विषय पर चर्चा करते हुए कहावतों एवं मुहावरों का उपयोग कैसे किया जाता है, ये बताया, जैसे–

हाथ कंगन को आरसी क्यों
पढे लिखे को पारसी क्यों

कल्हन, इस संस्कृत महापंडित के "रागतरंगिनी" ग्रंथ का अनुवाद हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती स्वयं गुजराती थे लेकिन उनका पूरा लेखन हिन्दी में हुआ। सन् 1902 में "हिन्दी रसायन का इतिहास" इस नाम के दो खंड प्रफुल्ल चंद्र रॉय ने लिखे।

श्री यमुना सिंह जी ने "परमाणु खनिज विषयों में वैज्ञानिक लेखन" विषय पर चर्चा करते हुए बताया कि सभी खनिज, परमाणु खनिज नहीं हैं उसमें यूरेनियम, थोरियम, नियोबियम, बेरिलियम आदि परमाणु खनिज हैं। परमाणु खनिज प्रभाग का काम 29 जुलाई, 1949 में शुरू हुआ। इसका मुख्यालय हैदराबाद में था और क्षेत्रीय कार्यालय भारत भर में सात जगह थे। परमाणु खनिज प्रभाग की जो गृह पत्रिका छापी जाती है उसमें इस विषय पर लेखन होता है।

श्री देवदत्त बाजपेई जी ने "विज्ञान/प्रौद्योगिकी के प्रसार में प्रादेशिक भाषाओं की भूमिका" विषय पर चर्चा करते हुए बताया कि डिपार्टमेंट ऑफ एटॉमिक एनर्जी की तरफ से कई जगह गृह पत्रिकाएं छापी जाती हैं। इनमें परमाणु, अणुशक्ति, अनुभारती, अनुविहार, अणुसंकेत, अणुकन्या, अणुप्रेरणा, अणुमाला, गुरुजल भारती, ब्रिटसंपदा, चेतना, गुरुजल प्रताप, और भी कई निकलती हैं।

इस संगोष्ठी में आई0 आई0 टी0, पवई, मुंबई, के **डॉ0 पुष्पक भट्टाचार्य**, बार्क, मुंबई, के **डॉ0 संजय पाठक**, और **डॉ0 जय प्रकाश त्रिपाठी** जी ने भाषण दिये। पूरी संगोष्ठी के समन्वयक के रूप में **डॉ0 जय प्रकाश त्रिपाठी** जी का एक मौलिक सहभाग रहा।

इस संगोष्ठी में करीब एक सौ लोगों ने हिस्सा लिया।

हिन्दी में विज्ञान लेखन कार्यशाला

कैलाश डी0 सिंह
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
लखनऊ वि0 वि0, लखनऊ(उ0प्र0)–226007, भारत
kailash.dsingh@rediffmail.com





लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग ने उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश शासन की "उत्कृष्ट केन्द्र योजना" के अंतर्गत दो दिवसीय 'हिन्दी में विज्ञान लेखन' कार्यशाला का आयोजन 18–19 अगस्त, 2012 तक विश्वविद्यालय के ए0पी0 सेन सभागार में किया गया। उपस्थित प्रशिक्षुओं, विषय विशेषज्ञों एवं सम्मानित अतिथियों का विभागाध्यक्ष **प्रो0 कैलाश देवी सिंह** ने हार्दिक स्वागत किया।

उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति **प्रो0 मनोज कुमार मिश्र** ने कहा कि विश्वविद्यालयों के अधिकतर छात्र हिन्दी माध्यम से होते हैं, उनके लिए हिन्दी लेखन की बहुत आवश्यकता है। प्रो0 मिश्र ने बतलाया कि हिन्दी के विद्यार्थी हिन्दी में ही सोचते और समझते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उन छात्रों के लिए विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी में लिखी जाएँ। उन्होंने कहा कि विज्ञान ही हमारे देश को आगे ले जायेगा। ग्रामीण क्षेत्र के बहुतेरे ऐसे छात्र हैं जो अंग्रेजी से दूर भागते हैं, जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है। उनके लिए विज्ञान की पुस्तकों को हिन्दी में ऐसे लिखा जाना चाहिए जो पढ़ने में रोचक हो और साथ ही ज्ञानपरक भी। विज्ञान और हिन्दी के सामन्जस्य से ही आम व्यक्ति भी विज्ञान को आसानी से समझ सकता है। प्रो0 मिश्र ने कहा कि विदेशों में विज्ञान को उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाता है जबकि हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं है। इसीलिए आज विज्ञान समाज की पहुँच से बाहर है। भाषा के विवाद के कारण ही आज विज्ञान का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा है।

कार्यशाला के मुख्य अतिथि, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, लखनऊ विश्वविद्यालय एवं बरकतुल्ला विश्वविद्यालय भोपाल के पूर्व कुलपति पद्मश्री **प्रो0 महेन्द्र सिंह सोढ़ा** ने कहा कि स्वतंत्रता के 65 वर्षों बाद भी विज्ञान को हिन्दी में लिखने की चर्चा करना चिंताजनक है। सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान दिया होता तो आज तस्वीर कुछ और होती। उन्होंने कहा कि किसी लेखक की कलम को विज्ञान में हिन्दी लेखन कार्य हेतु सरकार ने नहीं रोका था फिर भी आज बाजार में विज्ञान की हिन्दी में लिखी किताबें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है। इसलिए दोष लेखक और सरकार दोनों का है। प्रो0 सोढ़ा ने कहा कि आज जरूरत इस बात की है कि स्कूल और कालेज स्तर से ही विज्ञान को हिन्दी में पढ़ाया जाय। परन्तु दुखद है कि आज स्कूल और कालेज दोनों ही स्तर पर विज्ञान में हिन्दी लेखन पर स्तरीय कार्य नहीं हुआ है। स्नातक स्तर पर तो विज्ञान की किताबें हिन्दी में मिलती हीं नहीं है जिससे अंग्रेजी में कमजोर छात्र बहुत पीछे रह जाते हैं। शोध तो पूरी तरह से अंग्रेजी में ही होता है जो सबसे बड़ी चुनौती है। आज आवश्यकता है कि जनसाधारण के लिए उन्हीं की भाषा में किताबें लिखी जायें ताकि विज्ञान लोकप्रिय हो सके। देश में लेखन परीक्षा को ध्यान में रखकर किया जाता है जबकि विषयानुसार लेखन कार्य कम हुआ है।

विषय प्रवर्तन करते हुए हिन्दी एवं पत्रकारिता विभाग, ल0वि0 के पूर्व विभागाध्यक्ष **प्रो0 सूर्यप्रसाद दीक्षित** ने कहा कि हिन्दी के समक्ष जो सबसे बड़ी चुनौती है, वह है ज्ञान–विज्ञान का लेखन। आज विज्ञान और तकनीकी का युग है। सर्जनात्मक लेखन का महत्व अलग है। हमारे अंदर ज्ञान की कमी नहीं है, संसाधनों की भी कमी नहीं है। कमी है तो इच्छाशक्ति की। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ज्ञान–विज्ञान की नवीनतम सामग्री अपडेट होती रहती है जबकि हिन्दी में नहीं। प्रो0 दीक्षित ने कहा कि आज गरीब तबके या मध्यम वर्ग के बहुत से बच्चे जो अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाते, ऐसा नहीं है कि उनमें ज्ञान की कमी है, सोचने की क्षमता नहीं है, कमी है तो सिर्फ माध्यम की। वे विज्ञान की मूल बातों को अंग्रेजी में नहीं समझ पाते हैं, इसके लिए आवश्यकता है कि विज्ञान को अपनी भाषा में सीखें जिसके लिए हिन्दी में विज्ञान लेखन आवश्यक है।

कार्यशाला के प्रथम सत्र में प्रतिभागियों को सम्बोधित करते हुए राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के वैज्ञानिक **डॉ0 जयेन्द्र कुमार चौधरी** ने कहा कि विज्ञान कठिन और अरूचिकर विषय है। इसे अपनी भाषा में ही लिखने और पढने में रूचि पैदा होगी। आज देश के 90 प्रतिशत लोग हिन्दी बोल और समझ सकते हैं इसलिए अगर विज्ञान को हिन्दी में लिखा जाये तो कोई परेशानी नहीं है। डॉ0 चौधरी ने कहा कि वैज्ञानिकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे अनुसंधान आम जनमानस के लिए कर रहे हैं इसलिए शोध को हिन्दी में लिखें ताकि उसके बारे में सभी लोग समझ सकें। उन्होंने कहा कि चीन और जापान आदि देशों में उनके सभी शोध पत्र उनकी मातृ भाषा में छपते हैं, हमारे यहां उनके अनुवाद पर हजारों रूपये खर्च करने पड़ते हैं परन्तु हमारे देश में विपरीत स्थिति है। यहां शोध पत्र को अंग्रेजी में छापा जाता है जिसका संबंध आम आदमी से होता ही नहीं है। उन्होंने कहा कि हम शोध किसानों के लिए करते हैं। अगर इसको अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित कराते हैं तो किसान कैसे पढ़ पायेगा और कैसे अपनी फसल की सुरक्षा कर पायेगा। सबसे अहम बात यह है कि अगर वैज्ञानिक शोध को अंग्रेजी में लिखकर किसी अच्छे जर्नल में न छपवाये तो उसके आजीविका पर संकट आ जायेगा। अतः आवश्यकता है कि इस ओछी मानसिकता से बाहर आकर शोध को हिन्दी में लिखा जाये और उसी भाषा में प्रकाशित किया जाये।

सी0डी0आर0आई0, लखनऊ के वैज्ञानिक **डॉ0 प्रदीप श्रीवास्तव** ने अपने सम्बोधन में कहा कि भाषा महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है ज्ञान। यदि किसी व्यक्ति के पास ज्ञान है तो वो किसी भी जगह जा सकते हैं। डॉ0 श्रीवास्तव ने जैव विविधिता को कार्टूनों द्वारा समझाया ताकि आम व्यक्ति उसके उपयोग को अच्छी तरह समझ सके। हमारे देश में 16 ऐसे डायवर्सिटी जोन हैं जहां अलग–अलग मौसम हैं। डॉ0 प्रदीप श्रीवास्तव साइन्टून विधा का अविष्कार और व्यवहार करके विज्ञान को रोचक शैली में प्रचारित और प्रसारित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

वन विभाग, उत्तर प्रदेश के वन अधिकारी **डॉ0 महेन्द्र प्रताप सिंह** ने हिन्दी में पर्यावरण लेखन पर बताया कि पर्यावरण को बचाना हम सबकी जिम्मेदारी है। किसी एक विभाग या संस्था पर इसे नहीं छोड़ा जा सकता है। देश के सभी व्यक्तियों को मिलकर इस पर कार्य करना चाहिए। कोई दैवीय शक्ति स्वयं आकर इसका निदान नहीं करेगी। डॉ0 सिंह ने कहा कि पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए पॉलीथिन आदि का प्रयोग बंद कर देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिबद्ध होकर पेड़ लगाना चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा संख्या में वृक्ष हों जिससे पर्यावरण की सुरक्षा की जा सके। प्राचीन ग्रंथों रामचरितमानस, रामायण आदि ग्रंथों में भी वृक्षों की रक्षा का उल्लेख है।

कार्यशाला में सिमैप के पूर्व वैज्ञानिक **डॉ0 आनन्द अखिला** ने स्वास्थ्य और प्रसन्नता विषय पर चर्चा करते हुए बहुत से ऐसे पौधों, मसालों आदि के विषय में बताया जिनका प्रयोग सामान्य जीवन में हम करते अवश्य हैं किन्तु उनके उपयोगी तथ्यों की जानकारी नहीं होती। तुलसी, हल्दी, दालचीनी आदि के जीवन में बहुत से प्रयोग हैं। उन्होंने कहा कि विज्ञान हमारी भाषा से काफी दूर है। विज्ञान को आम जनमानस के करीब लाने के लिए उसे मनोरंजक तरीके से प्रस्तुत करना होगा।

कार्यशाला के दूसरे दिन तृतीय सत्र में वरिष्ठ वैज्ञानिक, आई0आई0टी0आर0, लखनऊ के **प्रो0 कृष्ण गोपाल दुबे** ने हिन्दी में वैज्ञानिक शोध लेखन तकनीक के बारे में बताते हुए कहा कि शोध लेखन में वैज्ञानिक सोच होना बहुत आवश्यक है। बिना इसके किसी भी शोध में प्रमाणिकता नहीं आ सकती है। विषयों में व्यापकता बहुत जरूरी है। उन्होंने कहा कि विज्ञान में शोध हेतु विषयों की व्यापकता है किन्तु वह हिन्दी में नहीं है जिसके कारण आम जनमानस के बीच उसकी उपस्थिति नहीं है। प्रो0 दुबे ने कहा कि सोच समझकर लिखना चाहिए, नहीं तो शब्दों का गलत अर्थ वाक्य को गलत कर देगा। देश में 90 प्रतिशत लोग हिन्दी जानते हैं फिर भी हम भरोसा अमेरिका पर करते हैं, यह दुखद है। उन्होंने कहा कि विज्ञान में विषयों की भरमार है जिससे शोधार्थी को विषय के चयन में सहजता रहती है और शोध करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। उन्होंने कहा कि शोध पत्र में सारांश जरूरी है क्योंकि सारांश में शोध से संबंधित पूर्ण जानकारी समाहित होती है।

डॉ0 सी0एम0 नौटियाल, निदेशक, एन0बी0आर0आई0 एवं सीमैप, लखनऊ, द्वारा मीडिया में विज्ञान लेखन को बताते हुए कहा गया कि विज्ञान संप्रेषण में समझाने और लेखन की समस्या है। विज्ञान में आंकड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन लेखन में आंकड़ों को सरल ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए। विज्ञान बहुत नीरस और शुष्क विषय माना जाता है इसलिए आम आदमी के लिए विज्ञान को सरलता और रोचकता के साथ लिखा जाना चाहिए। लेखन किसी भी माध्यम के लिए हो लेकिन अभिव्यक्ति सुस्पष्ट होनी चाहिए। वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग आमजन के अनुकूल होना चाहिए। भाषा शैली का प्रयोग प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया या लोक माध्यम को ध्यान में रखकर करना चाहिए। तकनीकी मामलों में अभिव्यक्ति बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए। विज्ञान को न समझने वाले या तो उसकी हंसी उड़ाते हैं या डरते हैं। डॉ0 नौटियाल ने कहा कि प्रसिद्ध जनमाध्यम रेडियो के कार्यक्रमों में वार्ता–संगोष्ठी, परिसंवाद, पहेली, नाटक एवं प्रहसन आदि में वैज्ञानिक सोच पर बल दिया जाना चाहिए। विज्ञान लेखन केवल अंग्रेजी के माध्यम से ही नहीं बल्कि हिन्दी की कविताओं के माध्यम से भी किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि लिखने में रोचकता हो तो वह पठनीय होता है इसीलिए रेडियो लेखन रोचक होना चाहिए। रेडियो में सीमायें हैं इसमें शब्द चित्र का रूप धारण कर श्रोताओं को समझाता है। डॉ0 नौटियाल ने कहा कि विज्ञान लेखन में उच्चारण का विशेष महत्व है। अगर उच्चारण गलत हो जाये तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। हिन्दी भाषियों की संख्या अधिक है। अगर हिन्दी में लिखा जाए तो ज्यादा से ज्यादा व्यक्तियों तक पहुंच बनायी जा सकती है।

जन्तु विज्ञान के विभागाध्यक्ष, ल0वि0 के **प्रो0 ए0के0 शर्मा** ने कहा कि हिन्दी की स्थिति बहुत अच्छी है। हिन्दी दिल और दिमाग की भाषा है। यह जन–सामान्य की भाषा है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अभिव्यक्ति का सर्वोच्च माध्यम हिन्दी भाषा ही है। विज्ञान की स्थिति भी बहुत सशक्त है लेकिन जब इसे हिन्दी में लिखते हैं तो बहुत कठिन हो जाता है। विज्ञान लेखन में सरलता होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि जहां तक संभव हो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को उनके वर्तमान अंग्रेजी स्वरूप में प्रयोग करना चाहिए एवं हिन्दी व अन्य भाषा में उनके जातीय रूप में अनुवाद करना चाहिए। प्रो0 शर्मा ने कहा कि वैज्ञानिक साहित्यकार नहीं होते और साहित्यकार वैज्ञानिक नहीं होते। अगर दोनों में सामन्जस्य हो तो विज्ञान को

हिन्दी में लिखना कठिन न होगा। उन्होंने कहा कि कुछ सामान्य वैज्ञानिक शब्द जो पहले से प्रचलित हैं, उनका अनुवाद नहीं करना चाहिए। अनुवाद करने से उनका अर्थ बदल सकता है।

02 सितम्बर 2012 को कार्यशाला के चौथे सत्र में प्रतिभागियों को सम्बोधित करते हुए ब्लाग पर वैज्ञानिक कहानी लिखने वाले रचनाकार **डॉ0 जाकिर अली रजनीश** ने कहा कि नये जनसंचार माध्यम 'ब्लाग' के माध्यम से विज्ञान को हिन्दी में लिखकर प्रचारित किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि आज दो दर्जन से अधिक ऐसे ब्लॉगर हैं जो हिन्दी में विज्ञान लेखन का कार्य कर रहे हैं। आने वाला समय इंटरनेट का है इसलिए हिन्दी में विज्ञान लेखन को और प्रोत्साहन मिलेगा। हिन्दी में विज्ञान कथा का 100 साल से भी अधिक का इतिहास है। उन्होंने कहा कि 1989 में हिन्दी भाषा में पहली विज्ञान कहानी 'टिंकल' में छपी। राहुल सांस्कृत्यायन, नवल बिहारी मिश्र, राजेश गंगवार, हरीश गोपाल आदि विज्ञान–कथा के लेखक हैं जिन्होंने विज्ञान को हिन्दी में लिखकर प्रचारित किया है। अंधविश्वासों को दूर करने में भी विज्ञान–लेखन आवश्यक है। उन्होंने कहा कि विज्ञान कथा लिखने हेतु प्रमाणिकता की बहुत जरूरत है। इससे विज्ञान की सत्यता पुष्ट होती है।

भूगर्भ विज्ञान विभाग, ल0वि0 में वरिष्ठ एसोसिएट प्रोफेसर **डॉ0 ध्रुवसेन सिंह** ने कहा कि हिन्दी साहित्यकारों की बातें पूर्णतः वैज्ञानिक हैं। साहित्यकार तो युगदृष्टा है, वह भविष्य की बातों को अपने साहित्य में प्रकट करता है। प्रकृति तो परिवर्तनशील है। इस संदर्भ में उन्होंने प्रसाद की कामायनी का जिक्र करते हुए हिमनदों के भविष्य पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि प्रकृति मानव–नियंत्रण से परे है, जब इस पृथ्वी पर मनुष्य नहीं था तब भी प्रकृति में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। यदि प्रकृति मानव के नियंत्रण में होती या उनके क्रिया कलाप से प्रकृति के स्वरूप में परिवर्तन होता तो निश्चय ही बाढ़ और सूखा जैसी समस्याओं से अभी तक मानव को मुक्ति मिल चुकी होती। उन्होंने कहा कि जिन सभ्यताओं का विकास अधिक हो जाता है वह शीघ्र नष्ट हो जाती है, ऐसा कई बार पृथ्वी पर हुआ है। उन्होंने पेड़–पौधों को पर्यावरण का थर्मामीटर बताते हुए कहा कि ये प्रकृति पर नियंत्रण रखते हैं। नदियां धर्म, आस्था और संस्कृति का प्रतीक हैं। परिवर्तन हेतु प्रकृति स्वंय जिम्मेदार है। वह अपना विकास और विनाश स्वयं करती है। इसके लिए मनुष्य जिम्मेदार नहीं है।

छठें सत्र में मानवशास्त्र विभाग, ल0वि0 के अध्यक्ष **प्रो0 नदीम हसनैन** ने हिन्दी में मानव–विज्ञान लेखन की समस्याएं एवं सम्भावनाएं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि भाषा और शब्दावली पर्याप्त है परन्तु इस पर कार्य करने वाले लोगों की कमी है। मानव से हमारी कहानी शुरू होती है और मानव पर ही समाप्त हो जाती है। उन्होंने कहा कि शारीरिक या जैविक विज्ञान को हिन्दी में लिखने में समस्याएं आती हैं लेकिन समस्याओं से मुकाबला कर लिखना चाहिए। हिन्दी के शब्द क्लिष्ट जरूर हैं लेकिन शब्द अच्छे हैं और लिखने के लिए शब्दावली बेहतर होनी चाहिए। इसी से मौलिक लेख किया जा सकता है। प्रो0 हसनैन ने एस0एम0एस0 पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि आज युवाओं ने शार्टकट लिखने के चक्कर में शब्दों के स्वरूप को ही बिगाड़ दिया है जिससे हिन्दी तथा अंग्रेजी में संक्रमण हो गया है। अब पता ही नहीं चलता कि उसे हिन्दी में पढ़ें या अंग्रेजी में।

कार्यशाला के समापन सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रति कुलपति **प्रो0 यू0 एन0 द्विवेदी** ने कहा कि विज्ञान लेखन में क्लिष्ट भाषा की जगह सर्वप्रचलित सामान्य भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि व्यक्ति अपनी मातृ भाषा में सोचता है और उसी में विचार अभिव्यक्त करता है किन्तु विडम्बना है कि भारत में विज्ञान अंग्रेजी में ही सोचा–समझा जा रहा है।

कार्यशाला के मुख्य अतिथि **प्रो0 भूमित्र देव** ने कहा कि विज्ञान विषद है, सकरा नहीं। यह किसी भी विषय में प्रवेश कर सकता है अगर उसका इंतजार किया जाये तो। दुखद है कि युवा वर्ग की मातृ भाषा में बहुत अरूचि हो गई है। आज के युग में आधुनिकता की आवश्यकता है परन्तु मातृभाषा का दर्द भी है जिसे युवा अपना नहीं रहे हैं। देश का मूल संविधान भी अंग्रेजी में है जिसे आम व्यक्ति पढ़ नहीं सकता। उन्होंने कहा कि 2012 में विश्वभर में प्रतिवर्ष पढ़ने की दर का अध्ययन किया गया कि कितने लोग पढ़ने में रूचि रखते हैं उसमें भारत 72 वें स्थान पर है। इससे साफ जाहिर होता है कि भारत में अब लोगों की पढ़ने में रूचि कम हो रही है। शब्द तो सरोवर में डूबी हुई सीढ़ी की तरह है जिसे मनुष्य ज्ञान द्वारा अर्जित कर आगे बढ़ सकता है। प्रो0 देव ने कहा कि नये शब्दों की रचना पर विचार करना होगा, नये शब्दों को गढ़ना होगा तभी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश को पहचान मिल सकती है। अगर कोई विद्वान विश्वस्तर पर अच्छा ज्ञान अर्जित करना चाहता है तो उसे एक–एक शब्द को ध्यान से पढ़ना और समझना होगा। यह विकास का मुददा हो सकता है। नये शब्दों की गुणवत्ता तथा नये रचे गये शब्द राष्ट्रीय विकास के तथ्यों को नापने का पैमाना हो सकता है। उन्होंने कहा कि अधिकांश नये शब्द हमारे पढ़े लिखे लोगों द्वारा कम रचे गये हैं, लोक–रचित ज्यादा हैं। आम व्यक्तियों ने हिन्दी में शब्दों की रचना की है। आज सार्थक मौलिक विज्ञान लेखन की सतत आवश्यकता है। भाषा में जो रस है, भाषाविदों को समझना और समझाना होगा।

प्राचीन इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं लखनऊ विश्वविद्यालय के डीन, कला संकाय **प्रो0 शिवनन्दन मिश्र** ने कहा कि विज्ञान को जनसमान्य तक ले जाने के लिए विद्वानों और शिल्पियों को एक साथ बैठाकर शब्दों का गठन हिन्दी में करना होगा तभी विज्ञान जन–जन तक पहुंचेगा। उन्होंने कहा कि प्रायोगिक विज्ञान, शिल्पियों के पास है और शस्त्रीय ज्ञान विद्वानों के पास। इसलिए अपने यहाँ हिन्दी में विज्ञान लेखन की परम्परा विकसित नहीं हो पायी।

समापन समारोह में भी मुख्य अतिथि, अधिष्ठाता तथा प्रतिभागियों का स्वागत हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्ष प्रो0 कैलाश देवी सिंह ने किया और कार्यशाला की उपलब्धियों पर उन्होंने प्रकाश डाला। कार्यशाला का संचालन **डॉ0 रमेशचंद्र त्रिपाठी** ने तथा धन्यवाद ज्ञापन **प्रो0 पवन अग्रवाल** ने दिया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी
''वातावरणीय क्षरण व जलजीव पालन''

स्नातकोत्तर प्राणि विज्ञान विभाग,
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ





बप्पा श्रीनारायण वोकेशनल पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ के प्राणि विज्ञान विभाग एवं एप्लाइड एण्ड नेचुरल सांइस फाउण्डेशन, हरिद्वार के संयुक्त तत्वाधान् में ''वातावरणीय क्षरण व जलजीव पालन'' विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन दिनांक 28 अप्रैल 2013 को किया गया। इस अवसर पर प्रो0 भूमित्र देव, पूर्व कुलपति गोरखपुर, रूहेलखण्ड व आगरा विश्वविद्यालय मुख्य अतिथि, प्रो0 ए0 के0 शर्मा0 विभागाध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय सम्मानित अतिथि, डॉ0 पी0 सी0 महान्ता, पूर्व निदेशक शीतजल मत्स्य संस्थान भीमताल(उत्तराखण्ड) व प्रो0 ए0 के0 चोपड़ा, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार उपस्थित थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री टी0 एन0 मिश्र, अध्यक्ष, बी0 एस0 एन0 वी0 इन्स्टीटयूट नें की। कार्यक्रम का शुभारम्भ दीप प्रज्जवलन व सरस्वती वन्दना से किया गया। डॉ0 सुधीश चन्द्र, विभागाध्यक्ष ने कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की तथा प्राचार्य डॉ0 जी0 सी0 मिश्र ने अतिथियों व प्रतिभागियों का स्वागत किया। इस अवसर पर एक स्मारिका एवं सारांश पुस्तिका का विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया। मुख्य अतिथि प्रो0 देव नें कहा, कि लालच की क्रांति पर्यावरण विघटन का मुख्य कारण है। प्रो0 ए0 के0 शर्मा ने बताया कि पर्यावरण विघटन की दिशा व दशा के लिए मानव की दिशाहीनता ही जिम्मेदार है। एप्लाइड एण्ड नेचुरल सांइस फाउण्डेशन, हरिद्वार द्वारा प्रो0 भूमित्र देव को लाइफ टाइम एचीवमेन्ट एवार्ड, प्रो0 ए0 के0 शर्मा को फाउण्डेशन गोल्ड मेडल, डॉ0 सुधीश चन्द्र व संजीव शुक्ल को फाउण्डेशन फेलो के एवार्ड से सम्मानित किया गया। पूर्व विभागाध्यक्ष श्री बृजेन्द्र सिंह को उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए भी सम्मानित किया गया।





संगोष्ठी के प्रथम सत्र में प्रो0 ए0 के0 शर्मा द्वारा बीज–भाषण एवं डॉ0 कृष्ण गोपाल वरिष्ठ वैज्ञानिक, आई0 आई0 टी0 आर0, लखनऊ, डॉ0 पी0 सी0 महान्ता, पूर्व निदेशक शीतजल मत्स्यकी, भीमताल द्वारा पर्यावरण क्षरण विषयक पर आमंत्रित व्याख्यानों का आयोजन किया गया तथा शोध छात्रों नें अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये। सत्र की अध्यक्षता प्रो0 एस0 पी0 त्रिवेदी, प्राणि विज्ञान विभाग, ल0वि0वि0, सह–अध्यक्षता प्रो0 वाई0 के0 शर्मा, अध्यक्ष वनस्पति विभाग ल0वि0वि0 व डॉ0 जे0 पी0 शुक्ल, किसान पी0 जी0 कॉलेज, बस्ती नें किया।

संगोष्ठी के द्वितीय सत्र की अध्यक्षता प्रो0 पद्मा सक्सेना, सह–अध्यक्षता डॉ0 सुनील धवन व डॉ0 भगवान दास द्वारा की गयी। सत्र में डॉ0 ए0 के0 पाण्डेय, वैज्ञानिक, एन0 बी0 एफ0 जी0 आर0, लखनऊ, प्रो0 एस0 पी0 त्रिवेदी, डॉ0 एम0 सिराजुद्दीन प्राणि विज्ञान विभाग, ल0वि0वि0 तथा पी0 के0 बाजपेयी, डी0 ए0 वी0 कॉलेज, कानपुर के आमंत्रित व्याख्यानों का आयोजन किया गया। सत्र में मछलियों में फेरोमोन व डी0 एन0 ए0 प्रोफाइलिंग

तथा इनका मत्स्य पालन में उपयोग पर प्रकाश डाला गया तथा यह भी स्पष्ट किया गया कि भारतीय मत्स्य प्रजातियों का सूचीबद्ध करना व उनको बचाना अत्यन्त अनिवार्य है। शोध छात्रों नें सम्बन्धित शोध पत्रों का प्रस्तुतीकरण भी किया। द्वितीय सत्र के समानान्तर पोस्टर सत्र का भी आयोजन किया गया इसमें लगभग 25 शोध छात्रों ने अपने शोध पत्रों का पोस्टर विधि से प्रस्तुत किये। पोस्टर सत्र की अध्यक्षता डॉ0 एम0 सिराजुद्दीन ल0वि0वि0 तथा सह–अध्यक्षयता डॉ0 एन0 एच0 नकवी , शिया पी0 जी0 कॉलेज व डॉ0 अर्चना राजन, राजकीय डिग्री कॉलेज, हरख, बाराबंकी द्वारा की गयी।





संगोष्ठी के समापन सत्र की अध्यक्षता प्रो0 ए0 के0 शर्मा व सह–अध्यक्षता डॉ0 प्रमोद कुमार व डॉ0 पी0 के0 बाजपेई नें की। उक्त अवसर पर प्रतिभागियों व वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किये तथा इस बात पर बल दिया कि जलजीव पालन रोजगार की दिशा में सहायक हो सकता है परन्तु वातावरणीय क्षरण इसको अत्यधिक हानि पहुंचा रहा है। कार्यक्रम के संयोजक–सचिव डॉ0 संजीव शुक्ल ने कहा, कि उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में जलजीव पालन के विकास हेतु अपार सम्भावनायें हैं किन्तु जागरूकता का अभाव है। उन्होंने अपने विभागीय सहयोगियों डॉ0 वीना पी0 स्वामी, डॉ0 अमृता सिंह, डॉ0 अशोक कुमार, डॉ0 शशि कान्त शुक्ल व डॉ0 तबरेज अहमद एवं अन्य कर्मचारियों के अनवरत् सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित किया एवं डॉ0 डी0 के0 श्रीवास्तव के सम्पादकीय सहयोग के लिए कृतज्ञता भी ज्ञापित किया। युवा वैज्ञानिकों में उत्कृष्ट शोध प्रेरणा के उद्देश्य से, सर्वश्रेष्ठ पोस्टर प्रस्तुति हेतु ज्योति बाजपेयी को "श्री के0 एस0 दुबे मेमोरियल एवार्ड" तथा सर्वश्रेष्ठ मौखिक प्रस्तुति हेतु अनुभा शुक्ला को " प्रो0 यू0 डी0 शर्मा एवार्ड" से सम्मानित किया गया। विभागाध्यक्ष डॉ0 सुधीश चन्द्र नें संगोष्ठी के सफल आयोजन के हेतु सभी प्रतिभागियों व अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापन किया व बताया कि महाविद्यालय का प्राणि विज्ञान विभाग उत्कृष्ट शोध व शिक्षण के लिए कटिबद्ध है तथा छात्रों को वैज्ञानिक शोध हेतु प्रेरित करने के लिए इस तरह के आयोजन करता रहता है। प्राचार्य डॉ0 जी0 सी0 मिश्र ने कहा, कि यद्यपि हमारे पास संसाधन कम हैं तथापि महाविद्यालय ऐसे आयोजन भविष्य में भी करता रहेगा व इस हेतु जन जागरूकता पैदा करता रहेगा। संगोष्ठी का समापन राष्ट्रीय–गान के उपरान्त किया गया।







प्रस्तुति–
डॉ0 अशोक कुमार एवं डॉ0 शशि कान्त शुक्ल
प्राणि विज्ञान विभाग,
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

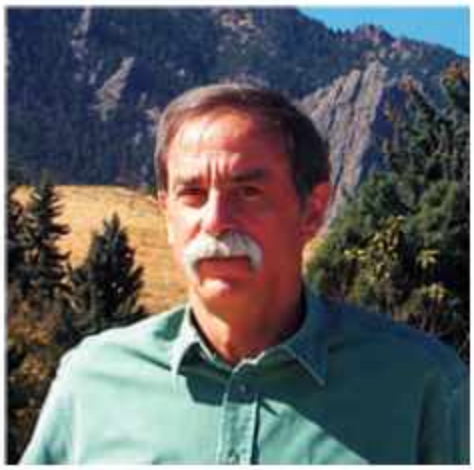
नोबेल पुरस्कार विजेता विद्वान – वर्ष 2012

दीपक कुमार श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
dksflow@hotmail.com

1. भौतिक विज्ञान



प्रो0 सर्ज हेरोक(जन्म तिथि–11.09.1944)



प्रो0 डेविड जेफ्री वाइनलैण्ड(जन्म तिथि–24.02.1944)

वर्ष 2012 में भौतिक विज्ञान के लिए नोबल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑव साइंस द्वारा संयुक्त रूप से फ्रांसीसी भौतिक शास्त्री **प्रो0 सर्ज हेरोक**, अध्यक्ष–क्वांटम फिजिक्स, कॉलेज डि फ्रांस ऑफ इकोल नॉर्मेल सुपीरियर, पेरिस, फ्रांस एवं अमेरिकन भौतिक शास्त्री **प्रो0 डेविड जेफ्री वाइनलैण्ड**, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ स्टैंडर्डस एण्ड टेक्नोलॉजी(एन0 आई एस0 टी0), भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला, एण्ड यूनिवर्सिटी ऑफ कोलोराडो, बाउल्डर, कोलोराडो, यू0 एस0 ए0, को उनके कार्य "ग्राउंड–ब्रेकिंग एक्सपेरिमेंटल मेथड दैट इनेबल मेजरिंग एण्ड मेनिपुलेशन आफ इन्डिविजुअल क्वांटम सिस्टम्स–ए स्टडी ऑफ द पार्टिकल ऑफ लाइट, द फोटोन" पर प्रदान किया गया।

2. रसायन विज्ञान



प्रो0 रॉबर्ट जोसेफ लेफ्कोविट्ज(जन्म तिथि–15.04.1943)



प्रो0 ब्रायन केंट कोबिल्का(जन्म तिथि–13.05.1955)

वर्ष 2012 में रसायन विज्ञान के लिए नोबल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑव साइंस द्वारा संयुक्त रूप से अमेरिकी फिजिशियन–वैज्ञानिक, **प्रो0 रॉबर्ट जोसेफ लेफ्कोविट्ज**, हॉवर्ड ह्यूज मेडिकल इंस्टीट्यूट एण्ड ड्यूक यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर, डरहम, एन0 सी0, यू0 एस0 ए0, जेम्स बी0 ड्यूक प्रोफेसर ऑफ मेडिसिन एण्ड प्रोफेसर ऑफ बायोकेमिस्ट्री एण्ड केमिस्ट्री, ड्यूक यूनिवर्सिटी तथा अमेरिकन **प्रो0 ब्रायन केंट कोबिल्का**, डिपार्टमेंट ऑफ मॉलिक्युलर एण्ड सेल्युलर फिजियोलॉजी, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन, स्टैनफोर्ड, सी0 ए0, यू0 एस0 ए0, को उनके शोध कार्य "जी प्रोटीन–कपल्ड रिसेप्टर्स" पर प्रदान किया गया। वह "जी प्रोटीन कपल्ड रिसेप्टर्स" पर कार्य करने वाली एक

जैव–प्रौद्योगिकी कंपनी "कांफोमेट्रिक्स" के सह–संस्थापक भी हैं। वर्ष 2011 में उनको दुनिया भर में प्रसिद्ध अमेरिका की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी(एन0 ए0 एस0, यू0 एस0 ए0) हेतु भी नामित किया गया था।

3. चिकित्सा विज्ञान



सर जॉन बर्टरांड गर्डन(जन्म तिथि–02.10.1933)



शिन्या यामानाका(जन्म तिथि–04.09.1962)

वर्ष 2012 में चिकित्सा विज्ञान के लिए नोबल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑव साइंस द्वारा संयुक्त रूप से ब्रिटिश विकास जीवविज्ञानी **सर(डॉ0) जॉन बर्टरांड गर्डन**, गर्डन संस्थान, कैम्ब्रिज, यू0 के0, तथा वरिष्ठ स्टेम कोशिका जापानी जीवविज्ञानी अन्वेषणकर्ता **प्रो0 शिन्या यामानाका**, इंस्टीट्यूट फॉर फ्रंटियर मेडिकल साइंसेज, क्योटो विश्वविद्यालय, ग्लैडस्टोन संस्थान, सेनफ्रांसिस्को, यू0 एस0 ए0, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सेनफ्रांसिस्को, में शरीर रचना विज्ञान(एनाटमी) के प्रोफेसर, को "परिपक्व कोशिकाओं को स्टेम कोशिकाओं में परिवर्तित करने के" उत्कृष्ट योगदान हेतु फिजियोलॉजी या चिकित्सा के क्षेत्र में प्रदान किया गया। **सर(डॉ0) जॉन बर्टरांड गर्डन**, वर्ष 2009 के लास्कर पुरस्कार विजेता तथा रॉयल सोसायटी के फैलो भी हैं। इनको परमाणु प्रत्यारोपण और क्लोनिंग में अग्रणी अनुसंधान करने के लिए जाना जाता है। वर्तमान में **प्रो0 शिन्या यामानाका** स्टेम कोशिका अनुसंधान की अंतर्राष्ट्रीय सोसायटी के अध्यक्ष हैं।

4. साहित्य



गुआन मोए
(जन्म तिथि–17.02.1955)

वर्ष 2012 में साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑव साइंस द्वारा **मो यान** के नाम से प्रचलित चीनी साहित्यकार, उपन्यासकार एवं कहानीकार **डॉ0 गुआन मोए** को उनके उत्कृष्ट लेखन "हू विद हैलुकिनेटरी रियलिज्म मर्जेज फोक टेल्स, हिस्ट्री एण्ड द कन्टेम्पोररी" के लिए प्रदान किया गया।

5. अर्थशास्त्र



प्रो0 एल्विन इलियट रॉथ(जन्म तिथि–18.12.1951)



प्रो0 लॉयड स्टोवेल शैपले(जन्म तिथि–02.06.1923)

वर्ष 2012 में अर्थशास्त्र के लिए नोबल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑव साइंस द्वारा संयुक्त रूप से अमेरिकी अर्थशास्त्री **प्रो0 एल्विन इलियट रॉथ**, क्रेग एण्ड सूसन मकॉ प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी एवं गुंड प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड बिजिनेस एडकमिनिस्ट्रेशन, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, तथा अमेरिकी अर्थशास्त्री व गणितज्ञ **प्रो0 लॉयड स्टोवेल शैपले**, प्रोफेसर एमेरिटस, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, लॉस एंजेलिस, को उनके उत्कृष्ट कार्य "फॉर द थियोरी ऑफ स्टेबल अलोकेशन्स एण्ड द प्रैक्टिस ऑफ मार्केट डिजाइन" के लिए प्रदान किया गया।

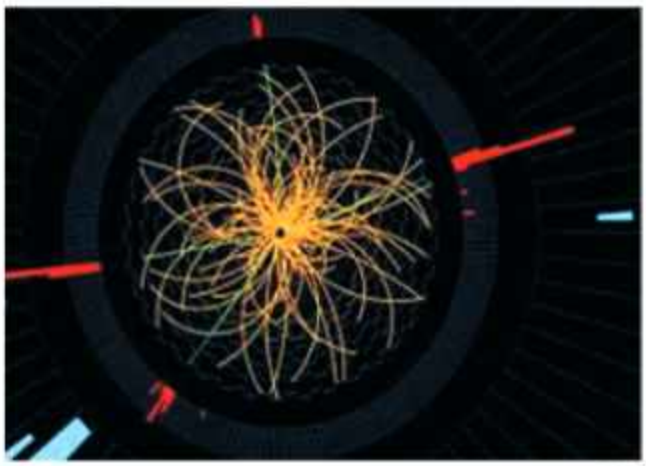
गॉड पार्टिकल (हिग्ज बोजॉन)

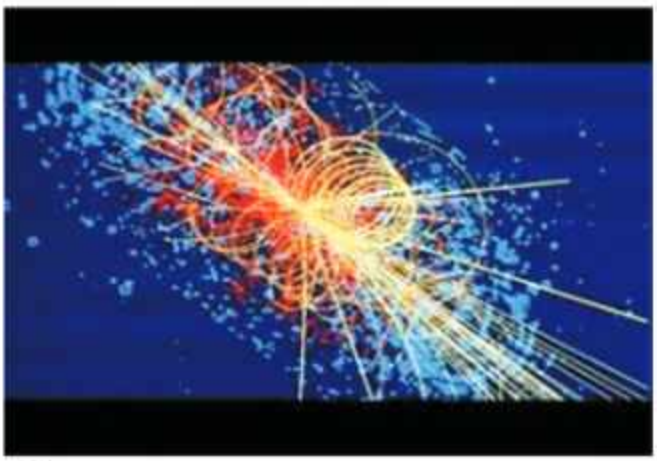
राम कुमार तिवारी
भौतिक विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 बी0 पी0 जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
rktshri@yahoo.co.in





सर्न की प्रयोगशाला





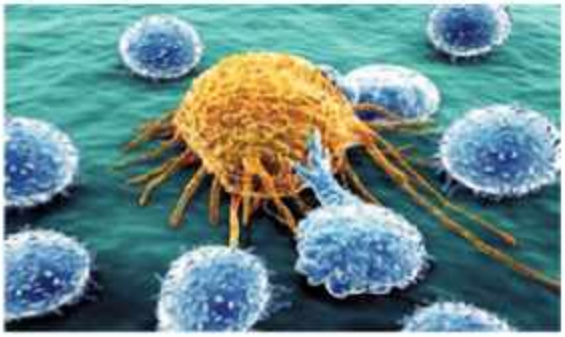
वैज्ञानिक प्रयोग

मनुष्य की सबसे बड़ी जिज्ञासा है कि धरती पर सृष्टि की रचना कैसे हुई? इस एक प्रश्न के उत्तर की खोज में इंसान सदियों से अपने दिमाग को उलझा रहा है, परन्तु आज इस प्रश्न का रहस्य शीघ्र ही खुल जायेगा। उम्मीद की जा रही है कि ब्रहमांड कैसे बना और कब बना, यह राज भी अब खुल जायेगा। स्विट्जरलैंड के जिनेवा के पास धरती के कई फुट नीचे सर्न की प्रयोगशाला में हजारों वैज्ञानिक इस प्रश्न की तलाश में लगे थे। फ्रांस और स्विट्जरलैंड की सीमा के पास जमीन के 300 फुट नीचे वैज्ञानिक वर्षों से प्रयोग कर रहे थे जहाँ वैज्ञानिकों की टीम "**गॉड पार्टिकल**" के रहस्य को सुलझाने के नजदीक जा पहुंची है। "**गॉड पार्टिकल**" का नाम हिग्स बोजॉन है। हिग्स बोजॉन या गॉड पार्टिकल विज्ञान की ऐसी अवधारणा है जिसे अभी तक प्रयोग द्वारा साबित नहीं किया जा सका है। यदि इसकी उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं तो ये पता लग सकेगा कि कणों में भार क्यों होता है तथा साथ ही यह भी पता चल सकेगा कि ब्रहमांड की उत्पत्ति कैसे हुई होगी। भार वह है जो कोई चीज अपने अंदर रख सकता है। यदि कुछ नहीं होगा तो फिर किसी वस्तु के परमाणु उसके भीतर घूमते रहेंगे और जुड़ेंगे ही नहीं। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक रिक्त स्थान में एक फील्ड बनी हुई है जिसे हिग्स फील्ड का नाम दिया गया। इस फील्ड में कण होते हैं जिन्हें हिग्स बोजॉन कहा गया है।

जैव रसायन संबंधित नवीन जानकारी एवं प्रगति

सुधीर मेहरोत्रा एवं अल्पना माथुर,
जैव रसायन विज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ(उ0प्र0)–226007, भारत
sudhirankush@yahoo.com, a4math8@gmail.com

1. जैव रसायन विज्ञान जीवन के दिल में है। यह विविध है और इसमें शामिल विषय हैं।





पार्किन्सन्स रोग की औषधि

- ❖ जैव प्रौद्योगिकी और जैव सूचना विज्ञान
- ❖ विकास और रोग
- ❖ अनुवांशिक विज्ञान
- ❖ संयंत्र जीव विज्ञान
- कोशिका जीव विज्ञान और संकेत
- ऊर्जा और चयापचय
- आण्विक जीव विज्ञान

आज शुद्ध जैव रसायन का मुख्य केंद्र जैविक अणुओं के अध्ययन और समझने में है। सूक्ष्म जैव रसायन आणविक जीव विज्ञान से सम्बंधित है। अनुवांशिक जानकारी डीएनए में होती है जिसके द्वारा आणविक तंत्र के अध्ययन से जीवन की प्रक्रियाओं में परिणाम सक्षम है। अधिकतर यह ऐसी चीजों की संरचना का ज्ञान प्रदान करता है जो जीवन के साथ जुड़े कार्यों में प्रयोग होती हैं जैसे–प्रोटीन, न्युक्लिक अम्ल, कार्बोहाइड्रेट और लिपिड। प्रत्येक कोशिका का रसायन शास्त्र भी छोटें अणुओं और आयनों की प्रतिक्रिया पर निर्भर करता हैं। यह अकार्बनिक हो सकता है, उदाहरण के लिये पानी और धातु, आयन या जैविक, उदाहरणार्थ–अमीनो अम्ल प्रोटीन के निर्माण में उपयोग किया जाता है। तो इस तरह से जैव रसायन, रसायनिक संरचनाओं की खोज के बारे में एक अध्ययन है।

2. पार्किन्सन्स रोग की औषधि

रसायनिक जीवविज्ञान के हाल ही में प्रकाशित एक नए अध्ययन में वैज्ञानिकों ने एक दोहरी अवरोध विधि का वर्णन किया है जिसमें एक जैसे प्रोटीन अवरोध का आविष्कार हुआ है जो कि पार्किन्सन्स के प्रोटीन का नाश कर के बीमारी से मुक्ति दिलाता है।



3. और नहीं मधुमेह

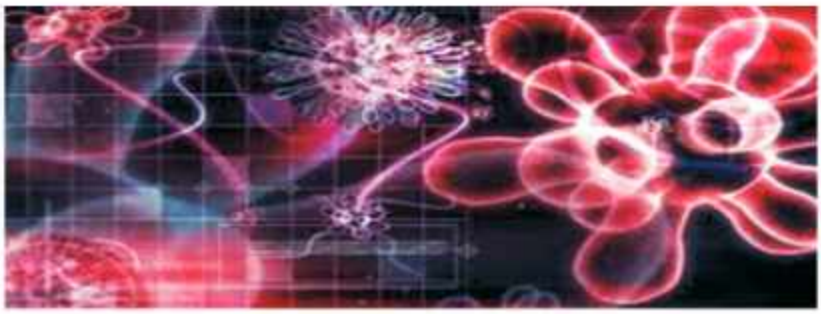
स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय ने एक टीके का वैज्ञानिक परीक्षण किया गया है और टाईप 1 मधुमेह से निपटने के लिए बनाया गया है। माना जा रहा है कि यह टीका इस बीमारी का इलाज करने में सक्षम है।

4. जैव रसायन और प्रौद्योगिकी

यी लू और उनके सहयोगियों ने जीवाश्म ईंधन के विकल्प खोजने के लिए एक बड़ी खोज की है। टीम उच्च दक्षता और लंबे जीवन के साथ वायुमंडलीय ऑक्सीजन की ऊर्जा को काम में लाने के लिये एक इंजाइम तैयार किया है। यह इंजाइमों की खोज में एक बडा कदम है ।

5. नए वायरस की खोज

एक नये अनुसंधान द्वारा यह जानकारी मिली है जिससे नए–नए वायरसों की खोज की जा सकती है। इस विधि में डीनए और आरएनए को निकाल कर उसका विश्लेषण किया जाता है। अनुवांशिक कोड के हर ज्ञात मानव के टुकड़े और रोगाणुओं के लिए दोनों को मैच कर के, खोज करने के लिए एक कलन विधि का उपयोग जाना जाता है और अंश हटा कर उसे छोड़ देते हैं वह एक नए वायरस की प्रजाति होती है। अतः इस तरह से नए वायरस की खोज की जा सकती है।



6. कॉफी–मोटापे से ग्रस्त लोगों के लिए एक वरदान

कॉफी स्वास्थ्य प्राकृतिक संयंत्र आधारित फीनॉल पदार्थों में समृद्ध है। हाल ही में यह खोज की गई है जिसके अनुसार कॉफी पीने से मोटापे का खतरा कम हो जाता है और उच्च रक्तचाप तथा टाईप 2 मधुमेह एवं अन्य विकारों को भी दूर करता है।



7. कैंसर के इलाज में अफ्रीकी पौधों के जैव रसायनों का प्रयोग

अफ्रीकी औषधीय पौधों में कैंसर कोशिकाओं के प्रसार को रोकने वाले रसायन होते हैं। संयंत्र सामग्री को अब चिकित्सीय क्षमता का मूल्यांकन करने के क्रम में आगे के विश्लेषण से गुजरना होगा । अफ्रीकी औषधीय पौधों में उपस्थित सक्रिय तत्व ट्यूमर कोशिकाओं को मारने में सक्षम हो सकता है। वह इस प्रकार पारंपरिक कीमोथेरेपी का उत्तर है और कैंसर के लिए नई चिकित्सकीय उपचार के विकास के लिए एक उत्कृष्ट प्रारंभिक बिंदु का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह पदार्थ थीस्ल की जंगली काली मिर्च और इथियोपियाई मिर्च के रूप में मौजूद हैं।



इस प्रकार जैव रसायन दवाओं के विकास, प्रौद्योगिकी ,स्वास्थ्य, उपापचय की पढ़ाई, नये रोगाणुओं की खोज, टीका विकास आदि में जैव रसायन के लिए कोई सीमा नहीं है यह एक उभरता हुआ और बहुत समृद्ध क्षेत्र है।

बादल फटना

दिव्यांश श्रीवास्तव
छात्र–कक्षा 8, ला मार्टीनियर कॉलेज, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
divyansh 21@hotmail.com

बादल फटना बारिश का एक चरम रूप है। इस घटना में बारिशके साथ कभी–कभी गरज के साथ ओले भी पड़ते हैं। सामान्यत: बादल फटने के कारण सिर्फ कुछ मिनट तक मूसलाधार बारिश होती है लेकिन इस दौरान इतना पानी बरसता है कि क्षेत्र में बाढ़ जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। बादल फटने की घटना प्रायः पृथ्वी से 15 किलोमीटर की ऊंचाई पर घटती है। इसके कारण होने वाली वर्षा लगभग 100 मिलीमीटर प्रति घंटा की दर से होती है। कुछ ही मिनट में 2 सेंटी मीटर से अधिक वर्षा हो जाती है जिस कारण भारी तबाही होती है।






मौसम विज्ञान के अनुसार जब बादल भारी मात्रा में आद्रता यानि पानी लेकर आसमान में चलते हैं और उनकी राह में कोई बाधा आ जाती है, तब वो अचानक फट पड़ते हैं। यानि संघनन बहुत तेजी से होता है। इस स्थिति में एक सीमित क्षेत्र में कई लाख लीटर पानी एक साथ पृथ्वी पर गिरता है, जिसके कारण उस क्षेत्र में तेज बहाव वाली बाढ़ आ जाती है। इस पानी के रास्ते में आने वाली हर वस्तु क्षतिग्रस्त हो जाती है। भारत के संदर्भ में देखें तो प्रति वर्ष मॉनसून के समय नमी को लिए हुए बादल उत्तर की ओर बढ़ते हैं, फलस्वरूप हिमालय पर्वत एक बड़े अवरोधक के रूप में सामने पडता है। जिसके कारण उत्तरी भारत के क्षेत्रों में भारी बारिश होती है।

दिनांक 16–06–2013, दिन रविवार, दोपहर में उत्तराखण्ड के कई इलाकों में इसी वजह से फटने वाले बादलों से आने वाली बाढ़ ने जबरदस्त तबाही मचाई, जिसमें हजारों लोगों को अपनी जान–माल से हाथ धोना पड़ा। जब कोई गर्म हवा का झोंका ऐसे बादल से टकराता है तब भी उसके फटने की आशंका बढ़ जाती है। उदाहरण के तौर पर 26 जुलाई 2005 को मुंबई में बादल फटे थे तब वहाँ बादल किसी ठोस वस्तु से नहीं बल्कि गर्म हवा से टकराये थे।

नवीन विज्ञान समाचार

दीपक कोहली
5/104, विपुल खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ(उ0प्र0)–226010, भारत
deepakkohli64@yahoo.in

थाइरॉयड से बचाता है कैल्शियम

वैज्ञानिकों के एक अध्ययन में यह तथ्य प्रकाश में आया है कि महिलाओं के भोजन में कैल्शियम की कमी से हार्मोन में असामान्य समस्या पैदा हो सकती है जिससे हाइपरपैराथाइरॉयडिज्म जैसी बीमारी हो सकती है। अध्ययन के अनुसार आठ सौ में से एक इस बीमारी का शिकार हो सकता है और सबसे ज्यादा इस बीमारी के होने की संभावना रजोनिवृत्ति के बाद महिलाओं में होने को होती है। शोधकर्ताओं का कहना है कि भोजन में कैल्शियम की मात्रा बढ़ाने से बीमारी के खतरे को घटाया जा सकता है। गौरतलब है कि पीएचपीटी की बीमारी उस अवस्था में होती है जब पैराथाइरॉयड ग्रन्थियां ज्यादा मात्रा में पैराथाइरॉयड हार्मोन का स्राव करती हैं। इस बीमारी में हड्डी व वृक्क(किडनी) के प्रभावित होने के अतिरिक्त उच्च रक्तचाप और हृदय रोग होने की संभावना भी रहती है।

अध्ययन में यह तथ्य प्रकाश में आया कि जिन महिलाओं के भोजन में कैल्शियम की मात्रा ज्यादा थी, उनमें सबसे कम कैल्शियम लेने वाली महिलाओं की तुलना में पीएचपीटी होने की संभावना 44 प्रतिशत तक कम हो गई थी। यह आवश्यक है कि कैल्शियम को प्रतिदिन संतुलित मात्रा में लेना चाहिए। ज्यादा कैल्शियम लेने से भी बचना चाहिए क्योंकि इससे कुछ विपरीत प्रभाव भी हो सकते हैं।

रक्तचाप–शुगर नापने वाले सस्ते टेबलेट

भारत में आज भी रक्त चाप नपवाना या ब्लड शुगर टेस्ट करवाना आसान काम नहीं है। लेकिन देश में एक ऐसा मोबाइल टैबलेट आ गया है जो कुछ ही मिनटों में ये सारे टेस्ट कर देगा और वो भी काफी सस्ते दामों में। इसमें मात्र पचास रुपये का ही खर्च आयेगा। इस मोबाइल टेबलेट का नामकरण स्वास्थ्य स्लेट किया गया है और यह देखने में किसी आईपैड या टैबलैट की तरह ही लगता है। इसमें मात्र इतना ही अंतर है कि कुछ मेडिकल परीक्षणों के लिए यंत्र लगे होते हैं। इस टैबलेट का सबसे बड़ा फायदा यह है कि इसका उपयोग दूर–दराज के गांवों में आसानी से किया जा सकता है। साथ ही इसके आंकड़ों को लंबे समय तक एक डाटा बैंक में सुरक्षित रखा ज सकता है। अधिकांश मेडिकल तकनीकों के साथ यह दिक्कत है कि इन्हें डॉक्टरों के इस्तेमाल के लिए तैयार किया जाता हैं लेकिन भारत में एक डॉक्टर प्रायः व्यस्त रहता है जिससे अधिकांश मेडिकल काम कम्पाउंडरों द्वारा किया जाता है। इसलिए इसे बनाने वाले "कानव कहोल" का कहना है कि उन्होंने तय किया कि वो ऐसी तकनीक बनाएंगे जो एक आम गांव के स्वास्थ्यकर्मी के लिए उपयुक्त हो। इस टैबलेट और इससे जुड़े अटैचमेंट कोई भी चला सकता है।

खून से लग सकेगा ब्रेन ट्यूमर का पता

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक नई पद्धति विकसित की है, जिसके जरिए मस्तिष्क में बनने वाले ट्यूमरों का पता केवल रक्त की जांच से ही लगाया जा सकेगा। ब्रिटिश "नेचर मेडिसिन जर्नल" में प्रकाशित शोध के हवाले से इस बारे में जानकारी दी गई है। मैसाच्यूसेट्स जनरल हॉस्पिटल के शोधकर्ताओं ने बताया कि मस्तिष्क ट्यूमर की कैंसर कोशिकाएं माइक्रोवेसिकल्स कहलाने वाले गेंद के आकार की संरचनाएं खून में छोड़ देती हैं जिससे कैंसर का पता लगाया जा सकता है। कैंसर कोशिकाएं भी शरीर के दूसरे हिस्सों में मौजूद अपनी जैसी कोशिकाओं के साथ निरंतर संपर्क में बनी रहती हें और इसके लिए वे अपने कुछ अवयवों को वसा से बनी इन गेंदनुमा संरचनाओं में रखकर रक्त प्रवाह छोड़ देती हैं जो शरीर की दूसरी कोशिकाओं तक संदेश तथा दूसरे रसायनों को पहुंचाने का काम करते हैं। शोधकर्ताओं का कहना है कि इस पद्धति के जरिए चूहों तथा इंसानों के मस्तिष्क ट्यूमर का पता लगाने में कामयाबी हासिल हुई है। इस शोध में मस्तिष्क ट्यूमर से प्रभावित पच्चीस रोगियों को सम्मिलित किया गया।

ऐसे रोबो जो कीड़े–मकोड़े खा जायें

घर साफ करने वाले रोबो, मानव की तरह बात करने वाले रोबो, गाना गाने वाले रोबो, इन सबके बारे में आपने सुना ही होगा। पर अब जापान के "जिमी लूजी" और "जेम्स ऑगर" ने ऐसे रोबो बनाये हैं जो कीड़े–मकोड़ों को आपके घर से गायब कर दें। सिर्फ यही नहीं यह ऐसे रोबो हैं जो अपनी ऊर्जा के लिए भी कीड़े–मकोड़ो पर ही निर्भर हैं। जैसे कि चूहा मारने वाला रोबो। यह रोबो पहले तो चूहे को अपनी तरफ आकर्षित करेगा। जैसे ही चूहा निकट आयेगा यह चूहे को पकड़ लेगा। इसके बाद वह चूहा रोबो के ईंधन कक्ष यानी फ्यूल सेल में पहुँच जायेगा। वहाँ बिजली से उसके शरीर को नष्ट कर दिया जायेगा और जो ऊर्जा उत्पन्न होगी वह रोबो की ऊर्जा बढ़ायेगी। इस तरह से लैम्पशेड रोबो, जो लैम्प के रूप में मच्छर–मक्खियों को अपनी तरफ आकर्षित कर उन्हें खा जाता है, कॉबवेब रोबो, जो मकड़ी को अपने जाल में फँसा कर खा जाता है, और रोबो क्लॉक जो एक घड़ी की तरह दिखने वाला रोबो है, जो हर तरह के कीडों को खा जाता है, भी उनके कॉन्सेप्ट में मौजूद हैं।

बिना कागज और स्याही का प्रिन्टर

देखा जाए तो एक प्रिन्टर ढेरों कागज और ढेर सारी स्याही(इंक) बर्बाद कर देता है। दुनिया भर में कई शोधकर्ता ऐसी तकनीक को इजाद करने में लगे हुए हैं जिससे कम स्याही और कम कागज नष्ट हो। क्या कोई ऐसा प्रिंटर बन सकता है जो बिना कागज और इंक के ही काम कर सके। इसका जवाब है गाइरिकॉन शीट। यह एक ऐसी लाजवाब शीट है जिसमें लाखों छोटे–छोटे सेल्स होते हैं जिसमें तेल भरा होता है। हर सेल में एक छोटा सा गोल बीड होता है जो दो रेग का होता है। जब इसे प्रिन्टर में डाला जाता है तो बिजली के सिग्नल के अनुसार यह बीड पलट जाते हैं। इससे जहाँ–जहाँ पर स्याही की जरूरत होती है वहाँ–वहाँ बीड काले हो जाते हैं और शेष जगह सफेद रहते हैं। इसके अतिरिक्त जापानी कंपनी सांवा न्यूटेक ने भी एक बिना इंक बिना कागज से चलने वाला प्रिन्टर बनाया है। इसमें विशेष प्रकार की शीट उपयोग होती हैं जो तापमान के अनुसार अपने रंग बदल लेती हैं।

चीन में दुनिया का सबसे छोटा अंडा

चीन में दुनिया का सबसे छोटा अंडा मिलने की चर्चा है। चीनी अधिकारियों का कहना है कि चोंगकिंग नगरपालिका में पाया गया नया अंडा शायद अब तक दुनिया का सबसे छोटा अंडा होने का रिकॉर्ड तोड़ सकता है। मलेशियन बंटम प्रजाति की एक मुर्गी ने हाल में एक अंडा दिया है, जिसका आकार करीब दो सेंटीमीटर है और भार मात्र 2.58 ग्राम है। यह मुर्गी चोंगकिंग के शापिंगबा जिले के निवासी "हजाम हे दाइयू" की है। इस अंडे ने मीडिया का ध्यान अपनी ओर खींचा है और इसके मालिक भी हैरान हैं। दाईयू ने बताया कि यह मुर्गी अब तक 150 सामान्य अंडे दे चुकी है। ज्ञातव्य हो कि अभी तक दुनिया के सबसे छोटे अंडे का आकार 2.1 सेंटीमीटर और भार 3.46 ग्राम है। इसके मालिक अमेरिका के पश्चिमी वर्जीनिया के "डोनी रसेल" हैं।

सब ठीक कर देगा रोबोकॉप

सब कुछ ठीक रहा तो वह दिन दूर नहीं है, जब मुठभेड़ में पुलिस को मात देने के बावजूद भी अपराधी बच नहीं पायेंगे। अमेरिकी वैज्ञानिक इस रियल–लाइफ रोबोकॉप के सपने को साकार करने में जुटे हैं। सुनने में यह बात किसी साइंस फिक्शन की तरह लगती है कि क्राइम रोकने के लिए गलियों में पुलिस की गाड़ियों की जगह रोबोकॉप घूम रहे हैं। घायल पुलिसमैन या सोलजर्स क्रिमिनल्स का पीछा नहीं कर पाते। लेकिन "पेट्रोलबोट" नामक इस रोबोकॉप के आने के बाद पुलिस का काम आसान हो जायेगा। ये रिमोट कंट्रोल की मदद से "पेट्रोलबोट" को नियंत्रित कर पायेंगे। दरअसल ऐसे रोबोट को बनाने का विचार एक फिक्शनल पुलिसमैन एलेक्स मर्फी से मिलता–जुलता है। वैज्ञानिक पहले एलेक्स मर्फी का बेसिक वर्जन ही बनाना चाहते हैं। यह तकनीक यूएस मिल्ट्री के टेली–रोबोटिक्स का एक विकसित रूप है, जिसमें यूजर्स दूर बैठकर क्रिमिनल्स या फिर दुश्मन का सामना कर सकेगा। घायल सोल्जर "पेट्रोलबोट" में लगे कैमरे और सेंसर्स की मदद से क्रिमिनल्स पर नजर रखेगा। वर्चुअल रियल्टी हैल्मेट इसमें मदद करेगा। इस शोध का ध्येय ऐसे टेलीबॉट्स(दूर से कंट्रोल किए जा सकने वाले रोबोट) तैयार करना है, जो भीड़भाड़ और एयरपोर्ट, न्यूक्लियर सेंटर्स जैसे संवेदनशील स्थानों पर निगरानी रखने में सक्षम होंगे। "फ्लोरिडा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी" के साथ मिलकर इस प्रोजेक्ट पर काम कर रहे यूएस नेवी के लेफ्टीनेंट कमांडर जेरेमी रॉबिन्स कहते हैं कि "हम टेलीबॉट्स की मदद से मिल्ट्री और पुलिस को मजबूत बनाना चाहते हैं, ताकि वे कानून की रक्षा करने का काम बेहतर तरीके से कर सकें।" रॉबिन्स कहते हैं कि अगर कोई सिक्योरिटी ऑफिसर घायल हो जाता है तो वह फिर से काम पर लौट सके, यह एक बड़ी चुनौती है।

वे कहते हैं कि अगर अपंग होने के बाद भी सिक्योरिटी ऑफिसर्स रोबोट की मदद से कानून की रक्षा में अपना योगदान दे सकें, तो यह छोटी बात नहीं है। एफआईयू के "प्रोफेसर नागराजन प्रभाकर" के अनुसार पूरा प्रयत्न किया जा रहा है कि इसकी लागत कम से कम हो, ताकि पुलिस विभाग और दूसरे स्थानों पर इसका प्रयोग हो सके।

ट्विटर करेगा चुनावी भविष्यवाणी

"अमेरिकी बोस्टन यूनिवर्सिटी" के शोधकर्ताओं ने यह सिद्ध किया है कि वे सोशल नेटवर्किंग साइट ट्विटर के माध्यम से चुनावों के दौरान जनता के रुझान को लेकर भविष्यवाणी कर सकते हैं। इस शोध में लोगों द्वारा की जाने वाली वोटिंग और सोशल साइट्स पर मौजूद रुझानों का काफी बड़े पैमाने पर अध्ययन किया गया है। यहाँ पर ध्यान देने योग्य है कि चुनावी रुझानों और जनता के सुझावों के विषय में ट्विटर का रिकॉर्ड काफी अच्छा रहा है। अब शोधकर्ताओं का यह मानना है कि इस नए शोध के द्वारा आंकड़ों की सटीक जानकारी और वोटिंग करने वालों की सही संख्या तक अनुमान लगाया जा सकता है। सोशल मीडिया और आमजनों के क्रियाकलापों से जुड़े इस एनालिसिस को विज्ञान की भाषा में नेटवर्क साइंस कहते हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार ट्विटर के द्वारा की जाने वाली ये भविष्यवाणी, वोटिंग से जुड़े लोगों के छोटे नमूने को बड़े क्षेत्रफल पर पूरी तरह से जांचने परखने के बाद की जाती है।

छात्र/छात्राओं को उनकी अभिरूचि के आधार पर उनके व्यवसायिक उद्देश्यों को पूर्ण करने संबंधित निर्णय लेने वाला नया साफ्टवेयर

अर्चना सिन्हा
असिस्टेंट प्रोफेसर, सांख्यिकी विभाग,
नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ(उ0 प्र0)–226004, भारत
archnabihari@gmail.com

डॉ0 अर्चना सिन्हा, असिस्टेंट प्रोफेसर, सांख्यिकी विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ, द्वारा अपने मेजर रिसर्च प्रोजेक्ट(यू0 जी0 सी0, नई दिल्ली) के शोध कार्य के दौरान ऐसे साफ्टवेयर का निर्माण किया गया है जिससे स्नातक छात्र/छात्राओं को अपनी अभिरुचि के आधार पर व्यवसायिक उददेश्यों का सही चयन करने एवं उसको पूर्ण करने में पर्याप्त मदद मिलेगी। डॉ0 अर्चना सिन्हा का मानना है कि स्नातक(बी0 ए0, बी0 कॉम0, बी0 एस सी0) स्तर पर प्रवेश के दौरान न केवल छात्र/छात्राओं को उनके पूर्व की कक्षाओं में प्राप्त अंकों को मुख्य आधार बनाया जाय परन्तु उनकी व्यक्तिगत रुचियों को भी विशेष स्थान प्राप्त हो। इसी को अपने शोध का मूल कारक बनाते हुए इस नवीन साफ्टवेयर का निर्माण किया गया है। डॉ0 अर्चना सिन्हा के अनुसार इसका प्रयोग शिक्षा जगत में क्रांति ला सकता है।

साफ्टवेयर का नाम एवं उसकी कार्य प्रणाली

इस साफ्टवेयर का नाम "**ए कंपलीट इनसाइट ऑफ अंडरग्रेजुएट–एकेडेमिक वर्सेज प्रोफेशनल इंटरेस्ट**" है। यह साफ्टवेयर ऑनलाइन तथा ऑफलाइन दोनों ही प्रकार से कार्य करने में सक्षम है। स्नातक छात्र/छात्राओं में इसके सरल एवं सुलभ प्रयोग को ध्यान में रखते हुए इसका एक मैनुअल भी तैयार किया गया है। जिन छात्र/छात्राओं के पास संगणक(कम्प्यूटर) की सुविधा उपलब्ध नहीं है, उनके लिए मैनुअल में संलग्न प्रश्नावली में सभी आवश्यक सूचनाएं भरकर संबंधित व्यक्ति के पास जमा कराना होगा। इस साफ्टवेयर की कार्यप्रणाली पाँच स्तरों से होकर गुजरती है। प्रत्येक स्तर में छात्र के एप्टीट्यूट, स्किल इंटरेस्ट, एकेडेमिक इंटरेस्ट, जीवन का लक्ष्य तथा व्यवसायिक रुझान की जानकारी प्राप्त की जाती है। संबंधित परिणाम, उक्त जानकारियां प्रश्नावली प्रपत्र में उपलब्ध कराने के एक सप्ताह के भीतर प्राप्त हो जाते हैं। इस साफ्टवेयर के निर्माण में उनकी प्रोजेक्ट फैलो, मिस दिव्या सिंह का भी योगदान सम्मिलित है। डॉ0 अर्चना सिन्हा से प्राप्त जानकारी के अनुसार यह साफ्टवेयर शुल्क मुक्त है।

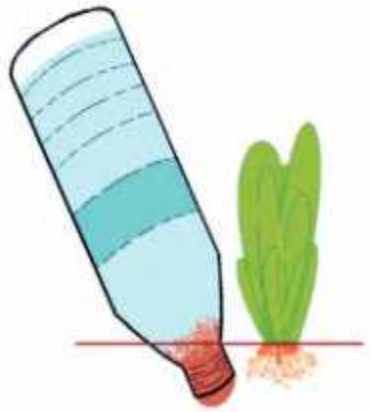
कम्प्यूटर माउस के जनक – डगलस एन्जेलबर्ट

इशिता द्विवेदी
टी0 सी0 एस0, गुडगॉव(हरियाणा)–122016,भारत
ishita.dwivedi14@gmail.com

कम्प्यूटर(अभिकलित्र या संगणक) संचालन में माउस की विशिष्ट भूमिका होती है। यह एक लम्बवत् अंडाकर तारयुक्त यंत्र है,जो कम्प्यूटर के कर्सर(प्रसंकेतर) को संचालित करता है। वर्तमान में इसका तार विमुक्त आप्टिकल माउस अवरूप भी प्रचलित है। व्यक्तिगत अभिकलित्र के अवतरण से पूर्व ही दूरदृष्टा विद्युत अभियंता डगलस एन्जेलबर्ट ने कम्प्यूटर माउस का अविष्कार कर लिया था। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित एस0आर0आई0 अन्तर्राष्ट्रीय शोध संस्थान में डगलस एन्जेलबर्ट के कार्यों ने 21 पेटेन्ट उत्पादित किये, जिनमें से अन्तिम, संख्या– 3541541 को 1970 में कम्प्यूटर माउस के लिए मान्यता दी गयी। इसी प्रयोगशाला में डगलस की अगुवाई में आधुनिक इन्टरनेट का पूर्ववर्ती अर्पानेट नेटवर्क का सृजन हुआ था। वर्तमान में सभी कम्प्यूटर लाभार्थी उनके कृतज्ञ हैं, कम्प्यूटर कुंजीपटल के तीर के अतिरिक्त अन्य विधि से अभिकलित्र पटल प्रसंकेतर को चलाने हेतु एन्जेलबर्ट ने 1963 में एक हथेली के आकार का चरखी आधारित काष्ठ का युक्ति संयंत्र का प्रार्दुभाव किया। उनके सहयोगी विलियम इंग्लिश ने उपानुक्रमी संशोधन का अवतरण किया। अंततः एन्जेलबर्ट ने 1964 में एक आदि प्रारूप बनाया तथा सैन फ्रैन्सिस्को के एक कम्प्यूटर सम्मेलन में 09 दिसम्बर 1968 को इस प्रस्तुति को सभी निरूपणों की जननी(द मदर आफ आल डेमोस) कहा गया। वर्ष 1997 में डगलस एन्जलबर्ट को उनके इस आविष्कार के लिए श्लेमेल्सन–एम0आई0टी0 पुरस्कार दिया गया। तत्पश्चात् वर्ष 2000 में अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिन्टन द्वारा "नेशनल मेडेल आफ टेक्नोलोजी एण्ड इन्नोवेशन" से सम्मानित किया गया। डगलस का जन्म 30 जनवरी 1929 को पोर्टलैन्ड के निकट ओरेगान में हुआ था तथा 88 वर्ष की आयु में गत 02 जुलाई 2013 को उनके निवास अर्थटन, कैलीफोर्निया में निधन हो गया।

अब पौधे नहीं करेंगे आपसे शिकायत

दिव्या सिंह
प्रोजेक्ट फैलो, एम0 आर0 पी0–यू0 जी0 सी0
सांख्यिकी विभाग
नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ(उ0प्र0)–226004, भारत
divya.shiv.singh@gmail.com



जब आप घर से बाहर छुट्टियाँ मनाने जाते हैं तो आपके मन में एक प्रश्न उठता होगा कि जिन पौधों को आपने इतनें प्यार से सींचा है, कहीं वे आपकी अनुपस्थिति में मुरझा न जायें। पर अब आपकी इस चिंता का हल निकाला है कुछ कृषि विशेषज्ञों नें। इसके लिए उन्होंने कृषि में प्रयुक्त होने वाली टपक विधि मॉडल का प्रयोग किया है। इस मॉडल के अन्तर्गत उन्होंने प्लास्टिक की बोतलों का प्रयोग किया है। वह प्लास्टिक की बोतलें जिन्हें आप प्रायः सफर में अपनी प्यास बुझानें के उपरान्त बेकार समझ कर फेंक देते हैं। पर शायद यही बोतलें अब गर्मियों में आपके पौधों की प्यास बुझा सकती हैं, ऐसा कहते हैं शोधकर्ता। तो अब से इन बोतलों को फेकनें से पहले दो बार जरूर सोचिएगा।

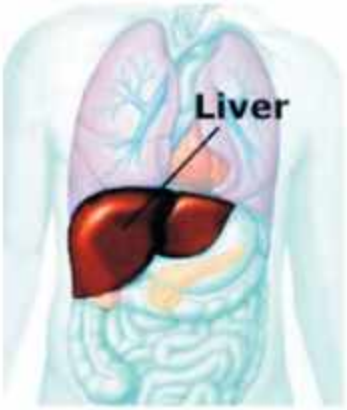
कई तरह से प्रयोग करनें के बाद कृषि विभाग ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह विधि बहुत ही सरल और कारगर है, जो कि पानी की बहुत ही कम मात्रा में, आपके पौधों को लम्बे अन्तराल तक मुरझानें से रोकती है। वह लोग भी इस विधि का प्रयोग कर सकते हैं, जो ऐसे स्थानों में रहते हैं जहाँ पानी की कमी की समस्या हो।

यदि आप भी चाहते हैं कि आपके पौधे, पानी के लिए आपसे कभी शिकायत न करें तो आज ही से उक्त विधि की तैयारी शुरू कर दीजिए। इसके लिए आपको केवल दो चीज़ों की आवश्यकता होगी। पहली तो है प्लास्टिक की बोतलें और दूसरा है नारियल का जूट। सबसे पहले बोतल में पानी भरिये और बोतल के मुंह को ढक्कन की बजाय नारियल के जूट से बंद कर दीजिए। इसके उपरान्त पौधे की जड़ के समीप छोटा सा गड्ढा करिए और बोतल को पलट के उसी गड्ढे पर खड़ा करके लगा दीजिए। कहने का आशय यह है कि बोतल का मुँह जमीन में और बाकी का हिस्सा जमीन से बाहर होना चाहिए।

ऐसा करने से बोतल में भरा पानी नारियल के जूट के सहारे रिसता हुआ, बूँद–बूँद पौधों की जड़ों तक पहुँचता रहता है। यह प्रक्रिया हमें बुलबुले के रूप में नजर आती है। यदि हम समीप से ध्यान पूर्वक देखें तो हमें बोतल में भरे पानी में छोटे–छोटे बुलबुले नीचे से ऊपर की ओर आते दिखाई देंगे। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बोतल से वायु का निष्कासन होता है। अन्ततः यह पानी सीधे पौधों की जड़ों को प्राप्त हो जाता है और कम पानी की मात्रा में पौधों की जड़े दिन भर गीली रहती हैं। यह मात्रा इतनी कम होती है कि एक पानी की बोतल एक हफ्ते तक के लिए पर्याप्त होती है। इस तरह आप अनेक बोतलों को तैयार कर प्रत्येक पौधों के समीप लगा सकते हैं।

तो अब आपके पौधे दिनों नहीं, एक हफ्ते तक आपसे कोई शिकायत नहीं करेंगे।

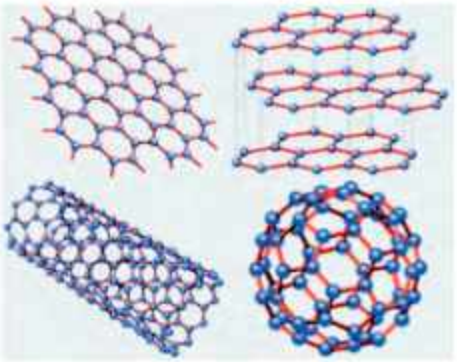
कृत्रिम लिवर करेगा अपना काम





उन लोगों के लिए खुशखबरी है, जिनके लिवर(यकृत या जिगर) ने काम करना बंद कर दिया है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह कृत्रिम लिवर ठीक वैसे ही काम करेगा, जैसा कार्य एक प्राकृतिक स्वस्थ लिवर करता है। लिवर से सम्बन्धित विभिन्न बीमारियों के कारण लिवर खराब होने वाले रोगियों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे ही रोगियों के लिए अमेरिका के मैसाक्यूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी(एम0 आई0 टी0) के शोधकर्ता वैज्ञानिकों ने यह उम्मीद जताई है कि निकट भविष्य में लिवर खराब होने वाले रोगियों के लिए कृत्रिम लिवर प्रत्यारोपण एक कारगर विकल्प साबित होगा। अभी तक चिकित्सकीय व अन्य औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद दानदाता(डोनर) व्यक्ति के लिवर को खराब लिवर वाले रोगी के शरीर में प्रत्यारोपित किया जाता है। कृत्रिम लिवर के निर्माण से सम्बन्धित शोधकर्ताओं की एक टीम में शामिल भारतीय मूल की सदस्या संगीता भाटिया की इस संदर्भ में की गई टिप्पणी गौरतलब है। उनके अनुसार अगर लिवर के किसी भी भाग को निकाल दिया जाता है, तो यह अपने निकाले गये भाग के पुन: निर्माण की प्रक्रिया शुरू कर देता है। शोधकर्ताओं ने लिवर के निकाले गये भाग को शरीर से बाहर प्रयोगशाला में कृत्रिम लिवर उतकों को विकसित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में वैज्ञानिकों को शोध के दौरान आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है।(पी0टी0आई0, दै0 जा0, 4 जून 2013)

ग्राफीन से सौ गुना बढ़ जायेगी इंटरनेट की गति

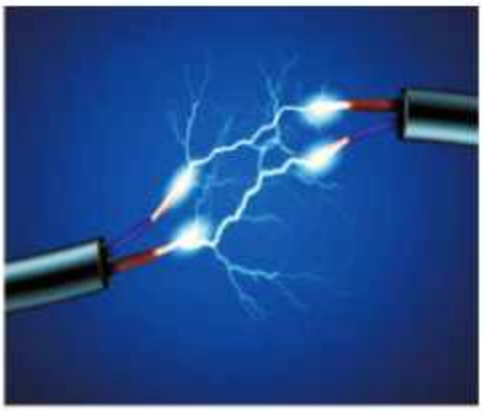




हाल ही में हुए एक शोध के परिणाम बताते हैं कि ग्राफीन के प्रयोग से इंटरनेट की गति को सौ गुना तक बढ़ाया जा सकता है। ग्राफीन एक ऐसा चमत्कारिक पदार्थ है, जो अपनी मजबूती, लचीलेपन, भारहीनता और कम कीमत के कारण दूरसंचार क्षेत्र में क्रांति ला सकता है।

यूनिवर्सिटी ऑफ बाथ एंड एक्सेटर के शोधकर्ताओं ने ग्राफीन की मदद से पहली बार ऑप्टिकल स्विच की प्रतिक्रिया दर में तेजी दर्ज की है। ओप्टो इलेक्ट्रोनिक(प्रकाश संबंधी) उपकरणों जैसे ओप्टिकल फाइबर, फोटो डिटेक्टर और लेजर जैसी ओप्टो इलेक्ट्रोनिक उपकरणों के जरिये रोजाना बड़ी संख्या में सूचनाएं प्रेषित की जाती हैं। सामान्य ऑप्टिकल स्विच सेकेंड के एक खरबवें हिस्से पर प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन नए शोध के अनुसार शोधकर्ताओं ने पाया कि ग्राफीन के प्रयोग से ऑप्टिकल स्विच की प्रतिक्रिया दर मौजूदा दर के मुकाबले सौ गुना ज्यादा तेज हो गई। ग्राफीन की मोटाई एक अणु जितनी होती है लेकिन यह बहुत मजबूत होता है।**(स्रोत: यूनिवर्सिटी न्यूज, यूनिवर्सिटी ऑफ बाथ, 12 जुलाई, 2013)**

कार्बन डाई ऑक्साइड से बनेगी बिजली

ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार कार्बन डाई ऑक्साइड से बिजली उत्पादन की नई विधि ईजाद करने का वैज्ञानिकों ने दावा किया है। उनका दावा है कि बिजली उत्पादन संयंत्रों और दूसरे स्रोतों से निकलने वाली कार्बन डाई ऑक्साइड गैस से बिजली उत्पन्न की जा सकती है। बर्ट हमेलर्स और उनकी टीम ने यह विधि विकसित की है। बर्ट ने बताया कि पूरी दुनिया में कोयला, तेल और गैस से संचालित बिजली उत्पादन संयंत्रों से प्रतिवर्ष करीब 12 अरब टन घरेलू उद्योगों से 11 अरब टन कार्बन डाई ऑक्साइड गैस उत्सर्जित होती है।

नई विधि में इसे कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया गया। उन्होंने बताया कि कार्बन डाई ऑक्साइड गैस की पानी या किसी दूसरे तरल पदार्थ से प्रतिक्रिया कराए जाने के बाद उसमें इलेक्ट्रॉन का प्रवाह कराया जाता है, जिससे बिजली उत्पन्न होती है। शोधकर्ताओं ने बताया कि यदि बिजली उत्पादन संयंत्रों, उद्योगों और घरों से निकलने वाली गैस का इस विधि से उपयोग किया जाए तो 1570 अरब किलोवॉट अतिरिक्त बिजली का उत्पादन किया जा सकता है जो अमेरिकी हूवर डैम से उत्पादित होने वाली बिजली से 400 गुना ज्यादा है।(**स्रोत: पी0टी0आई0, दै0 जा0, पृ0 20, दि0 25.07.2013**)

टाटा – इसरो ने बनाई भारत की पहली प्रदूषण रहित हाइड्रोजन बस




देश की सबसे बड़ी वाहन निर्माता टाटा मोटर्स और भारतीय अंतरिक्ष संस्थान इसरो ने देश की पहली हाइड्रोजन चालित प्रदूषण रहित बस का सिकास किया है। कई सालों के शोध के बाद तमिलनाडु के महेंद्रगिरी स्थित इसरो केंद्र में रविवार, दिनांक: 28.07.2013, को इस बस का प्रदर्शन किया गया। इसकी खासियत यह है कि इससे प्रदूषण नहीं फैलता।

इसरो अधिकारियों ने बताया कि वह क्रायोजेनिक तकनीक पर कई साल से काम कर रहे थे। इस बस को पूरी तरह से क्रायोजेनिक तकनीक पर आधारित नहीं कहा जा सकता। यह सीएनजी टाइप बस है। हाइड्रेजन को बोतलों में भरकर बस की छत पर लगाया जाता है। इसमें लिक्विड हाइड्रोजन का इस्तेमाल किया गया है। इसमें इसरो को विशेषज्ञता हासिल है। बस को ऊर्जा देने के लिए टाटा–इसरो ने फ्यूल सेल पावर सिस्टम(एफसीपीएस) का विकास किया है। शोध टीम की कमान इसरो के मानद सलाहकार वी0 जी0 गांधी के हाथ में थी। इस बस के लिए इसरो और टाटा मोटर्स ने वर्ष 2006 में एमओयू(मेमोरण्डम ऑफ अंडरस्टैंडिंग) पर हस्ताक्षर किये थे। श्री गांधी ने बताया कि भारतीय ऑटोमोबाइल उद्योग के लिए यह क्रांति का समय है। टाटा के सहयोग से हमने प्रदूषण रहित एवं हर प्रकार से सुरक्षित वाहन बनाने में सफलता हासिल की है।(**स्रोत: पी0टी0आई0, दै0 जा0, पृ0 13, दि0 29.07.2013**)

ऑस्ट्रेलिया ने बनाया सबसे तेज सुपर कम्प्यूटर



जटिल वैज्ञानिक मॉडलों को समझने एवं हल करने के उद्देश्य से चीन के बाद ऑस्ट्रेलिया ने दिनांक 31.07.2013 (बुधवार) को नैशनल कम्प्यूटेशनल इंफ्रास्ट्रक्चर कम्प्यूटिंग सेंटर(एनसीआई), ऑस्ट्रेलिया नेशनल यूनिवर्सिटी, कैनबरा, में सबसे तेज सुपर कम्प्यूटर लांच किया। इस सुपर कम्प्यूटर का नाम "**रायजिन**" नाम है जिसका सम्बन्ध जापानी भाषा से है तथा अर्थ है बादल और बारिश। इस कम्प्यूटर की क्षमता एक सेकंड में 1200 खरब गणनाएं करने की है। इसे बनाने में 4 करोड़ 52 लाख डॉलर(करीब 275 करोड़ रुपये) का खर्च आया है। इसे चलाने में सालाना 1.1 करोड़ डॉलर(करीब 66 करोड़ रुपये) का खर्च आयेगा। एएनयू के शोधकर्ताओं ने कहा कि कैलकुलेटर से सात अरब लोग मिलकरजितनी गणना 20 वर्षों में करेंगे, उसे यह कम्प्यूटर सिर्फ एक घंटे में कर सकता है।

इससे पूर्व चीन द्वारा बनाये गये दुनिया के सबसे तेज सुपर कम्प्यूटर का नाम "तियान्ह–2" था। नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ डिफेंस टेक्नोलॉजी, चांगशा, द्वारा लांच किया गया था। यह सुपर कम्प्यूटर 33,860 खरब गणनाएं एक सेकंड में कर सकने की क्षमता रखता है। (**स्रोत: पी0टी0आई0, दै0 जा0, पृ0 20, दि0 01.08.2013; फ्रेंच ट्रिब्यून, दि0 01.08.2013**)

अब डेथ टेस्ट बतायेगा कितने दिन जियेंगे आप



जो लोग यह जानना चाहते हैं कि उनकी जिंदगी के कितने दिन बचे हैं या ऊपर वाले का बुलावा कब आयेगा, उन्हें अब किसी ज्योतिषी के पास जाने की जरूरत नहीं रहेगी क्योंकि इसके लिए जल्द ही डेथ टेस्ट नाम का एक उपकरण आने वाला है।

ब्रिटेन के शोधकर्ताओं ने "डेथ टेस्ट" नाम से एक ऐसा उपकरण तैयार किया है, जो लेजर तकनीक के जरिए किसी व्यक्ति की मौत के बारे में भविष्यवाणी कर सकेगा। शोधकर्ताओं के अनुसार यह अपनी तरह का पहला परीक्षण है जो बहुत ही सरल और कम खर्चीला है। लैंकेस्टर विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर अनेट स्टेनफानोवेरका और पीटर मैकक्लिनटोक ने इस डेथ टेस्ट को ईजाद किया है। इसमें परीक्षण के तहत घड़ी के आकार के एक उपकरण के जरिये शरीर में लेजर किरणों को गुजारा जाता है। इस परीक्षण से पता चलता है कि उम्र बढ़ने के साथ किस तरह से शरीर नष्ट हो रहा है। ये रक्त नलिकाओं में पाई जाने वाली सबसे छोटी कोशिकाएं होती हैं। ये कोशिकाएं शरीर में होने वाली किसी भी जटिल प्रक्रिया को लेकर प्रतिक्रिया दिखाती हैं। कोशिकाओं में होने वाले स्पंदन का आंकलन कर शोधकर्ता बची हुई जिंदगी की गणना कर लेते हैं। इसके अलावा इस परीक्षण से कैंसर और डिमेंशिया जैसे रोगों का पता चल सकता है। इस परीक्षण को अगले तीन वर्षों के भीतर प्रयोग में लाया जा सकेगा।(**स्रोत: पी0टी0आई0, दै0 जा0, पृ0 16, दि0 12.08.2013**)

भारत की प्रथम स्वनिर्मित परमाणु पनडुब्बी





देश में स्वदेशी तकनीक से निर्मित पहली परमाणु क्षमता संपन्न पनडुब्बी "आइएनएस अरिहंत" के रिएक्टर ने शुक्रवार(09.08.2013) रात से काम करना शुरू कर दिया। हिंद महासागर में परमाणु पनडुब्बी क्षमता से संपन्न भारत अकेला देश है तथा इस तरह की परमाणु पनडुब्बी के निर्माण और डिजाइन की क्षमता रखने वाला विश्व में छठा देश है।

परमाणु पनडुब्बी की परिभाषा– डीजल–बिजली से चलने वाली पनडुब्बियों में ऑक्सीजन छोड़ने या बैट्रियों को रिचार्ज करने बार–बार सतह पर आना पड़ता है। जबकि परमाणु क्षमता वाली पनडुब्बी से असीमित समय तक सागर के अगाध वक्षस्थल को रौंदा जा सकता है। इसमें स्थापित परमाणु रिएक्टर से तैयार ऊर्जा ईंधन के रूप में अनवरत मिलती रहती है।

वर्तमान पनडुब्बी का विन्यास– भारतीय पनडुब्बी, एसएसबीएन श्रेणी की एक परमाणु पनडुब्बी है जिसका पूरा नाम "आइएनएस अरिहंत" है। इसका भार 5500–6500 टन, लंबाई 104 मीटर, बीम 15 मीटर, प्रणोदन 80 मेगावाट परमाणु रिएक्टर, एक टरबाइन, एक शैफ्ट, 7 ब्लेड वाला प्रणोदक, पानी में असीमित समय तक रह सकने की क्षमता।

आज से 58 साल पहले अमेरिका ने दुनिया की पहली परमाणु क्षमता से युक्त यूएसए नॉटिलस को सागर में उतार दिया था। "आइएनएस अरिहंत" को कारगिल युद्ध की 10वीं वर्षगांठ के मौके पर 26 जुलाई, 2009 को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की पत्नी श्रीमती गुरशरन कौर ने इस पनडुब्बी को लांच किया था।(**स्रोत: पी0टी0आई0, दै0 जा0, पृ0 21, दि0 11.08.2013**)

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान (एन0बी0आर0आई0), लखनऊ
एक ऐतिहासिक उद्यान एवं वर्तमान में एक राष्ट्रीय प्रयोगशाला

जयेन्द्र कुमार जौहरी तथा कमला कुलश्रेष्ठ
सी0 एस0 आई0 आर0–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान(एन0 बी0 आर0 आई0)
राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
jjohri2009@gmail.com





मनुष्य का पौधों से लगाव अनन्तकाल से चला आ रहा है। यहाँ तक कि, आदि मानव इन्हीं पेड़–पौधों के बीच में निवास करते थे और भोजन के रूप में प्रयोग करते थे। सभ्यता के विकास के साथ पौधे सौंदर्य का प्रतीक बन गये और उद्यानों का विकास शुरू हुआ। इसी प्रकार का एक उद्यान 18वीं शताब्दी में उस समय के शासक नवाब सादत अली खान ने लखनऊ में बनाया था। इस उद्यान को 19वीं शताब्दी में अवध के आखिरी शासक नवाब वाजिद अली शाह ने अपनी सर्वप्रिय बेगम सिकन्दर महल को भेंट कर उसे "सिकन्दर बाग" नामित कर दिया। यह ऐतिहासिक उद्यान तथा इसके कुछ अवशेष(ऐतिहासिक गेट) आज भी पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित स्मारक के रूप में लखनऊ में मौजूद हैं। यह उद्यान ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर 1857 की आजादी की प्रथम जंग का स्थल भी रहा था। इस बात की पुष्टि इस उद्यान को वर्तमान प्रयोगशाला में परिवर्तित करते हुए, मिले अवशेषों से होती हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान को वर्ष 1932 में राजकीय उद्यान व वर्ष 1953 में सी0एस0आई0आर0 द्वारा एक राष्ट्रीय प्रयोगशाला के रूप में अधिग्रहीत किया गया। आज भी उपरोक्त उद्यान लोगों के आकर्षण का केन्द्र है तथा हजारों की संख्या में आम जनता इसमें प्रातःकालीन सैर के लिए आती है। सी0एस0आई0आर0 ने अधिग्रहण के उपरांत इसे "राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान" नामित किया जिसमें अनेक विषयों पर शोध कार्य प्रारंभ किया गया। वर्ष 1978 में तत्कालीन निदेशक ने इसके कार्य को नाम के आधार पर सार्थक करने हेतु 25 अक्टूबर, 1978 को "राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान" नाम दिया तथा वर्ष 2010 से यह "सी.एस.आई.आर.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान" के नाम से जाना जाता है।

इस संस्थान का वर्तमान उद्देश्य "अनूठे पादप अनुसंधान द्वारा जीवन को छूना" है। संस्थान के विभिन्न पादप संग्रहालयों का विवरण अधोलिखित है–

वनस्पति उद्यान एवं पुष्प कृषि

यह एक विश्वविख्यात उद्यान है। यह विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उद्यान है तथा भारत में यह भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा व लालबाग उद्यान, बैंगलूर के बाद है। यह 25 हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैला हुआ है तथा गोमती के तट पर 26° $55^{'}$ उत्तर अक्षांश तथा 80° $59^{'}$ पूर्व देशांतर पर उपोष्णीय जलवायु में समुद्र से 113 मीटर की ऊँचाई पर विद्यमान है। यह उद्यान भारत की एक राष्ट्रीय सम्पदा है तथा इसके तीन मुख्य उद्देश्य हैं : 1. संरक्षण 2. शिक्षा 3. सौंदर्यीकरण।

इसको भारतीय पौधों के संरक्षण हेतु प्रयोग किया जाता है जहाँ पर पादप विविधता अनुसंधान एवं अध्ययन हेतु अनेक वृक्ष, लताएँ व झाड़ियाँ उपलब्ध हैं। यह उद्यान सुरूचिपूर्ण तरीके से सजाया गया है तथा अन्तर्राष्ट्रीय उद्यान संरक्षण बी0जी0सी0आई0, इंग्लैण्ड कार्यक्रम का सदस्य है। यह चीन में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय उद्यान संस्था का भी सक्रिय सदस्य है।

वर्तमान में संस्थान के उद्यान में 212 कुल के 5000 वृक्षों, झाड़ियों व छोटे पौधों की प्रजातियाँ हैं। यह पौधे क्रमशः शोभाकारी, औषधीय, संकटग्रस्त व अन्य समूहों के लिए उद्यान में लगाये गये हैं।

आर्बोरेटम (वृक्ष संग्रह)

संस्थान में छोटे–बड़े वृक्षों की लगभग 400 प्रजातियाँ 7 हेक्टेयर में फैली हुई है। यह उद्यान के प्रवेश द्वार के बांयी ओर स्थापित है तथा इन वृक्षों को सुरूचिपूर्ण ढंग से नामांकन पट्टिका के साथ लगाया गया है। इस पट्टिका पर वृक्ष का वानस्पतिक नाम/सामान्य नाम, कुल व इसका निवास स्थान वर्णित है। उद्यान में प्रयुक्त कुछ मुख्य प्रजातियाँ निम्न हैं। *एडेनसोनिया डिजीटाटा, ए.जा, अगेथिस रॉबस्टा, अल्सटोनिया मैक्रोफिला, अनोना स्यूरिकेटा, बाहिनिया वैरीगाटा, बिक्सा आरेलाना, बोस्वेलिया सिराटा, बैकीकाइटान रूपेस्ट्रिस, ब्यूटिया मोनोस्पर्मा, क्रेसेन्शिया क्यूजेटे, डैल्बर्जिया लैन्सियोलेरिया, डिलीवया इन्डिका, इन्डिका, डायोस्पाइरोसा काकी, डॉ. माल्बेरिका, फाइकस बेंगालेन्सिस, फा. कृष्णी, आइसोनेन्ड्रा विल्लोसा, जैकारान्डा, कैस्पीडिफोलिया, कोलट्यूटेरिया एपिकुलाटा, लिट्सिया ग्लूटिनोसा, मित्रागायना पर्वीफ्लोरा, ओरोजायलम इन्डिकम, पार्मेन्टीरा सिरीफेरा, पाइनस राक्सबर्घाई, टेरोकारपस मारसुपियम, सैन्टेलम एल्बम, सराका अशोका, स. डिक्लीनाटा, शोरिया रॉबस्टा, स्ट्रिक्नास नक्सबामिका, स्ट्रिपोटेटोरम, स्वीटीनिया माहोगोनाई, सिजीजियम जम्बोस, ट्यूबूबिया पामेराई, टेकोमेला अन्डुलाटा, टेक्टोना ग्रान्डिस, टरमिनेलिया स्पे, बुडफोर्डिया फ्रूटीकोसा, रायटिया टिन्क्टोरिया* इत्यादि। इनके अतिरिक्त संस्थान में *अगैथिस, बायोटा, इफीडरा, गिंगो, पाइनस* व पोडोकार्पस के पौधे भी उपलब्ध हैं।

बोनसाई (बौने पौधे) संकलन

बोनसाई व्यवसायिक दृष्टि से पौधों में रूचि रखने वाले लोगों में अति प्रिय होते है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संस्थान में इस किस्म के पौधों का एक संग्रहालय बनाया गया है। इस संग्रह में लगभग 300 नमूने संग्रहित हैं जो कि विभिन्न आकार और प्रकार से सजाये गये हैं। इनके आकार को शिक्षा व सुरूचिता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न रूपों में सजाया जाता है जिनमें कुछ प्रमुख रूप निम्नवत हैं: 1. झाड़ूनुमा 2. अनेक फुनगियों वाले 3. गुलदस्तानुमा या 4. विन्डस्वैप्ट(झबरीले)– इनमें से कुछ पौधों की आयु 45–50 वर्ष तक है। कुछ मुख्य प्रजातियाँ निम्नवत् हैं: *अकेशिया गोयटनाई, अकरास जपोटा, बैक्बूसा वेन्ट्रिकोसा, कैलिस्टीमोन लैन्सियोलेटस, सिट्रस माइक्रोकारपा(नीबू) साइकस रेवाल्यूटा, ड्रायोटिक्स राक्सबर्घाई, फाइकस बेन्जामिना न्युडा, फा. इन्डिका, फा. इन्फेक्टोरिया, फा. लॉग आइलैन्ड, फा. सिला(बरगद), मोरिन्डा टिन्क्टोरिया, पोर्टुलाकेरिया एफ्टा, सिडियम गुआवा(अमरूद), प्युनिका ग्रेनेटम(अनार)* तथा इनके अतिरिक्त बोगेनवीलिया की विभिन्न प्रजातियाँ (अनेक रंगों) में। बरगद की लटकने वाली जड़ें तथा *फाइकस सिला* का "क्राक्ड" तना इन पौधों की उम्र दर्शाता है तथा यह संस्थान का सबसे पुराना(वर्ष 1958 में लगाया हुआ) पौधा है। बोनसाई बनाने हेतु पौधे संस्थान में उपलब्ध हैं।

नागफनी एवं अन्य शुष्क जलवायु के पौधों का संग्रह

संस्थान में जापान में निर्मित कैक्टस गृह के प्रारूप पर पगोडा रूपी कैक्टस गृह का निर्माण किया गया है जिसमें देशज व अन्तर्राष्ट्रीय कैक्टस का संग्रह किया गया है। यह 284 वर्ग मीटर में निर्मित है तथा इसमें लगभग कैक्टाई की 350 जातियाँ/प्रजातियाँ संग्रहित हैं। इनमें से कुछ मुख्य प्रजातियाँ निम्नवत् हैं: *एडीनियम ओबेसम, अगेव परवीफ्लोरा, अगेव स्ट्रिक्टा, ऐलोवेरा, बियूकार्निया रिकटवेंटा, आरबीकुलाटा, डडलिया वाइरेन्स, डायकिया रिमोटिफोलिया, इकाइनोकैक्टस ग्रूसोनाई, यूफार्बिया स्पेलेन्डेन्स, गैस्टीरिया मैकुलाटा, जिम्नो कैलीसियम मिहानोविआई, हार्वोथिया फैसियाटा, हा. लिमीफोलिया, हेस्परलो पारवीफ्लोरा, कैलेन्थो मारमोराटा, मैमीलेरिया इकाइनाटा, मेलोकैक्टस नरवी, नेलीना लांगीफोलिया, नो. स्ट्रिक्टा, नोटोनिया ग्रान्डीफ्लोरा, ओपन्शिया माइक्रोडैसिस "एल्बिडा", आ. वल्गेरिस "वैरीगाटा", पेरेस्किया एकूलिएाटा, पे. ब्लिओ स्टैपेलिया गाइगोन्शिया, युक्का एलोफोलिया, यु. फिलामेन्टोसा* तथा अन्य ग्राफ्टेड कैक्टाई।

संस्थान के इस गृह में अफ्रीका का एक अनोखा जिम्नोस्पर्म *"वेल्वेस्चिया मिराबिलिस"* संग्रहित है। इसे "ट्री टम्बो" के नाम से भी जाना जाता है। इसे वर्ष 1989 में राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान, किरस्टेन वास्य से लाया गया था। इस पौधे की मुख्य विशेषता यह है कि इसके पूरे जीवनकाल(लगभग 500 वर्ष) में केवल दो पत्तियाँ ही रहती हैं जो कि विपरीत दिशा में बढ़ती रहती हैं। यह शैक्षणिक विकास की दृष्टि से पादप जगत का अद्भुत पौधा है। सार्क देशों के समूह में यह पौधा केवल सी0एस0आई0आर0–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान के पास ही संग्रहीत है।

संरक्षणशाला

1370 वर्ग मीटर में निर्मित संरक्षणशाला विशेषकर उष्ण एवं उपोष्णीय जलवायु के पौधों के संरक्षण हेतु बनायी गयी है। इस संरक्षणशाला में लगभग 500 पौधे हैं जिनमें से कुछ प्रमुख पौधे निम्नवत् हैं। *एलोकेसिया अमेजोनिया, बैम्बूसा वेन्ट्रिकोजा, ड्रेसीना मारजीनाटा "ट्राईकलर", इन्सिफैलोरटस ट्रान्सविनोसस, इ. विलोसस, फैटिसया पैपाइरीफेरा, फाइकस लॉग आइलैन्ड, गिंगो बाइलोबा, हेलीकोनिया रास्ट्रेटा, होया कारनोसा, हो. वाइटाई, नैन्डीना डोमेस्टिका तथा वैनीला प्लेनीफोलिया, जैमिना प्यूनिला इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के एग्लोनीमा, एलोकेसिया, एन्थूरियम, एस्पेरेगस, कैलथिया, क्लोरोफाइटम, कोडियम, डेफेनवैकिया, ड्रेसीना, गैरेन्टा, पैन्डेनस, पेपरोमिया, फीलोडेन्ड्रान, सिंगोनियम* इत्यादि का विशाल संग्रह भी संरक्षणशाला में लगा हुआ है। इनके अतिरिक्त इस संरक्षणशाला में कुछ अति दुर्लभ पौधे उपलब्ध हैं जैसे कि *माइक्रोसाइकस कैलोकामा।* यह क्यूबा का राष्ट्रीय वृक्ष है। इसके अतिरिक्त *सिनैमामम कैम्फोरा, क्राफिया अरेबिका* तथा पान (*पाइपर बीटेल*) की कुछ प्रजातियाँ भी उपलब्ध हैं जो कि आर्थिक दृष्टि से उपयोगी पौधे हैं।

साइकेड गृह

साइकस पृथ्वी पर अवतरित होने वाले पहले पुष्पीय पौधे हैं जो कि विपरीत परिस्थितियों में भी उगने में सक्षम होते हैं तथापि यह पौधे वर्तमान में संकटग्रस्त हैं, क्योंकि यह पौधे प्रायः जंगलों में ही पाये जाते हैं। इनकी कुछ प्रजातियाँ अपनी सुंदर रचना हेतु गृहसज्जा के पौधों के रूप में उपयोगी हैं। संस्थान में एक साइकेड गृह का निर्माण कराया गया है जिसका उद्घाटन 9 अक्टूबर, 2009 को प्रो. वी. एल. चोपड़ा, अध्यक्ष, अनुसंधान समिति, वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा किया गया था। वर्तमान में संस्थान के साइकेड गृह 45 अद्भुत साइकस की प्रजातियाँ संरक्षित हैं जो निम्न हैः *माइक्रोकाकस कैलोकोमा, जैमिया फ्लोरिडाना, जै. फरफ्यूरेसिया, जै. पारटोरीसेन्सिस,* तथा *जै. फ्यूमिला*। यह सभी प्रजातियाँ शिक्षण व संरक्षण हेतु अतिआवश्यक प्रजातियाँ हैं। इनमें से माइक्रोकस प्रजाति एक अति संकटग्रस्त प्रजाति है जिसे क्यूबा का राष्ट्रीय पौधा भी कहते हैं। साइकस को वर्तमान में "लिविंग फासिल" भी कहा जाता है तथा इनका संरक्षण बहुत आवश्यक है। यह दुर्लभ पौधे एवं जन्तुओं पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय विश्व सम्मेलन(सीआईटीईएस) के पौधे में से एक दुर्लभ पौधा है।

साइकेड गृह में उपलब्ध जातियाँ निम्न हैः *साइकस, डिऑन, इन्सिफैलोरट्स, लेपिडोन्जैमिया, मैक्रोजैमिया, माइक्रोसाइक्स, स्टैन्गेरिया व जैमिया*।

फर्न गृह

फर्न तथा फर्न समूह के पौधे अपुष्पीय होते हैं तथा यह पृथ्वी पर पाये जाने वाले संवहन तंत्र युक्त प्रथम पादप हैं। भारत में हिमालय तथा दक्षिणी भाग में फर्न की लगभग 1200 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। यह पौधे अधिक नमीयुक्त वातावरण में भली–भांति उगते हैं तथा इसी कारण संस्थान में लगभग 400 मी0 में एक पिरामिड के आकार का फर्न गृह बनाया गया है। यह पौधे गृहसज्जा हेतु अति उपयोगी होते हैं। इस फर्न गृह में पौधों को उपयुक्त वातावरण प्रदान करने हेतु नेटलॉन से ढक दिया गया है तथा नमी प्रदान करने हेतु स्प्रिंकलर द्वारा बार–बार छिड़काव किया जाता है। फर्न की पत्तियों का उपयोग गुलदस्तों, फूलों के बटन निर्माण व पुष्प सज्जा हेतु किया जाता है।

संस्थान के फर्न गृह में वर्तमान में फर्न की 65 प्रजातियाँ संग्रहित हैं जो कि अभिनव एवं देश के विभिन्न प्रांतों से संग्रहीत की गयी हैं। इस संग्रह में दुर्लभ, संकटयुक्त व उपयोगी फर्न का भी संग्रह है। इनकी कुछ प्रजातियाँ निम्नवत् हैः *एडियेन्टम कैपिलस वेनेरिस, ए0 हिस्पिडुलम, ब्लैकनम ऑक्सीडेन्टेल, बाल्बाइटिस हेटरोक्लाइटा, डिप्लेजियम एस्कुलेन्टम, ड्रायनेरिया क्वेरसीफोलिया, इक्वीसेटम डेवाइल, लाइगोडियम फ्लेक्सुओसम, माइक्रोसोरियम, आल्टरनीफोलियम, नेफरोलिपिस कार्डीफोलिया, ने. कार्डीफोलिया प्रजाति डफी, ने. ट्यूबरोसा, आफियोग्लासम रेटीकुलेटम, साइलोटम न्युडम, टेरिस क्रेटिका प्रजाति अल्बोलीनियाटा, टे. विटाटा, सिलैजिनेला ब्रायोप्टोरिस* (संजीवनी) इत्यादि। इन प्रजातियों को वृहद स्तर पर प्रबर्धन कर संस्थान द्वारा बिक्री हेतु उपलब्ध कराया गया है।

मॉस गृह

हरितोत्भिद(ब्रायोफाइटा) समूह के पौधे केवल पहाड़ों पर ठंडी एवं नम जलवायु में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध होते हैं। अतः इनके अध्ययन हेतु कठिनाइयाँ होती थीं। इसी वजह से संस्थान में एक मॉस गृह का निर्माण कराया गया जिसका उद्घाटन 22 सितम्बर 2008 को तत्कालीन अनुसंधान समिति के अध्यक्ष प्रो0 वी0 एल0 चोपड़ा द्वारा किया गया। यह गृह दुर्लभ, संकटग्रस्त व उपयोगी प्रजातियों के संरक्षण एवं संवर्धन में अतिउपयोगी है। वर्तमान में संस्थान के मॉस गृह में "लिवरवर्ट" की 20 जातियाँ संग्रहीत हैं जो कि निम्न हैः *एस्ट्रेला अंगस्टा, साइथोडियम कैवरनेर, मार्केन्शिया लीनियेरिस, मा0 पैलिएशिया, प्लैजियोकैस्मा अपेन्डीकुलेटम, प्ले0 इन्टरमीडियम, रिक्सिया विलीडियेराई, रि0 डिस्कलर तथा मॉस की फिलीडेंस स्पलैक्नोब्रिओइडिस, फि0 टैक्सीफोलियस, हायोफिला कोमोसा, सेमीबारबुला ओरियेन्टेलिस, से0 रेनुआई* तथा *वैसीकुलेरिया मोन्टेगनाई* प्रजातियाँ भी इस गृह में संरक्षित हैं। ।

आर्किड गृह

पुष्पीय पौधों में सुंदरता की दृष्टि से आर्किड के फूलों का विशेष महत्व हैं परंतु यह दुर्लभ एवं सुंदर पुष्प आसानी से सामान्य वातावरण में उपार्जित नहीं किये जा सकते। अतः इनकी व्यापक आर्थिक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए संस्थान में इनके संरक्षण एवं संवर्धन हेतु एक आर्किड गृह भी बनाया गया है। वर्तमान में भारत में आर्किड की 170 जातियाँ एवं 1200 प्रजातियाँ उपलब्ध है। उत्तर पूर्वी भारत में आर्किड की 835 प्रजातियाँ प्राकृतिक रूप से पायी जाती है।
संस्थान के आर्किड गृह में उष्म एवं उप्पोषणीय जलवायु में उग सकने वाली कुछ प्रजातियों को संग्रहित किया गया है। वर्तमान में संस्थान के आर्किड गृह में 50 आर्किड की प्रजातियाँ संग्रहित हैं, जो निम्न हैः *अरैकसि, सीलोगाइने डेन्ड्रोबियम, इरिया, माइक्रोपेरा, पोफियोपेडिलम(लेडीज़ स्लीपर आर्किड) स्यैथोग्लाटिस, पोरीस्टाइलिस, फैड्सय, फोलीडोटा, रेनेन्थेरा, रिकोस्टाइलिस, वन्डा एवं वैनीला*। इन सभी प्रजातियों के पुष्पीय विज्ञान व संरक्षण हेतु अध्ययन जारी हैं। कुछ जानी–मानी आर्किड प्रजातियाँ जैसे–*अरैकनिस* प्रजाति ऐपल

ब्लॉसम, एनिक्स ब्लैक एवं स्पाइडर आर्किड, *अरैंडा* प्रजाति मोजैक मैजिक, *डेन्ड्रोबियम* प्रजाति सोनियार्ड, *वन्डा* प्रजाति "डायना", जॉन क्लब, प्रालिफिक, ट्राइकलर व मिस जैकलिन भी इस संग्रह में देखी जा सकती हैं।

पाम गृह

यह पाम गृह 765 वर्ग मीटर पर निर्मित है जिसमें पाम की लगभग 70 प्रजातियों का संग्रह संरक्षित है। कुछ मुख्य प्रजातियाँ निम्न हैं: *अरेन्गा पिन्नाटा, कैरिओटा माइटिस कै0 यूरेन्स, कैमीडोरिया एलीगेन्स, क्राइसेलिडोकारपस ल्यूसेन्स, डैमोनापिस, कुन्सलेराई, इलाईस गुइनेन्सिस, लाइकुला ग्रान्डिस, ला0 स्पाइनोसा, लिव्सटोना चाइनेन्सिस, लि0 कोयिनचिनेन्सिस, मैस्केराइना, फीनिक्स रोबेलाइनाइ, फो0 रयूजिकोला, टाइकोस्पर्मा मैकारथुराई, साबल पामेटो, थ्रिनेक्स बारबडेन्सिस* तथा *वाशिंगटोनिया फिलीफेरा* इत्यादि। पाम की सभी प्रजातियाँ गृह सज्जा हेतु अति उपयोगी होती है।

पर्सी लैंकास्टर गृह

संस्थान के प्रारम्भ में श्री सिडनी पर्सी लैकास्टर, उद्यान विज्ञानी कार्यरत थे। इस संरक्षणशाला का नाम इन्हीं के नाम पर रखा गया था। इस गृह की स्थापना 680 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में करायी गयी थी जहाँ पर दुर्लभ संकटग्रस्त गृहसज्जा के पौधों को संरक्षित किया जा सके। इस संरक्षणशाला में कुछ अन्य आर्थिक रूप से उपयोगी पौधों का भी संरक्षण किया जा रहा है। इस गृह में तीन तलों में आर्थिक रूप से उपयोगी पौधों को गमलों में संरक्षण हेतु सजाया गया है।

दृष्टि बाधित व्यक्तियों के लिए उद्यान

किसी उद्यान का नाम लेते ही रंग बिरंगे फूलों की व्यवस्थित क्यारियां, विविध आकार की खूबसूरत पत्तियों की सज्जा तथा उसमें बसी हुई सुगंध का एहसास हमारे मन–मस्तिष्क में स्वतः ही आ जाती हैं ऐसे पौधे हमारे हृदय को संतुष्टि देते हैं और शरीर की समस्त थकान व व्याधियां थोड़े समय के लिए मानो दूर हो जाती है। परन्तु हमारे ही कुछ भाई बांधव दुर्भाग्यवश, जिनकी दृष्टि बाधित होती है इस सुखद अनुभूति से वंचित रह जाते हैं । इस कमी को दूर करने के लिए राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में दृष्टि बाधित व्यक्तियों के लिए उद्यान बनाया गया हैं इस उद्यान में भ्रमण करके दृष्टि बाधित व्यक्ति प्रकृति की इस अनुपम सौगात का आनंद उठा सकते हैं। यहां लगी ब्रेल लिपि की पट्टिकाओं में वर्णित पौधों, उनके कुल, उपयोग तथा औषधीय गुण आदि को जानकर उनके पर्यावरण के विषय में उपजे कई प्रश्नों के उत्तर जान सकते हैं।

सिर्फ दृष्टि बाधित ही नहीं अपितु विकलांग व्यक्ति भी अपनी व्हील चेयर पर इस उद्यान के रास्तों पर चलकर पेड़ पौधों के पास तक पहुंच सकते हैं तथा हिन्दी तथा अंग्रेजी में लिखी हुई ब्रेल लिपि पट्टियों से उनके विषय में ज्ञान अर्जित कर सकते हैं। इस उद्यान में *आरटीमिसिया, ब्रनफेल्सिया, वुडलेजा, बरसेरा, रोस्ट्रम, सिमबोपोगॉन, गारडिनिया, इक्जोरा,* तुलसी, मालती तथा कामिनी जैसे सुगन्धित फूलों, पत्तियों या रेजिन वाले पौधे लगे हैं।

यह उद्यान पौधों को छूकर उनकी सुगंध से तथा उन्हें महसूस करने के सिद्धांत पर आधारित है जिसे 'टच, फील एंड स्मेल' का सिद्धांत कहा जाता है। दृष्टि बाधित लोगों को सहानुभूति नहीं ज्ञान की आवश्यकता होती है क्योंकि इनकी महसूस करने की इन्द्रियां उन व्यक्तियों की इन्द्रियों से कहीं ज्यादा विकसित होती हैं जो प्रकृति की खूबसूरती को बखूबी देख सकते है।

उद्यान के रास्ते टेराकोटा निर्मित चौकोर टाइल्स के बने हैं जिनमें दृष्टि बाधित व्यक्ति पानी या फिसलन की अवस्था में गिर कर चोटिल न हो जाए। रास्तों को समतल बनाये रखने के साथ इन बातों का भी ध्यान रखा गया है कि किसी प्रकार ठोकर आदि दृष्टि बाधित व्यक्ति को न लगें। रास्तों का अनुमान बड़े गोल पत्थरों द्वारा लगाया जा सकता है जिनमें मोड़ इंगित है। छोटे पत्थरों की उपस्थिति ब्रेल लिपि में लिखे सूचना के स्थानों को दर्शाती है।

उद्यान में लगभग 36 पौधों का समावेश है जिनकी सुगंधित होने की महत्ता बहुत अधिक है। इन पौधों को ब्रेल लिपि में पढ़कर तथा खूशबू द्वारा महसूस करके पहचाना जा सकता है। दृष्टि बाधित व्यक्ति छूकर यह भी जान सकता है कि पौधा घास, शाकीय या वृक्ष में से किस कोटि का है । पत्तियां चिकनी, रोएंदार, गूदेदार हैं या कड़ी हैं। उदाहरण के तौर पर जहां सुदर्शन की पत्तियां लम्बी और मोटी है यूफारबिया और सारकोस्टीमा की टहनियां ही पत्तियां हैं। आगुन्तक मधुमालती, बेला, चमेली, दोलनचम्पा, रजनीगंधा आदि की विविध खुशबुओं से भी पौधों को पहचान सकते हैं। *मेलाल्यूका व बरसेरा* में तो पूरा पौधा ही खुशबू से भरा होता है।

पौधों को इस प्रकार पहचानने में उनमें पाये जाने वाले सुगंध की महत्वपूर्ण भूमिका है तथा इसे पहचानने की शक्ति दृष्टि बाधित व्यक्तियों में अधिक होती है। इसी धारणा से फलित या अन्य पौधे जो इस उद्यान में लगाए गए हैं वे तुलसी, कामिनी, जैस्मिन, लेमन घास, पुदीना, दिन का राजा, रात की रानी आदि हैं।

जहरीले, नुकीले, धारदार किनारों वाले या कांटो वाले पौधों को इस उद्यान में नहीं लगाया गया है, जिससे दृष्टि बाधित व्यक्तियों को किसी प्रकार हानि नहीं पहुंचती। उद्यान के प्रवेश द्वार पर उल्टे यू के आकार में मधुमालती की बेल हैं जिसके सफेद व गुलाबी फूल अपनी सुगंध छटा स्वतः ही बिखरते रहते हैं। तीन तरफ के बाड़ों के रूप में कामिनी लगाई गई है। दृष्टि बाधित व्यक्तियों को यह इंगित करती है कि यह सुगंध जैसे उद्यान के बाहरी दीवारों से आ रही है। दृष्टि बाधित व्यक्ति सिर्फ छूकर या सुगंध से ही पौधों को नहीं पहचान रहे बल्कि उनके विषय में ब्रेल लिपि में लिखी जानकारी से पौधों का अध्ययन भी कर सकते हैं।

पौधों का स्थानीय नाम, वानस्पतिक नाम, व्यावसायिक महत्व तथा औषधीय गुण आदि के विषय में स्वतः ही पढ़ा जा सकता है। यह लिखावट ब्रेल लिपि हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों विषयों में है। दृष्टि बाधित व्यक्तियों के लिए जो पढ़ नहीं सकते, उनके लिए आडियो ब्रेल सिस्टम लगाया गया है। जिसमें ब्रेल लिपि में सूचनाएं अंकित हैं। उद्यान के विषय में तथा आस–पास के पौधों के विषयों में जानकारी को इसमें टेप करके लगाया गया है। एक बटन जो सिस्टम के मध्य में लगा है उसे दबाकर यह जानकारी हासिल की जा सकती है।

यह भारत का पहला अनूठा उद्यान है, जो दृष्टि बाधित व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया गया है जिसमें अंधा व्यक्ति अपनी छड़ी की सहायता से उद्यान में घूम सकता है, और पौधों के महत्व को समझ व आत्मसात कर सकता है। उसे किसी की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती इसका स्थान विश्व में छठां है तथा अन्य इस प्रकार के उद्यान जर्मनी, जापान, अमेरिका, चीन तथा पोलैंड में है। यह ज्ञान मिश्रित मनोरंजन का अभूतपूर्व साधन है जो समाज के उस वर्ग की सहायता करता है जिस पर अन्य लोगों ने शायद अधिक ध्यान नहीं दिया।

पादपालय(एल0 डब्ल्यू0 जी0)

संस्थान का पादपालय इसमें संरक्षित नमूनों की दृष्टि से भारत के सर्वोत्तम पादपालयों मे से एक जिसे लुडविका(एल0डब्ल्यू0जी0) पादपालय के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में इस पादपालय में 2,65,572 नमूने संरक्षित हैं जो कि राष्ट्रीय स्तर पर तीसरा सबसे बड़ा संग्रह है। शैकीय (लाइकेन) के नमूने इस पादपालय में दक्षिण पूर्वी एशिया में सबसे अधिक हैं तथा वर्तमान में इनकी संख्या 1,25,000 हैं। अंटार्टिका के 1000 दुर्लभ नमूने इस संग्रह की विशेषता हैं। संस्थान के पादप नमूनों का डाटाबेस तैयार किया जा चुका है तथा वर्तमान में इसे www.nbri.padap पर देखा जा सकता है। यह सुविधा वर्ष 2009 में अनावरित की गयी थी। संस्थान के पादपालय में स्व0 प्रो0 कैलाश नाथ कौल जो कि संस्थान के प्रथम निदेशक थे, उनका ऐतिहासिक संग्रह भी संरक्षित है।

इन अद्भुत पादप संग्रहों के अतिरिक्त संस्थान द्वारा शुष्क पुष्प कृषि तकनीकी का विकास किया गया जिससे फूलों का रंग यथावत रहता है तथा इन्हें विभिन्न प्रकार के ग्रीटिंग कार्ड, सीनरी, फ्लावर वेसेस को बनाया जाता है। इससे संबंधित प्रौद्योगिकी हेतु आम जनता को विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत प्रशिक्षित किया जाता है। संस्थान द्वारा ऊसर भूमि का सुधार कार्यक्रम भी अति प्रचलित हुआ है। जैव उर्वरकों एवं जैव नियंत्रकों द्वारा रोग नियंत्रण से न केवल पर्यावरण हितैषी होता है तथा अति सुगम एवं पैसा बचाने में सहायक होता है।

संस्थान द्वारा ऐसी प्रौद्योगिकियों का विकास किया गया है जो उपयोगी एवं हितैषी होती है। हर्बल गुलाल को जनसामान्य तक पहुँचाने में संस्थान का विशेष योगदान है। कल का उद्यान आज की एक आधुनिक प्रयोगशाला के रूप में अपना नाम अर्जन कर रहा है।



जिम्नोस्पर्म(*माइ ेसायकस कैलोकोमा*)



बेलवीचिया, दक्षिण अफ्रीका का एक अद्भुत पौधा

संदर्भ

1. विविध (2012) सी0 एस0 आई0 आर0–एन0 बी0 आर0 आई0–ए सक्सेस स्टोरी ऑफ सिक्सटी ईयर–ए टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप पब्लिकेशन।
2. गोयल, ए. के. एवं शर्मा, ए. एन. (1999) बॉटेनिक गार्डेन कन्जर्वेशन इन्टरनेशनल, यू0 के0–एन0 बी0 आर0 आई0, बॉटेनिक गार्डेन–ए नेशनल फैसिलिटी फॉर एजूकेशन एंड कन्जर्वेशन।
3. शर्मा, एस0 सी0 एवं गोयल, ऐ0 के0(1994) दी नेशनल बॉटेनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट एन0 बी0 आर0 आई0 बॉटेनिक गार्डेन–ए नेशनल फैसिलिटी फॉर इंडिया।
4. जुनेजा, बी0 आर0(2005) एन0 बी0 आर0 आई0, इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर इन्वायरमेंटल बॉटेनिस्ट आईसीपीईपी–3 एचटीटीपी://आईएसईबीइंडिया.कॉम/आईसीपीईपी–3
5. एचटीटीपी://डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू.फेसबुक.कॉम/पेजेज/सीएसआईआर–नेशनल बॉटेनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट–गॉवर्नमेंट ऑर्गेनाइजेशन, "व्हेयर प्लांट बेज्ड रिसर्च टचेज लाइव्ज थ्रू इन्नोवेशन" डोमेन:एनबीआरआई.रिस.इन(2013)

कुशाग्र विलक्षण मेधा – श्रीनिवास आयंगर रामानुजन्

के0 के0 बाजपेयी[1] एवं दिव्यांश बाजपेयी[2]
[1]अध्यक्ष, गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
[2]कम्प्यूटर इंजीनियर
kkbajpai.hodm@gmail.com, divy.ansh01@gmail.com



1887–1920

सार

विलक्षण कुशाग्र मेधा के धनी महान गणितज्ञ श्रीनिवास आयंगर रामानुजन्(1887–2012) की 125 वीं जयन्ती को यादगार बनाने के लिए सन् 2012 को राष्ट्रीय गणित वर्ष एवं रामानुजन् की जन्मतिथि 22 दिसम्बर को राष्ट्रीय गणित दिवस घोषित कर प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने राष्ट्र की ओर से मरणोपरान्त रामानुजन् को श्रृद्धांजलि अर्पित की। उन्नीसवीं शताब्दी में गणित विषय पर उनके किये गये शोध को हम निम्न विश्लेषण के द्वारा समझने का प्रयास करेंगे, जिसका प्रमाण उनके द्वारा लिखित पांडुलिपियों में पाया जाता है, जिसका लोहा दुनिया के महान गणितज्ञों प्रो0 हार्डी, प्रो0 गिल्बर्ट एवं प्रो0 नेविले आदि ने माना।

मद्रास के इरोड में श्रीनिवास आयंगर एवं श्रीमती कोमल अथाम्मल के घर 22 दिसम्बर 1887 को महान गणितज्ञ श्रीनिवास आयंगर रामानुजन् का जन्म हुआ था। वह अपने छात्र जीवन में ही विलक्षण कुशाग्र मेधा के धनी थे, इस बात का प्रमाण उनके स्कूल–कॉलेज के दिनों में समय–समय पर मिलता रहा, उन्होंने अपनी छोटी उम्र में ही अध्ययन के दौरान कुछ ऐसे अनापेक्षित प्रश्नों को हल किया जिससे उनके सम्पर्क में रहने वाले शिक्षक हतप्रभ रहते थे। अपने अध्ययन के चौथे स्तर पर उनसे वरिष्ठ एक छात्र ने समीकरण $x+y=7, x+y=11$ का हल पूछा, उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देते हुए इतनी सरलता से हल $x=11, y=-4$ तथा $x=9, y=2$ बता दिया जो उस स्तर पर अध्ययन कर रहे छात्र से अपेक्षित नहीं था। वह वरिष्ठ छात्र छठे स्तर पर अध्ययनरत था, जो बाद में नैरोल का कलेक्टर बना। रामानुजन् अध्ययन के साथ ही साथ छात्रों को पढ़ाते भी थे, उन्हीं के एक छात्र ने शून्य से शून्य का भागफल पूछा तब शीघ्र ही उन्होंने अगणनीय या कुछ भी कहा क्योंकि उनके हिसाब से अंश या हर मे कई शून्य हो सकते हैं। उनके शिक्षकों को उनकी योग्यता पर असीम विश्वास था। सन् 1903 में इन्होंने लोनी की त्रिकोणमितीय भाग–2 पूरी हल की थी, साथ ही कुमबकोनम राजकीय कॉलेज के अपने मित्र से उन्होंने जी0 एस0 कैरी की किताब प्राप्त कर ली, जिसमें ज्यामिति, बीजगणित, त्रिकोणमिति, अवकल इत्यादि विषयों के 6000 सूत्र बिना सिद्ध किये हुए दिये थे, रामानुजन् ने अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर उन सभी को हल कर सिद्ध कर दिया, यह गणित विषय पर दुनिया को बहुमूल्य योगदान था।

1904 में उन्होंने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा सुब्राहमणयम् छात्रवृत्ति भी प्राप्त की। तदुपरान्त कुमबकोनम के राजकीय कॉलेज में अंग्रेजी, गणित, संस्कृत, इतिहास एवं मनोविज्ञान विषय लेकर पढ़ना प्रारम्भ किया तथा गणित विषय पर ज्यादा ध्यान देने की वजह से वे अन्य विषयों को जमकर नहीं पढ़ पाये, फलस्वरूप एफ0 ए0(मैट्रिक के आगे) की परीक्षा, सन् 1905, में जब वे फेल हो गये, तब उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा तथा 1906 में पचिमप्पास कॉलेज, मद्रास में प्रवेश लेना पड़ा, उस कॉलेज के प्रधानाचार्य जे0 ए0 यातिश ने रामानुजन् में योग्यता देखकर उनकों छात्रवृत्ति प्रदान की, रामानुजन् ने यहां अधिक परिश्रम कर गणित विषय का अध्ययन शुरू कर दिया, परन्तु कुछ माह उपरान्त उनका स्वास्थ्य धीरे–धीरे खराब होने लगा तथा स्वास्थ्य अधिक खराब होने के कारण उन्हें अपना अध्ययन छोड़कर कुमबकोनम् जाना पड़ा। उन्होंने अपने पिता की सलाह पर सन् 1907 में व्यक्तिगत छात्र की तरह एफ0 ए0(मैट्रिक के आगे) में दाखिला लिया। अन्ततः वे मैट्रिक के आगे की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सके, यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उनका छात्र जीवन अन्त प्रायः प्रतीत होने लगा, यह उनके लिए मुश्किल समय था। इस वजह से वे अपने लक्ष्य में भ्रमित होने लगे थे ऐसा प्रो0 जी0 एच0 हार्डी ने भी स्वीकारा। आर्थिक तंगी एवं अस्वस्थता के बावजूद रामानुजन् कैरी के गणितीय कार्य संक्षेपण से प्रभावित होकर, अपने द्वारा किये गये गणितीय शोध को कलम बंद कर पांडुलिपियों के रूप में एकत्रित करने लगे, जिसमें मुख्यतः जावई वर्ग, वितत भिन्न, अभिसारी, अपसारी श्रृंखला पर कार्य करते हुए नवीन परिणामों को संग्रहित करते हुए तीन पांडुलिपियां 33, 212 एवं 352 पृष्ठों की क्रमशः कलम बंद कर डाली। यह सारी पांडुलिपियां सन् 1957 में मद्रास विश्वविद्यालय, मौलिक शोध के संस्थान टाण एवं दोराबजी ट्रस्ट ने प्रकाशित की, जिसका प्रमाण विश्व गणितीय धरोहर के रूप में आज भी मौजूद है।

इस दौरान सन् 1909 में 22 वर्ष की उम्र में उनका विवाह करूर में जानकी के साथ हुआ, विवाह उपरान्त वह अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन हेतु नौकरी की तलाश में लग गये, उन्होंने कुमबकोनम में विद्यार्थियों को शिक्षा देने का कार्य शुरू किया साथ ही मद्रास में गणित विषय की शिक्षा देने

का कार्य भी शुरू कर दिया, यहाँ से उनकी मेधा का परिचय लोगों को होने लगा, कुमबकोनम में शिक्षण कार्य करते हुए उनकी मुलाकात भारतीय गणित संस्थान के संस्थापक प्रो0 वी0 रामास्वामी अय्यर से हुई, उन्होंने रामानुजन् की पांडुलिपियों को देख उनका सम्पूर्ण अध्ययन किया, जिसमें रामानुजन् के द्वारा हल किये गये सूत्रों एवं प्रमेयों में उनकी मेधा के दर्शन हुए। प्रो0 रामास्वामी ने साधारण लेखा कार्यालय में बाबू की नौकरी के लिए प्रो0 पी0 वी0 सेशू से सिफारिश की, रामानुजन् को नौकरी तो मिल गई पर कुछ दिनों पश्चात् वह नौकरी उन्होंने छोड़ दी। तत्पश्चात् उन्होंने पोर्ट ट्रस्ट मद्रास में रिक्त पद पर आवेदन किया, जिसके लिए प्रो0 रामास्वामी ने नैरोल के कलेक्टर रामचंद्रन को पत्र लिखा, अन्ततः 30 रूपये प्रति मास के वेतन पर वह नौकरी रामानुजन् को मिल गई। रामानुजन् का मन–मस्तिष्क तो ज्ञान–विज्ञान में रचा बसा था, जिससे यह नौकरी भी उन्हें रास नहीं आई। यह समय उनके जीवन का मुश्किल भरा था, यह क्रम अगले कुछ वर्ष चलता रहा जिससे रामानुजन् पूरी तरह से टूट चुके थे, लेकिन अपनी मेधा के परचम के लिए उन्होंने अपना प्रयास जारी रखा।

तीन वर्ष उपरान्त सन् 1912 में उनके जीवन में महत्वपूर्ण मोड़ आया, जिसमें उनके ज्ञान–विज्ञान एवं गणतीय मेधा को सराहना एवं पहचान मिली, जिसके लिये वे प्रयत्नशील रहते थे। चूंकि वे मद्रास पोर्ट ट्रस्ट में कार्य कर चुके थे, इस वजह से ट्रस्ट के चेयरमैन सर फ्रांसिस को रामानुजन् की गणितीय शोध एवं मेधा को दुनिया के नामचीन लोगों के सामने लाने का श्रेय जाता है तथा साथ ही उन्होंने रामानुजन् का हौसला बढ़ाया एवं गणितीय शोध के लिए उत्साहित किया। सर फ्रांसिस नें उस समय के नामचीन गणितीय विद्वान डॉ0 गिलवर्ट, टी0 वाल्कर को रामानुजन् की पांडुलिपियों का अध्ययन कर उनकी मेधा एवं दक्षता को परखने के लिए कहा, कहते हैं यही से रामानुजन् की मेधा परवान चढ़ना शुरू हुई एवं गणित विषय के कई प्रसिद्ध विद्वानों ने उनकी मेधा का लोहा मानना शुरू कर दिया। रामानुजन् के जीवन संदर्भ को सी0 पी0 स्नो नें इन वाक्यों में व्यक्त किया "एक प्रेरणा दायक कहानी, जो सभी पर ज्ञान की बौछार करती है"। त्रिनिटी कॉलेज, कैंब्रिज के डॉ0 वाल्कर ने रामानुजन् के शोध कार्य की गुणवत्ता को पहचाना तथा मद्रास विश्वविद्यालय के कुलसचिव फ्रांसिस डयूसबर को पत्र लिखा, तदोपरान्त मद्रास के गवर्नर ने मद्रास विश्वविद्यालय में रामानुजन् को 75 रूपये प्रतिमाह की शोध छात्रवृत्ति दो वर्षों के लिए प्रदान की। यहाँ से रामानुजन् की मेधा का प्रचार–प्रसार सात–समुन्दर पार पहुंचना शुरू हुआ, फलस्वरूप डॉ0 वाल्कर ने कैंब्रिज के प्रो0 जी0 एच0 हार्डी से रामानुजन् की शोध दक्षता की प्रमाणिकता पर गहन विचार–विमर्श किया, तब 1911 में रामानुजन् का बरनौली संख्याओं नामक लेख "भारतीय गणित संस्थान की शोध पत्रिका" में प्रकाशित हुआ साथ ही सन् 1912 की शोध पत्रिका में दो और लेख प्रकाशित हुए। इन प्रकाशित लेखों से प्रो0 सी0 एल0 टी ग्रिफ्थ, मद्रास इंजीनियरिंग कॉलेज, अत्यधिक प्रभावित हुए तथा सर फ्रांसिस स्प्रिंग से रामानुजन् के गणितीय शोध को उच्च कोटि का एवं उन्हें विलक्षण गणितज्ञ बताया। प्रो0 ग्रिफ्थ ने रामानुजन् के गणितीय शोध को परखने के लिए उस समय के प्रमुख गणितज्ञों के पास भी भेजा।

इस बीच रामानुजन् ने भारतीय गणित संस्थान में उपलब्ध विदेशी शोध पत्रिकाओं का जमकर अध्ययन किया। अध्ययन के दौरान उन्होंने प्रो0 हार्डी के द्वारा छोड़े गये कई जटिल बिंदुओं का पता चला, जिससे वे अत्यन्त प्रभावित हुए क्योंकि स्वयं रामानुजन् ने उन जटिल गणितीय प्रश्नों का हल पहले कर दिया था। रामानुजन् काफी खुश हुए थे, उन्होंने प्रो0 हार्डी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने उनके द्वारा उठाये गये जटिल 120 सूत्रों एवं प्रमेयों के समाधान के शोध पत्र भी भेजे। प्रो0 हार्डी ने एक दिन जनवरी 1913 में जलपान की मेज पर उस समय रामानुजन् के उस पत्र का लिफाफा देखा जिसमें उन्होंने पत्र के साथ उन 120 सूत्रों एवं प्रमेयों का संपूर्ण हल अपनी पांडुलिपियों के संग्रह से भेजी थी। प्रो0 हार्डी को पहले तो यह किसी धोखेबाज व्यक्ति का पत्र लगा, परन्तु कौतूहल वश उन्होंने वह लिफाफा खोलकर देखा पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ, उन्हें लगा यह सब करने वाला कोई धोखेबाज हो सकता है, परन्तु उनका मन–मस्तिष्क यह मानने के लिए बिलकुल तैयार नहीं था, फिर भी उसी दिन डिनर के बाद प्रो0 हार्डी अपने मित्र प्रो0 जे0 ई0 लिटिलवुड के पास गये तथा रामानुजन् के द्वारा भेजे गये गणितीय शोध कार्य पर चर्चा की तथा दोनों ने स्वीकारा कि यह अति उच्चकोटि का शोध है, जो कोई विलक्षण गणितज्ञ ही कर सकता है। दोनों के बीच लंबे विचार विमर्श बाद रामानुजन् को कुशाग्र बुद्धि वाला विलक्षण गणितज्ञ करार दिया। साथ ही निश्चय कर रामानुजन् को तुरन्त इंग्लैण्ड बुलाया। इस प्रक्रिया के लिए प्रो0 हार्डी ने एक अन्य गणितज्ञ प्रो0 नेविले से बात कर समस्त जिम्मेदारी प्रो0 नेविले पर डाली कि रामानुजन् को यथाशीघ्र लंदन बुलाया जाये, तदोपरान्त दिनांक 17 मार्च 1914 को रामानुजन् भारत से लंदन के लिए समुद्री जहाज से निकल पड़े तथा 14 अप्रैल 1914 को वे लंदन पहुंच गये। वहाँ कैम्ब्रिज में रामानुजन् ने चार बहुमूल्य वर्ष बिताये। स्वयं प्रो0 हार्डी ने स्वीकारा कि 1914 से 1918 तक रामानुजन् के साथ व्यतीत किया गया समय उनके लिए स्वर्णिम काल था, जिससे इस काल में विश्व रामानुजन् की गणित के विलक्षण मेधा से रूबरू हुआ। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने 1916 में शोध कार्य हेतु रामानुजन् को बी0 ए0 की डिग्री प्रदान की। इस दौरान रामानुजन् ने 27 शोध पत्र प्रकाशित किये जिसमें 07 शोध पत्र प्रो0 हार्डी के साथ थे। इसी वर्ष वे पहले भारतीय बनें जिन्हें रॉयल सोसाइटी एवं ट्रिनिटी कॉलेज ने अपना साथी (फेलो) चुना, यह रामानुजन् के साथ देश के लिए गर्व की बात थी। विदेश में इस तरह सम्मान प्राप्त करने के उपरान्त, मद्रास विश्वविद्यालय ने 1919 में बिना शर्त 250 डालर प्रतिवर्ष के हिसाब से पांच वर्षों के लिए स्थाई भत्ता देने की घोषणा की, जो उन्हें विदेश से मिलने की समय सीमा समाप्त होने के उपरान्त दिया जाना निश्चित किया गया। साथ ही मद्रास विश्वविद्यालय ने रामानुजन् के लिए प्रोफेसर का पद सृजित किया, पर ईश्वर को यह मन्जूर नहीं था।

निष्कर्ष

अपने लंदन के अन्तिम प्रवास के दौरान शनै–शनै उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा क्योंकि स्वास्थ्य को लेकर रामानुजन् पहले से ही कई बीमारियों से ग्रस्त रहे, जिस वजह से 1907 से 1912 तक उनका समय अस्वस्थता एवं अवसाद के चलते आर्थिक तंगी से गुजरा था। पुनः 1917 के मध्य लंदन में रामानुजन् गंभीर बीमारी से ग्रस्त हो गये, इस वजह से उन्हें कैम्ब्रिज के एक अस्पताल में दाखिल करवाना पड़ा। वहाँ उनके स्वास्थ्य में कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हो रहा था,उस वजह से वे पुनः अवसाद से ग्रस्त थे, इसलिए एक दिन प्रो0 हार्डी उनसे मिलने आये तथा उनको खुश करने के लिए उन्होंने रामानुजन् से अपनी टैक्सी का नं0 1729 बताया जिससे वे आये थे, उन्होंने कहा मुझे यह संख्या नीरस प्रतीत होती है, मुझे इस बात से डर लग रहा है कि यह तुम्हारे लिए ठीक नहीं, रामानुजन् ने उस समय कुशाग्र बुद्धि से त्वरित उत्तर देते हुए कहा यह एक रोचक न्यूनतम संख्या है

जिसको दो तरह से, दो संख्याओं के घन के योग के रूप में लिखा जा सकता है, उदाहरणतः $1^3+12^3=1729=9^3+10^3$ चूंकि रामानुजन् संख्याओं से खेलते थे, इस वजह से उनको पुनः खुश करने के लिए प्रो0 हार्डी ने कहा, इस सूत्र को संख्याओं की चतुर्थ घात में व्यक्त कर बता सकते हो? तुरन्त रामानुजन् ने कहा ऐसा करने पर प्रथम संख्या बड़ी होगी उदाहरणतः रामानुजन् द्वारा दिया गया सूत्र $क^4+ख^4=ग^4+घ^4$, इस आधार पर संख्याओं का प्रयोग कर उदारहरणतः लिखा $59^4+158^4=635318657=133^4+138^4$। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रामानुजन् बचपन से संख्याओं से इस तरह खेलते थे जैसे बच्चा खिलौनों से खेलता है, इसलिए प्रो0 हार्डी ने अस्पताल में रामानुजन् को अवसाद से बाहर लाने के लिए उक्त संख्याओं का जिक्र किया जो आज तक अविस्मरणीय है। साथ ही प्रो0 हार्डी यह भी कहते हैं कि उनकी अस्वस्थता के बावजूद उनका मस्तिष्क अति कुशाग्र था।

अपने गिरते स्वास्थ्य के चलते अन्ततः सन् 1919 में वे भारत लौट आये यहां शनैः शनैः उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया, उनकी पत्नी जानकी कहती हैं जब वे भारत लौटे, मैं हर पल उनके साथ रही, एक समय वे हाड़मांस जीर्ण शरीर की तरह लगने लगे, अन्ततः 26 अप्रैल 1920 को यह कुशाग्र मेधा दुनियां छोड़कर हम सबसे दूर हो गई, परन्तु आज भी भारतवर्ष को अपने सपूत पर गर्व है।

संदर्भ

1. ब्रेंडिट, ब्रेस सी0(1939) रामानुजन् की पांडुलिपियां, अभिसारी श्रंखला का रामानुजन् का सिद्धान्त, पृ0 6, स्प्रिंगर–वर्लेग(एड0), मु0 पृ0 133–149। (http://www.comms.scitech.susx.ac.un/fft/math/ramanujannotebooks1.pdf)
2. समेबिलिटी मेथेड्स–श्रीनिवास रामानुजन् (http://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Ramanujan_Summation&oldid=555133011)
3. दैनिक हिन्दू (www.thehindu.com/features/metroplus/article884010.ece)

डॉ अशोक सेन – एक संक्षिप्त परिचय

अरविन्द कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0प्र0)–226001, भारत
tiwariarvind1@rediffmail.com



संक्षिप्त जीवन वृत्त

डॉ0 अशोक सेन का जन्म सन् 1956 में कोलकता(पश्चिम बंगाल, भारत) में हुआ था। वह अपनी माता(श्रीमती गौरी सेन, जो एक गृहिणी थीं) व पिता(श्री अनिल कुमार सेन, जो कि स्कॉटिश चर्च कॉलेज, कोलकता, के भौतिक विज्ञान विभाग में पूर्व प्रोफेसर थे) के बड़े बेटे हैं। इन्होंने वर्ष 1962 से वर्ष 1972 तक अपनी इण्टरमीडिएट तक स्कूल की पढ़ाई विज्ञान वर्ग में शैलेन्द्र सिरकार विद्यालय, कोलकता, से प्राप्त की। आपके द्वारा वर्ष 1972 से वर्ष 1975 तक विज्ञान में स्नातक(बी0 एस सी0–भौतिक विज्ञान) कोलकता के प्रतिष्ठित प्रेसीडेंसी कॉलेज से तथा वर्ष 1976 से वर्ष 1978 तक स्नातकोत्तर उपाधि(एम0 एस सी0–भौतिक विज्ञान) भारत के सबसे प्रतिष्ठित तकनीकी संस्थान आई0 आई0 टी0 कानपुर से प्राप्त की। तत्पश्चात् आपके द्वारा वर्ष 1978 से वर्ष 1982 तक स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क, स्टोनीब्रुक, यू0 एस0 ए0, में रहकर प्रोफेसर जॉर्ज स्टर्मन के निर्देशन में शोध उपाधि(पी एच0 डी0, भौतिक विज्ञान) प्राप्त की गई। पोस्ट डॉक्टोरल शोध कार्य हेतु आप वर्ष 1982 से वर्ष 1985 तक फर्मीलैब, बताविया, यू0 एस0 ए0, तथा वर्ष 1985 से वर्ष 1988 तक एस0 एल0 ए0 सी0, नैशनल एक्सलरेटर लैब, स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय, यू0 एस0 ए0, गये।

स्थाई पद भार

आपके द्वारा वर्ष 1988 में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेंटल रिसर्च, मुंबई, भारत, में स्थाई रूप से पद भार ग्रहण किया गया। यहाँ आपने वर्ष 1995 तक कार्य किया। तत्पश्चात् आपके द्वारा वर्ष 1995 में गणित एवं सैद्धांतिक भौतिक विज्ञान की दुनिया भर में अग्रणी शोध संस्था **हरीश–चन्द्र शोध संस्थान(एच0 आर0 आई0)**, छत्तनाग रोड, झूसी, इलाहाबाद(उ0 प्र0)–211019, भारत, के भौतिक विज्ञान विभाग में प्रोफेसर का पद भार ग्रहण किया। जहाँ पर वह अभी भी कार्यरत हैं।

राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय फैलोशिप्स, सम्मान एवं पुरस्कार

	राष्ट्रीय	अंतर्राष्ट्रीय
अकादमी फैलोशिप	इंडियन एकेडेमी ऑफ साइंस, बंगलूरू चयनित–वर्ष 1991	42 वर्ष की आयु में रॉयल सोसायटी, लंदन द्वारा चयनित–वर्ष 1998
	इंडियन नैशनल साइंस एकेडेमी, नई दिल्ली, चयनित–वर्ष 1995	थर्ड वर्ल्ड एकेडमी ऑफ साइंसेज चयनित–वर्ष 2004
	नैशनल ऐकेडमी ऑफ साइंस, इलाहाबाद, चयनित–वर्ष 1997	
पुरस्कार	शांति स्वरूप भटनागर एवार्ड(1994)	आईसीटीपी(एच0 युकावा के सम्मान में दिया जाने वाला पुरस्कार) प्राइज(1989)
	बी0 एम0 बिरला साइंस एवार्ड(1995)	थर्ल्ड वर्ल्ड एकेडमी ऑफ साइंसेज प्राइज(1997)
	जी0 डी0 बिरला एवार्ड(1996)	पीआईयूएस ग्यारहवां गोल्ड

		मेडल(2006)
	आर0 डी0 बिरला एवार्ड(1998)	उनके शोध कार्य "स्ट्रिंग थ्योरी" पर फंडामेंटल फिजिक्स प्राइज(2012) **(इस पुरस्कार की धनराशि प्रतिष्ठित नोबेल प्राइज की लगभग तीन गुना होती है।)**
	पद्मश्री एवार्ड(2001)	
	कमल कुमारी नेशनल एवार्ड(2001)	
	इंडियन नैशनल साइंस एकेडेमी–एस0 एन0 बोस लेक्चर एवार्ड(2004)	
	एच0 के0 फिरोदिया एवार्ड(2005)	
	जे0 सी0 बोस फैलोशिप, डी0 एस0 टी0, भारत सरकार(2006)	
	इंफोसिस प्राइज(2009)	
	पद्म भूषण एवार्ड(05.04.2013)	
	एम0 पी0 बिरला मेमारियल गोल्डन जुबिली एवार्ड(04.07.2013)	
मानद उपाधियां	डी0 एस सी0, कोलकता वि0 वि0	
	डी0 एस सी0, आई0 आई0 टी0 खरगपुर, प0 बंगाल, वर्ष 2009	
	डी0 एस सी0, बंगाल इंजीनियरिंग एण्ड साइंस यूनिवर्सिटी, शिबपुर	

शोध कार्य

डॉ0 अशोक सेन द्वारा गणितीय भौतिकी में "स्ट्रिंग थ्योरी" पर अनेकों नये योगदान किये गये हैं जिनमें सबसे प्रमुख शोध पत्र "स्ट्रॉन्ग–वीक कप्लिंग डुअलिटी या एस0–डुअलिटी" है। यह शोध पत्र उनकी पूरे शैक्षिक प्रगति में मील का पत्थर साबित हुआ। जिसके लिए उन्हें वर्ष 2012 के लिए प्रतिष्ठित फंडामेंटल फिजिक्स प्राइज के लिए चुना गया। यहाँ यह सूच्य है कि इस पुरस्कार की धनराशि दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित नोबल प्राइज की पुरस्कार धनराशि से लगभग तीन गुना है। उनके इस शोध कार्य ने इसी विषय पर कार्य कर रहे अन्य भौतिकविदों पर गहरा प्रभाव छोड़ा तथा प्रत्येक भारतीय इस उपलब्धि पर गौरवान्वित महसूस का सकता है। उनके द्वारा "अनस्टेबल डी–ब्रेन" के अध्ययन का बीडा उठाया गया तथा "ओपेन स्ट्रिंग टेक्योंन कन्डेन्जेशन" पर प्रसिद्ध "सेन कंजक्चर" प्रतिपादित किया। उनके द्वारा "रोलिंग टेक्योंन्स" पर दिये गये विवरण ने "स्ट्रिंग कॉस्मोलॉजी" के अध्ययन को बहुत प्रभावी बनाया। उनके योगदान में एंट्रॉपी फलन का सूत्रीकरण प्रमुख है जो एकसट्रीमल ब्लैक होल थ्योरी को समझने में अत्यंत ही सहायक सिद्ध हुआ। उनका वर्तमान शोध कार्य "अट्रैक्टर मिकेनिज्म" तथा "प्रेसिजन काउंटिंग ऑफ माइक्रोस्टेट्स ऑफ ब्लैक होल्स" पर आधारित है। सम्पूर्ण दुनिया के शोधकर्ताओं की निगाहें उनके इस कार्य की ओर लगी हुई हैं।

आपके द्वारा कुल 217 अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित शोध पत्र एवं समीक्षा लेख लिखे गये हैं। यह शोध पत्र प्रमुखतः न्यूक्लियर फिजिक्स, फिजिकल रिव्यू, फिजिक्स लेटर, फिजिकल रिव्यू लेटर, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मॉडर्न फिजिक्स, जे0 एच0 ई0 पी0, फिजिक्स स्क्रिप्टा आदि जैसी अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। इन्होंने अपने विषय पर 12 अंतर्राष्ट्रीय एवं 3 राष्ट्रीय स्तर के विशिष्ट वक्तव्य/भाषण तथा अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों/स्कूल में 126 वक्तव्य आमंत्रित विषय विशेषज्ञ के रूप में दिये है।

ज्यामिति (द्वि विमीय एवं त्रि विमीय)

लेखक: दीपक कुमार श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 स्ना0 महा0, लखनऊ
प्रकाशक: पियरसन एजुकेशन, प्रथम संस्करण, वर्ष 2013, नई दिल्ली

ज्यामिति, गणित की एक महत्वपूर्ण विधा है। द्वि विमीय एवं त्रि विमीय निर्देशांक ज्यामिति, इस विधा की दो अति आवश्यक धारायें हैं। लेखक द्वारा इस पुस्तक को भारत देश के सभी हिन्दी भाषी राज्यों के उन छात्र–छात्राओं की समस्याओं को ध्यान में रख कर तैयार किया गया है जो हिन्दी माध्यम से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त स्नातक स्तर पर किसी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में प्रवेश लेते हैं। जहाँ पर उन्हें हिन्दी भाषा में पुस्तकें उपलब्ध न होने के कारण विवश होकर आंग्ल भाषी पुस्तकों से पाठ्यक्रम को विवशतापूर्वक पढ़ना पड़ता है और अनावश्यक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो कि सीधे तौर पर उनके परीक्षा परिणाम को प्रभावित करता है। स्नातक स्तर पर गणित की पुस्तकें हिन्दी माध्यम में पाठकों को सुलभ कराने के इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लेखक की तरफ से किया गया यह एक प्रथम एवं सराहनीय प्रयास है।

द्वि विमीय एवं त्रि विमीय निर्देशांक ज्यामिति के सभी आवश्यक शीर्षकों को क्रमशः छः व ग्यारह अध्यायों में सुधी पाठकों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनके निराकरण सहित लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में प्रस्तुत सभी अध्याय, भारत देश के हिन्दी भाषी राज्यों के विश्वविद्यालयों में चलने वाले ज्यामिति आधारित नवीन पाठ्यक्रमों के अनुरूप हैं। प्रस्तुत पाठ्य–सामग्री में प्रयुक्त भाषा अत्यन्त सरल, प्रचलित, सुबोध, सुस्पष्ट तथा रेखाचित्रों से परिपूर्ण है। ज्यामिति के सिद्धांतों एवं नियमों को स्पष्ट करने के लिए अधिकाधिक साधित उदाहरणों का प्रयोग किया गया है। गणित के सभी तकनीकी शब्दों को वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, द्वारा प्रमाणित शब्द संग्रह एवं शब्दावली के अनुसार प्रयोग में लाया गया है। अंकों, प्रतीकों एवं चिन्हों के लिए अंतर्राष्ट्रीय अंक प्रणाली का प्रयोग किया गया है। सभी अध्यायों में साधित उदाहरणों के उपरांत अभ्यास(प्रश्नावली) पाठकों के अत्यधिक अभ्यास हेतु प्रस्तुत किये गये हैं। जो पाठकों के लिए अत्यंत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

इस संदर्भ में मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है कि यह पुस्तक सभी स्नातक(बी0 ए0 एवं बी0 एस–सी0) छात्र/छात्राओं के लिए अत्यन्त ही लाभकारी सिद्ध होगी।

मैं एक समीक्षक के रूप में इस पुस्तक को छात्र/छात्राओं के हित में लिखी गई गणित विषय की महत्वपूर्ण विधा "ज्यामिति" में अत्यंत ही उपयोगी मानता हूँ तथा लेखक एवं प्रकाशक को इस हेतु आभार ज्ञापित करता हूँ। मैं यह आशा भी व्यक्त करता हूँ कि लेखक अपने इस प्रयास को पाठकों एवं छात्र/छात्राओं के हित में जारी रखेंगे।

समीक्षक– डॉ0 एन0 के0 शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग
लखनऊ क्रिश्चियन डिग्री कॉलेज
लखनऊ(उ0 प्र0), भारत

विज्ञान शिक्षण और साईटून्स

सन्तोष कुमार शर्मा
अतिथि प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग
शासकीय राजीव गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मंदसौर(म0 प्र0)–458001, भारत
पताः ए 26/9, एल0 आई0 जी0 द्वितीय, महानंदा नगर, उज्जैन(म.प्र.)–456010
santosh_ujj@yahoo.com

शिक्षा जीवन का आधार है। यह वाक्य सामान्यतः औपचारिक स्कूली शिक्षा के संदर्भ में कहा जाता है। इस बात की प्रासंगिकता हमेशा से रही है कि किस पद्धति का उपयोग शिक्षा प्रदान करने के लिये किया जाये जो प्रभावी सिद्ध हो। विज्ञान–शिक्षण में यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जिसका कारण विज्ञान शिक्षण की स्वाभाविक जटिलता है। शिक्षाविदों का मानना है कि विद्यार्थी उस विषय सामग्री को सहज याद रख सकते हैं जो पठनीय होने के साथ साथ ही दर्शनीय तत्वों को भी समाविष्ट करती हो। यही कारण है कि अक्सर विज्ञान तथा अन्य विषयों में ग्राफ्स, चार्ट्स, इत्यादि के द्वारा सूचनाएं प्रेषित की जाती हैं। विज्ञान के सैद्धांतिक विषयों में सूचनाओं को रेखाचित्रों एवं चित्रों के माध्यम से आसानी से संप्रेशित किया जा सकता है। कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये शिक्षकों एवं शिक्षाविदों द्वारा विभिन्न नये और रोचक प्रयोग किये जाते रहे हैं, उदाहरण के लिये, चार्ट्स और मॉडल्स का प्रयोग।

संचार क्रांति के इस दौर में कक्षाओं में विद्यार्थियों के पठन–पाठन में भी परिवर्तन हो रहा है। इंटरनेट के इस काल में अब कक्षाएं "स्मार्ट–क्लासेज" में परिणित होती जा रही है, जहाँ शिक्षकगण अधिक रोचक एवं प्रभावी "पॉवर पाईंट प्रेजेन्टेशन" के माध्यम से सूचनाएं विद्यार्थियों तक पहुँचा रहे हैं। नये–नये प्रयोगों की इस सूची में आज हम एक ऐसी विधि पर चर्चा करने जा रहे हैं जिसका लाभ हम विज्ञान शिक्षण के लिये कर सकते हैं। इस तकनीक का शिक्षण में समुचित प्रयोग नहीं हो पाया है। जी हाँ, वह विधि है कार्टून्स के द्वारा शिक्षण। आप सोच रहे होंगे कि यह क्या बात हुई! कार्टून्स का पढ़ाई से क्या संबंध। किंतु यह एक तथ्य है कि हममें से शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो अखबारों में छपे कार्टून्स पर नज़र डाले बिना उन्हें रख दे। वास्तव में कार्टून किसी भाव को अभिव्यक्ति देने का एक सशक्त माध्यम है। कोई कार्टून किसी कलाकार द्वारा बनाये गये कुछ रेखाचित्रों एवं लिखे गये कुछ शब्दों का महज संयोग नहीं बल्कि वह किसी विषय–वस्तु को रेखांकित कर देखने वाले का ध्यान उस ओर आकर्षित करने का प्रयास करता है। यह सर्वविदित है कि जो बात किसी लंबे चौड़े लेख को लिखकर वर्णित की जाये वह संभवतः एक प्रभावी कार्टून के द्वारा सहज रूप से पहुँचाई जा सकती है। सामान्यतः कार्टून्स का उपयोग तंज या व्यंग्य के लिये किया जाता है किंतु यदि कार्टून्स का उपयोग मनोरंजन के साथ–साथ ही अगर शिक्षा के एक माध्यम के रूप में किया जाये तो शिक्षार्थियों को किसी विषय वस्तु को समझने में आसानी होगी। कार्टून्स का शिक्षण में प्रयोग यद्यपि यदा–कदा होता रहा है किंतु अब कार्टून्स का एक नया प्रकार "साईटून्स" के रूप में सामने आ रहा है और लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। भारत में साईटून्स को विकसित करने एवं लोकप्रिय बनाने में सेन्ट्रल ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूट, लखनऊ के डॉ0 प्रदीप कुमार श्रीवास्तव की महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में साईस कार्टून्स का ही संशोधित रूप साईटून्स के नाम से जाना जाता है अर्थात वह कार्टून जो विज्ञान से संबंधित हो या विज्ञान के सिद्धांतों को सहज रूप से प्रदर्शित करे और देखने वाले को मुस्कुराहट के साथ–साथ महत्वपूर्ण जानकारी भी प्रदान करे। साईटून्स का प्रयोग स्कूली एवं महाविद्यालयीन शिक्षा में विद्यार्थियों के लिये इसलिये भी प्रभावी सिद्ध हो सकता है क्योंकि कार्टून्स के प्रति बच्चों में एक सहज आकर्षण होता है जो किशोरावस्था तक बना रहता है।

क्या आप भी बनना चाहते हैं साईटूनिस्ट

साईटून्स बनाना देखने में भले ही एक सरल कार्य लगे किंतु यह अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। साईटूनिस्ट बनने के लिये सबसे पहली आवश्यकता है आपका एक अच्छा चित्रकार होना साथ ही विज्ञान की विभिन्न शाखाओं, उनके सिद्धांतों तथा नित नई खोजों के बारे में सजग रहना। विषय से संबंधित अधिकांश सही एवं प्रामाणिक जानकारियाँ पुस्तकों के गहन अध्ययन से संभव है। इसके अतिरिक्त विभिन्न संचार माध्यम जैसे अखबार, रेडियो, टेलीविजन, भी इसमें सहायता कर सकते हैं। ज्ञानवर्धन के लिये इंटरनेट एक सशक्त माध्यम है, आप जिस भी जानकारी की ईच्छा करेंगे यह अलादीन के जिन की ही भांति आपके सामने पल भर में वह प्रकट कर देगा। किंतु यह ध्यान देना आवश्यक है कि अप्रामाणिक वेबसाईट्स से जानकारी कतई ना ली जाये, जो विद्यार्थियों के बीच एक आम समस्या बन रही है। किंतु साईटूनिस्ट कहलाने हेतु जो अनिवार्यता होनी चाहिये वह है एक उच्च कल्पना शक्ति की जिसके दम पर ही साईटून में मौलिकता और हास्य का समावेश किया जा सकता है जो वास्तव में कठिन है, मगर असंभव नही! इसके लिये आवश्यकता है निरंतर अभ्यास की। किसी राजनैतिक कार्टून की ही भाँति साईटून की व्यंग्यात्मकता को बरकरार रखना भी साईटूनिस्ट से अपेक्षित है तभी वह आकर्षक और प्रभावी बन सकता है।

अगर आप में ये सब खूबियाँ हैं तो सोचिये मत, बस उठाईये कागज़ और पेंसिल और बन जाईये साईटूनिस्ट। हो सकता है आपका साईटून विद्यार्थियों का भविष्य बनाने व संवारने में मददगार साबित हो जाये। सुधी पाठकों के मार्गदर्शन हेतु लेखक द्वारा अंध वर्णता एवं ग्लोबल वार्मिंग पर बनाये गये साईस कार्टून्स उदाहरणार्थ इस पत्रिका "अनुसंधान"(विज्ञान शोध पत्रिका) के अंत(आंतरिक) पृष्ठ पर प्रकाशित किये जा रहे हैं।

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय(के0के0वी0)

(लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ)

स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत

(नैक प्रत्यायित "बी" संस्था)

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद

www.bsnvpgcollege.in/vp

विज्ञान परिषद के कार्य

1. विज्ञान की विभिन्न धाराओं में समय–समय पर **संगोष्ठी का आयोजन** कराना,
2. छात्र/छात्राओं हेतु ग्रीष्मकालीन/शीतकालीन **कार्यशालाओं** का आयोजन,
3. वर्ष में एक बार **"अनुसंधान"(विज्ञान शोध पत्रिका)** का प्रकाशन,
4. मेधावी छात्रों को विज्ञान शोध के क्षेत्र में प्रोत्साहन,
5. गरीब मेधावी छात्र/छात्राओं को छात्रवृत्ति प्रदान करना,
6. समाज व छात्र/छात्राओं को विज्ञान विषय हिन्दी में पढ़ना प्रेरित करना,
7. वैज्ञानिक शोध को हिन्दी में प्रोत्साहित करना,
8. समाज में विज्ञान हेतु जागरुकता पैदा करना आदि।

लक्ष्य तथा दायरा

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद का **"विज्ञान शोध पत्रिका"** को प्रकाशित करने का मुख्य लक्ष्य वैज्ञानिक सोच को हिन्दी में व्यक्त करने तथा वैज्ञानिक शोध को हिन्दी में प्रस्तुत करने की रूचि रखने वाले शोधार्थियों, शिक्षकों एवं वैज्ञानिकों को एक ऐसा मंच प्रदान करने का है जहाँ से उनके कार्य को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहा जा सके। वर्तमान में एक वर्ष में केवल एक अंक के प्रकाशन का लक्ष्य है जिसे भविष्य में आवश्यकता अनुसार एक वर्ष में दो अंक के प्रकाशन तक बढ़ाया जा सकता है। पत्रिका में विज्ञान की सभी धाराओं(**भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित, जन्तु विज्ञान, प्राणी विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, सांख्यिकी, कम्प्यूटर विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी, पर्यावरण विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान** आदि) में प्राप्त पत्रों को उपयुक्त समीक्षा उपरांत स्वीकृत होने पर प्रकाशित किया जायेगा। प्रकाशन हेतु प्रस्तुत भाग–1 व भाग–2 के सभी प्रकार के पत्रों/लेखों में सार या ऐब्स्ट्रेक्ट हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया जाना आवश्यक है।

इस पत्रिका के चार खण्ड होंगे–

भाग–1–**पियर रिव्यूड शोध पत्र/आलेख(सार या ऐब्स्ट्रेक्ट अंग्रेजी में भी होना चाहिए)**

भाग–2–**समीक्षा**–तकनीकी लेख, सम्मानित शोध ग्रंथ सारांश, शोध परियोजना, शोध प्रकाशन, शोध विद्या आदि।(**सार या ऐब्स्ट्रेक्ट अंग्रेजी में भी होना चाहिए**)

भाग–3–महत्वपूर्ण विषयों पर आधारित वैज्ञानिक लेख

भाग–4–पुस्तक समीक्षा, संगोष्ठी/कार्यशालाओं संबंधित आख्या, व्यावहारिक विज्ञान से जुड़ी खबरें, वरिष्ठ वैज्ञानिकों के शोध अनुभवों पर आधारित साक्षात्कार, नवीन वैज्ञानिक विषयों पर शोध विमर्श, साइंटून्स, शैक्षिक विज्ञापन इत्यादि।

इस पत्रिका की प्रिंट–प्रति एवं ई–प्रति दोनों प्रकाशित होंगी।

प्रकाशन हेतु शोध पत्र की प्रस्तुतियां

विज्ञान शोध पत्रिका में प्रकाशन हेतु इच्छुक छात्र/छात्राओं, शोध छात्र/छात्रों, शिक्षकों, वैज्ञानिकों व अन्य शिक्षाविदों से प्रस्तुतियां इस आशय के साथ आमंत्रित हैं कि वह किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशन हेतु न तो स्वीकृत हैं और न ही प्रकाशन हेतु समीक्षारत हैं। एक लेखक पत्रिका के प्रत्येक खण्ड में प्रकाशनार्थ प्रस्तुतियाँ प्रेषित कर सकता है। पत्रिका के किसी भी खण्ड में प्रकाशन हेतु पत्र(पी0 डी0 एफ0 रूप) ई–मेल के

माध्यम से प्रधान संपादक–डा0 सुधीश चन्द्र, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग, बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ, को उनके ई–मेल पते sudhish1953@gmail.com ; dksflow@hotmail.com पर प्रेषित किये जायेंगे। समीक्षा उपरांत स्वीकृत होने पर पत्र की एम. एस. वर्ड में .डॉक फाइल इसी ई–मेल पते पर प्रकाशन हेतु मांगी जायेगी। जिसे पुन: पत्रिका के प्रारूप के आधार पर तैयार करने के उपरांत अंतिम जाँच हेतु लेखक को भेजा जायेगा तथा इसे कम से कम समय(दो से तीन दिन के अंदर) में पुन: अंतिम प्रकाशन हेतु प्रस्तुत करना होगा। प्रकाशन हेतु प्रस्तुत भाग–1 व भाग–2 के सभी प्रकार के पत्रों/लेखों में सार या ऐब्स्ट्रेक्ट हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया जाना आवश्यक है।

नियम एवं शर्तें

1. आजीवन सदस्यता शुल्क–रू0 1000/–(शैक्षणिक संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए आजीवन सदस्यता शुल्क रू0 3000/–)
2. वार्षिक व सत्रवार सदस्यता शुल्क–रू0 300/–
3. 10 पृष्ठों वाले शोध पत्रों/लेखों की छपाई हेतु कोई प्रोसेसिंग शुल्क नहीं लगेगा, तत्पश्चात् प्रति पृष्ठ रू0 50/– देय होंगे।
4. सभी पत्र/लेख हिन्दी के **क्रुति देव 010 फांट एवं 12 पॉइंट साइज** में तैयार किये जायें।
5. भाग–1 व भाग–2 के सभी पत्रों/लेखों में क्रम निम्नवत होना चाहिए–
   हिन्दी में शीर्षक,
   हिन्दी में लेखक का नाम, विभाग एवं संस्था का पता(सेवानिवृत्त होने की स्थिति में घर का स्थायी पता) ई–मेल पते सहित,
   हिन्दी में सारांश,
   अंग्रेजी में शीर्षक,
   अंग्रेजी में लेखक का नाम, विभाग एवं संस्था का पता(सेवानिवृत्त होने की स्थिति में घर का स्थायी पता) ई–मेल पते सहित,
   अंग्रेजी में सारांश(एब्स्ट्रेक्ट)
   प्रस्तावना/भूमिका
   सामग्री एवं विधि
   परिणाम/चर्चा
   निष्कर्ष
   आभार(यदि देना चाहें तो)
   संदर्भ(संदर्भों को लेख में ही क्रमीकरण करते हुए उचित स्थान पर पंक्ति के ऊपर 1,2,3,..... इत्यादि अंकित करके लिखें जैसे जैन व शर्मा[1] या संदर्भित लेखक को वर्ष के साथ उल्लिखित करें जैसे (जैन व शर्मा, 1988))
6. शोध पत्र व पुस्तकों के संदर्भ इस प्रकार तैयार किये जायें–
   सक्सेना, पी0 डी0 तथा शर्मा, ए0 के0(1991) मेडिसिनल प्लांट आफ वाटर, ज0 ऑफ बायो0, खण्ड 21, अंक 3, मु0 पृ0 121–132।
   श्रीवास्तव, डी0 के0(2013) ज्यामिति, पियरसन एजुकेशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली।
7. सभी छपे हुए शोध पत्रों के 25 रि–प्रिंटस लेने अनिवार्य होंगे, जिनका शुल्क रू0 500/– होगा।
8. पत्रिका पूर्ण रूप से ओपेन एक्सेस पियर रिव्यूड सिस्टम पर आधारित होगी जिससे कि कोई भी पाठक छपे हुए पत्रों को पढ़ सकता है तथा शुल्क मुक्त रूप से शैक्षिक उपयोग हेतु डाउनलोड कर सकता है।
9. बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद के आजीवन सदस्यों को पत्रिका की एक प्रति शुल्क मुक्त प्रदान की जायेगी।
10. स्वीकृत पत्रों की उपलब्धता के आधार पर विज्ञान की सभी धाराओं के पाठकों की रूचि को ध्यान में रखते हुए अनिवार्य रूप से सभी धाराओं का कम से कम एक पत्र अवश्य छापा जायेगा। यदि किसी एक धारा में एक वर्ष में कई पत्र छपने हेतु स्वीकृत किये जाते हैं तक उन्हें वरीयता के आधार पर पत्रिका के दूसरे अंक में छपने हेतु सुरक्षित रखा जायेगा।
11. पत्रिका का क्रय मूल्य–रू0 300/–
12. सभी प्रकार के भुगतान **"बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद"[B.S.N.V. Vigyan Parishad]** के नाम पर, चेक/डीडी के माध्यम से होंगे, जो कि **लखनऊ** में देय होगा। किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी प्राप्त करने हेतु पत्राचार– **डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव (सचिव, बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद) एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग, बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत**, पर या ई–मेल: dksflow@hotmail.com पर किया जा सकता है।

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, भारत



बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद
सदस्यता प्रारूप

1. नाम(प्रो0/डॉ0/श्री/श्रीमती) : _____
2. पत्राचार वाला पता : _____
3. फोन/फैक्स/मो0/ई–मेल/वेब पता : _____
4. वर्तमान पद : _____
5. संस्था/सम्बद्धता : _____
6. जन्म तिथि/आयु : _____
7. शैक्षिक योग्यता : _____
8. विषय विशेषज्ञता : _____
9. पुरस्कार/मान्यताएं : _____
10. अन्य : _____
11. भुगतान विवरण : _____
(नकद/चेक/डी. डी. नं0, दिनांक, रू0 में सदस्यता शुल्क, बैंक सूचना)

नोट:–

- सभी प्रकार के शुल्क **"बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद"** के नाम से लखनऊ पर देय होंगे।
- आजीवन सदस्यता शुल्क रू0 1000/– एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क रू0 300/–। विद्यार्थियों/शोध छात्र–छात्राओं हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क रू0 200/– एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क रू0 50/–
- भारत के बाहर के सभी देशों हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क $ 100 एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क $ 40, विद्यार्थियों/शोध छात्र–छात्राओं हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क $ 30/– एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क $ 10
- सभी सदस्यों को **"विज्ञान शोध पत्रिका"** की एक प्रति शुल्क मुक्त रूप से उनके डाक वाले पते पर साधारण डाक से भेजी जायेगी।
- विद्यार्थी/शोध छात्र–छात्राएं सदस्यता प्रारूप के साथ अपनी वर्तमान संस्था द्वारा प्राप्त पहचान पत्र की प्रति अवश्य संलग्न करें।
- सदस्यता प्रारूप व्यक्तिगत रूप में या डाक के माध्यम से **डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव**, रीडर, गणित विभाग(सचिव, बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद), बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज(के0 के0 वी0), स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, के नाम से प्रेषित किये जायें।

दिनांक: हस्ताक्षर





डॉ. सन्तोष कुमार शर्मा
santosh_ujj@yahoo.com

नोबेल पुरस्कार विद्वान – वर्ष 2012



प्रो0 रॉबर्ट जोसेफ लेफ्कोविट्ज



सर जॉन बर्टरांड गर्डन



प्रो0 ब्रायन केंट कोबिल्का



प्रो0 सर्ज हेरोक



शिन्या यामानाका



प्रो0 डेविड जेफ्री वाइनलैण्ड



प्रो0 लॉयड स्टोवेल शैपले



प्रो0 एल्विन इलियट रॉथ



गुआन मोए